सेठ भोलाराम सेकसरिया-स्मारक-ग्रन्थमाला—४

आचार्य केशवदास

लेखक

डॉ० हीरालाल दीक्षित

एम्० ए०, पी-एच्० डी०

हिन्दी-विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय

प्रकाशक

लखनऊ विश्वविद्यालय

सम्वत् २०११ वि०
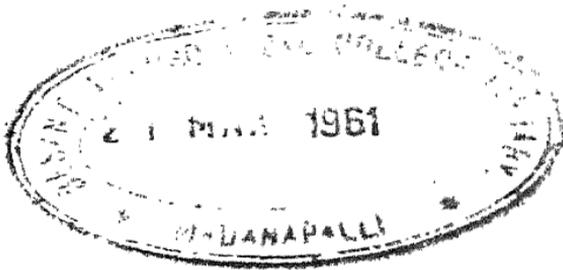
मूल्य नौ रुपये

मुद्रक:—रामआसरे कक्कड़, हिन्दी-साहित्य प्रेस, इलाहाबाद

कृतज्ञता-प्रकाश

श्रीमान् सेठ शुभकरन जी सेकसरिया ने लखनऊ विश्वविद्यालय की रजत्-जयन्ती के अवसर पर बिसवाँ-शुगर-फैक्ट्री की ओर से बीस सहस्र रुपये का दान देकर हिन्दी-विभाग की सहायता की है। सेठ जी का यह दान उनके विशेष हिन्दी-अनुराग का द्योतक है। इस धन का उपयोग हिन्दी में उच्चकोटि के मौलिक एवं गवेषणात्मक ग्रन्थों के प्रकाशन के लिये किया जा रहा है, जो श्री सेठ शुभकरन सेकसरिया जी के पिता के नाम पर 'सेठ भोलाराम सेकसरिया-स्मारक-ग्रन्थमाला' में संग्रथित होंगे। हमें आशा है कि यह ग्रन्थमाला हिन्दी-साहित्य के भण्डार को समृद्ध करके ज्ञानवृद्धि में सहायक होगी। श्री सेठ शुभकरन जी की इस अनुकरणीय उदारता के लिए हम अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

दीनदयालु गुप्त
अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय

उपोद्घात

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल के अन्तिम भाग में देश की राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ हमारे काव्यकार और काव्य-प्रेमियों की अभिरुचि और विचारों में भी परिवर्तन आया। मुगल-शासन की उदार नीति ने प्रजा में सांसारिक वैभव-सम्पादन की रुचि पैदा की। राजाओं के दरबारों में वीरता और नीति की मंत्रणा के स्थान पर विलासिता के रंग जमने लगे। जन-साधारण में हरिचर्चा के स्थान पर नायक-नायिकाओं के अंग-प्रत्यंगों की चर्चा होने लगी। प्रेम-भक्ति की धार्मिक शुद्धता ने लौकिक ऐन्द्रियता का रूप धारण कर लिया। स्वाभाविक सौन्दर्य में ऊपरी चमक-दमक विशेष आकर्षक बनी। फलस्वरूप भावव्यंजना में कला को अधिक महत्त्व दिया गया। कवियों का ध्यान, काव्य की आत्मा—भाव की प्रबलता से मुड़कर काव्य की सजावट, जैसे अलंकार, उक्ति-वैचित्र्य, वाक्-पटुता और कल्पना की ओर, अधिक जाने लगा। कलात्मक काव्यगुण इतने प्रिय हुए कि कवि, काव्य-विवेकी और काव्य-प्रेमियों को काव्यशास्त्र की जानकारी आवश्यक प्रतीत होने लगी। उस समय तक संस्कृत में काव्यशास्त्र पर अनेक ग्रंथ लिखे जा चुके थे। फलतः लोगों की उत्सुकता हिन्दी में काव्यशास्त्र-ग्रंथ प्राप्त करने की ओर बढ़ी। कृपाराम की 'हित-तरंगिणी' नामक रस-रीति ग्रंथ हिन्दी का प्रथम काव्यशास्त्र-ग्रंथ है। इससे पूर्व के कुछ लेखकों के नाम हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने दिये हैं परन्तु उनकी रचनाएं अभी उपलब्ध नहीं हैं। संस्कृत के काव्य-रीतिग्रंथों का हिन्दी साहित्य पर इतना प्रभाव पड़ा कि उन ग्रंथों के अनुकरण में, हिन्दी में भी, काव्य-लक्षण, रस, अलंकार, नायिका-भेद, शब्दशक्ति, काव्यगुण आदि विषयों पर पुस्तक लिखने की प्रथा चल पड़ी। यद्यपि कृपाराम हिन्दी-अलंकारशास्त्र के आदि आचार्य कहे जाते हैं परन्तु महाकवि केशवदास ही अपनी प्रचुर रचनाओं के कारण इस प्रणाली के मुख्य प्रवर्तक और प्रसारक कवि थे। वे काव्यशास्त्र के आचार्य और एक विशिष्ट काव्य-सम्प्रदाय के महाकवि थे।

हिन्दी के काव्यशास्त्रकारों की पद्धति में एक विशेषता यह थी कि वे काव्य-लक्षणों के उदाहरण, अपने पूर्व और समकालीन कवियों की रचनाओं से उद्धृत न करके, स्वयं निर्मित करते थे। संस्कृत काव्यशास्त्र के आचार्यों के ग्रंथों में उदाहरण-भाग बहुधा अन्य कवियों की कृतियों से उद्धृत है। हिन्दी में कुछ कवि ऐसे भी हुए हैं जिन्होंने काव्य-लक्षण-ग्रन्थ तो नहीं लिखे परन्तु उन्होंने उदाहरण-रूप में अनेक स्वतन्त्र भाव-चित्र अंकित किये हैं। काव्यकला, कल्पना-सौष्ठव, और चमत्कारिक विनोद की दृष्टि से हिन्दी का रीति-काव्य सुन्दर और रमणीय है। मानव-रूप और मानव-स्वभाव के अनेक विनोदकारी चित्र हिन्दी साहित्य के रीतिकाल में ललित भाषा द्वारा प्रस्तुत हुए हैं। केशवदास की विद्यमानता यद्यपि हिन्दी साहित्य के भक्ति-काल में थी, परन्तु उनकी कृतियों ने हिन्दी में काव्यांगों की शास्त्रीय विवेचन-प्रणाली को प्रसार दिया और उनकी कवि-शिक्षा ने अनेक कवियों की प्रच्छन्न प्रतिभा को जाग्रत कर हिन्दी-साहित्य को समृद्ध बनाया।

केशवदास के कवि और काव्य के विषय में अनेक उक्तियाँ मौखिक रूप में प्रचलित हैं। उन उक्तियों में कहीं तो उनके काव्य को अत्यन्त कठिन और नीरस कहा गया है और कहीं उनको सूर और तुलसो के साथ स्थान देकर उनके काव्य की सराहना की गई है। 'कवि को देन न चहै बिदाई, पूछै केशव की कविताई, और 'कठिन काव्य का प्रेत, कथनों में केशव के काव्य के प्रति अनुदार धारणाएँ प्रकट हुई हैं। 'कविता कर्ता तीन हैं तुलसी, केशव, सूर' इस जनश्रुति में केशव को सूर या तुलसी के समकक्ष ला बिठाया है। 'हिन्दी-नवरत्न' से लेकर 'केशव की काव्य-कला' तक केशवदास-सम्बन्धी जितनी भी आलोचनाएँ हुई हैं उनमें से कोई भी उनके काव्य का सर्वांगीण अध्ययन प्रस्तुत नहीं करतीं। वस्तुतः पांडित्य-पूर्ण, अलंकारिक शैली में लिखनेवाले काव्यकारों के केशवदास अग्रगण्य हैं। उन्होंने चार प्रकार की रचनाएँ की हैं, जिनका वर्गीकरण इस प्रकार है :—

१. चारणकाल के लौकिक वीरगाथा-काव्य की प्रणाली पर वीरकाव्य—वीरसिंहदेव-चरित, जहाँगीर-जस-चन्द्रिका, रतनबावनी।

२. तुलसीदास के भक्ति-काव्य की तरह राम-चरित का प्रबन्धात्मक भक्तिकाव्य—रामचन्द्रिका।

३. संस्कृत के साहित्य-शास्त्र की पद्धति पर काव्यरीति के लक्षण-ग्रंथ—कविप्रिया (कविशिक्षा और अलंकार), रसिकप्रिया-(रस-नायक-नायिका-भेद), रामालंकृत-मंजरी (पिंगल)।

४. दार्शनिक ग्रंथ—विज्ञानगीता।

काव्यशास्त्र-संबंधी विषयों के विवेचन में केशव ने स्वरचित उदाहरण दिये हैं, साथ ही रामचंद्रिका के अधिकांश छन्द अलंकार, रस, दोष, छंद आदि के उदाहरण हैं।

हिन्दी साहित्य में ऐसे महाकवि की रचनाओं के विवेचनात्मक अध्ययन की मुझे आवश्यकता प्रतीत हुई। इसी विचार से प्रेरित होकर मैंने, "केशवदास, उनकी जीवनी और काव्य का आलोचनात्मक अध्ययन" विषय पर अपने शिष्य और अब सहयोगी अध्यापक डा० हीरालाल दीक्षित से पी-एच० डी० की उपाधि के लिये एक मौलिक निबन्ध प्रस्तुत करने को कहा। डा० दीक्षित ने बड़े परिश्रम से मेरी देख-रेख में यह कार्य प्रस्तुत ग्रंथ के रूप में सम्पन्न किया। इसी ग्रंथ पर उन्हें लखनऊ विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई। डा० दीक्षित मेरी बधाई के पात्र हैं। मुझे आशा है कि हिन्दी-साहित्य-प्रेमी-संसार इस कृति को सहृदयता-पूर्वक अपना कर डा० दीक्षित को प्रोत्साहित करेगा। इसे लखनऊ विश्वविद्यालय से प्रकाशित कराकर पाठकों के सामने रखते हुए मुझे बड़ा हर्ष है। डा० दीक्षित की लेखनी से अन्य महत्त्वपूर्ण तथा गवेषणात्मक ग्रंथों का सृजन हो, यह मेरी मंगल-कामना है।

दीनदयालु गुप्त

डॉ० दीनदयालु गुप्त
एम० ए०, एल-एल० बी०, डी० लिट्०
प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय

प्राक्कथन

प्रस्तुत पुस्तक सन् १९५० ई० में लखनऊ विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० की उपाधि के लिये स्वीकृत प्रबन्ध है। इसमें मध्ययुग के महाकवि केशवदास के जीवन, व्यक्तित्व तथा उनकी कृतियों के मूल्यांकन का प्रयास किया गया है। युग की कलात्मक मान्यताओं का तत्कालीन कृतियों पर कैसा और कितना प्रभाव पड़ता है, इसे प्रस्तुत प्रबन्ध में सम्यक रूप से प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया गया है। आधुनिक युग के कई मान्य आलोचकों ने केशवदास को सरसता से शून्य तथा हृदयहीन कहा है। लेखक ने विद्वानों के इन कथनों का परीक्षण करते हुए यथासाध्य निष्पक्ष रह कर अपने विचार दिये हैं। लेखक की समझ में यह कथन अतिरंजना से पूर्ण और कदाचित आलोचकों के उन क्षणों के परिणाम हैं जिनमें उनको उस युग की कलात्मक मान्यताओं का ध्यान न रहा। वास्तव में केशव में सरसता भी है और हृदय भी है, और काव्यकला के तो वे अप्रतिम आचार्य ही हैं।

केशव का अध्ययन कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। वे काव्यरीति की एक विशिष्ट प्रणाली के प्रवर्तक हैं। उनकी अलंकार-सम्बन्धी समीक्षा का अपना ऐतिहासिक स्थान है। महाकाव्य में उन्होंने नाटकीय शैली का समावेश कर अपनी प्रतिभा तथा मौलिकता का परिचय दिया है। उनके स्फुट काव्यग्रंथों से उनका रसज्ञान, रसिकता, सरसता तथा बहुज्ञता का पूरा परिचय मिलता है। उनकी कृतियों में तत्कालीन सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक परिस्थितियों की पूरी-पूरी झलक है। मध्ययुगीन साहित्य और इतिहास के विद्यार्थी के लिये केशवदास की कृतियों का अध्ययन अनिवार्य रूप से आवश्यक है।

केशवदास का जीवन उस युग के अनुरूप ही रंगीनी, अनेकरूपता तथा रोचकता से परिपूर्ण है। संस्कृत भाषा और साहित्य के प्रकाण्ड पंडित होने के साथ ही वे राजनीति के दाँव-पेचों से पूर्णतया अवगत थे। इन्द्रजीतसिंह तथा वीरसिंह के दरबार और अखाड़ों में जो रस, राग तथा राजनीति की चालें चली जाती थीं, उनके वह पटु आचार्य और कुशल खिलाड़ी थे। केशवदास ने अपनी लेखनी से जिस तरह अपने आश्रयदाताओं के यश का विस्तार किया, उसी प्रकार अपने राजनीति-कौशल के द्वारा उनके सम्मान की भी रक्षा की। दरबार से सम्बन्धित होने के कारण उनकी कृतियों का राजसी रूप दिखलाई पड़ता है।

काव्यशास्त्र की दृष्टि से केशव चमत्कारवादी और अलंकारवादी हैं। उनकी अलंकार की धारणा में रस का समाहार हो जाता है। इतना ही नहीं, उन्होंने स्पष्ट कहा है कि रसाल वाणी से रहित कवि ज्योतिहीन नेत्रों के समान शोभा नहीं पाता, अतएव कवि को सरस कविता करनी चाहिए। कविप्रिया और रसिकप्रिया के जो उदाहरण हैं, उनसे कवि की रसिकता और काव्य की सरसता का पूरा-पूरा परिचय मिलता है। इसलिए केशव को हृदय-हीन नहीं कहा जा सकता।

केशव का आज के युग के लिए भी महत्त्व और संदेश है। आज के साहित्य पर राजनीति, समाजशास्त्र, दर्शन आदि सभी का धावा है और सब इसे अपना वाहन बना रहे

हैं। राजनीति, समाजशास्त्र आदि का समावेश करते हुए भी साहित्य राजनीति और समाजशास्त्र नहीं है। काव्य के काव्यत्व या साहित्य की साहित्यिकता की रक्षा और 'मदाख़िलत बेजा' का विरोध होना ही चाहिए। मध्य युग में अपने महाकाव्य की रचना करते हुए केशवदास ने इसे धर्म या समाज-सुधार का माध्यम न बना कर शुद्ध साहित्यिक और कलात्मक दृष्टि से ही इसका प्रणयन किया है। शुद्ध कलात्मक दृष्टि की अपेक्षा के महत्व की याद यह कवि बराबर दिला रहा है। इसका वर्तमान युग के साहित्यकारों को समुचित ध्यान रखना चाहिये।

अंत में लेखक का हृदय उन सभी संस्थाओं, सज्जनों एवं विद्वानों के प्रति कृतज्ञता से आपूर्ण है जिन्होंने इस प्रबंध के लिये सामग्री दी है, उसका पता बताया है अथवा विवेचन और विश्लेषण के द्वारा अध्ययन और लेखन में सहायता प्रदान की है। विशेष रूप से लेखक लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष, प्रोफेसर डा० दीनदयालु जी गुप्त का आभारी है, जिनके पथप्रदर्शन और सौहार्दपूर्ण प्रोत्साहन के द्वारा ही प्रस्तुत प्रबन्ध पूर्ण हो सका। वह डा० बल्देव प्रसाद जी मिश्र का भी आभार मानता है जिन्होंने ग्रंथ प्रकाशित होने के पूर्व अनेक बहुमूल्य सुझाव दिये। लेखक डा० भवानीशंकर जी याज्ञिक का भी कृतज्ञ है जिन्होंने 'जहाँगीर-जस-चंद्रिका' नामक रचना की हस्तलिखित प्रति दिखाकर सहायता की।

ग्रन्थ में मुद्रण-सम्बन्धी कुछ भूलें रह गई हैं। लेखक उनके लिये विद्वानों और पाठकों का क्षमा-प्रार्थी है। आशा है वे उन्हें सुधार लेंगे।

हीरालाल दीक्षित

संकेत-लिपि

ई०	=	ईसवी
का० क० वृत्ति	=	काव्यकल्पलता-वृत्ति
छं० सं०	=	छन्द संख्या
डा०	=	डाक्टर
ना० प्र० प०	=	नागरी-प्रचारिणी पत्रिका
ना० प्र० स०	=	नागरी-प्रचारिणी सभा
ना० प्र० स० खो० रि०	=	नागरी-प्रचारिणी सभा खोज-रिपोर्ट
नी० श०	=	नीतिशतक
पं०	=	पंडित
पृ० स०	=	पृष्ठ संख्या
बा०	=	बाबू
मो०	=	मोहल्ला
रि० न०	=	रिपोर्ट नम्बर
ला०	=	लाला
वि०	=	विक्रमीय
वें०प्रे०	=	वेंकटेश्वर प्रेस
सं०	=	सम्वत्
स० कु० कण्ठाभरण	=	सरस्वतीकुलकण्ठाभरण
स्व०	=	स्वर्गीय
ह० लि०	=	हस्तलिखित

विषय-सूची

प्रथम अध्याय

पृष्ठभूमि (१-१८)

द्वितीय अध्याय

जीवनी (१९-६६)

तृतीय अध्याय

ग्रंथ तथा टीकाएँ (६७-१०३)

चतुर्थ अध्याय

काव्य-विवेचन (१०४-२३०)

पंचम अध्याय

आचार्यत्व (२३०-३३०)

षष्ठ अध्याय

विचारधारा (३३१-३६६)

सप्तम् अध्याय

इतिहास-निर्माण (३९६-४२३)

सहायक-ग्रंथ

बानी जू के बरन जुग, सुबरन कन परमान
सुकवि सुमुख कुरुखेत परि, होत सुमेर समान ।

प्रथम अध्याय

पृष्ठभूमि

केशव का काव्य-क्षेत्र—ओरछा राज्य

केशवदास ओरछा के राज्याश्रित कवि थे; इनके समस्त ग्रंथों की रचना ओरछा राज्य की छत्रछाया में ही हुई। मध्यभारत की रियासतों में ओरछा राज्य का प्रमुख स्थान है। वर्तमान समय में इसके उत्तर तथा पश्चिम की ओर झाँसी प्रान्त, दक्षिण की ओर सागर प्रांत तथा बिजावर और पन्ना की रियासतें, और पूर्व की ओर चरखारी तथा बिजावर रियासतें एवं गरौली जागीर स्थित है। प्राचीन समय में ओरछा राज्य का विस्तार बहुत अधिक था। उस समय इस राज्य का विस्तार उत्तर में जमुना से लेकर दक्षिण में नर्मदा तक तथा पश्चिम में चम्बल नदी से लेकर टौंस नदी तक था[1]। केशव के समय में सम्भवतः ओरछा राज्य की यही सीमा थी। बुंदेलखंड में मौखिक रूप से प्रसिद्ध है कि इस सीमा के अन्तर्गत सब लोग महाराज वीरसिंहदेव की धौंस मानते थे[2]। वीरसिंहदेव केशव के आश्रयदाता प्रमाणित हो चुके हैं।

ओरछा राज्य के नामकरण के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि एक बार किसी राजपूत अधिनायक ने राजधानी के लिये स्थान चुना जाने पर इस स्थान को देखकर कहा कि 'उंडछे' अर्थात् स्थान नीचा है और तभी से इस राज्य का नाम ओरछा अथवा ओड़छा पड़ गया। सन् १७८३ के बाद से ओरछा राज्य टीकमगढ़ की रियासत कहा जाने लगा। उसी समय से महाराज विक्रमाजीत ने टीकमगढ़ को अपनी राजधानी बनाया। कृष्ण भगवान का एक नाम 'रणछोर टीकम' भी है। इसी नाम के आधार पर राजधानी का नाम टीकमगढ़ रखा गया। ओरछा राज्य मध्य भारत में स्थित है। भूमि अधिकांश पथरीली तथा कम उपजाऊ है। प्राचीन काल में इस स्थान में बहुत से जंगल थे किन्तु इस समय प्रायः झाड़ियाँ और छोटे छोटे पेड़

१. ओरछा स्टेट्स गज़ेटियर, पृ० सं० १।

२. "इत जमुना उत नर्मदा, इत चम्बल उत टौंस।
यामे विरसिंह देव की, सबने मानी धौंस" ॥

बुन्देलखंड-वैभव, प्रथम भाग, पृ० सं० १६१।

बहुतायत से हैं। राज्य के अन्तर्गत अनेक पहाड़ियाँ हैं जो समानान्तर चली गई हैं। बीच बीच में उपजाऊ मैदान हैं। ओरछा राज्य का प्राकृतिक दृश्य बड़ा ही लुभावना है। इस राज्य में बहने वाली नदियों में बेतवा तथा धसान मुख्य हैं। प्राचीन काल में बेतवा 'वेत्रवती' के नाम से प्रसिद्ध थी। पुराणों के अनुसार इसका उद्गम-स्थल 'पारियात्र' अर्थात पश्चिमी विन्ध्याचल दिया हुआ है। इसी के तट पर प्राचीन ओरछा नगर स्थित था, जिसका उल्लेख केशव ने स्वयं किया है[1]। धसान प्राचीन काल में 'दशार्ण' नदी के नाम से प्रसिद्ध थी। बेतवा तथा इस नदी के बीच का प्रदेश प्राचीन काल में 'दशार्ण देश' कहलाता था। टालमो (सन् १५०) ने 'दसारन' नदी का उल्लेख किया है वह कदाचित यही नदी हो[2]। राज्य में अनेक झीलें भी हैं, जिनमें कुछ बहुत बड़ी हैं। इनमें 'मदनसागर' तथा 'बीरसागर' नाम की झीलें बहुत प्रसिद्ध हैं।

केशव की पूर्ववर्ती साहित्यिक परम्परा :

किसी युग का साहित्य उस युग के मानव-भावों, विचारों और आकांक्षाओं का प्रकटीकरण होता है और मानव-भाव, विचार तथा आकांक्षायें उस युग की परिस्थितियों के अनुसार ही बनती हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि युग-विशेष के साहित्य का सृजन उस युग की विभिन्न परिस्थितियों—राजनीतिक, सामाजिक, तथा धार्मिक—के अनुसार ही होता है। किसी साहित्य का इतिहास इस सार्वभौम सत्य का अपवाद नहीं है। अतएव किसी काल के किसी कवि के ग्रंथों की सहानुभूतिपूर्ण आलोचना करने के लिये इन परिस्थितियों का जानना आवश्यक है। इन परिस्थितियों के अतिरिक्त कवि पर उसके पूर्व आती हुई साहित्यिक परम्परा का भी प्रभाव पड़ता है। वह अपने से पूर्व की साहित्यिक विचारधारा से अनुप्राणित होकर काव्य-रचना करता है। अतएव केशव के काव्य का अध्ययन करने के पूर्व उनसे पहले की साहित्यिक विचारधारा तथा समकालीन राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों का दिग्दर्शन कराना आवश्यक होगा।

केशव से पूर्ववर्ती हिन्दी साहित्य के इतिहास को देखने से हिन्दी काव्यक्षेत्र में विभिन्न धारायें दिखलाई देती हैं जिनमें वीरगाथा-काव्य, योगियों और ज्ञानियों का संतकाव्य, सूफियों की प्रेमाश्रयी धारा, राम-काव्य तथा कृष्ण-काव्य धारायें प्रमुख हैं।

वीरगाथा काव्य :

हिन्दी के वीरगाथा-काल का आरम्भ शिवसिंह सेंगर तथा मिश्रबन्धु आदि विद्वानों ने सं० ७०० वि० से माना है। इन विद्वानों ने सं० ७०० वि० में पुष्य कवि द्वारा अलंकार-ग्रंथ लिखना लिखा है, किन्तु इस कवि का यह ग्रंथ अप्राप्य है। वीरगाथा-काल के ज्ञात काल का आरंभ विक्रम की दसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण से होता है जब प्राकृताभास हिन्दी के दोहों का सबसे पुराना पता मिलता है। आरंभ के सौ डेढ़ सौ वर्षों के इतिहास को देखने से कोई

१. रसिकप्रिया, छं० सं० ३, पृ० सं० ६।

२. ओरछा स्टेट गज़ेटियर, पृ० सं० २।

विशेष प्रवृत्ति नहीं दिखलाई देती और धर्म, नीति, शृंगार, वीर सभी प्रकार की स्फुट रचनायें मिलती हैं। किन्तु कुछ समय बाद, जब से उत्तर-पश्चिम से यवनों के आक्रमण आरम्भ होते हैं, राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों के फलस्वरूप वीरगाथा-काव्य की धारा प्रवाहित होती है।

वीरगाथायें दो रूपों में मिलती हैं। एक तो प्रबन्ध काव्य के रूप में और दूसरे मुक्तक वीरगीतों के रूप में। प्रबन्ध-काव्य के रूप में वीरगाथाओं की प्रणाली प्रायः सभी साहित्यों में मिलती है। हिन्दी में इस प्रकार का सबसे प्राचीन ग्रंथ दलपतिविजय का 'खुमानरासो' है, जिसमें चित्तौड़पति खुमान द्वितीय का वृत्तान्त है। किन्तु 'खुमानरासो' की अपूर्ण प्रति ही उपलब्ध है। दलपति विजय का समय विद्वानों ने सं० ११८० वि० से १२०५ वि० तक माना है। इसके बाद चन्दबरदाई का नाम आता है जिसका 'पृथ्वीराज रासो' वीरगाथा सम्बन्धी प्रबन्धकाव्यों में सबसे अधिक प्रसिद्ध है। चन्द बरदाई का समय सं० १२४८ वि० के लगभग माना गया है। वीरगाथाकाल के प्रबन्धकाव्यों में भट्ट केदार का 'जयचंद-प्रकाश' मधुकर का 'जयमयंक-जस-चंद्रिका', शार्ङ्गधर का 'हम्मीरहठ' और नल्लसिंह का 'विजयपाल रासो' अन्य उल्लेखनीय रचनायें हैं। वीरगीतों में सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ 'वीसलदेव रासो' है जिसका रचयिता नरपति नल्ह था। वीरगीत के रूप में दूसरा उल्लेखनीय ग्रंथ जगनिक का 'आल्हाखंड' है, किन्तु वर्तमान समय में यह ग्रंथ अपने मूलरूप में उपलब्ध नहीं है।

वीरगाथाओं का विषय समान रूप से वीरों का पराक्रम, विजय, शत्रुकन्या-हरण आदि है। इस प्रकार वीररस ही इन गाथाओं में वर्णित मुख्य रस है। विजय के बाद राजाओं के आमोद-प्रमोद-वर्णन अथवा अधिकांश युद्ध का कारण कामिनी होने के कारण गौण रूप से इन गाथाओं में शृंगार रस का भी समावेश है। इन काव्यों की भाषा डिंगल है जो तत्कालीन राजस्थान की साहित्यिक भाषा थी। यह भाषा वीररस के लिये बहुत उपयुक्त थी। ओज लाने के लिये इन कवियों की भाषा में द्वित्व वर्णों का बहुल प्रयोग मिलता है। इस काल के छन्द भी वीररसोपयुक्त दूहा, पाधड़ी तथा कवित्त ही हैं।

सन्त-काव्य :

हिन्दी में संत-काव्य की परम्परा का आरम्भ गोरखनाथ जी से होता है, जिनका समय विद्वानों ने विक्रमीय तेरहवीं शताब्दी का मध्य भाग माना है। गोरखनाथ ने राजनीति की रंग-भूमि से दूर रह कर अपनी अलग धार्मिक धारा प्रवाहित की जो हठयोग के नाम से प्रसिद्ध है। इनका मत धार्मिक साहित्य में 'नाथपंथ' कहलाता है। आप ने हिन्दी में अनेक रचनायें—गोरख-गणेश-गोष्ठी, महादेव-गोरख-संवाद, ज्ञान-सिद्धान्त-योग, गोरखनाथ के पद आदि—लिखी हैं। केशव से पूर्व गोरखनाथ से इतर संत कवियों में कबीर, उनके शिष्य धर्मदास तथा गुरु नानक मुख्य हैं।

संत-काव्य साहित्यिक दृष्टि से उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना धार्मिक दृष्टि से। सन्तों का आविर्भाव उस समय हुआ जब यवन-राज्य अधिष्ठित हो जाने पर यवनों के अत्याचारों के कारण हिन्दुओं को नैतिक और सामाजिक अवस्था असह्य थी। हिन्दुओं की आँखों के सामने ही उनके देव-मन्दिर ध्वस्त किये गये थे, मूर्तियाँ तोड़ी गई थीं, उन पर

नाना अत्याचार हो रहे थे किन्तु गजेन्द्र की टेर पर आने वाले भगवान मौन रहे थे। हिन्दू धर्म की ग्लानि हो रही थी, अधर्म का बोलबाला था; किन्तु अधर्म का अभ्युत्थान करने वाले भगवान ने अवतार न लिया था। यह परिस्थिति अनीश्वरवाद के उपयुक्त थी। दूसरी ओर यवन शासकों की धार्मिक असहिष्णुता और नीति के कारण हिन्दू और मुसलमानों का वैमनस्य बढ़ रहा था। संत-कवियों ने हिन्दुओं का इस परिस्थिति से उद्धार किया और हिन्दू-मुसलमानों के वैमनस्य को दूर करने की चेष्टा की।

कबीर आदि संत-कवियों ने भारतीय ब्रह्मवाद, नाथपंथियों के हठ-योग और सूफियों के एकेश्वरवाद के सम्मिश्रण से एक ऐसे सामान्य उपासना-मार्ग की स्थापना करने का प्रयास किया जो हिन्दू-मुसलमानों को सामान्यरूप से ग्राह्य हो सकता था। इन्होंने ऐसे ईश्वर की प्रतिष्ठा की जो निर्गुण तथा सगुण, दोनों से परे था और हिन्दुओं के राम तथा मुसलमानों के रहीम उसके रूपान्तर थे। हिन्दू-मुसलमानों के वैमनस्य की जड़ बहुत-कुछ दोनों के अन्ध-विश्वासों पर ही आधारित थी। अतएव इन्होंने दोनों के अन्ध-विश्वासों का खंडन करते हुये एक ओर हिन्दुओं के अवतारवाद, मूर्तिपूजा तथा तीर्थव्रत आदि का निषेध किया तथा दूसरी ओर मुसलमानों के हलाल, रोजा, नमाज का विरोध किया। संत-कवियों ने भक्ति का द्वार हिन्दू-मुसलमान, छूत-अछूत तथा स्त्री-पुरुष, सबके लिये खोल कर ऊँच-नीच का भेद मिटाने का भी प्रयत्न किया। कबीर के पूर्व नामदेव जनता को यह मार्ग दिखला चुके थे। कबीर के बाद नानक, दादू आदि कई संत हुये जिन्होंने अपने अलग पंथ चलाये।

संत कवियों के काव्य-विषय, संक्षेप में, वैराग्य, संसार की असारता, गुरु-महिमा, नाम-महिमा, सदाचार की बातें आदि हैं। इनकी भाषा अवधी, भोजपुरी, खड़ी बोली, ब्रजभाषा आदि का सम्मिश्रण है। छन्द के क्षेत्र में संत-कवियों ने पद तथा विविध छंद दोनों ही लिखे हैं।

प्रेम-काव्य :

यवनों का राज्य भारत में अधिष्ठित हो जाने पर यद्यपि शासक-वर्ग में धार्मिक असहिष्णुता बनी रही किंतु सामान्य हिन्दू तथा मुसलमान जनता एक दूसरे के निकट आती गई। शेरशाह सूर ऐसे एक-दो शासक भी हुये जिन्होंने हिन्दूधर्म के प्रति उदारता दिखलाई। इस भावना के प्रतिफल स्वरूप हिन्दी काव्यक्षेत्र में सूफी कवियों का उदय हुआ जो इस्लाम-धर्म के अन्तर्गत सूफी-धर्म पर आस्था रखते हुये हिन्दू-धर्म को अवज्ञा की दृष्टि से न देखते थे।

हिन्दी-साहित्य में प्रेम-काव्य-धारा का आरम्भ चारण-काल में मुल्ला दाऊद की नूरक और चंदा की प्रेम-कथा के द्वारा हुआ था। प्रेम-काव्यकारों में जायसी का स्थान सर्व प्रमुख है यद्यपि इनसे पूर्व भी कुछ प्रेम-काव्य लिखे जा चुके थे जिनका जायसी ने अपने ग्रंथ 'पद्-मावत' में उल्लेख किया है। जायसी के अनुसार इनके पूर्व 'स्वप्नावती', 'मुग्धावती', 'मृगावती', 'खंडरावती', 'मधुमालती', तथा 'प्रेमावती' की रचना हो चुकी थी। इनमें से 'मृगावती' तथा 'मधुमालती' प्राप्त हैं; शेष अनुपलब्ध हैं। 'मृगावती' के रचयिता शेख बुरहान के शिष्य कुतबन थे जिनका आविर्भाव-काल सं० १५५० वि० माना जाता है। 'मधुमालती' के लेखक मंझन के विषय में विशेष विवरण ज्ञात नहीं है। इन प्रेमकाव्यों के अतिरिक्त डा० रामकुमार वर्मा ने एक और ग्रंथ, दामो रचित 'लक्ष्मणसेन-पद्मावती' का उल्लेख किया है जिसकी

रचना सं० १५१६ वि० में हुई ।[1] यह मुख्यरूप से वीररस का ग्रंथ है । इसके बाद जायसी का समय आता है । इन्होंने 'पद्मावत' तथा 'अखरावट' दो प्रमुख ग्रंथ लिखे हैं । 'अखरावट' में जायसी के ईश्वर-जीव-सृष्टि आदि विषयों से सम्बन्ध रखनेवाले विचारों का प्रतिपादन है । इनका दूसरा ग्रंथ 'पद्मावत' प्रेम-काव्य का जगमगाता रत्न है । जायसी के बाद के प्रेमगाथाकार उसमान, सेख नबी, नूरमोहम्मद आदि केशव के परवर्ती थे ।

इन सूफी कवियों के अतिरिक्त कुछ हिन्दुओं ने भी प्रेम-कथायें लिखी हैं जिनमें सूफी सिद्धान्तों का प्रतिपादन न होते हुए भी प्रेम-काव्य की परम्परा का अनुसरण किया गया है । इनमें कथा के द्वारा मनोरंजन प्रदान करने की भावना ही प्रमुख है । केशव से पूर्व का इस प्रकार का ग्रंथ हरराज की 'ढोला मारवणी चउपही' है, जिसकी रचना सं० १६०७ वि० में हुई ।

प्रेम-काव्य का विषय अधिकांश हिन्दू-जीवन से ली गई काल्पनिक प्रेम कहानियाँ हैं जिनमें किसी-किसी कवि, जैसे जायसी, ने इतिहास का भी सम्मिश्रण कर दिया है । इन काल्पनिक प्रेम-कहानियों के द्वारा प्रेम-गाथाकारों ने ईश्वर और जीव के असांसारिक रहस्यमय प्रेम की अभिव्यंजना की है । सूफी कवियों ने अपने आख्यान फारसी मसनवी की शैली पर लिखे हैं, जिनमें आरंभ में ईश्वर-वंदना, मुहम्मद साहब की स्तुति तथा तत्कालीन राजा की प्रशंसा के बाद कथा आरम्भ होती है । प्रेम-काव्य की परम्परा में अवधी भाषा का ही प्रयोग हुआ है जिसका कारण यह है कि अधिकांश प्रेमगाथाकारों का प्रधान क्षेत्र अवध था । साथ ही सब ने दोहा-चौपाई छंदों का ही प्रयोग किया है । अवधी भाषा के लिये दोहा-चौपाई छंद सबसे अधिक उपयुक्त भी हैं ।

रामकाव्य :

कबीर आदि संत-कवियों ने निर्गुणभक्ति के द्वारा हिन्दू जनता की खिन्नता दूर करने की चेष्टा की थी, किन्तु निर्गुण भक्ति साधारण जनता की समझ के बाहर की वस्तु थी । जिस ईश्वर के रूप, रंग, रेख आदि कुछ भी नहीं है उसकी भक्ति और उपासना कैसे की जा सकती थी और वह जनता की सहायता कर उसे कैसे उबार सकता था, यह साधारण जनता प्रयत्न करके भी न समझ सकी । उसे तो ऐसे सगुण रूपधारी ईश्वर की आवश्यकता थी जो उसके बीच में उत्पन्न होकर अत्याचारी का नाश और सुजनों की रक्षा करता दिखलाई देता । ईश्वर का यह रूप हिन्दी के सगुणोपासक राम तथा कृष्णभक्त कवियों ने उपस्थित किया ।

राम का महत्व सर्वप्रथम हमें संस्कृत भाषा की वाल्मीकि रामायण में मिलता है जिसकी रचना विद्वानों ने ईसा के ६०० से ४०० वर्ष तक पूर्व मानी है । वाल्मीकि रामायण का दृष्टिकोण लौकिक है और इसमें राम एक महापुरुष के रूप में चित्रित किये गये हैं । हिन्दी साहित्य में रामकाव्य के सबसे प्रधान कवि तुलसीदास हैं जो केशव के समकालीन थे । तुलसीदास के ही समकालीन एक मुनिलाल कवि भी हुये हैं जिन्होंने सं० १६४२ वि० में 'राम-प्रकाश'' नामक रामकथा-सम्बन्धी ग्रंथ लिखा था । नागरी-प्रचारिणी-सभा की सं०

---

१. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, वर्मा, पृ० सं० ३०१ ।

१६०६—१६०७ तथा १६०८ की खोज-रिपोर्ट के अनुसार तुलसी तथा केशव से पूर्व भूपति कवि हुआ जिसने सं० १३४२ वि० में दोहा-चौपाई में 'रामचरित-रामायण' नामक ग्रंथ लिखा। किन्तु भूपति का यह समय नहीं है, खोज-रिपोर्ट में गलत दिया है। डा० श्यामसुन्दरदास जी ने 'हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण' पहला भाग, नामक ग्रंथ में भूपति कवि की स्थिति सं० १७४४ वि० में लिखी है[१]। डा० दीनदयालु जी गुप्त ने अपने ग्रंथ 'अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय' में मायाशंकर याज्ञिक संग्रहालय में देखी हुई भूपतिकृत 'भागवत दशमस्कन्ध' की प्रति के आधार पर, जिसका रचना-काल सं० १७४४ वि० दिया है, भूपति कवि का समय सं० १७४४ वि० मानना ही अधिक उपयुक्त लिखा है[२]। इस प्रकार केशव तथा तुलसी से पूर्व किसी रामकाव्य-कार की स्थिति नहीं प्रमाणित होती।

तुलसीदास जी ने रामकथा के सहारे विश्रृंखल होती हुई हिन्दू जाति को मर्यादित किया और वर्णाश्रम-धर्म की पुनः स्थापना की। लोकपक्ष के अन्तर्गत उन्होंने पारिवारिक और सामाजिक कर्तव्य-पालन का आदर्श उपस्थित किया और राजाओं का कर्तव्य स्थिर करते हुये रामराज्य की स्थापना की। व्यक्तिगत साधना के क्षेत्र में तुलसीदास जी ने शुद्ध भगवद्-भक्ति का उपदेश करते हुये ज्ञान, भक्ति और कर्म में सामंजस्य स्थापित किया और प्राचीन भारतीय भक्ति-मार्ग के भीतर बढ़ती हुई बुराइयों को रोकने के प्रयत्न के साथ ही उन्होंने शैवों और वैष्णवों के बढ़ते हुये विद्वेष को भी समाप्त करने का प्रयत्न किया। तुलसी के प्रभाव से समग्र हिन्दू जनता राममय हो गई।

साहित्यिक समीक्षा की दृष्टि से हिन्दी कविता की शक्ति का पूर्ण प्रसार सबसे पहले तुलसी की ही रचनाओं में दिखलाई देता है। काव्य-विषय की दृष्टि से तुलसी का क्षेत्र बहुत व्यापक था। उन्होंने सब रसों की व्यंजना की है। जितने अधिक मानव-भावों का विभिन्न परिस्थितियों में तुलसी ने मर्मस्पर्शी चित्रण किया है किसी अन्य कवि की रचना में कठिनता से ही मिलेगा। अपने समय तक प्रचलित दोनों प्रमुख काव्य-भाषाओं, अवधी और ब्रज तथा विविध शैलियों पर तुलसी का समान अधिकार था। ब्रजभाषा का जो माधुर्य सूरदास के 'सूर-सागर' में है वही तुलसी की 'गीतावली' तथा 'कृष्णगीतावली' में है। इसी प्रकार अवधी की जो मिठास जायसी के 'पद्मावत' में है वही तुलसी के 'जानकीमंगल', 'पार्वतीमंगल' तथा 'बरवै रामायण' में है। शैली के विचार से 'कवितावली' गंग आदि कवियों की कवित्त-सवैया पद्धति पर लिखी गई है। इस ग्रंथ के कुछ छन्द वीरगाथा काल की छप्पय-पद्धति पर भी लिखे गये हैं। कबीर आदि की नीति-सम्बन्धी दोहा-पद्धति पर 'दोहावली' की रचना हुई है। इसके अतिरिक्त 'रामचरित-मानस' में नीति-सम्बन्धी बहुत से दोहे हैं। विद्यापति तथा सूरदास की गीति-पद्धति पर तुलसी ने 'विनयपत्रिका', 'गीतावली' तथा 'कृष्णगीतावली' की रचना की है। 'रामचरितमानस' की रचना जायसी आदि की दोहा-चौपाई वाली प्रबन्ध-पद्धति पर हुई है।

१. हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, श्यामसुन्दरदास, पृ० सं० १०८।
२. अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त, पृ० सं० २३, २४।

कृष्णकाव्य :

कृष्ण-काव्य-परम्परा में पहले कवि जयदेव हैं जिनकी रचनाओं का हिन्दी के परवर्ती कवियों पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। जयदेव प्रमुखतः संस्कृत भाषा ही के कवि हैं और उनका 'गीतगोविन्द' ग्रंथ संस्कृतभाषा की अमर रचना है। इसमें इन्होंने राधा-कृष्ण के मधुर सम्बन्ध तथा विविध लीलाओं को सरस तथा मधुर शब्दावली में चित्रित किया है। जयदेव की हिन्दी रचना प्रायः नहीं के समान है। उनके हिन्दी के दो एक पद सिखों के 'गुरु ग्रंथ साहब' में मिलते हैं। कृष्ण-काव्य-परम्परा के दूसरे कवि विद्यापति हैं जिनकी रचनायें मैथिली भाषा में हैं। विद्यापति की पदावली पर जयदेव की शृंगार-भावना का स्पष्ट प्रभाव है। विद्यापति की पदावली में भी जयदेव के ही समान राधा-कृष्ण की लीलाओं का वासनापूर्ण चित्र है। इनकी कविता में शृंगार रस प्रमुख है और शृंगार के अन्तर्गत भाव-विभाव, अनुभाव तथा संचारी भावों का कृष्ण-राधा के विलास के संसर्ग में वर्णन किया गया है। कृष्ण-भक्त कवियों में सर्वोच्च स्थान सूरदास जी का है जिन्होंने ब्रज-भाषा में 'सूरसागर' की रचना कर साहित्य के क्षेत्र में भक्ति, काव्य तथा संगीत की त्रिवेणी बहाई है। वात्सल्य और शृंगार, विशेषतया वियोग-शृंगार का जैसा हृदयग्राही वर्णन सूर ने किया है, अन्यत्र दुर्लभ है। सूरदास के ही समय में कुछ अन्य कवि भी थे जो कृष्ण-लीला-सम्बन्धी सुन्दर पदों की रचना करते थे। वल्लभाचार्य जी के पुत्र तथा उत्तराधिकारी विट्ठलनाथ जी ने इनमें से आठ परमोत्कृष्ट कवियों को चुन कर 'अष्टछाप' की स्थापना की थी। अष्टछाप के अन्तर्गत सूरदास जी के अतिरिक्त नन्ददास, कृष्णदास, परमानंददास, कुंभनदास, चतुर्भुजदास, छीतस्वामी तथा गोविन्द स्वामी की गणना होती है। ये सब वल्लभ-सम्प्रदायी कवि थे।

केशव से पूर्व कुछ ऐसे भक्त-कवि भी हुये हैं जिन्होंने वल्लभ-सम्प्रदाय से अलग रह कर कृष्ण-सम्बन्धी रचनायें लिखी हैं। कृष्णकाव्य के रचयिताओं में मीरा का विशेष स्थान है। मीरा ने क्रमपूर्वक कृष्ण की लीलाओं का वर्णन न कर अपने हृदय की समस्त भावनाओं को भक्ति के सूत्र में बाँध कर उनकी आराधना की है। दूसरे प्रमुख कवि हित-हरिवंश हैं, जिन्होंने राधा की उपासना प्रधान मानते हुये राधा के वर्णन में काव्य-सरसता की सीमा उपस्थित की है।

कृष्ण-भक्त कवियों की रचनाओं में कृष्ण भगवान के लोक-रंजक रूप का ही चित्रण है, लोक-रक्षक रूप का नहीं। इन प्रेमोन्मत्त कवियों ने कृष्ण तथा गोपियों के लोकोत्तर वासना-हीन प्रेम का ही चित्रण किया है। दूसरे, इन्होंने अपने काव्य के लिये ब्रजभाषा का ही प्रयोग किया है जो कृष्ण के जीवन के माधुर्य-पूर्ण अंश के वर्णन के लिये उपयुक्त भी थी। तीसरे, कृष्ण-भक्त कवियों ने अधिकांश मुक्तक पद ही लिखे हैं। नन्ददास ऐसे दो ही एक कवि हैं जिन्होंने रोला, दोहा आदि छंदों का प्रयोग किया है।

रीतिकाव्य-परम्परा :

रीतिकाव्य-परम्परा का आरम्भ सं० १५९८ वि० में कृपाराम द्वारा हुआ था। कृपाराम के विषय में विशेष विवरण अज्ञात है। इन्होंने रस-रीति पर 'हिततरंगिणी' नामक ग्रंथ लिखा था। कवि ने कहा है, 'और कवियों ने बड़े छंदों के विस्तार में शृंगार रस का

वर्णन किया है पर मैंने सुघरता के विचार से दोहों में वर्णन किया है'[1]। इससे ज्ञात होता है कि कृपाराम के पूर्व और लोगों ने भी रीति ग्रंथ लिखे थे किन्तु वे अब अप्राप्य हैं। कृपाराम के बाद गोप कवि ने सं० १६१५ वि० के लगभग 'रामभूषण' तथा 'अलंकार-चंद्रिका' नामक अलंकार-सम्बन्धी दो ग्रंथ लिखे। इसी समय चरखारी के मोहनलाल मिश्र ने 'शृंगार-सागर' नामक शृंगार-रस-सम्बन्धी ग्रंथ लिखा। इस प्रकार रस और अलंकार-निरुपण का सूत्रपात्र केशव के पूर्व हो चुका था यद्यपि किसी कवि ने काव्य के विविध अंगों का सम्यक और शास्त्रीय पद्धति पर निरुपण न किया था।

केशव के समय में उत्तरी भारत की राजनीतिक तथा सामाजिक स्थिति :

केशव का समय राजनीतिक दृष्टिकोण से सम्राट अकबर तथा जहाँगीर का समय था। अकबर सन् १५५६ ई० से सन् १६०५ ई० तक तथा जहाँगीर सन् १६०५ ई० से सन् १६२७ ई० तक दिल्ली के राजसिंहासन पर रहा। मुगलों के पूर्व शासन-सत्ता खिलजी, तुगलक, सैयद, लोदी आदि वंशों के हाथ में रही। इन वंशों के प्रायः प्रत्येक शासक ने हिन्दुओं के प्रति कठोरता और धर्मान्धता का व्यवहार कर उन्हें भरसक कुचलने का प्रयत्न किया जिससे हिन्दुओं की सामाजिक तथा आर्थिक दशा दिनोंदिन गिरती ही गई। अलाउद्दीन खिलजी ने तो हिंदुओं को पीसने तथा उनकी धनसम्पत्ति हड़प कर उन्हें कंगाल बनाने के लिये नियम ही बनाये थे। उदाहरणस्वरूप उसके राज्य में हिन्दुओं से आय का आधा भाग ले लिया जाता था।[2] फीरोजशाह तुग़लक के प्रजाहित के कार्य इतिहास में प्रसिद्ध हैं; किन्तु हिन्दुओं के प्रति उसका व्यवहार भी अच्छा न था। उसके राज्य में हिन्दू प्रत्यक्ष रूप से मूर्त्तिपूजा नहीं कर सकते थे और न कोई नया मन्दिर बनवा सकते थे। हिन्दुओं के प्रति उसकी क्रूरता तथा धर्मान्धता इस सीमा को पहुँची हुई थी कि उसने खुले आम धार्मिक कृत्य करने के कारण एक ब्राह्मण को जीवित ही जला दिया था। इसके समय में ब्राह्मणों तक से 'जजिया' कर लिया जाता था जो अभी तक इससे वंचित थे। यह 'कर' केवल उन्हीं से न लिया जाता था जो इस्लाम धर्म स्वीकार करने को तैयार हो जाते थे।[3] इसी प्रकार सिकन्दर लोदी भी हिन्दू-धर्म का कट्टर शत्रु था। उसने अनेक हिन्दू मन्दिरों को ध्वस्त किया, बहुतों की मूर्तियाँ फिकवा दीं और उन स्थानों को मुसलमानों के काम में प्रयोग किया। इस प्रकार इस काल में हिन्दुओं को विजेता यवन हेय दृष्टि से देखते थे। वे निर्धन बना दिये गये थे। उनका न्याय मुसलमान काजियों के द्वारा होता था। सारांश में हिन्दुओं का जान-माल सब अनिश्चित था। भारत के इन सुल्तानों में एक शेरशाह सूर अवश्य ऐसा था जिसने हिन्दुओं के प्रति पक्षपात तथा धर्मान्धता-पूर्ण व्यवहार न कर समस्त प्रजा के हित के कार्य किये और प्रजा की आर्थिक दशा सुधारने का प्रयत्न किया।[4]

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, शुक्ल, पृ० सं० २०१।
२. मेडिवल इंडिया, लेनपूल, पृ० सं० १०४-१०६।
३. मेडिवल इंडिया, लेनपूल, पृ० सं० १४६।
४. मेडिवल इंडिया, लेनपूल, पृ० सं० २३३।

अकबर के राजसिंहासनासीन होने पर यह परिस्थिति बदली। अकबर बुद्धिमान प्रजापालक तथा उदार शासक था। यद्यपि राजपूत राज्यों की स्वतंत्रता अकबर भी न देख सकता था किन्तु जो राजपूत राजे उसकी अधीनता स्वीकार कर लेते थे उनके साथ वह उदारता-पूर्ण व्यवहार करता था। वह जानता था कि राजपूतों तथा अन्य हिन्दुओं की सहानुभूति प्राप्त किये बिना मुगल-साम्राज्य की नींव दृढ़ नहीं हो सकती। राजपूतों से अपना घनिष्ट संबंध स्थापित करने के ही उद्देश्य से उसने कई राजपूत घरानों से वैवाहिक संबंध स्थापित किया और राजपूतों को राज्य में ऊँचे ऊँचे पदों पर नियुक्त किया। हिन्दुओं के प्रति भी उसका व्यवहार उदार तथा सहिष्णु था। वह हिन्दू-मुसलमान सबको समान दृष्टि से देखता था। अब तक हिन्दुओं से 'जजिया' तथा तीर्थ-यात्रा कर लिया जाता था जिसे उसने बन्द कर दिया। योग्य हिन्दुओं को उसने बड़े बड़े पद दिये[१]। उसके राज्य में हिन्दुओं, ईसाइयों, पारसियों तथा जैनों आदि सबको पूर्ण धार्मिक स्वतंत्रता थी। यद्यपि वह स्वयं इसलाम-धर्म का अनुयायी था, किन्तु कट्टर नहीं था। फतेहपुर सीकरी में उसने एक प्रार्थना-भवन (इबादत खाना) बनवाया था जहाँ विभिन्न धर्मों के अनुयायी आकर वाद-विवाद करते थे। जब उसने अपना 'दीनइलाही' नामक नया धर्म चलाया तब भी उसने किसी को हठपूर्वक धर्म-परिवर्तन के लिए बाध्य नहीं किया[२]। अकबर के समय में हिन्दुओं को सामाजिक मामलों में भी पूर्ण स्वतंत्रता थी। यद्यपि उसने हिन्दू समाज में प्रचलित बाल-विवाह तथा सती आदि की प्रथाओं को रोकने का प्रयत्न किया किन्तु उसने इसके लिये भी बल-प्रयोग नहीं किया। उसके समय में प्रजा की आर्थिक स्थिति भी अच्छी थी। उसके राज्य-काल में अनेक सामाजिक, सैनिक तथा माल-संबंधी सुधार भी हुए। अकबर के मंत्री टोडरमल की प्रसिद्ध भूमि-आगम-संबंधी योजना ने जहाँ एक ओर राज्य-कोष की वृद्धि की वहाँ दूसरी ओर कृषकों की दशा को भी सुधारा। फलतः कृषि की वृद्धि हुई और प्रजा को पेट भर अनाज सस्ते दामों में खाने को मिलने लगा। इस प्रकार अकबर के सुशासन-प्रबंध और उदारता ने प्रजा की सुखशान्ति की अभिवृद्धि की[3]।

अकबर की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र जहाँगीर दिल्ली के राजसिंहासन पर आसीन हुआ। उत्तराधिकार का प्रश्न उठने के पूर्व तक जहाँगीर के राज्य में भी शान्ति रही। जहाँगीर ने भी प्रजा के प्रति अपने पिता की ही उदारनीति का अनुसरण किया। उसने भी हिन्दुओं की धार्मिक स्वतंत्रता अक्षुण्ण रखी और अपने सहिष्णु तथा उदार व्यवहार से हिन्दू तथा राजपूतों को अपना मित्र और राज-भक्त बनाये रखा[४]।

राजनीतिक शान्ति तथा सुख-समृद्धि ने समाज में विलासिता की वृद्धि की। अकबर, जहाँगीर आदि स्वयं भी विलासी थे। 'मीना बाजार' अकबर की विलासिता का ही प्रमाण है। जहाँगीर भी मदिरा-सेवी तथा विलासी था। मेहरुन्निसा को प्राप्त करने के लिये उसके पति

१. मेडिवल इंडिया, लेनपूल, पृ० सं० २४१-४२।
२. मेडिवल इंडिया, लेनपूल, पृ० सं० २७०-२८२।
३. मेडिवल इंडिया, लेनपूल, पृ० सं० २६१-२६२।
४. मेडिवल इंडिया, लेनपूल, पृ० सं० २९८।

शेर अफगन की हत्या कराना जहाँगीर की वासनामय विलासितापूर्ण प्रकृति का ही परिचायक है। इन मुगल शासकों ने विविध कलाओं को भी प्रोत्साहन दिया। फतेहपुर सीकरी के अनेक महल अकबर के वास्तुकला-प्रेम के सुन्दर नमूने हैं। अकबर के राजत्व-काल में चित्रकला की भी खूब उन्नति हुई। उसने कवियों, विद्वानों तथा कलाविदों को भी विशेष प्रोत्साहन दिया। अनेक कवि उसकी छत्रछाया में सुख-पूर्वक जीवन व्यतीत करते थे[1]। वह स्वयं भी हिन्दी भाषा में कविता करता था। जहाँगीर के समय में भी विविध ललित-कलाओं का विकास हुआ। उसके कलाप्रेम ने चित्रकला की इतनी उन्नति की कि रो तथा टेरी आदि पाश्चात्य यात्री आश्चर्य से स्तम्भित थे[2]। उसने काव्यकला को भी प्रोत्साहन दिया और अनेक हिन्दी कवियों को पुरस्कृत किया। इस वातावरण में सृजित हिन्दी कविता के क्षेत्र में भी कला की सृष्टि हुई और भावपक्ष की अपेक्षा कला-पक्ष की ओर अधिक ध्यान दिया गया।

मुगल-कालीन सुख-शान्ति ने भिन्न-भिन्न राज्यों में भी सुख-शान्ति का प्रसार किया। जहाँगीर ने जागीर देने की प्रथा चलाई थी जिसके फलस्वरूप अनेक जागीरदार हुए जिन्होंने अपनी जागीरों के वैभव की वृद्धि की। राजों, महाराजों और जागीरदारों ने भी मुगल शासकों का अनुकरण करते हुए कवियों को प्रोत्साहन दिया। इनसे सम्मानित होकर अनेक कवि इन दरबारों में आने लगे। राज-दरबारों ने उन्हें शृंगारिक कविता करने के लिए बाध्य किया। इसके लिए कवियों को कृष्ण तथा गोपियों के रूप में आलम्बन भी सहज ही मिल गए। राधा-कृष्ण के प्रेम का भक्त कवियों ने बड़ा ही मर्मस्पर्शी वर्णन किया था। वह पवित्र हृदय से निस्सृत था, इसलिये उसमें वासनामय उद्गार न थे। भक्त-कवियों ने राधा और कृष्ण के रूप में भगवान के अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना की थी। किन्तु साधारण जनता के लिए उसमें शृंगारिकता ही अधिक थी। राज-दरबारों में हिन्दी कविता को आश्रय मिलने पर कृष्ण और गोपियों का प्रेम वासनामय उद्गारों के प्रकटीकरण का साधन हो गया। आश्रित हिन्दी कवियों ने अपने आश्रयदाता राजाओं की मनोवृत्ति के लिए राधाकृष्ण की ओट में वासनामय कलुषित प्रेम की शत-सहस्र उद्भावनायें कीं। तत्कालीन काव्यक्षेत्र में वासनामय शृंगारिक कविता की प्रचुरता का यही प्रमुख कारण है।

केशव की पूर्ववर्ती तथा समकालीन धार्मिक स्थिति :

मुगलों से पूर्ववर्ती यवन बादशाहों का राज्य इस्लाम-धर्म की नींव पर स्थित था। इन बादशाहों का उद्देश्य भारत में अपने राज्य के विस्तार के साथ ही 'इस्लाम-धर्म' का प्रचार करना भी था जिसे वे प्रायः 'तलवार के ज़ोर' पर करते थे। राज्य की ओर से धर्मोपदेशक भी नियुक्त थे जो जनता में इस्लाम-धर्म का प्रचार करते थे। दूसरी ओर राज-सत्ता हिन्दुओं के धर्म पर बराबर कुठाराघात कर रही थी और ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर रही थी जिससे हिन्दू बाध्य होकर मुसलमान धर्म स्वीकार कर लें। इस परिस्थिति का उल्लेख पूर्व-पृष्ठों में किया जा चुका है। अतएव यवन राज्य और इस्लाम-धर्म की प्रतिक्रिया के रूप में भारत में

१. हिस्ट्री आफ जहाँगीर, बेनी प्रसाद, पृ० सं० १७-१८ तथा २२।
२. हिस्ट्री आफ जहाँगीर, बेनी प्रसाद, पृ० सं० ३४।

एक महान आन्दोलन उठ खड़ा हुआ जिसका प्रभाव देश के कोने कोने पर पड़ा। यह आन्दोलन धार्मिक साहित्य में 'वैष्णव भक्ति-आन्दोलन' के नाम से प्रसिद्ध है। यह कोई नवीन आन्दोलन न था। दक्षिण में उदय होकर भक्ति का स्रोत धीरे धीरे उत्तरी भारत में पहले से ही फैल रहा था। राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों वश जनता के हृदय में फैलने का उसे पूरा अवकाश मिला और अकबर के राज्यकाल में पहुँच कर तो यह आन्दोलन देशव्यापी ही हो गया।

गुप्त वंशीय राजाओं के राज्यकाल में ईसा की चौथी शताब्दी से लेकर छठी शताब्दी के अर्ध भाग तक समस्त भारत में वैष्णव भक्ति तथा भागवत धर्म का प्रचार था। गुप्त साम्राज्य के समाप्त होने के साथ ही इसका उत्तरी भारत में प्राबल्य घट गया किन्तु दक्षिण भारत में इसका प्रचार क्रमशः बढ़ता रहा। दक्षिण भारत में वैष्णव भक्ति-साहित्य सर्व प्रथम तैमिल भाषा में लिखे गये आडवार भक्तों के गीतों में मिलता है। इन आडवार भक्तों और उनके सिद्धान्तों का डा० दीनदयालु गुप्त जी ने अपने ग्रंथ 'अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय' में विस्तार-पूर्वक वर्णन किया है[1]। इन भक्तों के बाद दक्षिण भारत में कुछ आचार्य हुये जिन्होंने वैष्णव भक्ति के लिए इन्हीं से प्रेरणा प्राप्त की। इन आचार्यों में नाथ मुनि तथा यामुनाचार्य मुख्य हैं। इनके बाद ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी के आरम्भ में श्री रामानुजाचार्य हुए जिन्होंने उत्तरी भारत में आकर विष्णु-भक्ति का पुनरुत्थान किया। दक्षिण से आकर विष्णु-भक्ति का प्रचार करने वाले अन्य आचार्यों में श्री मध्वाचार्य, श्री विष्णुस्वामी तथा निम्बार्काचार्य प्रमुख हैं। इनके प्रभाव से १२ वीं शताब्दी से लेकर १५ वीं शताब्दी तक वैष्णव धर्म उत्तरी भारत में फैल गया। इन आचार्यों और उनके सिद्धान्तों का संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जाता है।

रामानुजाचार्य :

रामानुज का जन्म दक्षिण भारत में परमवदूर नामक स्थान में हुआ था। इनका समय डा० रामकुमार वर्मा ने सं० १०७४ से ११९४ वि० तक माना है[2]। इन्होंने स्वामी शंकराचार्य के मायावाद का खंडन कर विशिष्टाद्वैतवाद-सिद्धान्त का प्रतिपादन किया और शुष्क ज्ञान के स्थान पर शास्त्रीय ढंग से भक्ति का निरूपण किया।

रामानुजाचार्य[3] के अनुसार ईश्वर निर्गुण नहीं है। वह ज्ञान, शक्ति और करुणा का भंडार है। वह सर्वेश्वर, सर्वशेषी, सर्वफलप्रदाता और सर्वाधार आदि है। सारा जगत उसका शरीर है किन्तु वह जगत के दोषों से मुक्त है। वह जीवों का अन्तर्यामी तथा स्वामी है और जीव उसका शरीर है। विशिष्टाद्वैत का ईश्वर व्यक्तित्ववान तथा वैकुंठ का निवासी है। जीव, ईश्वर की ही भाँति नित्य है। वह अणु तथा चेतन है। मुक्ति में भी जीव ब्रह्म से भिन्न व्यक्तित्व

१. अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त, पृ० सं० ३७-३८।

२. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० सं० १८३।

३. रामानुजाचार्य के सिद्धान्तों का परिचय यहाँ 'भारतीय दर्शन शास्त्र का इतिहास' ग्रंथ के आधार पर दिया गया है।

ाला रहता है और ब्रह्म के आनन्दपूर्ण सान्निध्य का उपभोग करता है। जीव तथा ईश्वर का सम्बन्ध प्रकार-प्रकारी का है। जीव, ईश्वर का अंश, शरीर अथवा विशेषण है। जिस प्रकार शरीर और आत्मा दोनों अलग अलग लक्षण वाले होने पर भी दोनों में घनिष्ट संबंध है और विच्छेद सम्भव नहीं उसी प्रकार जीव और ईश्वर तथा जगत और ईश्वर की भी स्थिति है।

रामानुज के अनुसार ब्रह्म की अभिव्यक्ति पाँच रूपों में होती है—अर्चा, विभव, व्यूह, सूक्ष्म तथा अन्तर्यामी। देवमूर्तियाँ भगवान का अर्चावतार हैं। मत्स्यावतार आदि 'विभव' हैं। वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध 'व्यूह' हैं। 'सूक्ष्म' से तात्पर्य परब्रह्म से है, तथा 'अंतर्यामी' प्रत्येक शरीर में वर्तमान है। इस मत के अनुसार लक्ष्मी ईश्वर की पत्नी तथा उसकी सृजन-शक्ति का मूर्त्त चिह्न है।

साधना के क्षेत्र में मनुष्य को पहले कर्मयोग से हृदय को शुद्ध कर लेना चाहिये और फिर आत्मस्वरूप का मनन करना चाहिये। किन्तु भगवान जीव के अन्तरात्मा हैं। अतएव उन्हें जाने बिना जीव का स्वरूप ठीक ठीक नहीं जाना जा सकता। भगवान के जानने का उपाय भक्ति-योग है। भक्ति से अभिप्राय भगवान का प्रीतिपूर्वक ध्यान करना है। इस प्रकार ध्यान करने से भगवत्स्वरूप का बोध हो सकता है जो मोक्ष का अन्यतम साधन है।

विष्णुस्वामी :

विष्णुस्वामी-सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य विष्णुस्वामी की स्थिति कब और कहाँ थी, निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता क्योंकि विष्णुस्वामी नाम के कई आचार्यों का उल्लेख मिलता है जिनका वर्णन डा० दीनदयालु जी गुप्त ने अपने 'अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय' नामक ग्रंथ में विस्तारपूर्वक किया है[1]। अतएव गुप्त जी ने विष्णुस्वामी के सिद्धान्तों का वर्णन नहीं किया है। गुप्त जी ने जनश्रुति के आधार पर केवल इतना लिखा है कि महाराष्ट्र से प्रचार पानेवाला भागवत धर्म जो कालान्तर में 'बारकरी' सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हुआ और जिसके अनुयायी ज्ञानदेव, आदि महाराष्ट्र सन्त थे, विष्णु-स्वामी मत का ही रूपान्तर है।

डा० रामकुमार वर्मा ने विष्णु-स्वामी का समय लगभग सं० १३७७ माना है।[2] विष्णु स्वामी द्वारा शुद्धाद्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादन करना माना जाता है, जिसका अनुकरण कालान्तर में वल्लभाचार्य जी ने किया।

निम्बार्काचार्य :

निम्बार्क का समय डा० भंडारकर ने सन् ११६२ ई० माना है।[3] इनका जन्म तेलगू ब्राह्मण वंश में बिलारी जिले के निम्बापुर नामक स्थान में हुआ कहा जाता है। निम्बार्काचार्य

१. अष्टछाप और वल्लभ-संप्रदाय, डा० दीन दयालु गुप्त, पृ० सं० ४१-४२।
२. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० स० १८६।
३. वैष्णविज़्म, शैविज्म...आदि, पृ० सं० ६३।

भेदाभेद अथवा द्वैताद्वैत सिद्धान्त के प्रतिपादक थे। निम्बार्क-संप्रदाय को 'सनक संप्रदाय' अथवा 'हंस-सम्प्रदाय' भी कहते हैं।

इस मत के अनुसार ब्रह्म, चित् (जीव) तथा अचित् (जड़) से भिन्न है परन्तु चित् और अचित् दोनों ही तत्व ब्रह्मात्मक हैं। इनका संबंध ब्रह्म से वैसा ही है जैसे वृक्ष के पत्तों का वृक्ष से अथवा प्रभा का प्रदीप से। इस मत में जीव तथा जड़ ईश्वरात्मक और उससे अविभाज्य हैं। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार मकड़ी का तन्तु मकड़ी में भी स्थित है और उससे अलग भी। निम्बार्क-मतानुसार ब्रह्म सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ तथा जगत का उपादान निमित्त कारण है। वह स्वाधिष्ठित अपनी शक्ति को विक्षिप्त करके जगत के रूप में परिणत करता है। इस मत के अनुसार प्रत्येक शरीर में भिन्न भिन्न जीव हैं और प्रत्येक बन्धन और मोक्ष की योग्यता से युक्त है। जीव, अंशी वा अंश है। वह अनादि माया से युक्त है।

निम्बार्क के मत में कृष्ण ही परब्रह्म हैं। वे ऐश्वर्य तथा माधुर्य के आश्रय हैं। उनकी लक्ष्मी-शक्ति उनके ऐश्वर्य रूप की अधिष्ठात्री है तथा राधा और गोपियाँ माधुर्य रूप की। कृष्ण के साथ ही इस सम्प्रदाय में राधा का महान स्थान है। वह कृष्ण के साथ सब स्वर्गों से परे गोलोक में निवास करतीं है। इस प्रकार इस मत में राधाकृष्ण की उपासना ही प्रधान है। इस मत के अनुयायी राधाकृष्ण के अतिरिक्त किसी देवी-देवता को नहीं मानते।

मध्वाचार्य :

श्री मध्वाचार्य का जन्म सन् ११९९ में हुआ।[1] इनका जन्म-स्थान मद्रास प्रान्त के उड़ीपी जिले का 'विल्व' ग्राम था। इन्होंने शंकर के मायावाद तथा अद्वैतवाद का खण्डन कर द्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।

माध्व-मत में 'भेद' नित्य तथा स्वाभाविक है। मध्व के अनुसार यह भेद पाँच प्रकार का है—[2]

१. जड़ और जड़ का भेद, एक जड़ पदार्थ दूसरे जड़ पदार्थ से भिन्न है।

२. जड़ और चेतन का भेद, जीव और अजीव का भेद स्पष्ट है।

३. जीव और जीव का भेद, जीव अनेक हैं अन्यथा सबको सुख-दुखादि साथ होते।

४. जीव और ईश्वर का भेद, ईश्वर सर्वज्ञ तथा सर्व-शक्तिमान है, किन्तु जीव अल्पज्ञ तथा अल्प शक्तिवान।

५. जड़ और ईश्वर का भेद।

भेदों की व्यावहारिक सत्ता अद्वैत वेदान्त को भी स्वीकृत है किन्तु मध्वाचार्य के मत में भेदों की पारमार्थिक सत्ता भी है। इनके अनुसार जीव को जब तक इन पंचभेदों का ज्ञान नहीं होता तब तक उसकी मुक्ति नहीं होती।

माध्व-मत में परमात्मा अनन्त तथा असीम गुण-पूर्ण है। इनके अनुसार ईश्वर की ही सत्ता एक मात्र स्वतंत्र है, जीव और जड़ तत्व परतंत्र हैं। परमात्मा में रूप धारण करने

---

१. भारतीय दर्शनशास्त्र का इतिहास, पृ० सं० ४०६।

२. भारतीय दर्शनशास्त्र का इतिहास, पृ० सं० ४१०-११।

की शक्ति है जो जीव में नहीं हैं। लक्ष्मी परमात्मा की सहचरी तथा नित्यमुक्त है। वह उसकी इच्छा से सृष्टि, स्थिति, संहार, बंध, मोक्ष आदि का सम्पादन करती है। इस मत के अनुसार जीव ब्रह्म पर अवलम्बित होने पर भी कर्म करने में स्वतंत्र है। जीव स्वभाव से आनंदमय है किन्तु जड़तत्व के संयोग से वह दुःख का अनुभव करता है। भगवान की कृपा से ही ज्ञान और मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है।

इन उपर्युक्त चार आचार्यों के सिद्धान्तों से प्रभावित होकर ईसा की १४ वीं शताब्दी से लेकर १६ वीं शताब्दी के अन्त तक उत्तरी भारत में पाँच मुख्य वैष्णव सम्प्रदाय स्थापित हुये :

१. श्री रामानंद जी का रामानंदी सम्प्रदाय।
२. श्री चैतन्य महाप्रभु का चैतन्य सम्प्रदाय।
३. श्री वल्लभाचार्य जी का पुष्टिमार्ग।
४. श्री हितहरिवंश जी का राधावल्लभीय सम्प्रदाय।
तथा ५. श्री हरिदास जी का हरिदासी सम्प्रदाय।

केशव की कविता से ज्ञात होता है कि उनकी दार्शनिक विचारधारा पर कृष्णपूजा सम्प्रदायों का कोई प्रभाव नहीं है। कृष्णपूजा सम्प्रदायों में से हरिदासी सम्प्रदाय का 'विज्ञान-गीता' नामक ग्रंथ में परोक्ष रूप से उल्लेख है और रामानंद जी की दार्शनिक विचारधारा का थोड़ा-बहुत प्रभाव उन पर लक्षित होता है। अतएव यहाँ इन्हीं दो सम्प्रदायों का विवरण दिया जाता है।

रामानंदी सम्प्रदाय :

रामानंद जी का आविर्भाव-काल विक्रम की १४वीं शताब्दी का प्रारम्भ माना गया है। स्व० आचार्य रामचन्द्र जी शुक्ल ने इनके ग्रंथों में ब्रह्मसूत्र पर आनंद भाष्य, श्रीमद्भगवत्-गीता-भाष्य, वैष्णव-मतान्तर-भास्कर तथा श्री रामार्चना-पद्धति का उल्लेख किया है और लिखा है कि इनके बहुत से ग्रंथ अब अप्राप्य हैं[1]। शुक्ल जी ने तात्विक दृष्टि से रामानंद जी को रामानुजाचार्य का मतावलम्बी लिखा है। उन्होंने अपने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में 'श्री रामानंददिग्विजय' तथा 'वैष्णवमतान्तर-भास्कर' से दो श्लोक उद्धृत किये हैं। अतएव अनुमानतः इन्हीं ग्रन्थों के आधार पर शुक्ल जी ने अपना मत स्थिर किया होगा। 'हिन्दुत्व' नामक ग्रन्थ में 'कल्याण' से उद्धृत पं० वैष्णव दास जी त्रिवेदी न्यायरत्न, वेदान्ततीर्थ द्वारा लिखित लेख में 'आनंद भाष्य' ग्रन्थ के आधार पर भी रामानंद जी को तात्विक दृष्टि से रामानुज के ही मत का अनुयायी बताया गया है। द्विवेदी जी ने लिखा है कि रामानंद ने विशिष्टाद्वैत मत को ही ब्रह्मसूत्र-सम्मत बताया है। उक्त लेख के अनुसार रामानन्दाचार्य ने अनन्यभक्ति को ही मोक्ष का अव्यवस्तिोपाय माना है, प्रपत्ति को मोक्ष का हेतु माना है, कर्म को भक्ति का अंग माना है, जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण ब्रह्म को माना है; जीवों का परस्पर भेद और नानात्व माना है; तथैव जीवों का स्वरूपतः अणुत्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व, ज्ञातृत्व और नित्यत्व आदि माना है; जीवों का ब्रह्म से अभेद माना है, विद्योपकारिका वर्णाश्रम

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, शुक्ल, पृ० सं० १२४।

व्यवस्था को स्वीकार किया है; विवर्तवाद का बारंबार प्रत्याख्यान किया है; 'नारद पंचरात्र' को बहुधा प्रमाण रूप से स्वीकार किया है; निर्विशेष ब्रह्म का अनेक स्थलों पर निरास करके 'सविशेष-ब्रह्म' का प्रतिपादन किया है; सतख्याति-वाद को स्वीकार किया है; और वेदों का अपौरुषेयत्व माना है[१] । परम्परा भी रामानंद को रामानुज से सम्बद्ध करती है ।

व्यावहारिक क्षेत्र में रामानुज तथा रामानंद के मत में अन्तर है । रामानन्द ने रामानुज के श्री सम्प्रदाय के स्थान पर रामानंदी वैष्णव सम्प्रदाय की स्थापना की । श्री सम्प्रदाय के अन्तर्गत बैकुंठनिवासी विष्णु का प्रमुख स्थान था यद्यपि इस सम्प्रदाय के अनुयायी अन्य अवतारों की भी उपासना करते थे । रामानंद जी ने विष्णु के स्थान पर लोक में लीला-विस्तार कर मर्यादा-स्थापन करने वाले राम को ही एक मात्र परम आराध्य माना । इस प्रकार इस सम्प्रदाय के इष्टदेव रामसीता तथा मूल मंत्र राम नाम हुआ । श्री सम्प्रदाय के उपासकों का मंत्र 'ॐ नमो नारायणाय' है तथा रामानन्दी सम्प्रदाय का मंत्र 'ओं रामाय नमः' है । रामानंदी तिलक भी रामानुज सम्प्रदाय के तिलक से मिलता-जुलता होने पर भी कुछ भिन्न है। रामानंद जी ने रामानुज के कर्मकांड की भी अवहेलना की और एक मात्र भक्ति को ही सर्वश्रेष्ठ ठहराया । इसके अतिरिक्त रामानुज जी के सम्प्रदाय में केवल द्विजातियों को ही दीक्षा दी जाती थी, किन्तु रामानन्द जी ने रामभक्ति का द्वार सब वर्णों एवं जातियों के लिए समान रूप से खोल दिया ।

हरिदासी अथवा सखी-सम्प्रदाय :

इस सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा स्वामी हरिदास जी ने की थी । हरिदास जी का जन्म-मृत्यु-समय तथा अन्य विशेष परिचय अज्ञात है । निश्चित रूप से इतना ही ज्ञात है कि यह ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुये थे और सम्राट अकबर के समकालीन तथा उच्च कोटि के गवैये, भक्त एवं कवि थे ।

हरिदासी-संप्रदाय आरम्भ में एक साधन-मार्ग ही था, किसी दार्शनिक सिद्धान्त का प्रचारक मत नहीं । नाभादास जी ने अपने 'भक्तमाल' ग्रन्थ में हरिदास तथा उनकी उपासना-पद्धति के संबंध में एक छन्द लिखा है । इस छन्द से ज्ञात होता है कि हरिदास जी, जिनकी छाप 'रसिक' थी, सखी भाव से राधाकृष्ण के आनन्द-विहार का अवलोकन तथा उनकी केलि के रस को लूटा करते थे[२] । इस प्रकार इस सम्प्रदाय में सखी-भाव से युगल-केलि की उपासना तथा युगल-केलि का ध्यान प्रचलित था ।

---

१. हिन्दुत्व, पृ० सं० ६८४, ६८७ ।

२. 'आसधीर उद्योत कर, रसिक छाप हरिदास की ।
जुगल नाम सों नेम जपत नित कुंज बिहारी ।
अवलोकत रहे केलि सखी सुख को अधिकारी ।
गानकला गन्धर्व स्याम स्यामा कों तोषैं ।
उत्तम भोग लगाय मोर मर्कट तिमि पोषैं ।
नृपति द्वार ठाढ़े रहैं दर्शन आसा जास की ।
आसधीर उद्योत कर, रसिक छाप हरिदास की ।
भक्तमाल, भक्ति-सुधा-स्वाद-तिलक, रूपकला, पृ० सं० ६०७ ।

केशव के काव्य पर विभिन्न परिस्थितियों का प्रभाव :

केशवदास जी पर उपर्युक्त दार्शनिक वादों तथा कृष्ण-पूजा सम्प्रदायों का कोई विशेष प्रभाव नहीं दिखलाई देता। केशवदास जी का 'रामचन्द्रिका' नामक ग्रन्थ रामभक्ति-संबंधी ग्रन्थ है जिसमें केशव ने राम और सीता को अपना इष्टदेव लिखा है और रामनाम की महिमा का गुणगान किया है। अतएव इस ग्रन्थ में किसी सीमा तक केशव रामानंदी सम्प्रदाय से प्रभावित प्रतीत होते हैं। रामानन्दी सम्प्रदाय की शिक्षा के अनुसार ही इस ग्रन्थ में केशव ने प्रत्येक वर्ण को राम नाम का अधिकारी माना है। केशवदास जी सखी-सम्प्रदाय और उसकी साधन-विधि से भी परिचित थे। इस सम्प्रदाय का परोक्ष रूप से केशव ने 'विज्ञानगीता' ग्रन्थ के अन्तर्गत पाखंडियों के स्थल का वर्णन करते हुये उल्लेख किया है। इस उल्लेख से ज्ञात होता है कि केशव इस सम्प्रदाय को अच्छी दृष्टि से न देखते थे[1]।

केशवदास जी के काव्य पर पूर्ववर्ती तथा समकालीन साहित्यिक परम्परा तथा राजनीतिक और सामाजिक स्थिति का विशेष प्रभाव है। केशव के 'वीरसिंहदेव-चरित', जहाँगीर-जस-चंद्रिका' तथा 'रतन-बावनी' आदि ग्रन्थ वीर काव्य की परम्परा के अन्तर्गत हैं। वीरगाथा-काल के कवियों ने अपने आश्रय-दाताओं की प्रबन्ध रूप से प्रशस्तियाँ लिखी हैं। इसी परम्परा का अनुगमन करते हुए 'वीरसिंह-देव-चरित' में केशवदास जी ने अपने आश्रयदाता वीरसिंहदेव के चरित्र का गान किया है। 'जहाँगीर-जसचंद्रिका' में वीरसिंहदेव के आश्रयदाता सम्राट जहाँगीर का यश वर्णित है। इन दोनों ग्रन्थों में वीरगाथा-काल के काव्यों के समान वीर रस का सम्यक स्फुरण नहीं हो सका है। इस काव्य-परम्परा के अन्तर्गत तीसरा ग्रन्थ 'रतन-बावनी' है जिसमें मधुकर शाह के पुत्र रतनसिंह की वीरता का वीरगाथा काव्य के समान ही ओजपूर्ण वर्णन है। जिस प्रकार वीरगाथा-काल के कवि ओज लाने के लिये द्वित्व वर्णों का प्रयोग करते थे उसी प्रकार इस ग्रन्थ में भी सज्जिव, फुल्लिव, दिज्जहु, किज्जहु आदि द्वित्व वर्णों का बहुल प्रयोग है। छन्द भी वीरगाथा-काल के परिचित दोहा, छप्पय, कवित्त आदि ही हैं।

'विज्ञानगीता' की रचना केशव को निर्गुण संत कवियों के मेल में उपस्थित करती है। इस ग्रन्थ में केशव ने ज्ञान की महिमा गाते हुए जीव के माया से छुटकारा पाकर ब्रह्म से मिलन का उपाय बतलाया है। निर्गुण संत-मत में ऐसे ईश्वर की भावना मानी गई है जो सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक और अखंडज्योति-स्वरूप है। वह आकार तथा रूप से रहित है। वह संसार के प्रत्येक कण में है, अलख और निरंजन है। उसी से संसार की उत्पत्ति है। ईश्वर सम्बन्धी यही भावना हमें केशव की 'विज्ञान-गीता' में भी दिखलाई देती है। कबीर आदि निर्गुण संत-कवियों ने हठयोग को ईश्वर-प्राप्ति का साधन माना है और आसन, प्राणायाम आदि को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। केशव ने भी ईश्वर-प्राप्ति में प्राणायाम का महत्व स्वीकार किया है। कबीर आदि संत कवियों के समान ही केशव ने 'विज्ञानगीता' तथा अन्य ग्रंथों में स्थान स्थान पर नीति और उपदेश की बातें भी कही हैं।

केशव का समय भक्ति तथा रीतिकाल का संधियुग था। तुलसी तथा सूर ने भक्ति की

1. विज्ञानगीता, छं० सं० २८-३३, पृ० सं० ३८।

जिस पावन धारा को प्रवाहित किया था वह तत्कालीन राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितिवश ह्रासोन्मुख और क्रमशः क्षीण हो रही थी। दूसरी ओर जयदेव तथा विद्यापति ने जिस शृंगारिक कविता की नींव डाली थी, उसके अभ्युदय का आरम्भ हो चुका था। केशव की 'रामचन्द्रिका' रामकाव्य-परंपरा के अंतर्गत है, किन्तु यह ग्रंथ रामभक्ति-काव्य के तत्कालीन ह्रास का परिचायक है। तुलसीदास जी के द्वारा काव्य अपने चरम उत्कर्ष को प्राप्त हुआ था। तुलसी ने रामकथा के मर्यादा-पूर्ण विकास के सहारे लोकधर्म की स्थापना की है। 'मानस' के पात्रों का व्यक्तिगत चरित्र आदर्श है, उनका पारस्परिक और सामाजिक व्यवहार भी आदर्श तथा अनुकरणीय है। साथ ही तुलसी ने दार्शनिक और धार्मिक सिद्धान्तों का भी स्पष्टता के साथ निरूपण किया है।

'रामचंद्रिका' में न तो कोई दार्शनिक अथवा धार्मिक आदर्श है और न लोकशिक्षा का ही वह स्वरूप जो तुलसी के 'रामचरितमानस' में है। वास्तव में केशव ने रामकथा के सहारे अपने आचार्यत्व का ही प्रदर्शन किया है जिसके पीछे उन्होंने भक्ति, दर्शन आदि के आदर्शों की उपेक्षा की है। वे किसी भी पात्र के आदर्श-पूर्ण चरित्र की स्थापना नहीं कर सके हैं। यहाँ तक कि उनके इष्टदेव राम और सीता का चरित्र भी तुलसी द्वारा स्थापित स्तर से बहुत नीचे गिर गया है। केशव के राम का चरित्र बहुत कुछ तत्कालीन राजा-महाराजाओं के चरित्र के समान है। वे सीता को प्रसन्न करने के लिए धर्म और मर्यादा सभी को तिलांजलि दे सकते हैं। सीता 'विराध' को देख कर डर गई। राम ने कर्तव्याकर्तव्य का बिना विचार किये ही उसे मौत के घाट उतार दिया। बन में चलते हुए सीता और राम दोनों ही थके होंगे किन्तु सीता को अपने कर्तव्य की चिन्ता नहीं है, राम बैठे अपने आंचल से सीता के पंखा झलते और परिश्रम दूर करते हैं। हाँ, सीता बीच बीच में कभी कभी उनकी ओर 'चंचल चारु दृगंचल' से कटाक्ष अवश्य कर देती है। राम को इससे अधिक और क्या चाहिये। राज्याभिषेक के बाद तो राम और तत्कालीन मुगल-सम्राटों तथा राजामहाराजाओं में तनिक भी अन्तर नहीं रह जाता। वह उन्हीं के समान कभी अस्त्रशाला देखने जाते हैं, कभी शृंगारशाला, कभी आखेट के लिये जाते हैं तो कभी रनिवास की स्त्रियों की जलक्रीड़ा देखने, कभी सभा में बैठ कर गाने-बजाने आदि का आनन्द लेते हैं, तो कभी सीता की दासियों का नखशिख-वर्णन सुन कर मानसिक आनन्द प्राप्त करते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि केशव के हृदय में राम-भक्ति का आदर्श न था।

केशव पर सूफियों के प्रेम-काव्य का कोई प्रभाव नहीं दिखलाई देता। सूफी कवियों ने अपने आख्यान अवधी भाषा तथा दोहा-चौपाई छन्दों में लिखे हैं। केशव ने भी 'वीरसिंह-देव-चरित' नामक प्रबन्ध-काव्य दोहा-चौपाई छन्दों में लिखा है किन्तु प्रबन्ध-काव्य के लिये इन छन्दों के चयन में केशव का सूफी कवियों की अपेक्षा समकालीन तुलसी द्वारा प्रभावित मानना ही अधिक उपयुक्त है।

सूरदास आदि कृष्णभक्त कवियों का भी केशव पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा है। इन कवियों की गीतपद्धति पर केशव ने कोई ग्रंथ नहीं लिखा और न केशव के राधाकृष्ण-सम्बन्धी छन्दों में इन कवियों के समान भक्ति की तन्मयता ही है। केशव के ग्रंथों में ऐसे इने

गिने ही छन्द हैं जिनमें सूर आदि कृष्णभक्तों का दृष्टिकोण परिलक्षित होता है।[1] अन्यथा अधिकांश पदों में कृष्ण का लौकिकनायक रूप ही चित्रित है जो तत्कालीन वर्ग-विशेष की मनोवृत्ति का परिचायक है। इस प्रकार इस क्षेत्र में केशव, जयदेव, विद्यापति आदि कवियों से अनुप्राणित प्रतीत होते हैं।

'कविप्रिया', 'रसिकप्रिया' तथा 'नखशिख' की रचना के द्वारा केशवदास जी रीतिकालीन साहित्य के प्रतिनिधि के रूप में हमारे सामने आते हैं। कविता के दो अंग हैं, भावपक्ष और कलापक्ष। सूर, तुलसी आदि भक्त-कवियों ने भावपक्ष पर अधिक जोर दिया था और उनके हाथों में कविता का निर्माण और विकास प्रौढ़ता को प्राप्त हो चुका था। रीतिकालीन कवियों ने कलापक्ष पर विशेष ध्यान दिया और भाषा में लालित्य तथा उक्ति में वैचित्र्य लाकर कविता पर शान (पालिश) सी चढ़ाई। फलतः कविता-लक्षणग्रंथों का अध्ययन और भाषा में निर्माण आरम्भ हुआ केशव के पूर्व ही कुछ कवियों का पग इस दिशा में उठ चुका था। इन कवियों का उल्लेख पूर्वपृष्ठों में किया जा चुका है। किन्तु अभी तक किसी कवि ने काव्य के विभिन्न अंगों का विस्तृत विवेचन न किया था। केशवदास जी ने उपर्युक्त तीन ग्रंथों के द्वारा काव्य के विभिन्न अंगों का शास्त्रीय पद्धति पर सांगोपांग निरूपण कर इस क्षेत्र में पथ-प्रदर्शन किया। केशव की 'रसिकप्रिया' रस-संबंधी तथा 'कविप्रिया' अलंकार-संबंधी लक्षणग्रंथ हैं। 'नखशिख' में नायिका के नख से शिख तक विभिन्न अंगों के वर्णन की विधि बतलाई गई है। इन तीनों ग्रंथों में शृंगारिक भावना ही प्रधान है जो उस युग का प्रभाव है। 'रामचंद्रिका' की रचना विविध छंदों में कर छन्द-निर्माण के क्षेत्र में भी केशव ने पथ-प्रदर्शन किया है। इस ग्रंथ में तत्कालीन प्रभाव से प्रभावित होकर कविता के अन्तस् की अपेक्षा बाह्य को विविध अलंकारों से सजाने की ही ओर विशेष ध्यान दिया गया है।

सारांश में केशव उन कवियों में नहीं थे जो अपने समय के धरातल से बहुत ऊपर उठ सकते हों किन्तु समसामयिक परिस्थितियों द्वारा निर्मित होकर भी वे कविता-क्षेत्र में एक विशिष्ट प्रणाली के प्रचारक और नवीन युग के प्रवर्तक हैं।

१. 'राधा राधारमन के, मन पठयो है साथ।
उद्धव ह्यां तुम कौन सो, कहो योग की गाथ। ३०।
कहौ कहा तुम पाहुने, प्राणनाथ के मित्त।
फिर पीछे पछिताहुगे, उधो समुझौ चित्त'। ३१। कविप्रिया, पृ० सं० ३७।

द्वितीय अध्याय

जीवनी

आधारभूत सामग्री की परीक्षा

प्राचीन अथवा मध्यकालीन किसी हिन्दी कवि का जीवन-वृत्त लिखने के लिये लेखक को अधिकांश बहिस्साक्ष्य, किंवदन्तियों और अनुमानों का सहारा लेना पड़ता है। कवियों द्वारा लिखे हुये आत्मचारित्रिक वृत्तान्त अल्प हैं। यहाँ तक कि सूर, तुलसी, केशव, बिहारी आदि से महाकवियों के जन्म-मरण की तिथियाँ और जीवन-सम्बन्धी मुख्य घटनायें भी तिमिराछन्न हैं। इसका मुख्य कारण भारत की आत्मिक मनोवृत्ति है जिसके फल-स्वरूप क्षण-भंगुर मानव का गुण-गान सदैव ही उपेक्षा की दृष्टि से देखा गया है। भारतीय भक्त-कवियों में यह मनोवृत्ति हमें सबसे अधिक दिखलाई देती है। गो० तुलसीदास जी के अनुसार तो प्राकृतजनों का गुण-गान करने से सरस्वती सिर धुन कर पछताती है।[1] ऐतिहासिक पुरुषों के सम्बन्ध में यह कठिनाई किसी सीमा तक कम हो जाती है क्योंकि इस सम्बन्ध में बहुत कुछ सहायता सिक्कों, शिलालेखों और दानपत्रों आदि से मिल जाती है। आश्रित कवियों के संबंधी में भी भक्त-कवियों की अपेक्षा कम कठिनाई का सामना करना पड़ता है क्योंकि उनके जीवन की बहुत सी छोटी बड़ी घटनायें आश्रयदाता के जीवन के साथ जुड़ी रहती हैं, अतएव आश्रयदाता का गुणगान करते हुये बहुत सी बातों का स्वयम् ही उल्लेख हो जाता है, जिनसे कवि के जीवन पर प्रकाश पड़ता है, यद्यपि हिन्दी के आश्रित कवियों ने भी अपना पूर्ण जीवन-वृत्त उपस्थित करने की चेष्टा नहीं की। अपने मुँह अपनी प्रशंसा करना भारतीय मनोवृत्ति के प्रतिकूल है। यह भावना हमें आश्रित कवियों में भी दिखलाई देती है। स्वयं केशवदास जी ने अपने ग्रंथ 'वीरसिंहदेव-चरित' में परोक्ष रूप से अपने मुँह अपनी प्रशंसा करने की अवहेलना की है।[2] फिर भी केशवदास की जीवन-विषयक सामग्री स्वयं कवि के कथनों में हमें पर्याप्त मात्रा में मिल जाती है।

१. 'कीन्हें प्राकृत जन गुण गाना। शिर धुनि गिरा लगति पछिताना'।
रामायण, बालकांड, ना० प्रे०, पृ० सं० १०।

२. 'अपने आनन अपनी बात। अचरज यहै न कहत लजात'।
वीरसिंहदेव-चरित, केशव, पृ० सं० ३।

जीवन की आधार-भूत सामग्री :

किसी कवि के जीवन की आधार-भूत सामग्री निम्नलिखित तीन भागों में विभाजित की जा सकती है।

१—अन्तस्साक्ष्य, अर्थात् वह बातें जो स्वयं कवि के विभिन्न ग्रन्थों में उल्लिखित मिलती हैं।

२—बहिस्साक्ष्य, कवि से इतर लोगों के द्वारा कवि के सम्बन्ध में लिखी हुई बातें। इसे दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।

अ—प्राचीन ग्रंथों के उल्लेख
इ—अर्वाचीन सामग्री

इस सम्बन्ध में स्पष्ट ही अर्वाचीन की अपेक्षा प्राचीन सामग्री अधिक महत्वपूर्ण है।

३—किंवदन्तियाँ, अर्थात् चिरकाल से मौखिक रूप से प्रचलित बातें।

अन्तस्साक्ष्य :

केशव का जीवन-वृत्त जानने के लिये कवि का सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ 'कविप्रिया' है। इसके दूसरे प्रभाव में कवि ने अपने बंश, पूर्वजों और अपने जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली कुछ अन्य बातों का उल्लेख किया है।[1]

1. 'ब्रह्मा जू के चित्त तें प्रगट भये सनकादि।
उपजे तिनके चित्त से सब सनोढिया आदि ॥१॥
परशुराम भृगुनंद तब उत्तम विप्र विचारि।
दये बहत्तर ग्राम तिन तिनके पायं पखारि ॥२॥
जगपावन बैकुंठपति रामचंद्र यह नाम।
मथुरामंडल में दये तिन्हैं सात सौ ग्राम ॥३॥
सोमवंश यदुकुल कलस त्रिभुवन पाल नरेश।
फेरि दये कलिकाल पुर तेई तिन्हैं सुदेश ॥४॥
कुंभवार उद्देस कुल प्रगटे तिनके बंस।
तिनके देवानंद सुत उपजे कुल अवतंस ॥५॥
तिनके सुत जयदेव जग थापे पृथिवीराज।
तिनके दिनकर सुकुल युत प्रगटे पंडितराज ॥६॥
दिल्लीपति अल्लाउदीं कीन्ही कृपा अपार।
तीरथ गया समेत जिन अकर करे बहुबार ॥७॥
गया गदाधर सुत भये तिनके आनंद कंद।
जयानन्द तिनके भये विद्यायुत जगबंद ॥८॥
भये त्रिविक्रम मिश्र तब तिनके पंडित राय।
गोपाचल गढ़ दुर्गपति तिनके पूजे पाय ॥९॥

इस विवरण से ज्ञात होता है कि केशवदास जी का जन्म मिश्र उपाधिधारी 'सनौढिया' अर्थात् सनाढ्य ब्राह्मण कुल में हुआ था। इनके पितामह कृष्णदत्त मिश्र को राजा रुद्र प्रताप से 'पुराण की वृत्ति' मिली थी। इनके पिता का नाम काशीनाथ था, जिनका राजा मधुकरशाह विशेष सम्मान करते थे। केशवदास जी तीन भाई थे। बड़े भाई का नाम बलभद्र और छोटे का कल्यान था। केशव के कुल के दास भी भाषा में बातें न कर संस्कृत बोलते थे। ऐसे कुल में उत्पन्न होकर भी परिस्थितियों के कारण केशव को 'भाषा' में कविता करनी पड़ी। एक बार प्रयाग में इन्द्रजीत सिंह ने केशव से कुछ माँगने को कहा। केशव ने यही मांगा कि 'सदैव आपकी एक समान कृपा रहे'। इसी प्रकार बीरबल ने एक बार केशव से कहा था कि जो कुछ तुम्हारी इच्छा हो मांगो तब केशव ने उनसे यही माँगा कि 'आपके दर्बार में जाने से मुझे कोई न रोके'। महाराज इन्द्रजीत सिंह केशव को अपना गुरू मानते थे और उन्होंने केशव

भावशर्मं तिनके भये जिनकै बुद्धि अपार।
भये शिरोमणि मिश्र तब षट दर्शन अवतार ॥१०॥
मानसिंह सों रोष करि जिन जीती दिसिचारि।
ग्राम बीस तिनको दये राना पांव पखारि ॥११॥
तिनके पुत्र प्रसिद्ध जग कीन्हे हरि हरिनाथ।
तोमरपति तजि और सों भूलि न ओड्यो हाथ ॥१२॥
पुत्र भये हरिनाथ के कृष्णदत्त शुभवेष।
सभा शाह संग्राम की जीती गढ़ी अशेष ॥१३॥
तिनको वृत्ति पुराण की दीन्ही राजा रुद्र।
तिनके काशीनाथ सुत सोभे बुद्धि समुद्र ॥१४॥
जिनको मधुकर शाह नृप बहुत कर्‌यो सनमान।
तिनके सुत बलभद्र शुभ प्रगटे बुद्धि निधान ॥१५॥
बालहिं तें मधुसाह नृप जिनपै सुनै पुरान।
तिनके सोदर द्वै भये केशवदास कल्यान ॥१६॥
भाषा बोलि न जानहीं जिनके कुल के दास।
भाषा कवि भो मंदमति तेहि कुल केशवदास ॥१७॥
इन्द्रजीत तासों कह्यौ मांगन मध्य प्रयाग।
मांग्यो सब छिन एक रस कीजै कृपा सभाग ॥१८॥
यों ही कह्यौ जु बीरबर मांगि जु मन में होय।
मांग्यो तब दरबार में मोहि न रोकै कोय ॥१९॥
गुरु करि मान्यो इन्द्रजित तन मन कृपा बिचारि।
ग्राम दये इकबीस तब ताके पायं पखारि ॥२०॥
इन्द्रजीत के हेत पुनि राजा राम सुजान।
मान्यो मंत्री मित्र कै केशवदास प्रमान, ॥२१॥

कविप्रिया, दीन, पृ० स० २१, २२।

को इक्कीस गाँव दान में दिये। महाराज इन्द्रजीतसिंह ही के कारण उनके बड़े भाई रामशाह भी केशव को मंत्री और मित्र के समान मानते थे।

'रसिकप्रिया' नामक ग्रंथ के कुछ छंदों से भी कवि के जीवन पर कुछ प्रकाश पड़ता है। इन छंदों से ज्ञात होता है कि केशवदास जी बुँदेलखंड के ओरछा राज्यान्तर्गत तुंगारराय के निकट बेतवा नदी के तटस्थ ओरछा नगर में रहते थे। केशवदास जी उच्चकोटि के कवि थे और दूर दूर तक उनकी ख्याति थी।[1]

'रामचंद्रिका' के आरंभ में भी कवि ने संक्षेप में अपना और अपने वंश का परिचय दिया है।[2] इस परिचय से कवि के विषय में 'कविप्रिया' में दिये हुये परिचय से अधिक कुछ नहीं ज्ञात होता।

'विज्ञानगीता' नामक ग्रन्थ के आरम्भ में भी 'रामचंद्रिका' के समान ही वंश-परिचय दिया हुआ है।[3] ग्रन्थ के अंत में दिये हुये दो छन्दों से अवश्य केशव के जीवन पर नवीन प्रकाश पड़ता है। वह छंद निम्नलिखित हैं:

"सुनि सुनि केशव राइ सो, रीझि कह्यो नृपनाथ।
माँगि मनोरथ चित्त के, कीजे सबै सनाथ॥

१. 'नदी बेतवै तीर जहँ तीरथ तुंगारन्न।
नगर ओरछा बहु बसै, धरणी तल में धन्न॥३॥
दिन प्रति जहँ दूनो लहैं, जहाँ दया अरु दान।
एक तहाँ केशव सुकवि, जानत सकल जहान'॥४॥
रसिकप्रिया, केशव, न० प्रे०, पृ० स० ६, १०।

२. 'सनाढ्य जाति गुनाढ्य है जगसिद्ध शुद्ध सुभाव।
सुकृष्ण दत्त प्रसिद्ध हैं महि मिश्र पंडित राव।
गणेश सो सुत पाइयो बुध काशिनाथ अगाध।
अशेष शास्त्र विचारि के जिन जान्यो मत साध।
उपज्यो तेहि कुल मंद मति शठ कवि केशवदास।
रामचंद्र की चंद्रिका भाषा करी प्रकास'।
रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं सं० ४, पृ० स० ४, ५।

३. 'केशव तुंगारराय में, नदी बेतवै तीर।
जहाँगीरपुर बहु बसे, पंडित मंडित भीर॥३॥
....
तहाँ प्रकाश सो निवास मिश्र कृष्णदत्त को।
अशेष पंडिता गुणी सुदास विप्र भक्त को।
सुकाशिनाथ तस्यपुत्र विज्ञ काशिनाथ को।
सनाढ्य कुंभवार अंश वंश वेद व्यास को, ॥५॥
विज्ञानगीता, पृ० स० ३, ४।

वृति दई पुरुखानि की, देऊ बालनि आसु।
मोहि आपनो जानि के, गंगातट देउ बासु॥
वृत्ति दई पदवी दई, दूरि करो दुख त्रास।
जाइ करो सकलत्र श्री गंगातट बस बास, ॥९७॥[1]

इन पंक्तियों के अनुसार 'विज्ञानगीता' की रचना से प्रसन्न होकर जब राजा वीरसिंह-देव ने केशव से कहा कि जो तुम्हारे हृदय का मनोरथ हो उसे माँगो तो केशवदास जी ने कहा कि 'आपके पूर्व-पुरुषों ने हमारे पूर्वजों को जो वृत्ति दी थी, उसे शीघ्र ही मेरे बालकों को दे दीजिये'। यह सुन कर राजा ने उन्हें वृत्ति और पदवी दी। केशवदास जी सपत्नीक जाकर गंगातट पर रहने लगे। इस उल्लेख से ज्ञात होता है कि केशवदास जी से रुष्ट होकर कुछ काल के लिये महाराज वीरसिंह देव ने केशव की पैतृक वृत्ति का अपहरण कर लिया था। दूसरे यह कि केशव की धर्मपत्नी 'विज्ञानगीता' के रचना काल सं० १६६७ तक जीवित थीं और केशवदास जी के एक से अधिक सन्तान थी।

'वीरसिंहदेव-चरित' ग्रंथ से ज्ञात होता है कि जिस समय रामशाह और वीरसिंह देव आदि भाइयों में आपस में युद्ध छिड़ा था तो राजा रामशाह की आज्ञा से केशवदास जी वीरसिंह देव के पास संधि-प्रस्ताव लेकर गये थे। इसमें केशव को आंशिक सफलता भी मिली।[2] इस अवसर पर वीरसिंह देव और केशवदास में जो बातचीत हुई उसमे यह भी

१. विज्ञानगीता, पृ० स० १२४, पाठभेद :
'वृत्ति दई पुरुषान के, देहु बालकनि आसु।
मोहि आपनो जानि कै, दै गंगातट बासु॥
वृत्ति दई पदवी दई, दूरि करी दुष त्रास।
जाइ कर्‌यो सकलत्र श्री गंगातट बसोबास'।
विज्ञानगीता, हस्तलिखित, सं० १८४६, पृ० स० १०१।

२. 'मंगद पायक प्रेम बनाय, पठये केशव मिश्र बुलाय।
जो कछु करि आवहु सु प्रमान, यों कहि पठये राम सुजान।
वीरसिंह : कासीसनि के तुम कुल देव, जानत हौ सबही के भेव।
जानत भूत भविष्य विचार, वर्तमान को समुझत सार।
जिहि मग होय दुहुन को भलो, तेहि मग हौंहि चलावौ चलौ।
केशव : यह सुनि केसवदास विचारि, बात कही सुनिये सुखकारि।
नृपति मुकुटमनि मधुकर साहि, तिन के सुत द्वै दिन दुख दारि।
दुहू भाँति सुख के फर फरे, परमेस्वर तुम राजा करे।
तुम नरहरि नृप कीने नाउ, कहौ कौन पर मेटे जाउ।
हैं द्वै बाट भली अनभली, चलिबौ कुसल कौन की गली।
बाई एक दाहिनी ओर, सुखद दाहिनी बांई घोर।
वीरसिंह : वीरसिंह तजि बोले मौन, कौन दाहिनी बांई कौन।

ज्ञात होता है कि रामशाह तथा वीरसिंह देव दोनों ही केशव में पूर्ण श्रद्धा और विश्वास रखते थे और उनका बहुत अधिक आदर करते थे।

केशव : सकल बुद्धि तेरे नरनाथ, दल बल दीरघ देख्यौ साथ।
देह दाम बल दीसहि घनै, धर्म कर्म बल गुन आपनै।
सोधि सील बल दीनो ईस, सकल साहि बल तेरे सीस।
तुमहि मित्र अकपट बलवन्त, जुद्ध रिद्धि बल अरु जसवन्त।
उनके रन में एक न आज, कीने चित्त जुद्ध को साज।
जुद्ध परे ते जानि न परै, को जानै को हारै मरै।
इत को उत को दल संघरै, तुमको दुहू भाँति घटिपरै।
उत आगे भुवपाल अजीत, सो जूझै जूझै इन्द्रजीत।
इन्द्रजीत बिन राजा मरै, राजा बिन पुर जौहर करै।
पुर में बाह्मन बसत अपार, कीजै राज जु परे विचार।
यह मैं बाट बताई बाम, महा विषम जाके परिनाम।
भैया राजा ब्राह्मनि मारे यह फल होय।
स्वारथ परमारथ मिटै बुरो कहै सब कोय।

सुनिये बाट दच्छ दाहिनी, जो दिन दुःसह दुःख दाहिनी।
इक पुरिखा अरु राजा वृद्ध, दूहूँ दीन दीरघ परसिद्ध।
नैन विहीन रोग संयुक्त, जीवत नाहीं जेठो पुत्र।
ताके द्रोह बड़ाई कौन, सुख दैके बैठारो भौन।
सेवा कै सुख दै सुखदानि, पांव पखारि आपने पानि
भोजन कीजौ तिनके साथ, ढारौ चौर आपने हाथ
पूजा यों कीजे नरदेव, जो कीजे श्रीपति की सेव
जौ लगि राम साहि जग जियै, बनिहै राज सेव ही किये
पीछै है सब तुमही लाज, लीबो पद, जन, साज समाज
निपटहि बालक भारत साहि, तिन तन कुसल कृपा दृग चाहि।
भारत साहि राउ भूपाल, उग्रसेन सब बुद्धि बिसाल।
इनको तुम्हैं सुनौ नरनाथ, राजा सौंपे अपने हाथ।
तब तुम जानौ ज्यों त्यों करौ, राज ताज अपने सिर धरौ।
अपने कुल की कीरति कली, यहई बाट दाहिनी भली'

वीरसिंह : यह सुनि सुख पायौ नरनाथ, कही आपने जिय की गाथ।
राजहि मोहि करौ इक ठौर, विविध विचारनि की तजि दौर।
मैं मानी, जो मानै राज, सफल होहिं सबही के काज,।

वीरसिंहदेव-चरित, पृ० सं० ६४, ६६।

बहिस्साक्ष्य—प्राचीन :

१—मूलगोसाईं-चरित : बहिस्साक्ष्य के अन्तर्गत बेणीमाधव दास-कृत 'मूलगोसाईं-चरित' से केशव के जीवन पर कुछ प्रकाश पड़ता है परन्तु यह ग्रन्थ अप्रमाणिक है। तुलसीदास जी का यह संक्षिप्त जीवन-चरित उनके शिष्य बेणीमाधव दास द्वारा सं० १५८७ में लिखा कहा जाता है।[1] इसमें केशवदास के विषय में लिखा है कि सं० १६४२ वि० के लगभग जब तुलसीदास जी काशी में थे, केशवदास उनसे मिलने गये। तुलसीदास जी ने उनके आने का समाचार सुन कहला भेजा कि 'प्राकृत कवि केशव को आने दो'। यह सुन कर केशवदास उल्टे पैरों लौट आये और सेवक से कहला दिया कि कल आकर मिलेंगे। घर जाकर रात भर में 'रामचंद्रिका' की रचना कर केशवदास जी दूसरे दिन प्रातः काल काशी के असी घाट पर आकर तुलसीदास से मिले।[2] अन्तस्साक्ष्य से इस कथन की पुष्टि नहीं होती। स्वयं केशवदास के ही शब्दों में 'रामचंद्रिका' की समाप्ति सं० १६५८ के कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष में बुधवार को हुई थी।[3] 'विज्ञानगीता' में काशी का वर्णन देख कर यह भी निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि 'विज्ञानगीता' की रचना के पूर्व केशवदास काशी गये थे। 'विज्ञानगीता' की रचना सं० १६६७ वि० में हुई थी, और 'रामचन्द्रिका' की १६५८ वि० में। संभव है कि 'रामचंद्रिका' लिखने के बाद केशव काशी गये हों और तुलसीदास जी से मिले हों। 'मूलगोसाईं-चरित' ग्रंथ में ही, बाबा बेणीमाधवदास ने, सं० १६४६ के लगभग की तुलसी के जीवन से सम्बन्ध रखने वाली घटनाओं का उल्लेख करते हुये, लिखा है कि चित्रकूट से दिल्ली जाते समय ओरछा में तुलसीदास जी को केशव के प्रेत ने घेरा, तब गोस्वामी जी की कृपा से बिना प्रयास

---

१. 'सोरह सै सत्तासि सित, नवमी कातिक मास।
विरच्यो यहि निज पाठ हित, वेनी माधवदास' ॥
मूलगोसाईं-चरित, छं० सं० १२१, पृ० सं० ३६।

२. 'कवि केशवदास बड़े रसिया। घनस्याम सुकुल नभ के बसिया ॥
कवि जानि के दरसन हेतु गये। रहि बाहिर सूचन भेजि दिये ॥
सुनि कै जु गोसांइ कहै इतनो। कवि प्राकृत केसव आवन दो ॥
फिरिगे झट केशव सो सुनि कै। निज तुच्छता आपुइते गुनि कै ॥
जब सेवक टेरेउ गे कहि कै। हौ भेटिहौं कालिह विनय गहि कै ॥
घन स्याम रहै घासीराम रहैं। बलभद्र रहै विस्राम लहैं ॥
रचि राम सुचंद्रिका रातिहि में। जुरे केशव जू असि घाटिहि में ॥
सतसंग जमी रस रंग मची। दोउ प्राकृत दिव्य विभूति षची ॥
मिटि केसव को संकोच गयो। उर भीतर प्रीति की रीति रयो' ॥
मूलगोसांई-चरित, पृ० सं० २५, २६।

३. 'सोरह सै अट्ठावने, कार्तिक सुदि बुधवार।
राम चंद्र की चंद्रिका, तब लीन्हो अवतार' ॥६॥
रामचंद्रिका, पूर्वार्द्ध, पृ० सं० ५।

केशव प्रेतयोनि से मुक्त हो विमान पर चढ़ कर स्वर्ग गये।[1] इस कथन से ज्ञात होता है कि केशवदास की मृत्यु सं० १६४६ वि० के आस-पास हो चुकी थी, किन्तु अन्तस्साक्ष्य से इस कथन की भी पुष्टि नहीं होती। केशवदास ने सं० १६५८ वि० में 'रामचंद्रिका' तथा 'कवि-प्रिया', सं० १६६४ वि० में 'बीरसिंहदेव-चरित', सं० १६६७ वि० में 'विज्ञानगीता' तथा सं० १६६६ वि० में 'जहाँगीर-जस-चंद्रिका' की रचना की थी। इस प्रकार सं०१६६६ वि० तक केशवदास जी का जीवित रहना निर्विवाद है। इससे सिद्ध होता है कि बाबा बेणीमाधवदास द्वारा लिखे 'मूलगोसाईं-चरित' नामक प्रकाशित ग्रंथ में केशव का वृत्तान्त भ्रममूलक और अप्रमाणिक है।

२—कामरूप की कथा : इस ग्रन्थ में सूफी कवियों की प्रेमाख्यान-परम्परा का पालन करते हुये कामरूप के राजकुमार तथा राजकुमारी की प्रेमकथा वर्णित है। प्रेमकाव्य-परम्परा का अनुसरण होने पर भी इस ग्रन्थ में सूफी सिद्धान्तों का प्रतिपादन नहीं है, प्रेम-कथा द्वारा पाठकों को मनोरंजन प्रदान करने की भावना ही प्रमुख है। इसकी रचना केशवदास जी के वंशज हरिसेवक मिश्र द्वारा की गयी है। यह ग्रन्थ अभी अप्रकाशित है। हरिसेवक मिश्र ने निम्नलिखित शब्दों में अपना परिचय दिया है।

'स्तुम्भ्र ग्यात इहि गोत हुउ मिश्र सनाढ्य वंस।
नगर ओड़छै बसत वर कृस्नदत्त भुव अंस।
कृस्नदत्त सुत गुन जलद कासिनाथ परवान।
तिन के सुत प्रसिद्ध है केशव दास कल्यान।
कवि कल्यान के तनय हुव परमेस्वर इहि नाम।
तिन के पुत्र प्रसिद्ध हुव प्रागदास इहि नाम।
तिन सुत हर सेवक कियो यह प्रबंध सुख दाइ'।[2]

उपर्युक्त पंक्तियों से केशवदास जी के जीवन पर कोई नवीन प्रकाश नहीं पड़ता। कवि के पीछे कहे कुछ आत्मचारित्रिक उल्लेखों की पुष्टि होती है।

३—वैराग्यशतक : कविवर देव ने इस ग्रंथ में निम्नलिखित शब्दों में गंग और बीरबल के साथ केशवदास जी का उल्लेख किया है।

'केशव से गंग से प्रसिद्ध कविवर से जे,
कालहि गए न वृथा काल ही बितावहीं।
साहिन की सेवा सुख नाहिन विचारि देखो,
लोभ की उमाहिन पै पीछे पछतावहीं'।[3]

१. 'उडछै केसवदास, प्रेत हतो घेरेउ मुनिहि।
उधरे बिनहि प्रयास चढ़ि विमान स्वरगहि गयौ'।
मूलगोसाईं-चरित, पृ० सं० ३०।

२. ना० प्र० स० खो० रि०।

३. वैराग्य-शतक, देव,।

तथा: **'कविवर परम प्रवीन वीरवर केसौ, गंग की सुकविताई गाई सतपाथी ने।**
एक दल सहित बिलाने एक पलही में, एक भये भूत एक मींजि मारे हाथी ने' ॥[1]

इस कथन से ज्ञात होता है कि केशवदास जी के काव्य का देव के समय में पर्याप्त आदर था और केशवदास जी उच्च कोटि के कवियों में गिने जाते थे। जीवन के अन्तिम काल में केशव को राजा-महाराजाओं की सेवा से सुख न मिल सका और लोभ के फेर में पड़कर उन्हें अन्त में पछताना पड़ा। केशवदास जी यद्यपि उच्चकोटि के कवि थे किन्तु अन्त में वह भूत-प्रेतों की योनि को प्राप्त हुये। इस कथन में प्रेतयोनि की बात को छोड़ कर अन्य बातों की पुष्टि अंतस्साक्ष्य से हो जाती है।

केशवदास के जीवन पर प्रकाश डालने वाले अर्वाचीन ग्रंथों में निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं।

१—**शिवसिंहसरोज** : शिवसिंह सेंगर ने अपने ग्रंथ में केशवदास जी के विषय में लिखा है कि 'इनका प्राचीन निवास टेहरी था। राजा मधुकरशाह उड़छा वाले के यहाँ आये और वहाँ इनका बड़ा सम्मान हुआ। राजा इन्द्रजीतसिंह ने २१ गांव संकल्प कर दिये। तब कुटुंब सहित उड़छे में रहने लगे'।[2] अन्यत्र सरोजकार ने लिखा है कि 'जब अकबर बादशाह ने प्रवीणराय पातुर के हाजिर न होने, उदूल-हुकुमी और लड़ाई के कारण राजा इंद्रजीत पर एक करोड़ रुपये का जुरमाना किया तब केशवदास जी ने छिपकर राजा बीरबल मंत्री से मुलाकात की और बीरबल की प्रशंसा में 'दियो करतार दुहूँ कर तारी' यह कवित्त पढ़ा। तब राजा बीरबल ने महाप्रसन्न होकर जुरमाना माफ कराया। परन्तु प्रवीणराय को दरबार में जाना पड़ा।[3]

२—**मिश्रबन्धु-विनोद** : विद्वान मिश्रबन्धुओं ने अपने 'मिश्रबन्धुविनोद' के प्रथम भाग में केशवदास के विषय में लिखा है कि, 'ये महाशय सनाढ्य ब्राह्मण कृष्णदत्त के पौत्र और काशीनाथ के पुत्र थे। इनका जन्म ओड़छे में सं० १६१२ वि० के लगभग हुआ था। प्रसिद्ध कवि बलभद्र इनके भाई थे। ओरछा-नरेश महाराजा रामसिंह के भाई इन्द्रजीतसिंह के यहाँ इनका विशेष आदर था। आपने महाराज बीरबल के द्वारा अकबर के यहाँ से इंद्रजीत पर एक करोड़ का जुर्माना माफ करा दिया था। इसी समय से केशवदास का ओड़छा-दर्बार में विशेष मान हुआ, जिसका वर्णन इन्होंने स्वयं इस प्रकार लिखा है।

'भूतल को इन्द्र इन्द्रजीत जीवै जुग जुग, जाके राज केसौदास राजु सो करत है'
इनके शरीरान्त का समय सं० १६७४ वि० ठहरता है'।[4]

३—**हिन्दी-नवरत्न** : इस ग्रंथ में मिश्रबन्धुओं ने केशव का जन्मकाल 'विनोद' से भिन्न अर्थात् सं० १६०८ माना है।[5] 'नवरत्न' में आगरे जाकर केशवदास द्वारा बीरबल

१. वैराग्य-शतक, देव।
२. शिवसिंहसरोज, पृ० सं० ३८५, ८६।
३. शिवसिंहसरोज, पृ० सं० ३८६।
४. मिश्रबन्धु-विनोद, प्रथम भाग पृ० सं० २७४।
५. हिन्दी नवरत्न, पृ० सं० ४५३।

की प्रशंसा में 'पावक, पंछी, पसू, नर, नाग, नदी, नद, लोक रचे दस चारी' आदि छंद का भी पढ़ा जाना लिखा है। विद्वान लेखकों ने यह भी लिखा है कि इस छंद से प्रसन्न होकर महाराज बीरबल ने केशवदास को छः लाख रुपये की हुंडियाँ, जो उनकी जेब में थीं, दीं। तब केशव ने परम प्रसन्न हो 'केशवदास के भाल लिख्यो विधि, रंक को अंक बनाय संवारयो' आदि छंद पढ़ा।

किंवदन्तियाँ :

किसी महापुरुष अथवा महाकवि के जीवन के सम्बन्ध में प्रायः बहुत सी किंवदन्तियाँ प्रचलित हो जाती हैं। उच्चकोटि के भक्त होने के कारण सूर और तुलसी के जीवन के सम्बन्ध में तो अनेक कथायें प्रसिद्ध हैं। केशवदास यद्यपि इन महाकवियों के समान महात्मा और भक्त न थे फिर भी आपके सम्बन्ध में कई किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं।

१—महाराज बीरबल की सहायता से महाराज इन्द्रजीत सिंह पर अकबर द्वारा किये गये जुरमाने को माफ कराने का उल्लेख किया जा चुका है। कहा जाता है कि महाराज इन्द्रजीत सिंह की प्रेयसी असीम रुपवती प्रवीणराय के सौन्दर्य की प्रशंसा सुन कर अकबर बादशाह ने उसे बुला भेजा। जब प्रवीण को यह ज्ञात हुआ तो महाराज इन्द्रजीत सिंह के सम्मुख उपस्थित होकर उसने यह छंद पढ़ा।

'आई हौं बूझन मंत्र तुम्हैं निज श्वासन सों सिगरी मति गोई।
देह तजों कि तजों कुल कानि हिए न लजों लजिहै सब कोई॥
स्वारथ और परमारथ को गथ चित्त बिचारि कहौ तुम सोई।
जामै रहै प्रभु की प्रभुता अरु मोर पतिव्रत भंग न होई' ॥[1]

इन्द्रजीत सिंह तो पहले ही से तर्क-वितर्क में पड़े थे अब उन्होंने प्रवीण को न भेजने का पूर्ण निश्चय कर लिया। फलतः इन्द्रजीत सिंह पर सम्राट अकबर ने १ करोड़ का जुर्माना कर दिया। इसी जुर्माने की माफी के सम्बन्ध में, कहा जाता है कि केशवदास जी बीरबल से सर्वप्रथम मिले थे। उन्होंने बीरबल के सम्मुख उनकी प्रशंसा में यह छंद पढ़ा :

'पावक, पंछी, पसू, नर, नाग, नदी, नद, लोक रचे दशचारी।
केशव देव अदेव रचे, नरदेव रचे रचना न निवारी॥
कै बर बीरबली बलवीर भयो कृतकृत्य महा व्रतधारी।
दै करतापन आपन ताहि, दई करतार दुवौ कर तारी' ॥[2]

इस छंद से प्रसन्न होकर बीरबल ने छः लाख रुपये की हुंडियाँ केशव को इनाम दीं। तब केशव ने निम्नलिखित छंद पढ़ा :

'केशव दास के भाल लिख्यो विधि रंक को अंक बनाय संवारयो।
धोये धुवै नहिं छूटो छुटै बहुतीरथ के जल जाय पखारयो॥

१. मिश्रबन्धु-विनोद, पृ० सं० ३४६।
२. हिन्दी नवरत्न, पृ० सं० ४५४।

ह्वै गयो रंक ते राजं तही, जब बीरबली बरबीर निहारयो ।
भूलि गयो जग की रचना, चतुरानन बाय रह्यो मुख चारयो' ॥[1]

इसके बाद बीरबल ने केशवदास जी से और कुछ मांगने को कहा तब केशव ने निवेदन किया कि 'मैं आपके दर्बार में इच्छानुकूल उपस्थित हो सकने का अधिकार चाहता हूँ'। इसका उल्लेख केशव ने निम्नलिखित दोहे में किया है :

'योंही कह्यौ जु बीरबर, मांगि जु मन में होय ।
मांग्यो तब दरबार में, मोहि न रोकै कोय' ॥[2]

समय पाकर बीरबल ने अकबर से जुर्माना माफ करा दिया, किन्तु एक बार प्रवीणराय को अकबर के दर्बार में जाना अवश्य पड़ा; यद्यपि उसके साथ कोई असभ्य व्यवहार न हुआ। कहा जाता है कि प्रवीणराय के अकबर के सम्मुख जाने पर उसमें और सम्राट में निम्नलिखित बातचीत हुई :

सम्राट—'युवन चलत तिय देह की चटक चलत केहि हेत'।
प्रवीण—'मन्मथ बारि मसाल को सैंति सिहारो लेत' ॥
सम्राट—'ऊंचे ह्वै सुर बश किये सम ह्वै नर वश कीन'।
प्रवीण—'अब पताल वश करन को ढरकि पयानो कीन्ह' ॥

कहा जाता है कि इसी समय प्रवीणराय ने यह दोहा भी पढ़ा था :

'बिनती राय प्रवीन की सुनिये शाह सुजान ।
जूठी पतरी भखत हैं बारी, बायस, श्वान' ॥

इस किंवदन्ती में कितना तथ्य है इसका निर्णय करना कठिन है। इतिहास इस सम्बन्ध में मौन है, किन्तु सम्राट अकबर की सौन्दर्य-लोलुपता और कामुक-मनोवृत्ति को ध्यान में रखते हुये उसके द्वारा प्रवीणराय को बुलवा भेजना और न भेजने पर ओरछा-राज्य पर जुर्माना कर देना असम्भव नहीं। 'कविप्रिया' में बीरबल की प्रशंसा में लिखे छंदों के आधार पर निश्चित रूप से इतना ही कहा जा सकता है कि गुणग्राही बीरबल से केशव का परिचय था, बीरबल ने प्रसन्न होकर केशवदास जी को बहुत सा धन इनाम दिया और केशवदास जी समय समय पर बीरबल के दरबार जाया करते थे।

२—दूसरी किंवदन्ती है कि महाराज इन्द्रजीत सिंह के हृदय में एक बार यह भावना हुई कि उनका दर्बार अनन्त काल तक रहे। केशवदास ने इसके लिये प्रेत-यज्ञ करने की सलाह दी। यज्ञ में सम्पूर्ण मित्र-मंडली ने अपने प्राण होम कर दिये और सब लोग मरकर प्रेत हो गये। केशवदास का हृदय प्रेतयोनि में न लगता था। एक बार यह एक कुयें में बैठे हुये थे। सौभाग्यवश तुलसीदास जी ने पानी भरने के लिये उसी कुंये में आकर लोटा डाला। केशवदास ने लोटा पकड़ लिया। तुलसी के बहुत कुछ कहने सुनने पर इन्होंने कहा कि हमारा प्रेतयोनि से उद्धार करो तो हम लोटा छोड़ेंगे। इस पर तुलसीदास जी ने इनसे

---

१. हिन्दी नवरत्न, पृ० सं० ४२४, २२।
२. कविप्रिया, दीन, छं० सं० १६, पृ० सं० २२।

स्वरचित 'रामचंद्रिका' के इक्कीस पाठ करने की शिक्षा दी। उन्हें 'रामचंद्रिका' का प्रथम छंद स्मरण न आता था। तुलसीदास जी ने उन्हें वह याद दिलाया और इस प्रकार केशवदास 'रामचंद्रिका' के इक्कीस पाठ कर प्रेत-योनि से मुक्त हुये।

महाराज इन्द्रजीत सिंह के प्रेत-यज्ञ करने का उल्लेख किसी इतिहास-ग्रंथ में नहीं मिलता। इस किंवदन्ती से इतना अवश्य ज्ञात होता है कि केशवदास की मृत्यु तुलसी के जीवन-काल ही में होगई थी।

३—किंवदन्ती है कि बीरबल की मृत्यु का शोक-समाचार सम्राट अकबर के सम्मुख केशवदास ने ही निवेदन किया था। कहा जाता है कि जब बीरबल युद्ध के लिये पश्चिमोत्तर सीमा को जाने लगे, तो सम्राट अकबर ने घोषणा की कि यदि किसी के मुख से बीरबल की अनिष्ट की बात निकली तो वह भीषण दंड का भागी होगा। दुर्भाग्यवश जब उनकी मृत्यु का समाचार मिला तो सारा दर्बार किंकर्तव्य-विमूढ़ था कि यह सम्वाद सम्राट अकबर तक कैसे पहुँचाया जाय। उसी समय लोगों को केशव का ध्यान आया, जो उन दिनों वहीं उपस्थित थे, क्योंकि वह जानते थे कि इस काम को केशव ही कर सकते हैं। केशवदास ने प्रार्थना स्वीकार कर ली। कहा जाता है कि उन्होंने अकबर के सम्मुख जाकर यह दुखद समाचार इन शब्दों में सुनाया।

'याचक सब भूपति भए, रह्यो न कोऊ लेन।
इन्द्रहु को इच्छा भई, गयो बीरवर देन'।[1]

इतिहास से इस किंवदन्ती का समर्थन नहीं होता। ऐतिहासिक ग्रंथों के आधार पर अकबरी दर्बार की प्रथा के अनुसार यह समाचार बीरबल के वजीर ने सम्राट अकबर को सुनाया था।

४—केशव के जीवन से सम्बन्ध रखने वाली सबसे प्रसिद्ध किंवदन्ती यह है कि केशवदास जी एक बार किसी पनघट के निकट से जा रहे थे। उस पनघट पर उस समय कुछ 'मृगलोचनी' युवतियाँ पानी भरने आई थीं। इनको देख कर, कहा जाता है, उनमें से एक ने केशवदास को 'बाबा' कह कर सम्बोधित किया। यह सम्बोधन सुन कर केशवदास को बड़ा दुःख हुआ। इस घटना का संकेत केशवदास जी के नाम से प्रसिद्ध निम्नलिखित दोहे से मिलता है। केशव के सम्पूर्ण काव्य में उनका यह मौखिक रूप में प्रचलित दोहा सबसे अधिक प्रसिद्ध है किन्तु यह केशव के किसी ग्रंथ में नहीं मिलता।

'केसव केसन अस करी, जस अरिहू न कराहिं।
चन्द्रबदनि मृगलोचनी, बाबा कहि कहि जाहिं'।[2]

केशवदास की शृंगारिक मनोवृत्ति देखते हुये इस किंवदन्ती में अधिकांश तथ्य प्रतीत होता है।

१. बुन्देल-वैभव, प्रथम भाग, पृ० सं० १६१।
२. हिन्दी साहित्य का इतिहास, शुक्ल, पृ० सं० २११।

जीवन की रूपरेखा

काल-निर्णय :

केशव के जन्म-काल के विषय में विद्वान एकमत नहीं हैं। स्वर्गीय आचार्य रामचंद्र शुक्ल, डा० रामकुमार वर्मा, रामनरेश त्रिपाठी, मिश्रबन्धु और 'के' महोदय आदि अधिकांश विद्वान केशव का जन्म लगभग सं० १६१२ वि० में मानते हैं। गौरीशंकर द्विवेदी तथा ला० भगवानदीन ने सं० १६१८ वि० माना है तथा छत्रपूर निवासी बा० गोविन्ददास जी के अनुसार केशवदास का जन्म संवत् १५६४ वि० में हुआ। गणेशप्रसाद द्विवेदी के अनुसार केशव का जन्म सं० १५०८ वि० में हुआ था और शिवसिंह सेंगर के अनुसार सं० १६२४ वि० में। प्रायः सब ही विद्वानों ने यह नहीं लिखा है कि केशव का जन्म-संवत् विशेष मानने के लिये उनके पास क्या प्रमाण और आधार हैं।

केशव के जीवन से सम्बन्ध रखने वाली सबसे पहली तिथि, जो निश्चित रूप से ज्ञात है, सं० १६४८ वि० है, जिसमें केशव की 'रसिकप्रिया' ने प्रकाश देखा।[1] यह भी निश्चित है कि केशव ने जीवन का बहुत बड़ा अंश संस्कृत भाषा के अध्ययन और उस पर अधिकार प्राप्त करने में लगाने के बाद ही हिन्दी भाषा में ग्रन्थप्रणयन आरम्भ किया। केशवदास ने स्वयं लिखा है कि उनके कुल के दास भी 'भाषा' बोलना नहीं जानते थे।[2] 'रसिकप्रिया' की रचना महाराज इन्द्रजीत सिंह के सम्पर्क और प्रेरणा का फल थी। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि केशव में हिन्दी-भाषा-प्रेम परिस्थिति-विशेष के कारण उत्पन्न हुआ। अतएव 'रसिकप्रिया' लिखने के पूर्व कुछ समय इन्हें हिन्दी भाषा और साहित्य पर अधिकार प्राप्त करने में लगा होगा। इसके पश्चात् एक-दो वर्ष 'रसिकप्रिया' के लिखने और संशोधन आदि में भी लगे होंगे। संस्कृत का परिपक्व ज्ञान प्राप्त करने के लिये कम से कम तीस वर्ष की आयु आवश्यक है। इस प्रकार केशवदास जी का जन्म रसिकप्रिया की रचना के लगभग पैंतीस-छत्तीस वर्ष पूर्व अर्थात् सं० १६१२ वि० में मानना अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

गणेशप्रसाद द्विवेदी ने अपने ग्रंथ 'कवि और काव्य' में हिन्दी में काव्य-कौशल प्राप्त करने और 'रसिकप्रिया' के लिखने के लिये दस वर्ष का समय माना है, जो उचित नहीं प्रतीत होता। केशव के कथन, कि उनके कुल के दास भी भाषा बोलना न जानते थे, का शाब्दिक अर्थ लेना ठीक न होगा। इसका अर्थ केवल यही है कि उनके कुल के लोग संस्कृत के प्रेमी थे अतएव संस्कृत का ही प्रयोग आपस के दैनिक बोलचाल में करते थे और फलतः

---

१. 'संवत सोरह सै बरस बीते अड़तालीस।
कातिक सुदि तिथि सप्तमी बार बरन रजनीस ॥११॥
अति रति गति मति एक करि, विविध विवेक विलास।
रसिकन को रसिकप्रिया कीन्ही केशवदास' ॥१२॥ रसिकप्रिया, पृ० सं० ११।

२. 'भाषा बोलि न जानहीं जिनके कुल के दास।
भाषा कवि भो मदंमति तेहि कुल केशवदास' ॥१७॥ कविप्रिया। पृ० सं० २१।

सेवक भी धीरे धीरे संस्कृत बोलना सीख गये थे और संस्कृत भाषा में ही बातचीत करते थे। अन्यथा केशव के कुटुम्बी हिन्दी भाषा से अनभिज्ञ न थे। केशव के बड़े भाई बलभद्र मिश्र हिन्दी के अच्छे विद्वान और 'नखशिख', 'भागवत-भाष्य' तथा 'हनुमन्नाटक-टीका' आदि के रचयिता थे। दूसरे इनके पिता और पितामह आदि ओरछाधीशों के पौराणिक पंडित थे और उन्हें पुराण सुनाने और समझाने का काम बिना हिन्दी की सहायता के असम्भव था।

प्रकारान्तर से भी केशवदास जी का जन्म सं० १६१२ वि० मानना अधिक समीचीन है। महाराज इन्द्रजीत सिंह का जन्म सं० १६२० वि० माना गया है, अतएव 'रसिकप्रिया' की रचना के समय इनकी आयु लगभग २८ वर्ष की होती है। केशव के ही कथनानुसार इन्द्रजीत सिंह उन्हें गुरुवत् मानते थे,[1] अतएव केशव की आयु उनसे निश्चय ही अधिक रही होगी। किन्तु इन्द्रजीत सिंह के लिये 'रसिकप्रिया' से शृंगारिक ग्रंथ की रचना यह बतलाती है कि दोनों की आयु में बहुत अधिक अन्तर न था। 'रसिकप्रिया' की रचना के समय केशवदास और इन्द्रजीत सिंह की आयु में अधिक से अधिक सात-आठ वर्ष का अन्तर रहा होगा। इस प्रकार भी केशवदास का जन्म-संवत् लगभग १६१२ वि० ही मानना समीचीन है।

मृत्युकाल :

केशव के मृत्यु-संवत् के विषय में भी विद्वानों में मतभेद है। पं० रामनरेश त्रिपाठी, मिश्रबन्धु, के, गणेश प्रसाद द्विवेदी तथा स्व० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल आदि विद्वानों ने केशव का मृत्युकाल सं० १६७४ वि० माना है। पं० अम्बिकादत्त व्यास ने इनका मृत्यु-संवत् १६७० माना है और गौरीशंकर द्विवेदी ने सं० १६८० वि०। केशव की मृत्यु सं० १६८० वि० में मानना ठीक नहीं जँचता। किंवदन्ती है कि तुलसीदास ने केशव का प्रेतयोनि से उद्धार किया था। किंवदंतियाँ बिल्कुल निस्सार नहीं होतीं। इस किंवदन्ती में इतना तथ्य तो अवश्य ही प्रतीत होता है कि केशव की मृत्यु तुलसीदास की मृत्यु के पूर्व हो चुकी थी। तुलसीदास जी की मृत्यु सं० १६८० वि० में होना प्रसिद्ध है।[2] अतएव केशव की मृत्यु निश्चय ही सं० १६८० वि० के पूर्व हो चुकी थी।

केशव की मृत्यु सं० १६७० वि० में मानना भी अन्तस्साक्ष्य के आधार पर समीचीन नहीं है। केशव के जीवन से सम्बन्ध रखने वाली अन्तिम निश्चित तिथि सं० १६६९ वि० है जब केशव ने सम्राट जहाँगीर के यशगान के लिये 'जहाँगीर-जसचंद्रिका' लिखी।[3] यदि

---

१. 'गुरु करि मान्यो इन्द्रजित तन मन कृपा बिचारि'।
कविप्रिया, पृ० सं० २१।

२. 'संवत् सोरह सै असी, असी गंग के तीर।
सावन स्यामा तीज शनि, तुलसी तज्यो शरीर' ॥११॥
मूलगोसांई-चरित, पृ० सं० ३६।

३. 'सोरह सै उनहत्तरा माहा मास विचारु।
जहाँगीर सक साहि की करी चंद्रिका चारु' ॥२॥
जहाँगीर-जस-चंद्रिका, पृ० सं० १।

केशव की मृत्यु सं० १६७० वि० में हुई होती तो सं० १६६६ वि० में इनका स्वास्थ्य साधारणतः इस योग्य न होना चाहिये कि यह किसी ग्रंथ की, चाहे वह छोटा ही क्यों न हो, रचना करते। फिर मृत्यु की ओर अग्रसर होते हुये किसी वृद्ध के लिये भारतसम्राट के यशगान द्वारा उसका कृपा-भाजन बनने का प्रयास भी उचित नहीं प्रतीत होता। अतएव सं० १६६६ वि० में केशव का स्वास्थ्य ऐसा अवश्य रहा होगा, जिसको देखते हुये कम से कम उन्हें अपनी मृत्यु की कोई सम्भावना न रही होगी। सम्भवतः केशवदास जी सं० १६६६ वि० के बाद भी कुछ वर्ष जीवित रहे। इस प्रकार केशव की मृत्यु सं० १६७४ वि० में मानना ही अधिक उपयुक्त है।

निवास-स्थान, जाति तथा कुटुम्ब :

केशवदास जी ने अपना निवास बुंदेलखंड के ओड़छा राज्यान्तर्गत तुंगारराय के निकट बेतवा नदी के किनारे स्थित ओड़छा नगर में लिखा है।[1]

आप सनाढ्य वंशावतंस मिश्र उपाधिधारी पं० कृष्णदत्त जी के पौत्र और काशीनाथ जी के पुत्र थे।[2] केशवदास जी तीन भाई थे जिनमें बड़े भाई का नाम बलभद्र और छोटे का कल्यान था।[3] अन्तस्साक्ष्य से यह भी ज्ञात होता है कि केशवदास जी विवाहित थे और इनकी पत्नी जीवन के अन्तिम काल तक इनकी संगनी और प्रेमभाजन रही। केशवदास ने

१. 'नदी बेतवै तीर जहं, तीरथ तुंगारन्न।
नगर ओड़छो बहु बसै, धरणीतल में धन्न ॥३॥
दिन प्रति जहं दूनों लहैं, जहाँ दया अरु दान।
एक तहाँ केशव सुकवि, जानत सकल जहान' ॥४॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० ६, १०।

२. 'सनाढ्य जाति गुनाढ्य है जग सिद्ध शुद्ध स्वभाव।
सुकृष्ण दत्त प्रसिद्ध हैं महि मिश्र पंडित राव ॥
गणेश सो सुत पाइयो बुध काशिनाथ अगाध।
अशेष शास्त्र विचारि के जिन जान्यो मत साध ॥
उपज्यो तेहि कुल मंद मति शठ कवि केशव दास।
रामचंद्र की चंद्रिका भाषा करी प्रकास ॥४॥
रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० ४, ५।

३. 'तिनको वृत्ति पुराण की दीनी राजा रुद्र।
तिनके काशीनाथ सुत सोभे बुद्धि समुद्र ॥१४॥
जिनको मधुकर साह नृप बहुत कर्यो सनमान।
तिनके सुत बलभद्र शुभ प्रगटे बुद्धि निधान ॥१५॥
बालहिं ते मधु साह नृप जिनपे सुनै पुरान।
तिनके सोदर द्वै भये केशवदास कल्यान' ॥१६॥
कविप्रिया, दीन, पृ० सं० २१।

अपनी 'विज्ञानगीता' में लिखा है कि इस ग्रंथ की रचना से प्रसन्न होकर जब महाराज वीरसिंह देव ने उनसे मनोभिलषित माँगने को कहा तो केशवदास ने निवेदन किया कि 'मेरे बालकों को अपने पूर्वजों द्वारा दी हुई वृत्ति दे दीजिये और मुझे अपना सेवक समझ कर गंगा-तट पर रहने की आज्ञा दीजिये।' महाराज वीरसिंह देव ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और केशव को 'सकलत्र' जाकर 'गंगातट बसबास' की आज्ञा दी।[1] कवि के इस कथन से स्पष्ट है कि उसका विवाह हुआ था किन्तु कब और कहाँ यह निश्चित नहीं है। 'विज्ञान-गीता' की रचना सं० १६६४ वि० में हुई थी अतएव केशव की पत्नी इस समय तक तो अवश्य ही जीवित थीं।

केशव के शब्द 'वृत्ति दई पुरखानि की देऊ बालनि आसु' से यह भी निश्चित है कि केशवदास को सन्तान-सुख प्राप्त था और उस समय केशव के एक से अधिक पुत्र जीवित थे। 'बालनि' शब्द के द्वारा पुत्रों का ही अभिप्राय है, कन्या का नहीं। कन्या को वृत्ति देने का प्रश्न इसलिये नहीं उपस्थित होता कि वह पराये घर की होती है और उसे विवाहोपरान्त पिता के घर पर नहीं रहना होता। उपर्युक्त शब्द से यह स्पष्ट नहीं होता कि केशव के दो पुत्र थे अथवा इससे अधिक। केशव के कोई कन्या भी थी या नहीं, इसको जानने का भी हमारे पास कोई उपाय नहीं है। केशव के व्यक्तिगत कुटुम्ब के सम्बन्ध में हमारा निश्चित ज्ञान यहीं तक सीमित है।

केशव-पुत्र-वधू तथा केशव :

'केशव-पुत्र-वधू' के नाम से बुंदेलखंड में कुछ स्फुट छंद प्रचलित हैं। इस कवयित्री की रचनाओं की प्रसिद्धि पति के नाम से न होकर श्वसुर के नाम से होना इस बात को प्रकट करता है कि इसके श्वसुर कोई प्रसिद्ध व्यक्ति थे। आज भी किसी प्रसिद्ध व्यक्ति से सम्बन्ध जोड़ने में लोग गर्व समझते हैं। बुन्देलखंड अथवा उसके आस-पास के प्रदेश में केशव नाम के केवल दो कवि होने का प्रमाण मिलता है। एक तो हमारे चरितनायक केशवदास तथा दूसरे केशवराय बबुआ। केशवराय का जन्म सं० १७३९ में हुआ था। केशव-पुत्र-वधू का जन्म अनुमान से सं० १६४० वि० माना गया है, किन्तु इस अनुमान के लिये निश्चित प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। यदि इस कवयित्री का जन्म सं० १७३९ वि० के बाद हुआ हो तो केशव-राय से इसका सम्बन्ध हो सकता है। किन्तु केशवराय प्रसिद्ध कवि नहीं थे, और जैसा कि ऊपर की पंक्तियों में कहा जा चुका है कि श्वसुर के नाम से इस कवयित्री की प्रसिद्धि इस बात की द्योतक है कि इसके श्वसुर प्रसिद्ध व्यक्ति थे, अतएव इसका सम्बन्ध केशवराय से न होकर सम्भवतः केशवदास मिश्र ही से था जो एक प्रसिद्ध कवि थे। केशवदास जी का जन्म लगभग

---

१. 'वृत्ति दई पुरखानि की, देऊ बालनि आसु।
मोहिं आपनो जानिकै, गंगा तट देउ बासु ॥२६॥
वृत्ति दई पदवी दई, दूरि करो दुख त्रास।
जाइ करो सकलत्र श्री, गंगा तट बस बास ॥२७॥
विज्ञानगीता, पृ० सं० १२४, १२६।

सं० १६१२ वि० में हुआ अतएव सम्भव है 'केशव-पुत्र-वधू' केशवदास जी की ही पुत्र-वधू हो। एक और बात से भी 'केशव-पुत्र-वधू' का सम्बन्ध केशवदास मिश्र से होने की पुष्टि होती है। कहा जाता है कि 'केशव-पुत्र-वधू' के पति अच्छे वैद्य थे।[1] केशव के पूर्वजों में छठी पीढ़ी में भाऊराम ने 'भाव-प्रकाश' नामक प्रसिद्ध वैद्यक ग्रंथ की रचना की थी। अतएव पैतृक-रूप में केशव के वंश में वैद्यक का थोड़ा-बहुत ज्ञान चला आना और कालान्तर में केशव के पुत्र का अपने वंश के पैतृक व्यवसाय का पुनरुत्थान करना असम्भव नहीं। यदि 'केशव-पुत्र-वधू' के पति की आयु 'केशव-पुत्र-वधू' से लगभग छः सात वर्ष अधिक मानें तो केशवदास जी के इन पुत्र का जन्म लगभग: सं० १६३३ वि० में हुआ होगा।

केशव तथा बिहारी का पिता-पुत्र-सम्बन्धः

महाकवि बिहारी भी केशव के पुत्र कहे जाते हैं। केशव और बिहारी के इस पिता-पुत्र-संबंध को सर्व प्रथम स्व० राधाकृष्ण दास जी ने सन् १८९५ ई० (सं० १९५२ वि०) में एक लेख द्वारा प्रमाणित करने की चेष्टा की थी। उनके इस प्रयास का आधार चार बातें थीं। प्रथम यह कि दोनों समकालीन थे। दूसरे, एक दोहे में बिहारी ने कहा है कि उनका जन्म ग्वालियर में हुआ, लड़कपन बुन्देलखंड में बीता, और मथुरा में ससुराल में रहकर उन्होंने युवावस्था प्राप्त की।[2] तीसरे, बिहारी के दोहों में भी बुन्देलखंडी भाषा के शब्द प्रयुक्त हैं। और चौथे यह कि बिहारी ने एक दोहे में 'केशवराय' की प्रशंसा की है[3], जो कुछ टीकाकारों के अनुसार बिहारी के पिता का नाम था। इस समय विद्वानों के दो समूह हैं, एक इस मत के पक्ष में और दूसरा विपक्ष में। इस मत के पोषकों में पं० गौरी शंकर द्विवेदी तथा स्व० जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' और विपक्ष में स्व० डाक्टर श्यामसुन्दर दास, स्व० मायाशंकर याज्ञिक तथा गणेश प्रसाद द्विवेदी हैं।

पं० गौरीशंकर जी द्विवेदी ने अपने 'बुन्देल-वैभव' नामक ग्रंथ में लिखा है कि बिहारी, केशवदास के पुत्र तथा काशीनाथ मिश्र के पौत्र थे। ओरछा-राज्य से बिहारी के सम्पर्क न रहने के सम्बन्ध में द्विवेदी जी ने लिखा है कि केशव की मृत्यु के पूर्व बिहारी अधिकांश अपने नाना के यहाँ रहे जो ग्वालियर के आस-पास के किसी गाँव के रहने वाले थे। इसका कारण यह है कि बिहारी के प्रति बाल्यकाल से ही उन्हें विशेष प्रेम था। द्विवेदी जी का अनुमान है कि केशव की मृत्यु के बाद भी बिहारी अपनी शिक्षा आदि के सम्बन्ध में बहुत दिनों तक वहीं रहे। वहाँ से ओड़छा आने पर राजदरबार में बिहारी का यथेष्ट मान नहीं हुआ। इस सम्बन्ध में द्विवेदी जी ने दो तीन सम्भावनाओं की ओर ध्यान आकर्षित किया है। प्रथम यह कि किसी और कवि ने राजसभा में डेरा डाला हो, और

१. बुन्देल-वैभव, प्रथम भाग, पृ० सं० १२२।
२. 'जनम ग्वालियर जानिये, खंड बुंदेले बाल।
तरुनाई आई सुखद, मथुरा बसि ससुराल'॥
यह दोहा बिहारी-रत्नाकर में नहीं है।
३. बुन्देल-वैभव, प्रथम भाग, पृ० सं० २१४-२१६।

बिहारी के आने पर उसने राज्य के कर्मचारियों आदि से मिल कर प्रयत्न किया हो कि बिहारी की धाक फिर से न जमने पावे, क्योंकि प्रतिद्वन्दी के प्रति ईर्ष्या होना स्वाभाविक ही है। दूसरे, बिहारी के वंश-परंपरा के वैभव को देख कर कुछ लोग इनसे डाह करने लगे हों और उन्हें इनका आना रुचिकर प्रतीत न हुआ हो; अथवा बिहारी के आने पर इनकी अपेक्षा किसी अन्य अयोग्य व्यक्ति को अधिक सम्मान प्रदान किया जाता हो। अतएव स्वाभिमान की रक्षा के लिए बिहारी को ओड़छा छोड़ देना पड़ा।[१] इस अनुमान की पुष्टि में द्विवेदी जी ने सतसई के कुछ दोहे उद्धृत किये हैं जिन में से दो यहाँ दिये जाते हैं।

'नहिँ पावसु ऋतुराज यह; तजि, तरवर, चित-भूल।
अपतु भये बिनु पाइहै, क्यौँ नव दल, फल, फूल' ॥[१]

अथवा **'बसै बुराई जासु तन, ताही कौ सनमानु।**
भलौ भलौ कहि छोड़िये, खोटैँ ग्रह जपु, दानु' ॥[२]

बिहारी के चौबे प्रसिद्ध होने के सम्बन्ध में द्विवेदी जी ने लिखा है कि सम्भव है बिहारीदास के नाना या ससुराल वाले चौबे हों। बिहारी ने अपना बाल्यकाल अपने नाना के यहाँ तथा युवावस्था ससुराल (व्रज) में बिताई थी। अतः सम्भव है कि बिहारी का ठीक ठीक इतिहास प्राप्त न होने से लोगों ने आपके नाना या ससुराल वाले महानुभावों के आस्पद के अनुसार आपको भी चौबे मान लिया हो; क्योंकि सनाढ्यों में भी चौबे (आस्पद) होते हैं और मिश्र वंश के पुत्रों का चौबों के यहाँ व्याहा जाना भी सम्भव है। व्रज तथा ग्वालियर की ओर बिहारी के वंशजों के एक दो नहीं अब भी दस पाँच सम्बन्ध हैं, अतः यह भी असम्भव नहीं है कि उनका उस ओर सम्बन्ध न रहा हो।[३]

बिहारी ने एक दोहे में अपना जन्म ग्वालियर में होना लिखा है।[४] इस सम्बन्ध में द्विवेदी जी ने लिखा है कि फुटेरा ग्राम, जिसमें बिहारी के वंशज आज कल रहते हैं, झाँसी से १३ मील दक्षिण की ओर है और 'फुटेरा पिछोर' कहलाता है। झाँसी और उसके आस पास के गाँव ग्वालियर राज्य में बहुत दिनों तक रहे। सम्भव है उस समय उनके इस गाँव का सम्बन्ध ग्वालियर प्रान्त से हो और इस हेतु बिहारी ने गाँव का नाम न लिख कर केवल प्रान्त का नाम लिख देना ही पर्याप्त समझा हो।[५]

इस आपत्ति के सम्बन्ध में कि यदि बिहारी केशवदास के पुत्र होते तो दो में से कोई इस सम्बन्ध में कुछ अवश्य लिखता, द्विवेदी जी का कथन है कि केशव से तो यह आशा ही नहीं की जा सकती क्योंकि उन्होंने अपने बड़ों का ही गुणगान किया है छोटों

१. बिहारी-रत्नाकर, छं० सं० ४७४, पृ० सं० १९६।
२. बिहारी-रत्नाकर, छं० सं० ३८१, पृ० सं० १५७।
३. बुन्देल-वैभव, प्रथम भाग, पृ० सं० २१९।
४. 'जनम ग्वालियर जानिये, खण्ड बुन्देले बाल।
तरुनाई आई सुखद, मथुरा बस ससुराल' ॥
५. बुन्देल-वैभव, प्रथम भाग, पृ० सं० २२०।

का नहीं। यहाँ तक कि अपने अनुज कल्यान के विषय में भी कोई विशेष उल्लेख नहीं किया है। दूसरे, केशव की मृत्यु के समय बिहारी की अवस्था अधिक से अधिक २०,२२ वर्ष की होगी और उस समय उनकी प्रतिभा का विकास पूर्ण रूप से न हुआ होगा। जहाँ तक बिहारी का सम्बन्ध है, द्विवेदी जी का विचार है कि सतसई से प्रकट हो जाता है कि बिहारी को झूठी प्रशंसा करना नहीं आता था। उनका सिद्धान्त कविता से दूसरों का उपकार करने का था, कीर्ति कमाना नहीं।[1]

केशव तथा बिहारी के ग्रंथों के भाषा-वैधर्म्य के सम्बन्ध में द्विवेदी जी ने लिखा है कि केशव का समग्र जीवन बुन्देलखंड ही में बीता और बिहारी का कुछ बुन्देलखंड में और कुछ यत्र-तत्र। उसी के अनुसार उनकी कवितायें भी हुईं। फिर भी बिहारी की कविता में ठेठ बुन्देलखंडी के शब्द पर्याप्त मात्रा में हैं। इस सम्बन्ध में द्विवेदी जी ने बाबू गोपाल चन्द्र तथा उनके पुत्र भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र की भाषा की ओर ध्यान आकर्षित किया है। यह दोनों आजन्म एक ही स्थान पर रहे फिर भी इनकी भाषा में केशव तथा बिहारी की भाषा की अपेक्षा अधिक अन्तर है।[2]

बिहारी के वंशजों के द्वारा अब तक अपने वंश का परिचय हिन्दी-संसार के सामने न रख सकने के विषय में द्विवेदी जी ने लिखा है कि उन्हें बिहारी के वंशजों से पता चला है कि बिहारी की मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्रादि 'फुटेरा' लौट आये थे; किन्तु बिहारी के पश्चात् उनके वंशजों पर एक प्रकार का श्राप सा पड़ा और उनका वैसा वैभव न रहा। तब से उनके वंशज भोले-भाले ग्रामवासी बन कर अपनी साधारण एक गाँव की जमींदारी पर ही शान्तिपूर्वक अपना जीवन-निर्वाह करते चले आ रहे हैं और उन्हें इस संसारिक उथल-पुथल का कुछ भी पता नहीं है।[3]

इस प्रकार द्विवेदी जी ने अधिकांश, अनुमान के सहारे विपक्षियों के तर्क का खंडन ही किया है, अपने मत की पुष्टि में विशेष प्रमाण नहीं दिये हैं। द्विवेदी जी का यह अनुमान, कि बिहारी के नाना या ससुराल वाले चौबे रहे हों अतएव सम्भव है उनके आस्पद के आधार पर बिहारी को चौबे मान लिया गया हो, भी बुद्धि-संगत नहीं क्योंकि ननिहाल या ससुराल में प्रायः लोग अपने पितृकुल के आस्पद से ही पुकारे जाते तथा प्रसिद्धि पाते हैं। बिहारी के वंशजों के आज तक अपने वंश का परिचय हिन्दी-संसार के सामने न रख सकने का जो कारण आपने बतलाया है, उसमें भी अधिक बल नहीं है।

केशव तथा बिहारी के पिता-पुत्र सम्बन्ध के दूसरे पोषक स्व० जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' थे। इन्होंने इस सम्बन्ध की संभावनाओं पर सं० १९८४ तथा १९८७ वि० की नागरी-प्रचारिणी पत्रिकाओं में लिखे दो लेखों द्वारा विस्तार-पूर्वक विचार किया है। अपने मत के समर्थन में रत्नाकर जी ने कई बातें लिखी हैं। आपने लिखा है कि बिहारी के प्रथम

१. बुन्देल-वैभव, प्रथम भाग, पृ० सं० २२०।
२. बुन्देल-वैभव, प्रथम भाग, पृ० सं० २२२।
३. बुन्देल-वैभव, प्रथम भाग, पृ० सं० २२२,२३।

टीकाकार, कृष्णलाल कवि ने, जिनका बिहारी का पुत्र होना भी अनुमान किया जाता है, अपनी टीका में, जो रत्नाकर जी के अनुमान से सं० १७१६ वि० में समाप्त हुई, 'प्रगट भये द्विजराज कुल' इत्यादि दोहे की टीका में लिखा है, 'केसो जो मेरो पिता, और केसोराय जो श्रीकृष्ण जू'। रत्नाकर जी ने यह भी लिखा है कि यही बात उक्त दोहे की अनवरचन्द्रिका टीका के इस वाक्य से भी निकलती है कि 'केशव केशवराइ बिहारी के बाप को नाम है'। रसचन्द्रिका, हरिप्रकाश, तथा लालचंद्रिका टीकाओं से भी बिहारी के पिता का नाम केशव होना सिद्ध होता है। रत्नाकर जी ने लिखा है कि इन ग्रंथों तथा बिहारी के उक्त दोहे से यह भी सिद्ध होता है कि केशव ब्राह्मण थे और अपनी इच्छा से आकर ब्रज में बसे थे।[1]

किन्तु इन टीकाओं से प्रसिद्ध केशवदास जी का ही बिहारी का पिता होना प्रमाणित नहीं होता। अनवरचंद्रिका टीका के वाक्य से तो 'रत्नाकर' जी के मत के प्रतिकूल बिहारी के पिता का नाम 'केशव केशवराइ' होना प्रकट होता है।

रत्नाकर जी ने बिहारी के कुछ दोहों तथा केशव के छंदों की तुलना कर उनके भाव तथा शब्द-साम्य के आधार पर केशवदास जी से बिहारी का कुछ सम्बन्ध तथा बिहारी द्वारा केशव के ग्रंथों का पढ़ना लिखा है।[2] इस सम्बन्ध में रत्नाकर जी ने जो छन्द अपने लेख में दिये हैं, उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं :

(१) 'नैँक हंसौहीँ बानि तजि, लख्यौ परतु मुहुँ नीठि।
चौका-चमकनि-चौंध मैँ परति चौंधि सी डीठि'॥[3]
'वैसीयै जगत ज्योति शीश शीश फूलनि की,
चिलकत तिलक तरुणि तेरे भाल को।

हरैं हरैं हंसि नेक चतुर चपल नैनी,
चित चकचौंध मेरे मदन गुपाल को'॥[4]

(२) 'उर मानिक की उरबसी डटत घटतु दृग-दागु।
छलकत बाहिर भरि मनौ तियहिय की-अनुरागु'॥[5]
'सोहत है उर में मणि यों जनु।
जानकि को अनुरागि रह्यो मनु॥
सोहत जन रत राम उर देखत तिनको भाग।
आय गयो ऊपर मनो अन्तर को अनुराग'॥[6]

१. ना० प्र० प०, भाग ८, सं० १६८४, पृ० सं० ८८।
२. ना० प्र० प०, भाग ८, सं० १६८४, पृ० सं० १०८।
३. बिहारी-रत्नाकर, छंद सं० १००, पृ० सं० ४६।
४. रसिकप्रिया, प्रकाश १४, छं० सं० १२, पृ० सं० २३६।
५. बिहारी-रत्नाकर, छं० सं० ३२१, पृ० सं० १४१।
६. रामचन्द्रिका, छं० सं० २४,२५, पृ० सं० ११३,११४।

(३) 'वै ठाढ़े, उमदाहु उत, जल न बुझै बड़वागि।
जाही सौँ लाग्यौ हियौ, ताही कैँ हिय लागि' ॥[1]

'मेरो मुँह चूमै तेरी पूरी साध चूमबे की,
चाटे ओस आंसू क्योंरी रात प्यास बाढ़े हैं।
छोटे छोटे कर कहाँ छुवत छबीली छाती,
छावो जाके छायबे के अभिलाष बाढ़े हैं।
खेलन जो आई हौ तौ खेलौ जैसे खेलियत,
केशवदास की सों तै ये खेल कौन काढ़े हैं।
फूलि फूलि भेटति है मोहि कहा मेरी भटू,
भेंटे किन जाय जे वे भेंटबे को ठाढ़े हैं' ।[2]

(४) 'चिर जीवौ' जोरी जुरै क्यौँ न सनेह गँभीर।
को घटि; ए वृषभानुजा, वे हलधर के बीर ॥[3]

'अनगने औठ पाय रावरे गने न जाहिं,
वेऊ आहिं तमकि करैया अति मान की।
तुम जोई सोई कहौ वेऊ जोई सोई सुनै,
तुम जीभ पातरे वे पातरी हैं कान की।
कैसे 'केसोराय' काहि बरजों मनाऊँ काहि,
आपने सयांघौ कौन सुनत सयान की।
कोऊ बड़वानल को ह्वै है सोई ऐहै बीच,
तुम बासुदेव वे हैं बेटी वृषभान की' ।[4]

उपर्युक्त छन्दों के साम्य के सम्बन्ध में रत्नाकर जी ने लिखा है कि इस साम्य से यह तो विदित ही होता है कि बिहारी ने सम्भवतः केशव के ग्रंथों को पढ़ा था। दूसरा प्रश्न यह है कि उन्होंने यह ग्रंथ बुन्देलखंड ही में पढ़े अथवा कहीं दूसरे स्थान में। 'रामचंद्रिका' तथा 'कविप्रिया' की रचना सं० १६५८ वि० में हुई थी। यदि बिहारी द्वारा इन ग्रंथों का पढ़ना २०, २५ वर्ष की आयु में माना जाय तो इन ग्रंथों को बने १५ या २० वर्ष हुये थे। उस समय न तो छापे का प्रचार था और न यात्रा की सुविधायें। साथ ही बुन्देलखंड की राजनीतिक स्थिति भी अच्छी न थी। ऐसी दशा में इतने थोड़े समय में लिखते-लिखाते किसी नवीन ग्रंथ का ओड़छा से ब्रज-मंडल अथवा मैनपुरी तक पहुँचना और उसके पठन-पाठन का वहाँ प्रचार हो जाना, यदि असम्भव नहीं तो दुस्तर अवश्य था। अतएव रत्नाकर जी का अनुमान है कि बिहारी का इन ग्रंथों को बुन्देलखंड ही में पढ़ना अधिक सम्भव ज्ञात होता है, विशेषतया जब

१. बिहारी-रत्नाकर, छं० सं० ३८२, पृ० सं० १६७।
२. रसिकप्रिया, प्रकाश ४, छं० सं० १०, पृ० सं० ७४।
३. बिहारी-रत्नाकर, छं० सं० ६७७, पृ० सं० २७८।
४. रसिकप्रिया।

कि बिहारी के दोहे 'जनम ग्वालियर जानिये' आदि के आधार पर बाल्यावस्था में बिहारी का वहाँ रहना प्रमाणित होता है।[1]

किन्तु बिहारी के केशव के ग्रंथों को बुन्देलखंड में पढ़ने से केशव तथा बिहारी का पिता-पुत्र-सम्बन्ध स्थापित नहीं होता। बिहारी का बुन्देलखंड में लड़कपन बीतना प्रसिद्ध है। सम्भव है, किसी समय बाद में वह बुन्देलखंड आये हों जहाँ उन्होंने इन ग्रंथों को पढ़ा हो।

बिहारी के एक दोहे में 'पातुरराय' शब्द आया है।[2] रत्नाकर जी ने लिखा है कि इस दोहे से बिहारी का 'प्रवीनराय' पातुरी का नृत्य देखना प्रमाणित होता है और प्रवीणराय पातुरी का नृत्य देखना इनके लिये बिना महाराज इन्द्रजीत की सभा में गये असम्भव था। उस समय राजाओं की सभा में प्रवेश पाना बिना किसी विशेष सहायता के कठिन था। अतः रत्नाकर जी का अनुमान है कि बिहारी के पिता की पहुँच प्रसिद्ध केशवदास तक थी, जिनके साथ बिहारी अपनी बाल्यावस्था में महाराज इन्द्रजीत सिंह की सभा में आते-जाते थे।[3]

रत्नाकर जी का यह अनुमान भी किसी सबल आधार पर अवलम्बित नहीं प्रतीत होता है। 'पातुरराइ' शब्द 'प्रवीणराय' के लिये ही प्रयुक्त हुआ है, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। वास्तव में किसी भी नृत्यगान आदि कलाओं में अति चतुर वेश्या को 'पातुरराइ' कहा जा सकता है।

केशव तथा बिहारी के पितापुत्र-सम्बन्ध पर विचार करते हुये रत्नाकर जी ने एक दोहा-बद्ध निबन्ध का भी उल्लेख किया है, जिसमें बिहारी का जीवन-चरित वर्णित है। उस निबंध का अधिकांश यहाँ उद्धृत किया जाता है।

'मम पितुमह वसुदेव जू पिता जु केशव देव ॥५॥
बसत मधुपुरी मधुपुरी केशव देव सुदेव।
नाम छः घरा गाइयतु चौबे माथुर देव ॥६॥
वेद जू पढ़ियतु सीखियतु ऋग पुनि परम पुनीत।
तीन मानियतु प्रवर मम शख असुलायन प्रीत ॥७॥
नाम बिहारी जानियतु मम सुत कृष्णा जान।
× × ×
संवत जुग शर रस सहित भूमि रीति गिन लीन्ह।
कातिक सुदि बुधि अष्टमी जन्म हमहि विधि दीन्ह ॥१०॥
श्रवण नछत्रहि पाइयतु मीन लग्न परमान।
भैया बन्धन सुख बढ़ौ पितर अधिक हरखान ॥११॥

१. ना० प्र० प०, भाग ८, सं० १६८४।
२. 'सब अँग करि राखी सुघर नाइक नेह सिखाइ।
रसजुत लेत अनन्त गति पुतरी पातुरराइ' ॥
बिहारी-रत्नाकर, छं० सं० २८७, पृ० सं० ११६।
३. ना० प्र० प०, भाग ८, सं० १६८४, पृ० सं० ११४।

एक समय मम पितु सहित गए वृन्दावन धाम।
रुद्र वर्ष की आयु में दरषन लहे सुठाम ॥१२॥
टट्टी नाम बखानियतु जमुना मैया पास।
आश्रम दिखियो जाय के श्री स्वामी हरिदास ॥१३॥
नागरिदास सु राजियत कहियत जिनहिं महंत।
नाम सरिस महिमा लही पूजहिं संत अनंत ॥१४॥
हम कीन्हों परनाम उन दइ असीस हरखाय।
तब ताताहि पूछी कुशल यह सुख किहि कहि जाय ॥१५॥
दास-दास है आपुको कहि दीन्ही सब बात।
प्रिय परसाद प्रसन्न ह्वै आनंद उर न समात ॥१६॥
उन पितु सों गाथा कही पठइय सुत मम पास।

... ...

संतगुनी जन रहत ह्यां सब विधि परम सुपास ॥१८॥
आयसु उनकी सिर धरी रहे तहाँ हम जाय।
विद्या काव्य अनेक विधि पढ़ी परम सचुपाय ॥१६॥
संवत छिति अंबक जलधि शशि मधुमास बखान।
शुक्ल पच्छ की सप्तमी सोमवार सुभजान' ॥२०॥[1]

यह निबंध इस प्रकार लिखा गया है मानो बिहारी ने स्वयं लिखा हो, किन्तु इसकी भाषा ऐसी अप्रौढ़ और छंद अनगढ़ हैं जिससे इसका बिहारी-कृत होना सम्भव नहीं है। इसके साथ ही कुछ बातें संदिग्ध हैं। इस निबंध के अनुसार बिहारी का जन्म सं० १६५२ अथवा सं० १६५४ वि० की कार्तिक शुक्ला अष्टमी बुधवार तथा संसार-त्याग सं० १७२१ वि० चैत्र शुक्ला सप्तमी सोमवार को हुआ; किन्तु गणना से ज्ञात होता है कि सं० १६५२ वि० कार्तिक की शुक्ला अष्टमी, गुरुवार तथा १६५४ वि० में शनिवार की थी और सं० १७२१ वि० की चैत्र शुक्ला सप्तमी बुधवार को थी। इसके अतिरिक्त चारपद्य में सतसई की रचना और २१ वर्ष की आयु से वृन्दावन में बिहारी का रहना दुर्घट है। रत्नाकर जी के विचार से इन संदेहास्पद बातों के होने हुये भी अधिकांश बातें सच्च जान पड़ती हैं जैसे कुल-जाति, पिता-पुत्र इत्यादि का कथन, वृन्दावन जाना, हरिदासी सम्प्रदाय का अनुयायी होना, अन्तिम अवस्था में विरक्ति तथा जन्म-मरण संवत्।[2]

इस निबंध के अनुसार माथुर चौबे प्रायः स्वामी हरिदास के सम्प्रदाय के अनुयायी होते हैं, अतः रत्नाकर जी के अनुसार बिहारी के पिता का भी हरिदासी सम्प्रदाय का सेवक होना संगत है। रत्नाकर जी का विचार है कि उक्त प्रबंध में ११ वर्ष की अवस्था में बिहारी का अपने पिता के साथ वृन्दावन, नागरीदास जी के पास जाना लिखने में लेखक का कुछ प्रयास प्रतीत

१. ना० प्र० प०, भाग ८, सं० १६८४, पृ० सं० ६०, ६२।
२. ना० प्र० प०, भाग ८, सं० १६८४, पृ० सं० ६४।

होता है। अतः यदि वृन्दावन तथा नागरीदास, गुढ़ौ ग्राम तथा नरहरिदास के स्थान पर भूल से कहे मानें जायें, तो बिहारी के विषय में यह बात कही जा सकती है कि वे अपने पिता के साथ ११, १२ वर्ष की अवस्था में अर्थात् सं० १६६२, ६३ वि० में श्री नरहरिदास जी के पास गये थे, जो उस समय निधिवन के महंत श्री सरसदेव जी के शिष्य हो चुके थे। नरहरिदास जी ने बिहारी की बुद्धि से प्रसन्न होकर उनके पिता से उन्हें वहीं रखने के लिये कहा। उनके पास अनेक पंडित, कवि, महात्मा रहते तथा आया-जाया करते थे। बिहारी वहीं रह कर विद्याध्ययन करने लगे। श्री नरहरिदास जी बाल्यावस्था से महात्मा सिद्ध हो चुके थे, अतः प्रतीत होता है कि ओड़छा के राजा तथा केशवदास जी भी उनके पास आते-जाते थे। नरहरिदास जी के पिता से ओड़छे के राजा का व्यवहार होना 'निजमत सिद्धान्त' नामक ग्रंथ से विदित भी होता है। अतः रत्नाकर जी का अनुमान है कि नरहरिदास जी ने केशवदास जी से बिहारी को पढ़ाने का अनुरोध करके उनके साथ कर दिया और फिर बिहारी और उनके पिता उनके साथ रहने लगे। बिहारी की बुद्धि से प्रसन्न होकर केशवदास जी उन्हें अपना पुत्रवत मानने तथा शिक्षा देने लगे।[1]

रत्नाकर जी ने जो कुछ लिखा है उसका आधार यह अनुमान है कि वृन्दावन तथा नरहरिदास, क्रमशः गुढ़ौ ग्राम और नरहरिदास के स्थान पर भूल से लिखे गये हों, किन्तु इस अनुमान का कोई कारण नहीं दिखलाई देता।

रत्नाकर जी ने अपने लेख में अन्यत्र लिखा है कि बिहारीदास के पितामह का नाम वसुदेव और प्रसिद्ध केशवदास के पिता का नाम काशीराम होना, एवं बिहारीदास का चौबे तथा उक्त केशवदास का सनाढ्य होना, इन दो वैषम्यों के अतिरिक्त और कोई बात ऐसी नहीं है जो बिहारी के प्रसिद्ध केशवदास के पुत्र-अनुमान में बाधक हो, प्रत्युत और जितनी बातें हैं वह उक्त अनुमान के अनुकूल हैं। बिहारी के समय तथा नाम, बिहारी का लड़कपन में बुन्देलखंड में रहना, केशवदास के ग्रंथों से पूर्णतया परिचित होना, प्रवीणराय पातुरी का नृत्य देखना, केशव के वंशजों की भाँति ही पूर्ण पंडित एवं उच्च श्रेणी की काव्य-प्रतिभा से सम्पन्न होना आदि।[2]

जाति के वैषम्य को रत्नाकर जी ने यह कह कर दूर किया है कि एक प्रकार के चौबे सनाढ्य चौबे कहलाते हैं। किन्तु इससे केशव तथा बिहारी का जाति-वैषम्य दूर नहीं होता। केशव मिश्र-आस्पद सनाढ्य ब्राह्मण थे और यदि बिहारी सनाढ्य भी थे तो मिश्र-आस्पद न होकर चौबे प्रसिद्ध हैं। पिता-पुत्र का भिन्न आस्पद नहीं हो सकता।

केशव ने अपने पिता का नाम काशीनाथ लिखा है किन्तु उक्त निबन्ध में बिहारी के पितामह का नाम वसुदेव दिया हुआ है। इस वैषम्य के सम्बन्ध में रत्नाकर जी ने लिखा है कि 'बिहारी-बिहार' नामक निबंध में बिहारी के पितामह का नाम वसुदेव लिखा होना ऐसा प्रमाणिक नहीं माना जा सकता है कि उसके आगे और सब बातें नगराय समझी जायें। रत्नाकर जी के विचार से उक्त निबंध किसी बिहारी-विषयक अनेक वृतान्त जानने वाले का लिखा अवश्य प्रतीत होता

१. ना० प्र० प०, भाग ८, सं० १९८४, पृ० स० ११४।
२. ना० प्र० प०, भाग ८, सं० १९८४, पृ० स० १२४।

है किन्तु उसमें अनेक बातें अपनी ओर से भी जोड़ दी गई हैं। ऐसी दशा में उक्त प्रबंध में बिहारी के पितामह का नाम वसुदेव देखकर यह नहीं कहा जा सकता कि बिहारी के पिता सुप्रसिद्ध कवि केशवदास से भिन्न ही थे, क्योंकि केशव ने अपने पिता का नाम स्वयं काशीराम लिखा है। 'रत्नाकर' जी का अनुमान है कि जिस दशा में केशवदास जी ब्रज में आ बसे, उस दशा में वे संभवतः अपनी पूर्व-ख्याति छिपा कर रहे होंगे। उस हीन दशा में उन्होंने अपने को सर्व-साधारण में ओड़छे वाले महान कवि जताना उचित न समझा होगा। वीरसिंह देव की आज्ञा गंगा-तट पर वास करने की थी, और वे रुक ब्रज में गये थे। अतः उनके हृदय में इस बात का खटका रहा होगा कि कहीं उनका गंगा-तट न जाना सुनकर वीरसिंह देव उनके लड़के को दी हुई वृत्ति बंद न कर दें। ऐसी दशा में बहुत सम्भव है कि उन्होंने अपने को छिपाने के निमित्त अपने पिता का नाम प्रकाशित न किया हो और किसी महाशय के आग्रह पर, कदाचित् इस साम्य से कि भगवान के पिता का नाम वसुदेव था, वसुदेव ही बता दिया हो।[1]

रत्नाकर जी ने यह भी लिखा है कि केशवदास जी की यही आत्म-गोपन की संभावना उन लोगों के उत्तर में भी कही जा सकती है जो यह कहते हैं कि यदि बिहारी प्रसिद्ध केशव के पुत्र होते तो यह बात परंपरा से किंवदन्तियों में विख्यात होती, और बिहारी अथवा कुलपति मिश्र ने कहीं न कहीं इसका स्पष्ट उल्लेख किया होता। रत्नाकर जी का कथन है कि यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो संकेत से बिहारी तथा कुलपति मिश्र दोनों ही कवियों ने क्रमशः अपने पिता तथा पितामह का प्रसिद्ध कवि केशवदास होना कह दिया है। बिहारी का अपने पिता का नाम-संकीर्तन-मात्र कर देना, उनके पिता का कोई परम प्रसिद्ध केशव होना व्यंजित करता है, और कुलपति मिश्र का उनको कवीश्वर कहना तो स्पष्ट ही उनका ओड़छे वाले प्रसिद्ध कवि केशव होना प्रकट करता है, क्योंकि जहाँ तक ज्ञात है उस समय केशव नामधारी और कोई कवि प्रसिद्ध नहीं था।[2]

रत्नाकर जी ने जिस आत्मगोपन की संभावना की ओर ध्यान दिलाया है वह उनकी कल्पना-मात्र है। वास्तव में वीरसिंह देव ने केशव को गंगा-तट-वास की आज्ञा न दी थी जैसा कि रत्नाकर जी ने लिखा है, वरन् कुछ कारणों से केशव के हृदय में संसार से विरक्ति उत्पन्न हो गई थी और वे स्वेच्छा से ही गंगा-तट-वास चाहते थे। वीरसिंह देव के प्रति आदर प्रदर्शित करने के लिए ही केशव ने उनसे आज्ञा मांगी थी जो उन्हें सहर्ष प्रदान की गई। अतएव यदि किसी कारण-वश वह गंगा-तट न जाकर ब्रज में ही रुक गये तो वीरसिंह देव द्वारा उनके पुत्रों को दी गई वृत्ति के बन्द किये जाने की आशंका निराधार है।

रत्नाकर जी ने दो अन्य बातों का उल्लेख किया है जो उनके अनुसार केशव तथा बिहारी के पिता-पुत्र-सम्बन्ध की पोषक हैं। सं० १६६२ वि० में अकबर की मृत्यु के बाद जहाँगीर ने वीरसिंह देव को समस्त बुन्देलखंड का राज्य प्रदान किया और रामशाह के विरुद्ध, जो उस समय ओड़छे के राजा थे, वीरसिंह की सहायता के लिये सेना भेजी। केशव

१. ना० प्र० प०, भाग ८, स० १९८४, पृ० स० १२४।

२. ना० प्र० प०, भाग ८, सं० १९८४, पृ० सं० १२४, १२५।

के सन्धि कराने में असफल होने पर युद्ध हुआ जिसमें वीरसिंह देव विजयी हुये। 'वीरसिंह देव-चरित' ग्रन्थ से यह बातें प्रकट होती हैं। इस ग्रन्थ की समाप्ति सं० १६६३ वि० में हुई। विजय के पश्चात् का हाल इस ग्रन्थ में नहीं दिया है। अतएव यह नहीं ज्ञात होता कि फिर रामशाह तथा इन्द्रजीत की क्या व्यवस्था हुई अथवा केशव पर क्या बीती। केशव के सम्बन्ध में रत्नाकर जी का अनुमान है कि लड़ाई के पश्चात् केशवदास यद्यपि रहे तो ओड़छे ही में किन्तु उन पर राजा तथा उनके कर्मचारियों की दृष्टि क्रूर पड़ने लगी। उनकी वृत्ति आदि का अपहरण हो गया और वे सामान्य प्रजा की भाँति कुछ दिनों तक अपना जीवन व्यतीत करते रहे। केशवदास, पंडित, व्यवहार-कुशल तथा सभाचतुर थे और उधर वीरसिंह देव भी परम ब्रह्मण्य, गुण-ग्राहक तथा उदार-चरित थे, अतएव शनैः शनैः मेल-मिलाप हो गया। यद्यपि केशवदास जी की पहिली सी प्रतिष्ठा न हुई पर वे राज-सभा में आने-जाने लगे। सं० १६६७ वि० में उन्होंने अपना ग्रन्थ 'विज्ञान-गीता,' जो कदाचित वे पहिले ही से रच रहे थे, समाप्त कर वीरसिंह देव को समर्पित किया। उक्त ग्रन्थ के अन्त के तीन दोहों से ज्ञात होता है कि केशवदास को जो गाँव आदि मिले थे, वे छिन गये थे और उनकी प्रार्थना पर फिर उनकी सन्तान को पूर्वपदवी-सहित दिये गये। यह भी निश्चित होता है कि उनकी एक से अधिक सन्तान थी क्योंकि दूसरे दोहे में 'बालकनि' शब्द बहुवचन है। इस आधार पर रत्नाकर जी ने लिखा है कि बिहारी के जो एक भाई तथा एक बहिन बताये जाते हैं, वह बात भी केशवदास जी के उनके पिता होने के विरुद्ध नहीं है। केशवदास ने ओड़छा तो सं० १६६७ के कुछ दिनों पश्चात् अवश्य छोड़ दिया किन्तु यदि वे वस्तुतः बिहारी के पिता थे तो अपने ज्येष्ठ पुत्र को तो ओड़छे की वृत्ति पर छोड़ गये और कनिष्ठ पुत्र और कन्या को साथ लेकर गंगा-तट पर वास करने के निमित्त चले गये। रत्नाकर जी का अनुमान है कि सोरों घाट को उन्होंने अपने निवास के लिये सोचा था किन्तु पथ में ब्रज पड़ने के कारण वहीं ठहर गये। चित्त में उपराम तो था ही, बस फिर महात्मा नरहरिदास जी के गुरु महात्मा सरसदास जी से परिचित होने के कारण उनके पास अधिक आने-जाने लगे और कदाचित उनके शिष्य श्री नागरीदास जी के स्थान में ही ठहर गये हों तो कुछ आश्चर्य नहीं।[1]

'बालकनि' शब्द के आधार पर रत्नाकर जी का यह कथन कि बिहारी के जो एक भाई तथा एक बहिन बताये जाते हैं वह बात केशव के उनके पिता होने के विरुद्ध नहीं है, ठीक नहीं है क्योंकि इस शब्द से केवल इतना ही ज्ञात होता है कि केशव के एक से अधिक सन्तान थी, किन्तु यह नहीं कहा जा सकता है कि उनके दो ही पुत्र थे या दो से अधिक। दूसरे, इस शब्द से केशव का तात्पर्य कन्या से भी है, यह भी नहीं कहा जा सकता। अनुमानतः केशव का तात्पर्य कन्या के लिये नहीं हो सकता क्योंकि कन्या के लिये वृत्ति प्रदान करने का प्रश्न नहीं हो सकता। अतः ओड़छा छोड़ने के बाद केशव का अपनी कन्या तथा कनिष्ठ पुत्र के साथ ब्रज में जाना आदि बातें रत्नाकर जी की कोरी कल्पना ही प्रतीत होती हैं।

देवकी नन्दन वाली टीका में लिखा है कि बिहारी की स्त्री बड़ी कवि थी और सतसई

1. ना० प्र० प०, भाग ८, सं० १९८४, पृ० सं० १२७, १२८।

उसी ने बनाई थी।[1] रत्नाकर जी का कथन है कि इससे इतनी बात तो अवश्य आकर्षित होती है कि वह काव्य करती थी। 'मिश्रबन्धु-विनोद' में एक स्त्री कवि 'केशव-पुत्र-वधू' नाम से बतलाई गई है और उसकी कविता का 'संग्रहसार' ग्रन्थ में पाया जाना कहा गया है। रत्नाकर जी ने लिखा है कि क्या आश्चर्य है जो वह विदुषी बिहारी की ही स्त्री रही हो। यदि यह प्रमाणित हो सके तो यह बात भी बिहारी के प्रसिद्ध केशवदास के पुत्र होने का पोषण करती है।[2]

किन्तु 'बुन्देल-वैभव' ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि 'केशव-पुत्र-वधू' के पति अच्छे वैद्य थे।[3] यदि बिहारी को वैद्यक का सम्यक ज्ञान होता तो यह बात परम्परा से प्रसिद्ध होती, किन्तु ऐसा नहीं है। अतएव 'केशव-पुत्र-वधू' का सम्बन्ध बिहारी से नहीं प्रतीत होता।

इस पिता-पुत्र-सम्बन्ध के विपक्ष में मत रखने वालों में स्व० डा० श्यामसुन्दर दास, गणेश प्रसाद जी द्विवेदी तथा मायाशंकर याज्ञिक आदि विद्वान् हैं। डा० श्यामसुन्दर दास जी ने इस सम्बन्ध में तीन बातें लिखी हैं। प्रथम यह कि यदि बिहारी प्रसिद्ध केशव के पुत्र होते तो इस प्रकार की कोई किंवदन्ती होती, किन्तु ऐसा नहीं है। दूसरे, किसी टीकाकार की टीका के आधार पर इस प्रकार के निश्चय को पहुँचना ठीक नहीं, क्योंकि एक ही पंक्ति का भिन्न-भिन्न टीकाकार पृथक-पृथक भाव समझते हैं। तीसरे, केशव के वंशज हरिसेवक द्वारा लिखी गई 'कामरूप की क्था' खोज में उपलब्ध हुई है जिसमें बिहारी का कोई उल्लेख नहीं है।[4] 'कामरूप की कथा' में हरिसेवक ने अपने वंश का परिचय निम्नलिखित शब्दों में दिया है।

'स्तुम्भ ख्यात इहि गोत हुउ मिश्र सनाउढ़ वंस।
नगर ओड़िछे बसत वर क्रस्नदत्त भुव अंस॥
क्रस्नदत्त सुत गुन जलद कासिनाथ परवान।
तिन के सुत प्रसिद्ध हैं केसवदास कल्यान॥
कवि कल्यान के तनय हुव परमेश्वर इहि नाम।
तिन के सुत हर सेवक कियो यह प्रबन्ध सुखदाय'॥[5]

बा० श्यामसुन्दर दास जी के तीसरे तर्क में विशेष बल नहीं है। उपर्युक्त परिचय में बिहारी का उल्लेख न होने के कारण यह नहीं कहा जा सकता कि केशव बिहारी के पुत्र न थे। हरिसेवक ने केशव का नाम प्रसिद्ध व्यक्ति से सम्बन्ध प्रदर्शित करने की स्वाभाविक

१. 'विप्र बिहारी सुद्ध भो ब्रजबासी सुकुलीन।
तातिय ती कविता निपुन सतसैया तिहि कीन'॥
ना० प्र० प०, भाग ८, सं० १९८४, पृ० सं० ६८।

२. ना० प्र० प०, भाग ८, सं० १९८४, पृ० सं० १२।

३. बुन्देल-वैभव, प्रथम भाग।

४. नागरी-प्रचारिणी-सभा खोज रिपोर्ट, १९०९ ई०, भूमिका।

५. ना० प्र० स० खो० रि०, १९०९ ई०।

मनोवृत्ति के फल-स्वरूप आरम्भ में देकर केवल उसी शाखा का उल्लेख किया है जिससे सीधा उनका सम्बन्ध है।

माया शंकर जी याज्ञिक ने सं० १९८७ वि० की 'नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका' के एक लेख में इस पिता-पुत्र की संभावना के विरुद्ध कई बातों का उल्लेख किया है।[1] प्रथम यह कि केशवदास सनाढ्य थे, बिहारी चौबे। याज्ञिक जी ने लिखा है कि बिहारी के वंशज बालकृष्ण के पुत्र, गोपाल कृष्ण चौबे को वह जानते हैं। वे भरतपुर राज्यांतर्गत 'दीग' स्थान में वकालत करते हैं। उनके विवाहादि सब सम्बन्ध मैनपुरी, इटावा आदि स्थानों में मिलने वाले चौबों में होते हैं। यदि बिहारी सनाढ्य चौबे होते तो उनके वंशजों के विवाह-सम्बन्ध सनाढ्य ब्राह्मणों में होते।

याज्ञिक जी का दूसरा तर्क यह है कि यदि बिहारी केशवदास के पुत्र थे तो वे कुलपति मिश्र के मामा तभी हो सकते हैं, जब केशवदास जी की कन्या का विवाह कुलपति मिश्र के पिता परशुराम जी के साथ हुआ हो। केशव जी मिश्र थे और परशुराम जी भी मिश्र थे। मिश्र की कन्या का विवाह मिश्र के साथ नहीं हो सकता।

याज्ञिक जी के विचार से बिहारी के पिता का नाम केशव अथवा केशवराय न होकर 'केसो केसोराय' था। याज्ञिक जी के इस अनुमान का आधार दो दोहे हैं।

'प्रगट भये द्विजराज-कुल सुबस बसे ब्रज आइ।
मेरे हरौ कलेस सब केसव केसवराइ' ॥[2]

कुछ टीकाकार प्रथम शब्द 'केसव' को बिहारी का पिता बताते हैं और दूसरे 'केसवराइ' को भगवान कृष्ण के लिए प्रयुक्त कहते हैं। कुछ 'केसवराइ' बिहारी के पिता का नाम मानते हैं। बिहारी के सर्व प्रथम टीकाकार कृष्णलाल का मत प्रथम पक्ष में और रत्नाकर जी का दूसरे पक्ष में है।

दूसरा दोहा कुलपति मिश्र का है। याज्ञिक जी के अनुसार कुलपति मिश्र ने 'संग्राम-सागर'[3] नामक ग्रन्थ में अपना वंश-वर्णन करते हुये लिखा है।

'कविवर मातामहि सुमिरि केसौ केसौराइ।
कहौं कथा भारत्थ की, भाषा छंद बनाइ' ॥

इन दोहों के सम्बन्ध में याज्ञिक जी का कथन है कि बिहारी ने तो अपने दोहे में दो शब्द 'केसव' तथा 'केसवराइ' का इसलिये प्रयोग किया है कि उनको, रुपक तथा श्लेष से, अपने पिता और भगवान कृष्ण का वर्णन करना था, परन्तु कुलपति मिश्र को क्या आवश्यकता थी कि उनके मातामह का नाम केवल केसौराइ होने पर भी एक शब्द 'केसौ' और जोड़ दिया। अतएव याज्ञिक जी का अनुमान है कि उनका नाम 'केसौ केसौराइ' ही था। कुलपति, बिहारी के भानजे थे अतएव बिहारी के पिता का भी यही नाम था। याज्ञिक

१. ना० प्र० प०, भाग ८, सं० १९८७, पृ० सं० १२५, १३०।
२. बिहारी रत्नाकर, छं० सं० १०१, पृ० स० ४६।
३. यह ग्रन्थ अप्रकाशित है लेखक को प्रयत्न करने पर भी देखने को न मिल सका।

जी ने लिखा है कि नवीन कवि के 'प्रबोध-रस-सुधा-सागर' नामक ग्रन्थ में 'केसौ केसौराइ' कवि के छंद उद्धृत हैं। याज्ञिक जी ने इस कवि के दो छंद अपने लेख में भी उद्धृत किये हैं जो निम्नलिखित हैं।

'ननद निगोड़ी कनसूआ कौरे लागी रहै,
सासु सुनिहै तौ नाह नाहर सौ करिहै।
केसौ केसौराइ जनाजन सुनै जी कौ ग्यान,
तुम तौ निडर परवस सो तौ डरिहै।
फैलि जैहै अब ही चबाव बृजबासिन में,
कहत सुनत कौन काकी जीभ धरिहै।
क्यौं चाह्यौ सो तौ तुम मोही सौं बुलाइ कहौ,
आन कान परे ते लाखन कान परिहै' ॥

तथा : 'कोक कोक बोही करौ कोक नद फूल्यौ जिन,
सोइ गुरुजन गौएं प्रेमरस चाखिये।
सोइये न जागिये री हिय सौं लगाइए पै,
हिय कौ हुलास आली काहु सौं न भाखिए।
केसौ केसौराइ सों वियोग पलहू न होइ,
जीवन अवध गुन प्रेम अभिलाखिए।
कछुक उपाय कीजै ऊआन न भान दीजै,
दिन दाब दूब लीजै रातैं करि राखिए' ॥

याज्ञिक जी का प्रथम तर्क विचारणीय है। दूसरा तर्क साधारणतया तो ठीक है किन्तु एक ही आस्पद में विवाह होने के भी बहुत से उदाहरण मिलते हैं। 'केसौ केसौराइ' के सम्बन्ध में याज्ञिक जी ने यह नहीं बतलाया है कि इस कवि का समय क्या है अथवा वह कहाँ हुये थे। जब तक यह ज्ञात न हो, तब तक 'केसौ केसौराइ' का भी बिहारी का पिता होना निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। याज्ञिक जी के इस तर्क के सम्बन्ध में कि कुलपति ने अपने मातामह का नाम 'केसौराइ' होने पर एक और शब्द 'कैसौ' क्यों जोड़ दिया, यह कहा जा सकता है कि उन्होंने ऐसा अपने मातुल बिहारी के ही अनुकरण पर किया है। इस प्रकार इस मत के विपक्ष में दिये याज्ञिक जी के अधिकांश तर्कों का खंडन हो जाता है।

गणेश प्रसाद द्विवेदी, केशव तथा बिहारी के पिता-पुत्र-सम्बन्ध के पक्ष में उपस्थित किये गये तर्कों को हिन्दी-संसार में धूम मचा देनेवाली एक नई और ज्वलंत सूझ मात्र समझते हैं। उन्होंने अपने मत की पुष्टि में निम्नलिखित तर्क दिये हैं।

१. बिहारी माथुर चौबे थे और केशवदास मिश्र थे।

२. बिहारी की जन्म-तिथि केशव के मृत्यु-काल के निकट सं० १६६० के लगभग मानी जाती है। इस सम्बन्ध में द्विवेदी जी ने यह भी लिखा है कि सरोजकार के हिसाब से बिहारी का जन्म केशव के पहले ही हो चुका था।

१. हिन्दी के कवि और काव्य, प्रथम खंड।

३. बिहारी स्वयं अपनी जन्म-भूमि ग्वालियर, अपना स्थायी-रूप में निवास अपनी ससुराल मथुरा में कहते हैं। कहाँ ग्वालियर और मथुरा और कहाँ ओड़छा। इस बात का कहीं से भी प्रमाण नहीं मिलता कि केशव भी ग्वालियर या मथुरा में रहे हों।

४. यदि केशव वास्तव में बिहारी के पिता होते तो उन्होंने इस सम्बन्ध को कहीं न कहीं स्पष्ट अवश्य कर दिया होता, जबकि उन्होंने अपनी जन्म-भूमि आदि का ठीक-ठीक पता दे दिया है।

'शिवसिंह-सरोज' के अनुसार बिहारी का जन्म सं० १६०२ वि० में हुआ, किन्तु 'सरोज' के आधार पर बिहारी का जन्म केशव से पूर्व नहीं माना जा सकता, क्योंकि सरोज-कार ने सन्-संवतों में प्रायः भूल की है। अधिकांश विद्वानों ने बिहारी का जन्म सं० १६५५ तथा १६६० वि० के बीच माना है। केशव का जन्म सं० १६१२ के लगभग हुआ। इस प्रकार यदि बिहारी, केशव के पुत्र हों तो जिस समय उनका जन्म हुआ होगा, केशव की आयु लगभग ४३ या ४८ वर्ष ठहरती है, जो असंभव नहीं।

जहाँ तक गणेश प्रसाद जी के तीसरे तर्क का सम्बन्ध है, गौरी शंकर जी द्विवेदी ने लिखा है कि बिहारी के वंशज वर्तमान समय में झाँसी से १३ मील दूर 'फुटेरा पिछोर' नामक स्थान में रहते हैं। झाँसी के आसपास के बहुत से स्थान पहले ग्वालियर प्रान्त के अन्तर्गत थे। यदि बिहारी का जन्म भी ऐसे ही किसी प्रदेश में हुआ हो तो ओड़छा से ग्वालियर की जिस दूरी की ओर गणेश प्रसाद जी ने ध्यान आकर्षित किया है, वह मिट सकती है। फिर भी जब तक इसका निश्चित प्रमाण नहीं मिलता, गणेश प्रसाद जी का यह तर्क अकाट्य है। द्विवेदी जी के चौथे तर्क के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि यह आवश्यक नहीं है कि यदि बिहारी ने अपने जन्म-स्थान का पता दे दिया है तो पिता का नाम भी देते।

फिर भी केशव तथा बिहारी के पिता-पुत्र सम्बन्ध में उपस्थित किये गये तर्कों तथा अन्य बातों पर विचार करने पर केशव-बिहारी का सम्बन्ध प्रकट नहीं होता। इसके निम्न-लिखित कारण हैं :

१. बिहारी चौबे प्रसिद्ध हैं और केशवदास सनाढ्य मिश्र थे। सनाढ्यों में भी चौबे होते हैं, यह ठीक है, किन्तु यदि बिहारी सनाढ्य थे तब भी केशव तथा बिहारी के आस्पद भिन्न थे। पिता तथा पुत्र का भिन्न आस्पद नहीं हो सकता।

२. यदि बिहारी, केशव के पुत्र होते तो यह बात, जैसा कि स्व० डा० श्यामसुन्दर दास जी ने लिखा है, परम्परा से प्रसिद्ध होती। केशव की जिस सन्तान ने वीरसिंह देव द्वारा पुनः प्रदत्त वृत्ति का ओड़छा में रह कर उपभोग किया, कम से कम उसे तो बिहारी का केशव का पुत्र होना अवश्य ज्ञात रहा होगा और उसके द्वारा इस बात को छिपाये रखने का कोई कारण नहीं प्रतीत होता।

३. प्रसिद्ध व्यक्ति से सम्बन्ध प्रदर्शित करने की मनोवृत्ति स्वाभाविक है। यदि बिहारी, केशव के पुत्र होते तो निश्चय ही अपने इस सम्बन्ध को स्पष्ट रूप से प्रकट करने में गौरव प्रतीत करते। केशव के वंशज हरिसेवक ने 'कामरूप की कथा' में इसी मनोवृत्ति के फल-स्वरूप केशव का उल्लेख किया है, अन्यथा जिस प्रकार केशव

के बड़े भाई बलभद्र मिश्र का उल्लेख नहीं है, केशव का उल्लेख करने की भी आवश्यकता न थी क्योंकि हरिसेवक से केशव का सीधा सम्बन्ध न था। यदि बिहारी केशव के पुत्र होते तो हरिसेवक इसी मनोवृत्ति से प्रेरित हो बिहारी से प्रसिद्ध कवि से भी अपना सम्बन्ध लिखते।

४. बिहारी ने स्पष्ट रूप से अपना जन्म ग्वालियर में होना लिखा है किन्तु केशव का कभी ग्वालियर में रहना प्रमाणित नहीं होता।

जन्मस्थान-प्रेम तथा जाति-अभिमान

मनुष्य जहाँ जन्म लेता है उस स्थान से उसे प्रेम होना स्वाभाविक है। चिरपरिचय के कारण वहाँ की प्रत्येक वस्तु से उसके हृदय का इतना घनिष्ट सम्बन्ध हो जाता है कि उसकी दृष्टि में अन्य स्थानों की उससे महत्वशाली वस्तुयें भी हेय दिखलाई देती हैं। केशवदास जी को भी अपनी जन्म-भूमि ओड़छा और वहाँ के वन, नदी आदि से असीम प्रेम था। यह उनके ओड़छा नगर, तुंगारराय और बेतवा नदी आदि के वर्णन से प्रकट हो जाता है। केशव की दृष्टि में अन्य नगर ओड़छा नगर पर निछावर करने के योग्य हैं। उनके विचारानुसार वहाँ के नरनारी देवताओं के समान हैं और उन्हें देव-दुर्लभ सुख प्राप्त हैं।[1] इसी प्रकार बेतवा नदी भी केशव के मतानुसार गंगा और यमुना से कम नहीं। महत्व में तो वह इनसे भी बढ़ कर है। यदि गंगा-यमुना के स्नान से पापों का नाश होता है तो बेतवा नदी को देख कर ही 'तनताप' मिटता है, स्पर्श से पाप-समूह लुप्त होते हैं और स्नान करने से प्राणियों के हृदय में ज्ञानोदय हो जाता है।[2]

जन्मभूमि-प्रेम के समान ही केशवदास जी के हृदय में अपनी जाति के सम्बन्ध में भी अभिमान था। जन्मस्थान-प्रेम यदि स्वाभाविक है तो स्वजाति का अभिमान आवश्यक है क्योंकि बिना इसके कोई जाति कभी उन्नति नहीं कर सकती, किन्तु वह जाति-दंभ न होना चाहिये। दूसरे शब्दों में जाति-प्रेम आवश्यक है किन्तु वह अन्य जातियों का विरोधी तथा उन्हें हेय दृष्टि से देखने वाला न हो। केशवदास को अपनी जाति से इतना प्रेम था कि उन्हें अपने ग्रंथ 'रामचंद्रिका' में स्थान निकाल कर सनाढ्य-वंशोत्पत्ति और उसका गुणगान करने के लिए बाध्य होना पड़ा। सनाढ्य जाति का यशोगान करते हुये केशवदास जी ने लिखा है:

'सनाढ्य पूजा अघ ओघ हारी। अखंड आखंडल लोक धारी।
अशेष लोकावधि भूमिचारी। समूल नाशैं नृप दोष कारी'॥[3]

१. 'चहूँ भाग बाग मानहु सघन घन, सोभा की सी शाला, हंसमाला सी सरित वर।
ऊँचे ऊँचे अटनि पताका अति ऊँची जनु, कौशिक की कीन्हीं गंगा खेलत तरल तर।
आपने सुखनि आगे निन्दत नरेन्द्र और, घर घर देखियत देवता से नारि नर।
केशवदास त्रास जहाँ केवल अदृष्ट ही को, वारिय नगर और ओरछा नगर पर'॥
कविप्रिया, छं० सं० ६, पृ० सं० १२५।

२. वीरसिंहदेव-चरित, प्रथमार्ध, पृ० सं० ७८।

३. रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, छं० सं० २०, पृ० सं० ६।

'सनाढ्यानि की भक्ति जो जीय जागै।
महादेव के शूल ताके न लागै' ॥[1]
'सनाढ्य जाति सर्वदा, यथा पुनीत नर्मदा।
भजै सजै ते संपदा, विरुद्ध ते असंपदा' ॥[2]
'सनाढ्य वृत्ति जो हरै, सदा समूल सो जरै।
अकाल मृत्यु सो मरै, अनेक नर्क सो परै' ॥[3]

इन शब्दों में केशव की जाति-प्रेम-संबंधी संकीर्णता दृष्टि-गोचर होती है, किन्तु जिस परिस्थिति में केशव ने यह शब्द कहे हैं उन पर विचार करने पर यह संकीर्णता क्षम्य है। केशव की सम्पत्ति अधिकांश अपने आश्रय-दाताओं से मिली वृत्ति थी। वह जानते थे कि यह सम्पत्ति बालू की भीत है क्योंकि राजा-महाराजाओं की जो कृपादृष्टि किसी को जागीरदार बना सकती है वही जरा तिरछी होने पर उसे धूल में भी मिला सकती है। ऐसा प्रतीत होता है कि राजा-महाराजाओं के स्वभाव का यही ज्ञान केशव को समय-असमय का बिना विचार किये सनाढ्य जाति के गुणगान के लिए प्रेरित करता रहता था।

केशव के आश्रयदाता :

केशवदास हिन्दी भाषा के उन कवियों में हैं जिन्हें राजा-महाराजाओं से विशेष सम्मान प्राप्त हुआ। इस सम्बन्ध में हिन्दी के दो अन्य महाकवियों, चन्द और भूषण का स्मरण आता है। भूषण को भी अपने आश्रय-दाताओं से विशेष सम्मान मिला किन्तु केशव के समान न तो वह अपने आश्रय-दाताओं के मंत्री और मित्र थे और न केशव के समान देशाटन तथा युद्ध आदि ही में उन्हें अपने आश्रय-दाताओं के साथ रहने का अवसर मिला। महाकवि चंद अवश्य ही इस दृष्टि से केशवदास जी की समता में ठहरते हैं। जो सम्बन्ध महाराज इन्द्रजीत सिंह और केशव में था ठीक उसी प्रकार का सम्बन्ध महाराज पृथ्वीराज तथा चंद में भी था।

'कविप्रिया' ग्रन्थ में दिये हुये कविवंश-वर्णन से ज्ञात होता है कि राजा-महाराजाओं द्वारा प्राप्त सम्मान केशवदास जी का पैतृक अधिकार था। केशव के पितामह कृष्णदत्त, पिता काशीनाथ और बड़े भाई बलभद्र मिश्र तो ओरछा-नरेशों द्वारा सम्मानित थे ही, कवि के कई अन्य पूर्वज भी समय-समय पर राजा-महाराजाओं द्वारा सम्मानित होते रहे हैं। केशवदास ने स्वयं लिखा है कि उनसे ग्यारहवीं पीढ़ी पूर्व जयदेव, महाराज पृथ्वीराज के कृपाभाजन थे। जयदेव के पुत्र दिवाकर, भारत-सम्राट अलाउद्दीन के कृपापात्र थे। 'गोपाचल-गढ़-दुर्गपति' केशव से सातवीं पीढ़ी पूर्व त्रिविक्रम मिश्र के चरण पूजते थे। त्रिविक्रम के पुत्र शिरोमणि को 'राना' ने बीस गाँव दान में दिये थे। इसी प्रकार इनके पुत्र हरिनाथ 'तोमरपति' के आश्रित थे।[4]

१. रामचंद्रिका, उत्तरार्धं, पृ० स० २७६।
२. रामचंद्रिका, उत्तरार्धं, छं० स० २६, पृ० स० २८०।
३. रामचंद्रिका, उत्तरार्धं, छं० स० २२, पृ० स० २८०।
४. कविप्रिया, छं० सं० ६—१६, पृ० सं० २०, २१।

केशवदास जी के प्रथम आश्रयदाता महाराज चंद्रसेन प्रतीत होते हैं। यह जोधपुर के राजा मालदेव के पुत्र थे। मालदेव सम्राट अकबर के आधीन थे किन्तु चंद्रसेन का हृदय राठौरों के स्वाभाविक दर्प से पूर्ण था और वह अपने देश की स्वतन्त्रता के लिए तड़पा करते थे। सं० १६२५ वि० में पिता की मृत्यु के बाद चंद्रसेन ने मरु देश के बहुत से वीर अधीनस्थ राजाओं को इकट्ठा कर स्वाधीन रहने का पूर्ण निश्चय किया और जोधपुर से भाग कर सिवाना के किले को अधिकृत कर वहाँ से आजीवन मुगलों का वीरतापूर्वक सामना किया तथा सत्तरह वर्ष बाद अर्थात् सं० १६४२ वि० के लगभग सम्मान-पूर्ण मृत्यु प्राप्त की।[1] केशवदास जी ने 'कविप्रिया' नामक ग्रंथ में महाराज चंद्रसेन को निवेदन करते हुये उनकी खड्ग की प्रशंसा में निम्नलिखित छंद लिखा है :

'रजै रज केशवदास टूटत अरुणलार, प्रति भट अंकन ते अंक पै सरतु है।
सेना सुन्दरीन के विलोकि मुख भूषणनि, किलकि किलकि जाही ताही को धरतु है॥
गाढ़े गढ़ खेल ही खिलौननि ज्यों तोरि डारै, जग जय यश चारु चंद्र को अरतु है।
चन्द्रसेन भुअपाल आंगन विशाल रण, तेरो करवाल बाललीला सी करतु है'॥[2]

इस छंद की अंतिम पंक्ति में प्रयुक्त 'तेरो' शब्द से स्पष्ट है कि यह छंद केशवदास जी ने महाराज चंद्रसेन के सम्मुख पढ़ा था। दूसरे, इस छंद में महाराज चंद्रसेन की वीरता की प्रशंसा की गई है किन्तु महाराज चंद्रसेन के वीरता-प्रदर्शन और यशोपार्जन का अवसर मालदेव की मृत्यु के पश्चात् उनके सिवाना के किले का अधिकार प्राप्त कर लेने पर ही हो सकता है। अतएव केशवदास सं० १६२५ वि० और सं० १६४२ वि० के बीच किसी समय सिवाना गये होंगे जहाँ महाराज चंद्रसेन से वह सम्मानित हुये।

केशव के दूसरे और सबसे प्रसिद्ध आश्रयदाता महाराज इन्द्रजीत सिंह थे। यह ओड़छाधीश महाराज रामशाह के छोटे भाई थे। महाराज रामशाह ने राज्याधीश होने पर इन्हें कछौवा की जागीर दी थी, किन्तु साथ ही ओड़छा-राज्य का सारा प्रबन्ध भी इन्हीं के हाथ में था। आप बड़े ही दानी, गंभीर और सूर थे। आप गुणग्राही, कविता-प्रेमी और स्वयं कवि थे। संगीत की ओर आपकी विशेष रुचि थी। यहाँ तक कि आपके यहाँ कई गायिकायें थीं जो नृत्य-गान और वाद्य आदि कलाओं में परम निपुण थीं। केशव की 'रसिकप्रिया' की रचना आप ही के नाम से हुई थी। आप के आश्रय में रहते हुये केशवदास जी 'बाम-अबाम' साधते थे।[3]

१. टाड राजस्थान, द्वितीय भाग, पृ० सं० ६५८, ६६०।
२. कविप्रिया, छं० सं० ३८, पृ० सं० २४६।
३. 'सुत सोदर नृप राम के यद्यपि बहु परवार।
तदपि सबै इंद्रजीत सिर राज काज को भार॥३८॥
कल्पवृक्ष सो दानि दिन सागर सो गंभीर।
केशव सूरो सूर सो अर्जुन सो रणधीर॥३९॥
साहि कछोवा कमल सों गढ़ दीन्हों नृप राम।
विधि ज्यों साधति बैठि तहँ केशव बाम अबाम॥४०॥

केशवदास जी के तीसरे आश्रयदाता महाराज इन्द्रजीत सिंह के भाई महाराज वीरसिंह देव थे। आरम्भ में यह केवल बड़ौन की जागीर के अधिकारी थे किन्तु सम्राट अकबर की मृत्यु के पश्चात् जहाँगीर के सिंहासनासीन होने पर उसने इन्हें मधुकरशाह का पूरा राज्य दे दिया। जहाँगीर के यह विशेष कृपा-भाजन थे क्योंकि सम्राट अकबर के विरुद्ध विद्रोह करने पर इन्होंने जहाँगीर का साथ दिया था। वीरसिंह देव बड़े ही न्यायप्रिय, विद्वान, उदार और वीर थे। इन्होंने सम्राट अकबर के समय में मुगलों के बहुत से किले छीन लिये और कई बार मुगल-सेना को परास्त किया था। सम्राट अकबर इन्हें आधीन करने का आजीवन स्वप्न ही देखता रहा। केशवदास ने 'वीरसिंहदेव-चरित' नामक ग्रंथ में इनके चरित्र का विस्तार-पूर्वक गान किया है।

केशव के 'विज्ञानगीता' नामक ग्रंथ की रचना भी इन्हीं की प्रेरणा से हुई थी। आपके दान और वीरता की अनेक कहानियाँ आज भी बुन्देलखंड में प्रचलित हैं। केशव ने 'वीरसिंहदेव-चरित' के अतिरिक्त 'विज्ञानगीता' में भी कुछ छंदों में आपके दान और वीरता की प्रशंसा की है :

'दानिन में बलि से बिराजमान जिनि पाँहि मागिबे को है गतित विक्रम तनक से।
सेवत जगत प्रमुदितनि की मंडली में देखियत केशोदास सौनक सनक से।
जोधनि में भरत भगीरथ सुरथ पृथु विक्रम में विक्रम नरेश के बनक से।
राजा मधुकर शाह सुत राजा वीरसिंह देव राजनि की मंडली में राजत जनक से'।[1]

'केशोराइ राजा वीरसिंह ही के नामहि ते अरि राजराजनि के मद मुरझात हैं।
सजल जलद ऐसे दूरिते विलोकियत पर दल दिल बल दल केशो पात हैं।
भैरों के से भूत भट जग घट प्रतिभट घट-घट देखे बल विक्रम बिलात हैं।
पीर-पीरी पेखत पताका पीरे होत मुख कारी-कारी ढालैं देखे कारेई ह्वै जातु हैं'।[2]

एक और व्यक्ति, जिसके आश्रय में केशव का जाना सिद्ध होता है, अमरसिंह हैं। अमरसिंह की प्रशंसा में केशव ने 'कविप्रिया' ग्रंथ में चार-पाँच छन्द लिखे हैं। केशव के समकालीन दो अमरसिंह का पता लगता है। एक अमरसिंह रीवाँ के राजा थे जो सं० १६६१ वि० में ओड़छे के राजा जुझार सिंह के विरुद्ध सम्राट शाहजहाँ की सहायता करने गये थे।

कथौ अखारो राज कै शासन सब संगीत।
ताको देखत इन्द्र ज्यों इन्द्रजीत रणजीत' ॥४१॥

कविप्रिया, छं० सं० ३८, ४१, पृ० सं० ६।

१. विज्ञानगीता, छं० सं० २२, पृ० सं० ६।
२. विज्ञानगीता, छं० सं० २६, पृ० सं० ६।

इनकी मृत्यु सं० १६६७ वि० में हुई थी।[1] दूसरे अमरसिंह मेवाड़ (उदयपुर) के प्रसिद्ध महाराणा प्रताप के ज्येष्ठ पुत्र थे जो अपने पिता की मृत्यु के बाद सन् १५९७ ई० (लगभग सं० १६५४ वि०) में मेवाड़ की गद्दी पर बैठे। केशवदास जी ने एक छंद में, जो नीचे उद्धृत किया जायगा, अमरसिंह 'रान' अर्थात् राना लिखा है। अतएव स्पष्ट ही केशव का तात्पर्य इन दूसरे राना अमरसिंह ही से है। यह अपने वंश और महाराणा प्रताप के योग्य उत्तराधिकारी थे। इनमें वीरोचित मानसिक तथा शारीरिक गुण उपस्थित थे। राना अमरसिंह मेवाड़ के राजाओं में महान और सबसे अधिक शक्तिशाली थे। यह अपनी दानशीलता और वीरता के लिये प्रसिद्ध थे। यह वीर तो इतने थे कि सम्राट जहाँगीर ने कई बार इनके विरुद्ध सेनायें भेजीं किन्तु प्रत्येक बार उसे नीचा देखना पड़ा। दुर्भाग्यवश अन्तिम युद्ध में (सन् १६१३ ई०) जब राना के सम्मुख भागने या बन्दी बनने के अतिरिक्त और कोई उपाय न रहा तो इन्हें सम्राट की आधीनता स्वीकार करनी पड़ी; यद्यपि अपनी विवशता के लिये इनका हृदय सदैव मसोसता रहा और अंत में राज्य-भार अपने पुत्र को सौंप कर यह चित्तौड़ छोड़ कर नौचौकी चले गये, जहाँ से आजीवन वापस न आये।[2] केशवदास ने राना अमरसिंह की प्रशंसा में लिखा है :

'परम विरोधी अविरोधी ह्वै रहत सब, दानिन के दानि कवि केशव प्रमान है।
अधिक अनंत आप, सोहत अनंत संग, अशरण शरण, निरक्षक निधान है।
हुतभुक हितमति, श्रीपति बसत हिय, भावत है गंगा जल, जग को निदान है।
केशोराय की सौं कहै केशोदास देखि देखि, रुद्र को समुद्र की अमरसिंह रान हैं।[3]

छन्द की अन्तिम पंक्ति में प्रयुक्त 'कहै' और 'देखि-देखि' शब्दों से स्पष्ट है कि यह छन्द राना अमरसिंह के सम्मुख पढ़ा गया था। सं० १६२५ वि० और सं० १६४२ वि० के बीच किसी समय केशवदास जी के महाराज चन्द्रसेन के दरबार, सिवाना (जोधपुर) जाने का उल्लेख अन्यत्र किया जा चुका है। अनुमान होता है कि सिवाना से लौटते समय केशवदास मेवाड़ में रुक गये होंगे। 'रसिकप्रिया' नामक ग्रंथ में केशवदास ने अपने सम्बन्ध में 'जानत सकल जहान'[4] लिखा है। इस कथन से भी उपर्युक्त अनुमान की पुष्टि होती है। इन शब्दों से ज्ञात होता है कि कवि के रूप में केशवदास की ख्याति 'रसिकप्रिया' के रचना-काल सं० १६४८ वि० के पूर्व ही दूर-दूर तक फैल चुकी थी। इसके दो ही उपाय थे। या तो कवि की रचनायें दूर-दूर तक पहुँचतीं या स्वयं केशव; किन्तु 'रसिकप्रिया' कवि का प्रथम ग्रंथ है अतएव कवि का स्वयं दूर-दूर तक जाना मानना अधिक बुद्धि-संगत है।

---

१. बुन्देल खंड का संक्षिप्त इतिहास, गोरेलाल, पृ० सं० ६४।
२, टाड का राजस्थान, प्रथम भाग, पृ० सं० ४७७-४२७।
३. कविप्रिया, छं० सं० ३१, पृ० सं० २४४।
४, 'एक तहाँ केशव सुकवि जानत सकल जहान'।
रसिकप्रिया, पृ० सं० १०।

मित्र, स्नेही तथा परिचित :

केशवदास जी के सबसे प्रगाढ़ मित्र और स्नेही सम्राट अकबर की सभा के प्रसिद्ध रत्न महेशदास दुबे उपनाम 'बीरबल' थे। केशवदास जी ने 'वीरसिंहदेव-चरित' ग्रंथ में बीरबल का उल्लेख 'मोरे हित' विशेषण के साथ किया है।[1] कवि ने आपके दान की प्रशंसा में 'कविप्रिया' ग्रंथ में कई छन्द लिखे हैं। निम्नलिखित छन्द से ज्ञात होता है कि इन्होंने केशव को बहुत सा धन पुरस्कार-स्वरूप दिया था।

'केशव दास के भाल लिख्यो विधि रंक को अंक बनाय संवारयो।
धोये धुवे नहिं छूटो छुटै बहु तीरथ के जल जाय पखारयो।
ह्वै गयो रंक ते राव तबै जब वीर बली नृपनाथ निहारयो।
भूलि गयो जग की रचना चतुरानन बाय रह्यो मुख चारयो'।[2]

प्रसिद्ध राजा टोडरमल से भी केशव का परिचय था। राजा टोडरमल शेरशाह सूर के समय में उच्चपदाधिकारी थे, और अकबर के सिंहासनासीन होने पर सम्राट अकबर के भूमि-कर-विभाग के प्रधान मंत्री हुये। अकबर के मंत्रियों में केशवदास जी यदि किसी को अच्छी दृष्टि से न देखते थे तो वह यही राजा टोडरमल थे। यह बात 'वीरसिंहदेव-चरित' ग्रंथ के निम्नलिखित छन्द से लक्षित होती है। 'दान' 'लोभ' से कहता है :

'टोडरमल तुव मित्त मरे सबही सुख सोयो।
मोरे हित बरबीर मरे दुख दीननि रोयो'।[3]

केशवदास जी समय-समय पर राजा बीरबल से मिलने जाया करते थे और आपके दरबार में केशव के लिये किसी समय कोई रोक-टोक न थी।[4] अतएव अकबर की सभा के अन्य रत्न अब्दुर्रहीम खानखाना, अबुलफजल, फैजी, मानसिंह आदि से भी केशव का परिचित होना स्वाभाविक ही है। महाकवि तुलसी से केशव के परिचय का उल्लेख अन्यत्र किया जा चुका है। एक और व्यक्ति जिससे केशवदास जी का घनिष्ट परिचय था, पतिराम सुनार है। प्रवाद है कि पतिराम, केशव के पड़ोस में रहता था। केशव ने पतिराम के सम्बन्ध में 'कविप्रिया' में तीन छन्द लिखे हैं। केशव के अनुसार, वह पढ़ना-लिखना न जानता था किन्तु कविता समझ लेता था। वह सुनारी तो करता ही था, मामूली दवा आदि भी देता था। सोना चुराने में वह इतना दक्ष था कि लोगों के सामने सोना चुरा लेता

१. वीरसिंहदेव-चरित, पृ० सं० ११।
२. कविप्रिया, हरिचरणदास, सातवाँ प्रभाव, छं० सं० ७७।
३. वीरसिंहदेव-चरित, पृ० सं० ११।
४. 'यौंही कह्यो जु बीरवर माँगु जु मन में होय'।
माँग्यो तब दरबार में मोहिं न रोके कोय॥११॥
कविप्रिया, पृ० सं० २२।

था। यहाँ तक कि रनिवास का सोना चुराने में भी वह नहीं हिचका। केशव के भाग्य पर भी उसे ईर्ष्या थी।[1]

केशव के शिष्य :

आचार्य केशव की सर्वप्रथम शिष्या महाराज इन्द्रजीतके दरबार की गायिका प्रवीणराय थी। केशव ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'कविप्रिया' की रचना प्रवीणराय को काव्य-शिक्षा देने ही के लिये की थी।[2] प्रवीणराय की प्रशंसा में केशव ने कई छन्द लिखे हैं और उसकी उपमा रमा, शारदा तथा शिवा से दी है,[3] जो सामान्यतः अनुचित प्रतीत होता है क्योंकि वह वेश्या प्रसिद्ध है। किन्तु वास्तव में प्रवीणराय तथा अन्य गायिकाओं का वर्णन केशव की गुण-ग्राहकता का परिचायक है। इनमें भी प्रवीणराय का विशेष उल्लेख करने का कारण यह है कि वह कविता करना जानती थी।[4] एक कवि के हृदय में अन्य गुणों की अपेक्षा काव्य-कला-कुशलता के लिये अधिक स्थान होना स्वाभाविक ही है। दूसरे प्रवीणराय नाममात्र की वेश्या थी। वास्तव में वह एकमात्र इन्द्रजीत सिंह ही में आसक्त थी। इस कथन की पुष्टि प्रवीणराय के सम्बन्ध

१. 'बाँचि न आवै लिखि कछु, जानत छाह न घाम।
अर्थ, सुनारी, बैदई, करि जानत पतिराम' ॥२१॥
कविप्रिया, पृ० सं० १११।
'तुला तोल कसवान बनि कायथ लिखत अपार।
राख भरत पतिराम पै सोनो हरत सुनार' ॥११॥
कविप्रिया, पृ० सं० ३०१।
'दियो सोनारन दाम रावर को सोनो हरो।
दुख पायो पतिराम प्रोहित केशव मिश्र सो'।
कविप्रिया, पृ० सं० ३०६।

२. 'सविता जू कविता दई, ताकहँ परम प्रकास।
ताके काज कविप्रिया, कीन्ही केशव दास' ॥६१॥
कविप्रिया, पृ० सं० १६

३. 'रत्नाकर लालित सदा, परमानंदहि लीन।
अमल कमल कमनीय कर, रमा कि रायप्रवीन ॥४८॥
राय प्रवीन की शारदा सुचि रुचि रंजित अंग।
वीणा पुस्तक धारिणी राज हंस सुत संग ॥५९॥
वृषभ वाहिनी अंग उर, बासुकि लसत प्रवीन।
शिव संग सोहै सर्वदा, शिवा कि राय प्रवीन' ॥६०॥
कविप्रिया, पृ० सं० १७, १८।

४. 'नाचति गावति पढ़ति सब, सबै बजावत बीन।
तिनमे करत कवित्त इक, राय प्रवीन प्रवीन' ॥५६॥
कविप्रिया, पृ० सं० १६।

में प्रचलित प्रसिद्ध किंवदन्ती से भी होती है जिसका उल्लेख आरम्भ में किया जा चुका है। यदि उसका हृदय एक धनलोलुप वेश्या का हृदय होता तो वह भारत-सम्राट अकबर के बुलाने पर उसके दरबार में जाने के लिये सहर्ष प्रस्तुत हो जाती, क्योंकि वहाँ महाराज इन्द्रजीत के दरबार की अपेक्षा उसे अधिक धन तथा ऐश्वर्य प्राप्त होने की सम्भावना थी। केशव ने 'शिवा' कह कर उसके इसी स्वच्छ हृदय की प्रशंसा की है। इसके अतिरिक्त किसी सुन्दरी को 'लक्ष्मी' तथा विदुषी को 'सरस्वती' कहना भी साधारण व्यवहार की बातें हैं और प्रवीणराय में यह दोनों गुण पर्याप्त मात्रा में थे।

ओड़छाधीश महाराज रामशाह के छोटे भाई इन्द्रजीत सिंह भी आचार्य केशव को अपना गुरु मानते थे और उन्होंने गुरु-दक्षिणा के रूप में आचार्य को २१ गाँव दिये थे।[१] केशव को 'पतिराम' सुनार का भी मानस-गुरु कहा जा सकता है, क्योंकि अनुमानतः इन्हीं के संसर्ग से पढ़ा-लिखा न होने पर भी वह कविता समझने लगा था। सच तो यह है कि केशवदास जी अपने परवर्ती प्रायः सभी रीतिकालीन कवियों के मानस-गुरु कहे जा सकते हैं क्योंकि प्रवीणराय के प्रतिनिधित्व से इन्हीं के द्वारा उन्हें काव्य के बाह्य रूप को सँवारने की शिक्षा मिली थी।

केशव का पर्यटन :

ओड़छा दरबार से घनिष्ट सम्बन्ध होने के कारण यद्यपि केशव को कबीर और तुलसी के समान देश-भ्रमण का अवसर न मिला था किन्तु केशवदास जी के ग्रंथों से ज्ञात होता है कि उन्होंने भी समय-समय पर प्रयाग, काशी, दिल्ली, आगरा आदि उत्तरी भारत के प्रमुख नगरों का पर्यटन किया था। आगरे वह बीरबल से मिलने जाया करते थे। प्रयाग एक बार महाराज इन्द्रजीतसिंह के साथ सम्भवतः तीर्थाटन के लिये गये थे।[२] तुलसीदास जी से काशी में केशव को भेंट होने की सम्भावना पर पूर्वपृष्ठों में विचार किया जा चुका है। 'विज्ञानगीता' ग्रंथ में अंकित वाराणसी और दिल्ली की तत्कालीन सामाजिक स्थिति के चित्र से भी केशव के इन स्थानों को जाने की पुष्टि होती है। इसके अतिरिक्त केशवदास महाराज चन्द्रसेन और राना अमर सिंह के दरबार क्रमशः जोधपुर के सिवाना नामक स्थान और मेवाड़ (उदयपुर) भी गये थे।

प्रकृति तथा स्वभाव :

केशवदास जी प्रकृति से स्वाभिमानी थे। उनमें तुलसी के समान विनीत भाव न था। उन्हें अपने पांडित्य का अभिमान था अतएव उन्होंने अपने लिए 'केशव कवि सिरमौर'

---

१. 'गुरु करि मान्यो इन्द्रजित, तन मन कृपा बिचारि।
ग्राम दिये इकबीस तब, ताके पायं पखारि' ॥२०॥
कविप्रिया, पृ० सं० २२।

२. 'इन्द्रजीत तासों कह्यौ मांगन मध्य प्रयाग'।
कविप्रिया, पृ० सं० २१।

अथवा 'विदित जहान' आदि विशेषणों का प्रयोग किया है। केशवदास जी हृदय के उदार थे। सनाढ्य-वंश की सीमा से अधिक प्रशंसा करने से उनका हृदय संकीर्ण प्रतीत होता है किन्तु, जैसा कि पूर्वपृष्ठों में कहा जा चुका है, अपनी वृत्ति की रक्षा की चिन्ता ने उन्हें ऐसा करने के लिए बाध्य किया था, अन्यथा उनका हृदय विशाल था और उसमें विदेशियों तथा विजातियों के लिये भी स्थान था जैसा कि निम्नलिखित छन्द से प्रकट होता है।

'पहिले निज वर्तिन देहु अबै। पुनि पावहिं नागर लोग सबै।
पुनि देहु सबै निज देशिन को। उबरो धन देहु विदेशिन को'।[1]

इतना अवश्य है कि वह पहले घर में दीपक जला कर फिर बाहर जलाने के पक्षपाती थे। हृदय की इसी विशालता के कारण उन्हें तुच्छ से तुच्छ व्यक्ति से मिलने में भी संकोच न होता था। यहाँ तक कि उन्होंने पतिराम सुनार तथा बीरबल के दरबान चन्द का नाम भी अपनी कविता द्वारा अमर कर दिया है।[2] केशवदास जी को धन का विशेष लोभ न था। धन की अपेक्षा आदर और सम्मान को वह कहीं अधिक मूल्यवान समझते थे।[3] निर्भीकता तथा स्पष्टवादिता केशवदास जी के चरित्र की अन्य प्रमुख विशेषता थी। उन्हें 'हां हुजूरी' नहीं आती थी। महाराज वीरसिंह देव के आक्रमण के समय राजा रामशाह को उनकी न्यूनता बतलाते हुये वीरसिंह देव को राज्य देने का परामर्श देना अथवा वीरसिंह के पास चिरस्थायी सन्धि कराने के निमित्त जाने पर उनको राजा रामशाह के चरणों की सेवा करने की सलाह देना, केशव से निर्भीक पुरुष का ही काम था। केशव की निष्पक्षता और स्पष्टवादिता का प्रमाण 'रामचंद्रिका' ग्रंथ में भी दो स्थलों पर मिलता है। केशव रामद्वारा सीता-त्याग को महान अपराध समझते थे। कथा-क्रम के लिए उन्होंने कथा के इस अंश का भी वर्णन किया है किन्तु रामचंद्र जी का यह कृत्य उनके हृदय में सदैव खटकता रहा। अतएव लवकुश द्वारा शत्रुघ्न और लक्ष्मण के पराजित होने का समाचार मिलने पर वह अपने इष्टदेव राम के प्रति भी भरत के मुख से यह कहलाने में नहीं चूके कि जिसके चरित्र का गान सुनने से संसार पवित्र हो जाता है ऐसी सीता को आपने

---

१. रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, छं० सं० ६, पृ० सं० ३।

२. 'सब सुख चाहो भोगिबो, जो पिय एकहि बार।
चंद गहैं जहँ राहु को, जैयो तेहि दरबार' ॥३७॥

कविप्रिया, पृ० सं० ३४०।

३. 'इन्द्रजीत तासों कह्यो मांगन मध्य प्रयाग।
मांग्यो सब दिन एक रस कीजै कृपा सभाग ॥१८॥
यौंही कह्यौ जु बीरबर मांगि जु मन में होय।
मांग्यो तब दरबार में मोहि न रोकै कोय' ॥१९॥

कविप्रिया, पृ० सं० ११, ९२।

किस पाप के कारण त्याग दिया। जो निर्दोष को दोष लगाता है उसे ऐसा फल मिलना स्वाभाविक ही है।[1]

इसी प्रकार केशव ने विभीषण के चरित्र की भी तीव्र आलोचना की है। केशव को यह मान्य नहीं कि रावण की अनीति के कारण ही विभीषण राम की शरण में गया था। यदि ऐसा था तो जिस समय रावण सीता को हर लाया उसी समय वह राम की शरण में क्यों नहीं गया।[2] केशव की यह शंका निर्मूल नहीं है, किंतु विभीषण की अन्य दुर्बलता रावण-बध के पश्चात् मन्दोदरी को पत्नी-रूप में रखना तो अक्षम्य अपराध है। विभीषण के रामभक्त होने के कारण तुलसीदास ने उसके चरित्र के इस अंश पर पर्दा पड़ा रहने दिया है किन्तु स्पष्टवादी, निष्पक्ष केशवदास इस बात को सहन न कर सके, अतएव उन्होंने लव के मुख से विभीषण को तीखी फटकार सुनवाई है।[3] केशव बड़े ही बुद्धिमान थे। परस्पर विरोधी आश्रयदाताओं के आश्रय में रहते हुये सबको प्रसन्न रखना और उनके कृपापात्र बने रहना केशव की बुद्धिमत्ता का प्रमाण है। हास्य और विनोद की मात्रा भी केशव में पर्याप्त थी। राजा-महाराजाओं के दरबार में रहने वाले व्यक्ति के लिये इन गुणों का होना आवश्यक ही है। वे कितने विनोदी थे इसका संकेत 'कविप्रिया' के निम्नलिखित छंद में मिलता है, जिसमें किसी कर्कशा स्त्री पर व्यंग की बौछार की गई है :

'मिल्ली ते रसीली जीली, राटी हू की रट लीली,
स्यारि ते सवाई भूत भामिनी ते आगरी।
केशोदास भैंसन की भामिनी ते भासे वेष,
खरी ते खरी सी धुनि ऊटी से उजागरी।
भेड़िन की मीड़ी मेड़; ऐंड़ न्योरा नारिन की,
वोकी हूँ ते बांकी बानी, काकि हू की कागरी।
करी सकुचि, संकि कूकरियो मूक भई,
घूघू की घरनि को है मोहै नाग नागरी'।[4]

भावुकता और रसिकता की भी केशव में कमी न थी। प्रसिद्ध दोहा जिसमें केशवदास जी ने

१. 'पातक कौन तजी तुम सीता। पावन होत सुने जग गीता।
दोष विहीनहिं दोष लगावै। सो प्रभु ये फल काहे न पावै'॥
रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, पृ० सं० ३०८।

२. 'देव वधू जब ही हरि ल्यायो। क्यों तबही तजि ताहि न आयो।'
रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, पृ० सं० ३०८।

३. 'जेठो भैया अन्नदा राजा पिता समान।
ताकी तू पत्नी करी पत्नी मातु समान॥१८॥
को जानै कै बार तू कही न ह्वै है माय।
सोई तैं पत्नी करी, सुनु पापिन के राय'॥१६॥
रामचन्द्रिका, उत्तरार्ध, पृ० सं० ३१६।

४, कविप्रिया, छं० सं० ४४, पृ० सं० १०२।

मृगलोचनी युवतियों द्वारा बाबा सम्बोधन सुन कर वृद्धावस्था में अपने सफेद बालों को कोसा है, इस बात का प्रमाण है कि केशव अपने जीवन के अन्तिम दिनों तक भावुक और रसिक रहे।

केशव का ज्ञान :

जिस प्रतिभा-सम्पन्न कवि का ज्ञान और अनुभव जितना विस्तृत होगा वह उतना ही महान कवि हो सकता है। कवि 'प्रकृति का पुरोहित' कहा गया है अतएव संसारिक ज्ञान का कोई भी विषय ज्योतिष, वैद्यक, इतिहास-पुराण आदि महाकवि के लिये उपेक्षणीय नहीं हो सकता। महाकवि क्षेमेन्द्र ने अपने ग्रंथ 'कविकुल-कंठाभरण' में लिखा है कि कवि को तर्क, व्याकरण, नाट्यशास्त्र, कामशास्त्र, राजनीति, महाभारत, रामायण, वेद, पुराण, आत्मज्ञान, धातुवाद, रत्नपरीक्षा, वैद्यक, ज्योतिष, धनुर्वेद, गजतुरंग-परीक्षा, इन्द्रजाल आदि विषयों का ज्ञान होना चाहिये। इस सम्बन्ध में क्षेमेन्द्र स्वयं उदाहरण था। उसकी प्रतिभा ऐसी बहुमुखी थी कि वह कभी वेदान्त पर लिखता था, तो कभी कुट्टनियों की लीला का उद्घाटन करता था। कभी छन्दशास्त्र पर ग्रंथ लिखता था तो दूसरे समय किसी महाकाव्य की रचना करता था। केशवदास का ज्ञान और अनुभव भी बहुत विस्तृत था। संसारिक ज्ञान का कदाचित् ही कोई विषय हो जहाँ केशव की थोड़ी-बहुत पहुँच न हो। ब्रजभाषा पर केशव का पूर्ण आधिपत्य था, छन्दशास्त्र का उन्हें अन्य कवि-दुर्लभ ज्ञान था, संस्कृत का पांडित्य उनकी पैतृक सम्पति थी तथा अलंकार एवं काव्यशास्त्र के आप आचार्य थे। इसके अतिरिक्त भूगोल, ज्योतिष, वैद्यक, वनस्पति-विज्ञान, संगीत-शास्त्र, राजनीति, समाजनीति, धर्मनीति, वेदान्त आदि विषयों का भी केशव को पर्याप्त ज्ञान था। केशवदास जी ने इन विषयों से सम्बन्ध रखने वाले तथ्यों और बातों का अपने विभिन्न ग्रंथों में समय-समय पर उपयोग किया है।

भौगोलिक-ज्ञान :

भूगोल-शास्त्रियों के अनुसार पृथ्वी का विस्तार पश्चिम से पूरब की ओर है; पश्चिम से पूरब २५००० मील तथा उत्तर से दक्षिण ८००० मील। 'रामचंद्रिका' में रामचंद्र जी के विवाह के अवसर पर गाई हुई प्रसिद्ध 'गारी' में केशव ने इस भौगोलिक तथ्य का प्रच्छन्न रूप से उपयोग करते हुये लिखा है कि 'पृथ्वी-रूपी स्त्री शेष के फण-रूपी मणिजटित पलका पर पश्चिम की ओर शीश तथा पूरब की ओर पैर कर के लेटती है'।

> **'सुभ सेस-फन मनि माल पलिका पौढ़ि पढ़ति प्रबन्ध जू।**
> **करि सीस पच्छिम पाय पूरब गात सहज सुगन्ध जू'॥**[1]

ज्योतिष-ज्ञान :

केशवदास जी को ज्योतिष का भी थोड़ा-बहुत ज्ञान था। 'रामचंद्रिका' में रामचंद्र जी के नखशिख-वर्णन के प्रसंग में केशवदास जी ने अपने ज्योतिष-ज्ञान का परिचय दिया है। ज्योतिष के अनुसार उत्तराषाढ़, श्रवण और धनिष्ठा नक्षत्र के कुछ अंश मकर राशि में पड़ते

१, रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० १०२

हैं। रामचन्द्र जी के कानों (श्रवण) में मकराकृति कुंडल देख कर केशव को ज्योतिष के इस तथ्य का स्मरण आ गया है :

'श्रवण मकर कुंडल लसत मुख सुखमा एकत्र।
शशि समीप सोहत मनो, श्रवण मकर नत्त्र'॥[1]

इसी प्रकार अन्य ग्रंथों में भी कई कथनों में उनका ज्योतिष-ज्ञान प्रकट है।

वैद्यक-ज्ञान :

केशव से छठी पीढ़ी पूर्व इनके पितामह भाऊराम ने 'भावप्रकाश' नामक प्रसिद्ध वैद्यक-ग्रंथ की रचना की थी, अतः इनके वंश में वैद्यक का व्यवहारिक ज्ञान चला आना स्वाभाविक था। केशव ने 'रामचंद्रिका' में परशुराम-संवाद के अवसर पर परशुराम के मुख से वैद्यक के व्यवहारिक ज्ञान का परिचय दिया है। वैद्यक के अनुसार विष खाये हुये व्यक्ति का उपचार रक्त, घृत अथवा चूने का पानी पिलाना है। परशुराम जी के फरसे ने सहस्त्रार्जुन का मांसरूपी हलाहल खाया था, उसके उपचार में उसे अनेक राजाओं की चर्बी, घी के स्थान पर, पिलाई गई किन्तु विष शान्त न हुआ। अब उसे राम के रक्त-पान की आवश्यकता है :

'केशव हैहय राज को मांस हलाहल कौरन खाय लियो रे।
तालगि मेद महीपति को घृत घोरि दियो न सिरानो हियारे।
मेरो कह्यो कर मित्र कुठार जो चाहत है बहुकाल जियो रे।
तौ लौं नहीं सुख जौ लग तू रघुबीर को श्रोण सुधा न पियो रे'।[2]

इसी प्रकार निम्नलिखित छन्द में मध्य की दो पंक्तियों में परशुराम जी देवताओं के जीर्णज्वर के उपचार के लिये स्वर्ण-भस्म बनाने का निश्चय कर रहे हैं :

'बर बाण शिखीन अशेष समुद्रहि सोखि सखा सुखही तरिहौं।
अरु लंकहि औटि कलंकित की पुनि पंक कनंकहि की भरिहौं।
भल भूँजिकै राख सुखै करि कै दुख दीरघ देवन को हरिहौं।
सित कंठ के कंठहि को कठुला दसकंठ के कंठहि को करिहौं'।[3]

वनस्पति-विज्ञान :

केशवदास जी वनस्पतियों की विभिन्न विशेषताओं से भी परिचित प्रतीत होते हैं। उन्होंने अपने ग्रंथों में कुछ स्थलों पर अलंकार के रूप में वनस्पति-ज्ञान का उपयोग किया है। 'जवासा' एक कँटीली घास होती है जो ग्रीष्म ऋतु में हरी रहती और वर्षा में सूख जाती है। केशव कहते हैं :

'घनन की घोरन जवासो ज्यों तपत है'[4]

कुम्हड़े की बतिया के लिये प्रसिद्ध है कि वह अंगुली दिखलाने से मुरझा जाती है। केशव की

१. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ४६, पृ० सं० १११।
२. रामचंद्रिका, प्रथमार्ध, छं० सं० २१, पृ० सं० १२६, ३०।
३, रामचंद्रिका, प्रथमार्ध, छं० सं० ४, पृ० सं० १२३।
४, रामचंद्रिका, प्रथमार्ध, छं० सं० ४, पृ० सं० २८६।

नायिका नायक से कहती है कि यदि हमारी तुम्हारी प्रीति को देख कर लोगों ने उँगली उठाई तो कहीं प्रीति कुम्हड़े की बतिया के समान मुरझा न जाये :

'प्रीति कुम्हेड़े की जैहै जई सम होति तुम्हैं अंगुरी पसरोहीं'।[1]

इसी प्रकार चम्पे की लता के लिये प्रसिद्ध है कि सोलह वर्ष की होने पर वह अति सुगंधित पुष्प देती है। केशवदास जी का नायक, नायिका और चम्पे की माला में सादृश्य देखते हुये उस षोडस-वर्षीया नायिका से कहता है :

'षोडस बरस मय हरष बढ़ाइये'।[2]

केशव तथा संगीतशास्त्र :

केशवदास के प्रसिद्ध आश्रयदाता महाराज इन्द्रजीतसिंह का दरबार संगीत का अखाड़ा था। आपके दरबार में संगीत-नृत्यकला-विशारदा नव गायिकायें थीं। केशव की प्रिय शिष्या प्रवीणराय स्वयं एक प्रसिद्ध गायिका थी। इन परिस्थितियों में रह कर केशव को नृत्य और संगीत का शास्त्रीय ज्ञान होना स्वाभाविक ही था। आपने 'रामचंद्रिका' तथा 'वीरसिंहदेव-चरित' ग्रंथों में महाराज रामचंद्र तथा वीरसिंहदेव की सभा में संगीत तथा नृत्य का उल्लेख करते हुये गान-सम्बन्धी शास्त्रीय बातों और नृत्य के भेदों का वर्णन किया है जो उनके इस विषय के ज्ञान का परिचायक है।

गान में शब्द के उच्चारण की ध्वनि को 'स्वर' कहते हैं। संगीत में स्वर के सात रूप हैं जिनके नाम क्रमशः षड्ज, ऋषभ, गंधार, मध्यम, पंचम, धैवत तथा निषाद हैं। स्वरों का उचारण तीन प्रकार से होता है जिन्हें 'नाद' कहते हैं। संगीत-शास्त्रियों ने उनके नाम कल, मंद्र तथा तार बतलाये हैं। संगीत में समय की माप को 'ताल' कहते हैं। राग के स्वरूप को शब्द-गत करके गाने के ढंग-विशेष को 'आलाप' कहते हैं। ताल में मात्रा के हिसाब से काम लेना 'कला' है। 'जाति' भी ताल-ज्ञान का एक ढंग है। जहाँ एक स्वर का अंत होता है और दूसरे का आरम्भ होता है उस सन्धि-समय की 'स्वरसन्धि' को 'मूर्च्छना' कहते हैं। गीत के प्रबन्ध को 'भाग' कहते हैं और संगीत में स्थान-विशेष पर स्वर के कंप का नाम 'गमक' है। केशव ने निम्नलिखित छंद में संगीतशास्त्र की इन सब बातों का उल्लेख किया है :

'स्वर नाद ग्राम नृत्यत सताल। सुख बरन बिबिध आलाप कालि।
बहु कला जानि मूर्च्छना मानि। बड़भाग गमक गुण चलत जानि'॥[3]

नृत्य के अनेक भेद हैं। केशवदास ने निम्नलिखित छंदों में नृत्य के १७ भेदों मुखचालि, शब्दचालि, उड्डुपानि, तिर्यगपति, पति, अडाल, लाग, धाउ, रापरंगाल, उलथा, ढेंकी, आलम, दिंड, पदपलटी, हुरमयी, निःशंक तथा चिंड नृत्यों का उल्लेख किया है।

---

१. रसिकप्रिया, पृ० सं० १८१।
२. कविप्रिया, छं० सं० ३०, पृ० सं० ३६०।
३. रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, छं० सं० ३, पृ० स० १९८।

'सुभ गान, विविध आलाप कालि।
मुख चालि, चारु अरु शब्द चालि।
बहु उडुप, त्रियगपति, पति, अडाल।
अरु लाग, धाउ, रापडरंगाल।
उलथा, टेंकी, आलम, स-दिंड।
पदपलटि, हुरमयी, निशंक, चिंड।
असु तियन अमनि लखि सुमति धीर।
भ्रमि सीखत है बहुधा समीर'।[1]

इसी प्रकार 'वीरसिंहदेव-चरित' ग्रंथ के निम्नलिखित छंद में भी नाद, ग्राम, स्वर, ताल, लय, गमक, कला, मूर्च्छना आदि संगीत शास्त्र-सम्बन्धी विशेषताओं और शब्दचालि, अडाल, टेंकी, उलथा, आलम, दिंड, हुरमति, निशंक आदि नृत्य के विभिन्न भेदों का उल्लेख हुआ है :

'प्रभु आगे कुसुमांजलि छांड़ि। नृत्यति नृत्य कलनि कौं माड़ि॥
नाद ग्राम स्वर पाद विधि ताल। गर्भविविधि लय आलति काल॥
जानति गुन गमकनि बड़ भाग। जो रति कला मूरछना राग॥
जोरति अरु वचन अकासहि चालि। तीवट उर पति रय अडाल॥
राग डाट अनुरागत गाल। सब्द चालि जानै सुध ताल॥
ढेकी उलथा आलम डिंड। हुरमति संकति पटरी डिंड॥
तिनकी भ्रमी देखि मति धीर। सीखत मिस सत चक्र समीर'॥[2]

अस्त्रशस्त्र-ज्ञान :

केशवदास जी प्राचीन अस्त्र-शस्त्रों से भी परिचित प्रतीत होते हैं। 'रामचंद्रिका' के निम्नलिखित छंद से प्राचीन अस्त्रशस्त्रों की एक छोटी सी सूची तय्यार की जा सकती है। केशव ने इस छन्द में जिन अस्त्रशस्त्रों का उल्लेख किया है वे हैं, मूसल, पट्टिश, (खाँड़ा) परिघ (लोहांगी), असि, तोमर, परसा, कुंत (बरछी), शूल, गदा, भिंदिपाल (गोफना), मोगरा (मुगदर), कटार, नेजा (भाला), अंकुश, चक्र, शक्ति (बाना) तथा बाण।

'सूरज मुसल नील पट्टिश, परिघ नल।
जामवंत असि, हनु तोमर संहारे हैं।
परसा सुखेन, कुन्त केशरी, गवय शूल।
विभीषण गदा, गज भिंदपाल टारे हैं।
मोगरा द्विविद, तार कटरा, कुमुद नेजा।

१. रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, छं० सं० ४, ५, पृ० सं० १६०।
२. वीरसिंहदेव-चरित, पृ० सं० १२३।

अंगद शिला, गवाक्ष विटप बिदारे हैं।
अंकुश शरभ, चक्र दधि-मुख, शेष शक्ति।
बाण तीन रावण श्री रामचंद्र मारे हैं'।[1]

पौराणिक ज्ञान :

केशवदास जी ने रामायण, महाभारत और पुराणों का गंभीर अध्ययन किया था। पौराणिक वृत्ति आपके कुल की जीविका ही थी। आपने अपने सभी ग्रंथों में विभिन्न स्थलों पर पुराण, रामायण तथा महाभारत आदि के आख्यानों तथा कथाओं का संकेत किया है। इस प्रकार के कुछ छंद यहाँ उपस्थित किये जाते हैं :

'खात न अघात सब जगत खवावत है,
द्रौपदी के साग पात खात ही अघाने हौ।
केशवदास नृपति सुता के सतभाय भये,
चोर ते चतुर्भुज चहूचक जाने हौ।
माँगनेऊ द्वारपाल, दास, दूत, सूत सुनौ,
काठमाहि कौन पाठ वेदन बखाने हौ।
और है अनाथन को नाथ कोऊ रघुनाथ,
तुम तो अनाथन के हाथ ही बिकाने हौ'।[2]

'केशोदास वेद विधि व्यर्थ ही बनाई विधि,
व्याध शबरी को कौने संहिता पढ़ाई ही।
वेषधारी हरि वेष देख्यो है अशेष जग,
तारका को कौने सीख तारक सिखाई ही।
बारानसी बारन कह्यो हो बसो-वास कब,
गनिका कबहि मनकनिका अन्हाई ही।
पतित पावन करत जो न नंदपूत,
पूतना कबहि पति देवता कहाई ही'।[3]

तथा : 'यमदग्नि हो कि शमग्नि उत्तम शुद्ध सन्तक मानियो।
सिंधु सोषि लयो सबै कि अगस्त ऐ मन मानियो।
मुनि मारकराड विहीन हो मुनि मारकराड बखानिये।
मति ओत इंद्रिनि धोत गौतम केश मान कि मानिये'।[4]

राजनीति-सम्बन्धी ज्ञान :

केशव ने राजनीति-सम्बन्धी ग्रन्थों का भी मनन किया था। 'रामचंद्रिका' ग्रंथ के

१. रामचंद्रिका, प्रथमार्ध, छं० सं० ४६, पृ० सं० ४११, १२।
२. कविप्रिया, छं० सं०, २१, पृ० सं० १०६।
३. कविप्रिया, छं० सं०, ६२ पृ० सं० २८२।
४. विज्ञानगीता, छं० सं० २१, पृ० सं० ८७।

उनतालीसवें प्रकाश में राज्य-वितरण के बाद पुत्रों को रामचंद्र जी के द्वारा राजनीति का उपदेश दिलाया गया है। 'विज्ञानगीता', ग्रन्थ में भी संक्षेप में राज-धर्म वर्णित है और 'वीरसिंहदेव-चरित' में तो एक पूरा प्रकाश ही (३१ वाँ प्रकाश) ;राजधर्म-वर्णन को समर्पित है। राज्यरक्षा का यत्न बतलाये हुये राम, पुत्रों तथा भतीजों को शिक्षा देते हैं :

'तेरह मंडल मंडित भूतल भूपति जो क्रम ही क्रम साधै।
कैसहु ताकहं शत्रु न मित्र सु केशवदास उदास न बाधै॥
शत्रु समीप, परे तेहि मित्र, सु तासु परे जु उदास कै जोवै।
विग्रह संधिनि, दाननि सिन्धु लौं लै चहुँ ओरनि तो सुख सोवहि'॥[1]

इसी प्रकार 'वीरसिंहदेव-चरित' ग्रन्थ में एक स्थल पर राजधर्म बतलाते हुये केशव ने लिखा है :

'अविचारी दंडन संचरै। मंत्र न कहूँ प्रकाशित करै॥
लोभी निधन न सौंपिय जीति। अपकारिनि सों करै न प्रीति॥
लोभ मोह मद तै जौ करै। जब तब करता कौ घटि परै'॥[2]

धार्मिक-शास्त्र-सम्बन्धी ज्ञान :

'रामचंद्रिका' के २१ वें प्रकाश तथा 'वीरसिंहदेवचरित' के २७ वें प्रकाश में दान के भेदों आदि का वर्णन है। यह धर्मशास्त्र का विषय है। सात्विक दान किसे कहते हैं यह बतलाते हुये केशव ने लिखा है :

'पूजिये द्विज आपने कर नारि संयुत जानिये।
देवदेवहि थापि कै पुनि वेद मन्त्र बखानिये॥
हाथ लै कुश गोत्र उच्चरि स्वर्ण युक्त प्रमाणिये।
दान दै कछु और दीजहि दान सात्विक मानिये'॥[3]

इसी प्रकार निम्नलिखित पंक्तियों में केशव ने राजस, तामस; तथा सात्विक, राजस और तामस दान के तीन भेद उत्तम, मध्यम और अधम का वर्णन किया है।

'आपु न देय देय जुग दान। तासों कहियै राजसुदान।
बिन श्रद्धा अरु वेद विधान। दान देहि ते तामस दान॥
तीन्यो तीनि तीनि अनुसार। उत्तम मध्यम अधम विचार।
उत्तम द्विज घर दीजै जाइ। मध्यम निज घर देइ बुलाइ॥
मांगे दीजै अधम सुदान। सेवा को सब निष्फल जान'।[4]

दर्शनशास्त्र-सम्बन्धी ज्ञान :

'विज्ञानगीता' ग्रंथ देखने से ज्ञात होता है कि केशवदास ने दर्शन-शास्त्र-सम्बन्धी ग्रंथों

---

१. रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, छं० सं० ३२, पृ० सं० ३३८।
२. वीरसिंहदेवचरित, पृ० सं० १७६।
३. रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, छं० सं० ३, पृ० सं० २।
४. वीरसिंहदेव-चरित, पृ० सं० १६७।

का गम्भीर अध्ययन किया था। इस ग्रंथ में ईश्वर-जीव-सम्बन्धी प्रश्न का विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है। 'रामचंद्रिका' के २४ वें तथा २५ वें प्रकाश में भी 'रामविरक्ति-वर्णन' तथा 'जीवोद्धरन-यत्न' के अन्तर्गत इस विषय का विवेचन हुआ है। केशवदास जी के दर्शनशास्त्र-सम्बन्धी ज्ञान के परिचायक कुछ छन्द यहाँ उद्धृत किये जाते हैं :

'ईश माय विलोकि कै उपजाइयो मन पूत।
सुंदरी तिहि द्वै करी तिहि ते त्रिलोक अभूत॥
एक नाम निवृत्ति है जग एक प्रवृत्ति सुजान।
वंश द्वै ताते भयो यह लोक मानि प्रमान'॥[1]

अथवा :

'जैसे चढ़े बाल सब काठ के तुरंग पर,
तिनके सकल गुण आपुही में आने हैं।
जैसे अति बालिका वै खेलति पुतरि अति,
पुत्र पौत्रादि मिलि विषय विताने हैं॥
आपनो जो भूलि जात लाज साज कुल कर्म,
जाति कर्मकादिकन हीं सो मनमाने हैं।
ऐसे जड़ जीव सब जानत हो केशौदास,
आपनी सचाई जग साचोई कै जाने हैं'॥[2]

तथा : 'खैंचत लोभ दसौ दिसि को गहि मोह महा इत फाँसहि डारे।
ऊँचे ते गर्व गिरावत, क्रोधहु जीवति लूहर लावत भारे।
ऐसे में कोढ़ की खाज ज्यों केशव मारत कामहु बाण निनारे।
भारत पांच करे पंच कूटहि कासों कहैं जगजीव बिचारे'।[3]

अश्वपरीक्षा-ज्ञान :

केशव को अन्य विषयों के साथ ही अश्वपरीक्षा-सम्बन्धी ज्ञान भी था। 'वीरसिंहदेव-चरित' ग्रंथ के १७वें प्रकाश में 'हयसाला-वर्णन' प्रसंग के अन्तर्गत केशव ने घोड़ों की जाति और उनके गुण आदि का विस्तृत विवेचन किया है जो केशव के अश्वपरीक्षा-ज्ञान का परिचायक है। इस सम्बन्ध के दो-एक छंद यहाँ उपस्थित किये जाते हैं :

'रात ओठ जौगरी हीन। राती जीभ सुगंधनि लीन॥
रातौ तरुवा कोमल खाल। ऐसो घोरो सुभ सब काल'॥[4]

---

१. विज्ञानगीता, छं० सं० १२, पृ० सं० ६।
२. विज्ञानगीता, छं० सं० ४४, पृ० सं० ४६।
३. रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, छं० सं० ८, पृ० सं० ५६।
४. वीरसिंहदेव-चरित, पृ० सं० १११।

'भौरी घूटे आड़तर पूँछ हेटतर होइ।
औठ दुवै सब राजि सो बुरौ कहै सब कोइ' ॥[1]

तथा : 'जा घोरे की आँख में नीले पीले बिंदु।
तौ जीवै सो मास दस जो ज्यावै गोविंद' ॥[2]

इस प्रकार स्पष्ट है कि केशव का ज्ञान बहुत विस्तृत था। व्यवहारिक ज्ञान का प्रायः कोई भी विषय ऐसा न था जो केशव के ज्ञान की परिधि के बाहर हो।

१. वीरसिंहदेव-चरित, छं० सं० ६६, पृ० सं० ११३।
२. वीरसिंहदेव-चरित, छं० सं० ७६, पृ० सं० ११४।

तृतीय अध्याय

ग्रंथ तथा टीकायें

केशव के ग्रंथों की संख्या के विषय में हिन्दी-साहित्य के इतिहास-लेखक तथा अन्य विद्वान एक मत नहीं हैं। शिवसिंह सेंगर ने अपने ग्रंथ 'शिवसिंहसरोज' में केशव के पाँच ग्रंथों, विज्ञानगीता, कविप्रिया, रामचंद्रिका, रसिकप्रिया तथा रामालंकृत-मंजरी का उल्लेख किया है।[१] सम्भवतः सरोजकार ही के आधार पर अंग्रेज विद्वान एफ० ई० के,[२] सूर्यकान्त शास्त्री,[३] खड्गजीत सिंह[४] तथा सूर्यनारायण दीक्षित[५] आदि विद्वानों ने भी केशव के इन्हीं पाँच ग्रंथों का नाम दिया है। मिश्रबन्धुओं ने मिश्रबन्धु-विनोद ग्रंथ के प्रथम भाग में केशव के सात ग्रंथों का उल्लेख किया है, कविप्रिया, रसिकप्रिया, रामचंद्रिका, विज्ञानगीता, वीरसिंहदेव-चरित, रतनबावनी तथा नखशिख। अन्तिम दो ग्रंथों के विषय में मिश्रबन्धुओं ने लिखा है कि उन्होंने इन्हें नहीं देखा।[६] गौरीशंकर द्विवेदी[७] तथा स्व० आचार्य रामचन्द्रजी शुक्ल ने नखशिख तथा रामालंकृतमंजरी को छोड़ कर मिश्रबन्धुओं के बताये अन्य ग्रंथों का केशव-कृत होना माना है।[८] डा० रामकुमार वर्मा ने अपने 'हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' में विज्ञानगीता, रतनबावनी, जहाँगीर-जसचंद्रिका, वीरसिंहदेव-चरित, रसिकप्रिया, कविप्रिया तथा रामचंद्रिका का केशव-कृत होना लिखा है। इसके अतिरिक्त उन्होंने 'नखशिख' का भी उल्लेख किया है। इसके सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है कि लाला भगवानदीन जी के अनुसार इनकी आठवीं पुस्तक नखशिख है जो विशेष महत्व की नहीं है।[९] इस कथन से प्रकट होता है कि डा० वर्मा ने स्वयं इस ग्रंथ को नहीं देखा। छत्रपूर निवासी गोविंददास जी ने केशव के सात ग्रंथ माने हैं, रसिकप्रिया, कविप्रिया, रामचंद्रिका,

१. शिवसिंह-सरोज, पृ० सं ३८६।
२. हिस्ट्री आफ हिन्दी लिटरेचर, के, पृ० सं० ३७।
३. हिन्दी साहित्य का इतिहास, सूर्यकान्त।
४. 'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, भाग ११, पृ० सं० १६५।
५. 'सरस्वती', दिसम्बर १९०३, 'कवि केशवदास मिश्र' शीर्षक लेख, खड्गजीतसिंह।
६. मिश्रबन्धु-विनोद, प्रथम भाग।
७. बुंदेल-वैभव, गौरीशंकर, पृ० सं १६३, १७५।
८. हिन्दी-साहित्य का इतिहास, शुक्ल, पृ० सं २१४ तथा २१६।
९. हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, वर्मा, पृ० सं० ५११।

विज्ञानगीता, रामालंकृतमंजरी, रतनबावनी तथा वीरसिंहदेव-चरित।[1] गणेशप्रसाद जी द्विवेदी ने अपने ग्रंथ 'हिन्दी के कवि और काव्य', प्रथम भाग, में इन ग्रंथों के साथ ही 'नखशिख' को भी केशव-कृत माना है। 'रामालंकृतमंजरी' के सम्बन्ध में द्विवेदी जी ने लिखा है कि उन्होंने यह ग्रंथ नहीं देखा।

नागरी-प्रचारिणी सभा की खोज-रिपोर्टों में केशवदास, केशवराय, केशव अथवा केशवगिरि के नाम से मिलने वाले ग्रंथ निम्नलिखित हैं।

खोज-रिपोर्ट सन् १६०० ई०

कविप्रिया[2]

केशवदास मिश्र-कृत
छन्द संख्या ११४०
स्थान : बा० कृष्णबल्देव वर्मा
केसरबाग, लखनऊ

विज्ञानगीता[3]

केशवदास मिश्र-कृत
छन्द संख्या १४८७
स्थान : बा० कृष्णबल्देव वर्मा,
केसरबाग, लखनऊ

खोज-रिपोर्ट सन् १६०३ ई०

रामचंद्रिका[4]

केशवदास मिश्र-कृत
छन्द संख्या ३४१०
स्थान : पुस्तकालय
महाराजा बनारस

नखशिख[5]

केशव दास मिश्र-कृत
पृष्ठ संख्या १६
छन्द संख्या ३००
स्थान : पुस्तकालय
महाराजा बनारस

१. 'लक्ष्मी', भाग ७, अंक ४ तथा ५, 'बुन्देलखण्ड रत्नमाला' शीर्षक लेख, गोविंददास।

२. नागरी-प्रचारिणी सभा खो० रि०, पृ० सं० ४१।

३. नागरी-प्रचारिणी सभा खो० रि०, पृ० सं० ५१।

४. नागरी-प्रचारिणी सभा खो० रि०, पृ० सं० ११।

५. नागरी-प्रचारिणी सभा खो० रि०, पृ० सं० २३।

रसिकप्रिया[1]

केशवदास मिश्र-कृत
छन्द संख्या १६२०
स्थान : पुस्तकालय महाराजा
बनारस

जहाँगीर-जस-चंद्रिका[2]

केशवदास मिश्र-कृत
पृष्ठ संख्या ३०
छन्द संख्या ४५०
स्थान : पुस्तकालय महाराजा
बनारस

वीरसिंहदेव-चरित[3]

केशवदास मिश्र-कृत
पृष्ठ संख्या १०२
छन्द संख्या २१२१
स्थान : राजकीय पुस्तकालय
दतिया

रतनबावनी

केशवदास मिश्र-कृत
पृष्ठ संख्या १६
छन्द संख्या ३५०
स्थान: राजकीय पुस्तकालय,
दतिया

आदि:

'श्री गनेस जू नमः अथ रतल बाहुनी लिष्यते ।

कुंडलिया :

दिल्लीपति सजि सैन सब चलौ सहित अभिमान ।
है गय पयदर को गनै कियौ न बीच मिलान ।
कियौ न बीच मिलान नृपत बडि संग सुलीने ।
पात साहि षत लिषित अगवनै भेज सुदीने ।
सुन रतन सेन मधुसाहि सुव अवसु पेत तह सजियव ।
कहि केसव मौलिस पूर हुय नगृ आपनौ षंडियव ।

---

१. नागरी-प्रचारिणी सभा खो० रि०, पृ० सं० ६० ।
२. नागरी-प्रचारिणी सभा खो० रि०, पृ० सं० ३१ ।
३. नागरी-प्रचारिणी सभा खो० रि०, पृ० सं० १७७-१७८ ।

छप्पै : वाचौ षत तव कुवर हृदय महि बहुत सुफुल्लिव।
लाज रषहु कुल सहित बचन साथन सौ वुल्लिव।
लिषि मलेच्छ यह बात ज्वाय सबही सिष दिज्जहु।
तुम सब सिर मम भार पीठ पर बल सब किज्जहु।
जौ रतनिसेन मधुसाहि सुव अंगद सम पग रुप्पहहु।
कहि केसव पति सिर धार पुनि अग्र साहि दल लुट्टहहु।

दोहा : साह चमू मधुसाहि सुव हरवलदल कर अगृ।
हय गय पयदर सज सकल छांड़ ओडछौ नगृ।

अन्त : साहि कौ वचन। छप्पय। सुनि नरिंद मधुसाहि पुत्र तुव ब्रह्म
रूप अब। तिहि लगि प्रगटे राम काम पूरन भये तुम सब।
सब सनिसार असार जान जिय बचन न छंडहु।
साठ सहस दल प्रबल लिभिर छत्रिय प्रन मंडहु।
अब धन्य धन्य महराज तुम प्रगट जगत जस जगमगेहु।
सहि बार बार इमि उच्चरै केसव कुल उद्दित किग्रेहु ॥४८॥
रतन सैन रन रहिव पान छत्रिय ध्रम राषहु।
करौ सुवचन प्रमान सूर सुर उर पग धारहु।
डेढ़ सहस असवार सहस दो पैदर रहियहु।
पील पचास समेत इतिक सुर पुर मग लहियव।
सहस चार सेना प्रबल तिन मह कोउ न वर गहिव।
सोइ रतन सैन महराज को केसव जस छंदन कहिव"[1] ॥४६॥

खोज-रिपोर्ट सन् १६१७, १६१६ ई०

रि० नं० ६६ (ब) रसिकप्रिया

केशवदास-कृत
पृष्ठ संख्या ५० (खंडित)
छन्द संख्या १३३०
स्थान : श्री देवकी नन्दनाचार्य
पुस्तकालय, कामवन,
भरतपुर

रि० नं० ६६ (अ) रसिकप्रिया

केशवदास-कृत
पृष्ठ संख्या ६८
छंद संख्या १०३२
स्थान : सेठ चन्द्रशंकर, अनूपशहर,
बुलंदशहर

१. नागरी-प्रचारिणी सभा खो० रि०, पृ० सं० १७८।

रि० नं० ८२ (स) रसिकप्रिया

पृष्ठ संख्या ३४
छन्द संख्या ५०६
प्रतिलिपि-काल : सं० १७७४ वि०
स्थान : पं० महावीर प्रसाद दीक्षित
मौ० चंदयाना, फतेहपुर

रि० न० ६२ (ब) कविप्रिया (अपूर्ण)

पृष्ठ संख्या २१
छन्द संख्या ६६३
स्थान : शिवलाल बाजपेई
असनी, फतेहपुर

रि० न० ६६ कविप्रिया

केशवदास-कृत
पृष्ठ संख्या १२६
छन्द संख्या १६७७
स्थान : भारती, प्रयाग

रि० न० ८२ (अ) विज्ञानगीता

पृष्ठ संख्या ८४
छन्द संख्या १११८
प्रतिलिपि-काल : सं० १६४८ वि०
स्थान : पुस्तकालय राजा बलरामपुर
जिला गोंडा

जैमुन की कथा

पृष्ठ संख्या १५६
छन्द संख्या ३५६५
स्थान : ला० नन्दलाल मुत्सद्दी
कंथरा, छतरपूर

आदि 'श्री गणेशायनमः । श्री सरस्वतीदेवन्मः ।
श्री पुरगुरमेन्मः । अथजैमुन की कथा लिष्यते ।

दोहा विघन विनासन भव हरन लम्बोदर उपदेस ।
धर्म कथा सुभ संजरी निर्वाहौ सुष वेस ॥१॥

कवित्त तीनो देव वन्दना करत जाकी प्रीति हेत ।
जुग जुग तीनों लोक प्रभुता बढ़त है ।
संकट विनासन सुग्रंथ के विघन नास ।
सरन गये तै सरनागत गहत है ।

सुनमुष भग्रै होत निर्मल सरीर अति।
नाम के लिये तै बानी बुद्धि सरसत है।
गन अधिपति गिरि नंदिनी के नंदन जू।
केशव सरन आये चितये सुमन है।

अंतः कुंडलिया राचौ हरि सों प्रीति मन छोड़ौ सकल विकार।
काम क्रोध मद लोभ मिलि इनको करौ प्रहार।
इनको करौ प्रहार सुकृत सीतल गृह आनौ।
घट घट प्रगट प्रसिद्धि ब्रह्म येकहि पहिचानौ।
येक ब्रह्म पहिचान हो जो गुर साँचौ।
जीवन मुक्ति सु होइ कहत केसौ इमि राचौ ॥२०॥

दोहा सुने प्रीति सों नारि नर पूजे सब मन काम।
अंत काल मुक्तिहि लहै पावै पूरन धाम ॥२१॥
लघुमति गूढ़न में कह्यो जो स्यो अछिर सार।
केसव पर निजु करि कृपा सुकवि संवारन हार ॥२२॥

इति श्री महाभारथे अस्वमेध के पर्वने जैमुनि कृते प्रधान केसौराइ विरचितायां फल-स्तुति वर्ननो नाम सरसठमोध्याय ॥६७॥

जैमुन उवाच। दोहा। बहु विध भाषा विस्थरी कीन्ही कथा रसाल।
पठत अर्थ मन में फुरे सुमिरौ श्री गोपाल ॥१॥
इति श्री जैमुन कथा संपूर्न जग्य भर आंगूलि
षने रही जैसी प्रति पाई तैसी लिषी मम दोषो
न दीयते चूक भूल सम्हार वाचिवो लिषत
श्री लाला लछमन सिंह माहशुदि ६ गुरौ सं० १८४८
मु० श्रीनगार।

खोजरिपोर्ट सन् १६१०, ११ ई०

रि० न० १४६ केशव कवि-कृत

(१) हनुमान जन्म-लीला :

पृष्ठ संख्या ४५
छन्द संखया ५००
स्थान : पं० भानुप्रताप तिवारी
चुनार

आदि : श्री गनेस ए नाम कथा हनोमान जलम लीषते राम सहइ सद सुभ। श्री गनपती बंदो के सुभ-दायक परम वोदरा। सीधी सदन करी वरा वदन मदन लजावन हरा। जाट मुकुट सुर सीधी मुनी चंद

वीराजत भाल । असी मुराती मनम बसै कसन
मीटै भ्रम जाल । जेही पुर जत सुर सीधी मुनी
सुफला फल मेन काम । सोई समराथ के सरान
मे जस जगत गुन नाम । चौपइ । प्रथमै सुमीरौ
स्त्री गुरा चराना । परसत जाह सकल दुष हरना ।

मध्य : इहै विचारा करत मन माही । यही प्रकारा मोरां
नीसी राही । होइ लागी कुछु कुछु उजियारा ।
प्राची दीसी हनोमान नीहरा । वादति मरा
खीड दे वहिन । असन श्रहो नोद दी वंद वरन ।
वल पतंग जोती जनु चका । हनींवत देषी जनु
फूल पाका । दोहा । मतुवन एक लल फल
डरा वीचर कीन्ह । राय समेत दीन राव
कोतर की लीली कपी लीन ।

अन्त: दोह हनी वत जलम पुनीत है गवत वेद पुरान ।
जासु सुने भय सब मिटे तवन सुने चीतु लाइ ।
इति श्री री हनोमान जलम संपुरान
मिती अगहन सुदी चौथी कलीषी मादनी राम
बन हनोमन जलम संवत १८६४ नाम[1]

(२) बालिचरित्र :

पृष्ठ संख्या ६
छन्द संख्या ६२
स्थानः पं० भानुप्रताप तिवारी
चुनार

आदि : श्री गणेशायनमः वाली चरित्र लिष्यते ।
वैलोचना तन तज्यों तवही वली पाएउ राजु
तेज बढ़ी अधिकार जस अक मैन समाजु
वाजुनी ज्ञान वीवी घी बीधी फीरी
दोहाइ देस मन वंछीत फल साधन लागे
जेही वे होइ सुरेस वली दानी माए वली
दानीज बीदीत ।१।

मध्य : वीप्र सकल अनुप समुझि देखै वो
मन माही सोभा अगम अपार सो पट तरीए
काही एक समुझी मन होत है दवावन अवतार
प्रभु तजी और न दूसरौ हो मानहु वचन हमार ।।१०।।

---

१. ना० प्र० स० खो० रि०, पृष्ठ संख्या २३४ ।

अन्त : वली चरित्र जो गावै जो सुनै मन लावै।
अवसी होइ मन थोर चारी फल तुरतही पावै।
कैसौ भगती कपसे सुफल होत मन धाम।
राम नाम रघुनाथ भजन ते पावो पद निर्वान ।।२४।।
इति श्री वली चरित्र वीर चीत भासा कृत समापती संपुरन[1]

रि० न० १४८ आनन्द-लहरी

केशव गिरि-कृत
पृष्ठ संख्या १६
छन्द संख्या २१०
स्थानः पं० रघुनाथ राम,
गायघाट, बनारस

'श्री गणेशायनमः। अथ आनन्द लहरी प्रारम्भ।
दोहा। यह आनन्द समुद्र की लहरें अपरम्पार।
सो कछु कछु वरनन करी केशव के मति अनुसार ।।१।।
प्रथम शंकराचार्य गुरु वरन्यो ग्रंथ अनूप।
जिनके शुभ अश्लोक को कीन्हेउ कवित सरूप।
अथ मंगलाचरण। परम शिव अंक पै अलंकृत
सोहाग भरी गौरी के गोद मोद मंगल निधान है।
केशोगिरि सुन्दर गजराज को वदन चारु एक है
रदन छवि मदन लजान है। सुँडा गहि डाडि मालि
खैचत उदर नीर फेकत फुहारनि कौ जाकी यह
वान है। भाजै दुख द्वन्द्व जाके राजै भाल
वाल चन्द हरन अज्ञान कौं सतत कल्यान है।।

अन्त : वन कुसुमति चारु पल्लव लतान के वितान तने हैं
जैसे सोभित बसन्त है। विकसे सरनि कंज पुरेन
सघन भारी भीर मधुकर हँस अवली अनन्त है।
केशो गिरि झुंड ललना के संग सोभित चरित चारु
करत विचारत एकन्त है। वास मलया की लगे
डोलत सलिल एसो ध्यान किये नासहि ज्वर
ज्वाला तुरन्त है ।। ४ ।। दो० ।। यह अनन्द लहरी
रुचिर दायक अमित अनन्द। ज्वर ज्वाला

1. ना० प्र० स० खो० रि०, पृ० संख्या २३४—३५।

दुःख को हरनि कहत केशवानन्द ॥
पढ़े श्लोक वो कवित्त को ताको ज्वर ततकाल
नाशहि शंकर कृपा ते रह जगदेव दयाल
इति श्री आनन्दलहरी कवित्तमो समाप्तम् ।[1]

रि० न० १४६ रसललित

केशवराय·
पृष्ठ संख्या ३६
छन्द संख्या ८७७
स्थान : पं० शिव दुलारे दुबे,
हुसेनगंज, फतेहपूर

आदि : 'श्री गणेशायनमः ।
राधावर घन स्याम को ध्यान करो कर जोरि ।
ब्र...ध्यावें जिन्हैं तन मन बहुत निहोरि ।१।
गनपति गौर महेस के गुरु वेला......
प्रथम करो कवि रीति यह बुध जन देहु बताय ।२।
छप्पय एक दंत गुन......दुति करत अनंदहि
विघुन सकल मिटि जाहिं
देत कर छंद प्रबंध हिरि......सिद्धि के नाथ
देत नन विधि छनहिं महि मूषक पर असवार
होत करि पाल......न कहं सोहत त्रसूल
वनमाल अहि गज मुप सोभा सुभग तुव अति
......संका हरन सो जै जै जै मद नार सुव

मध्य : भलि आवत ते दिन बड़त ही नहि जानी अवार
धों काहे करी । कहु सुन्दरी काऊ रिझाय
उन्हें वरदान लियो मन माहि भरी ।
अजहू पिय आवते कामौ मिटे तऊ लेती अंगूठी हीं
हीर जरी । नहि आए अरी कत काह भयो
महि राख्यो कै कै भाग सुहाग भरी

अन्त : अथ श्रृङ्गार रस लक्षण है जु पिया......पीय
की रीति जेहि भाऊ ताहि कहत श्रृङ्गार रस
पंडित कवि समुझाइ । दोहा । विवि विधि है
श्रृंगार रस कहत सुकवि मन आनि वरनी
प्रथम सजोग को पु.............................

१. ना० प्र० स० खो० रि०, पृष्ठ संख्या २३६ ।

खोज-रिपोर्ट सन् १९२०, २२ ई०

रि० न० ८१ कृष्ण-लीला (अपूर्ण)

केशव (ऊंचाहार)
पृष्ठ संख्या ३६
छन्द संख्या ६४८
स्थान : पं० शिव प्रसाद मिश्र,
मौजमाबाद, फतेहपुर

आदि : श्री गणेशायनमः ।

विघ्न हरण असरण शरण गणपति गिरिजानन्द ।
सिद्धि दायक ध्यावत तुम्हैं मिटत फिकिर के फंद ॥१॥
श्री गनेस को ध्याइ कैं बरनौ कुल परिहार ।
बहुरि कृष्ण लीला बरनि करौ ग्रंथ विस्तार ॥२॥
छत्री वंस विरंचि हू कीन्हे अवनि अपार ।
ताही छत्री वंस में उद्भुत भो परिहार ॥३॥
दया दान रन वीर अति जानत सकल जहान ।
करत काटि खल दल प्रबल जब कर गहत कृपान ॥४॥
राजा भारति साहि को कुल प्रदीप परिहार ।
धरम धुरंधर धीर अति लसै रुद्र अवतार ॥५॥

सवैया : पूरन प्रेम सो पालि प्रजानि को पुण्य महीरुह बीज बयो है ।
दीन के बंधु दया दिल राखि गुनी निगुनी सबही को दयो है ।
यो प्रगट्यो परिहार उदार सो रुद्र मनो अवतार लयो है ॥
राजत जैसे सुराधिप ऊपर भूपर भारथ साहि भयो है ।

अन्त : ध्यान में नेकु न आवत हौ जऊ जोगी जती औ समाधि न खोलत ।
हौ छिपे सो छिति ही में महाप्रभु हौ प्रगटे घट ही घट बोलत ॥
अंतर की तुम जानि महाप्रभु साधु असाधु निरंतर तोलत ।
नन्द जसोमति के प्रगट्यो अब गोकुल गांउ गलीन में डोलत ॥५॥

छंद ॥ तुम हौ गरीब नेवाज । ढूंढै तुम्है ऋषिराज ।
तुम रह्यो इह जग एक ॥
पुनि करौ अमित विवेक ।
कीने बराबर लोक तिन कियो प्रभु उर ओक ॥
तुम एक सरन असरन । तुम दीन के दुख हरन ।
गजराज गनिका तारि । तारी अहल्या नारि ॥
सुनि द्रोपदी की टेरि........

विषय : परिहार वंश-वर्णन, कृष्ण का बाल-चरित्र, कृष्ण का मही रवाना, कालीदाह में कूदना, यशोदा का

प्रेम-वर्णन, कृष्ण का माखन चुराना, गोपियों
का उलाहना, राधा-कृष्ण-विहार-वर्णन, कृष्ण-
प्रभाव वर्णन।

नोट : भारथ साह के महीप सुत भे मर्दन साह।
भुज दंडनि के जोर सो लीनी भू अवगाहि॥

सवैया : संगर में लखि सगुन कौं इमि अंगद सो अभनैक देखानो।
दान दै दीह दया दिल सो दुजराजनि कौं दुखदारिद मानो॥
पंडित औ कविता अति माहिर जाहिर यों जसु विश्व बखानो।
भारत साहि महीपति के भयो मर्दन साहि महा मरदानो॥८॥
मर्दनसिंह सुजान के भयो भवानी मल्ल।
गुन गंभीर पर पीरु हर यों राजा नृप मल्ल॥

भवानी मल्ल की प्रशंसा के कवित्त ये हैं।

नन्दु भवानी मल्ल को बखतावर अवदात।
करै कृपा जापर कछू बखतावर ह्वै जात॥
भूषन बसन सुधा स्वाद के असन तेरे हेम धन
धाम तें कुबेर कैसो पायो है। हाथी रथ घोरे जोरे
पालकी पयादे तेरे हीरा मणि मानिक अमोल गुन
गायो है। कुल परिहार नाती पूत परिवार तेरे
जस और प्रताप मही मंडल में गायो है।
नाम तो तिहारो बख़्तावर कहत सब
भांतिन विरंचि बख्तावर बनायो है॥१४॥

दोहा॥ लसत जहां चारौ बरन चहूँ ओर है नाउं।
निकट उचहरा के वसतु भटनवार शुभ गाउं॥
बख्तावर के हुकुम तें कवि केशव करि प्यार।
कही कृष्णं लीला सुखद निज बुधि के अनुसार॥
इति वंश वर्णन।[1]

केशवदास जी की 'अमीघूँट' :

खोज-रिपोर्ट में दिये ग्रंथों के अतिरिक्त केशवदास के नाम से यह छोटा सा ग्रंथ और मिलता है। इस ग्रंथ की पृष्ठ संख्या १३ तथा छंद संख्या ६८ है। यह ग्रंथ दूसरी बार सन् १९१५ ई० में बेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद से छपा था।

ग्रंथों की प्रामाणिकता :

'कविप्रिया' के दूसरे प्रभाव में केशवदास जी ने अपने वंश का विस्तृत वर्णन किया है। इस ग्रंथ के अनुसार सनाढ्य वंशावतंश कृष्णदत्त मिश्र केशव के पितामह और काशी

---

१. ना० प्र० स० खो० रि०, पृ० स० २७१, ७२।

नाथ पिता थे। 'रामचन्द्रिका' और 'विज्ञानगीता' नामक ग्रंथ में भी अपने वंश का परिचय देते हुये केशव ने अपनी जाति, पितामह तथा पिता का नाम दिया है, जो 'कविप्रिया' के परिचय के अनुकूल है; अतएव यह तीनों ग्रंथ हमारे चरितनायक कवि केशवदास जी की ही रचनाएँ हैं। 'रसिकप्रिया' में कवि ने अपने वंश का परिचय तो नहीं दिया है किन्तु इस बात का उल्लेख किया है कि ओड़छाधीश मधुकरशाह के पुत्र इन्द्रजीतसिंह की आज्ञा से इस ग्रंथ की रचना हुई।[1] 'कविप्रिया' में केशवदास ने इन्द्रजीत सिंह को अपना आश्रयदाता लिखा है।[2] अतएव 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' निस्सन्देह एक ही कवि की रचनायें हैं।

उपर्युक्त चार ग्रंथों के एक ही कवि की कृति होने का दूसरा प्रमाण यह है कि बहुत से छन्द जो एक ग्रंथ में हैं, दूसरे में भी कभी कुछ पाठ-भेद से और कभी ज्यों के त्यों मिलते हैं। 'रसिकप्रिया' और 'कविप्रिया' में समान रूप से मिलने वाले कुछ छन्द यहाँ उपस्थित किये जाते हैं।

"शीतल समीर टारि चंद्र चंद्रिका निवारि केशोदास ऐसे ही तो हरष हिरातु है।
फूलन फैलाइ डार झारि डारि घनसार चन्दन को डारे चित चौगुनो पिरातु है।
नीर हीन मीन मुरझाइ जीवै नीर ही ते छीर के छिरीके कहा धीरज धिरातु है।
पाई है तैं पीर कैधों योंही उपचार करै आगि को तो डाढ़ो अंग आग ही सिरातु है"।[3]
"बार बार बरजी मैं सारस सरस मुखी, आरसी लैं देखि मुख या रस में बोरिहै।
शोभा के निहोरे ते निहारत न नेकहूँ तू हारी है निहोरि सब कहा केहू खोरिहै।
सुख को निहारो जो न मानी सो भली करी तें, केशोदास की सों अब जो तू मुख मोरिहै।
नाह के निहोरो मानति निहारति हौ, नेह के निहारे फिर मोहि जू निहोरिहै"।[4]
"दुरिहै क्यों भूषन बसन दुति यौवन की देह ही की जोति होति द्योस ऐसी राति हैं।
नाह को सुवास लागे ह्वै है कैसी केशव सुवास ही की वास भौंर भीर फारे खाति है।
देखि तेरी सूरति की मूरति विसूरति हौ लालन के दृग देखिवे को ललचाति है।
चलिहै क्यों चंदमुखी कुचन के भार भये कचन के भार तो लचक लंक जाति है"।[5]

तथा :

'मैन ऐसो मन तन मृदुल मृणालिका के सूत ऐसो सुरधुनि मननि हरति है।
दारो कैसो बीज दंत पांति से अरुण ओठ केशव दास देखे दृग आनंद भरति है।

१. रसिकप्रिया, छं० सं० ७, ८, १० पृ० सं० १०-११।
२. कविप्रिया, छं० सं० ३०, ३८, ४० पृ० सं० ७ तथा ६।
३. रसिकप्रिया, छं० सं० २९, पृ० सं० १८ तथा
कविप्रिया, छं० सं० ३८, पृ० सं० ६८ (पाठभेद से)
४. रसिकप्रिया, छं० सं० १६, पृ० सं० १७८ तथा
कविप्रिया, छं० सं० ४, पृ० सं० २७१-७२ (पाठभेद से)
५. रसिकप्रिया, छं० सं० १३, पृ० सं० २११ तथा
कविप्रिया, छं० सं० १०, पृ० सं० ३४७ (पाठभेद से)

ऐरी मेरी तेरी मोहि भावत भलाई ताते बूझत हौं तोहि उर बूझत डरति है।
माखन सी जीभ मुख कंज सो कुँवरि कहु काठ सी कठेठी बात कैसे निकरति है' ॥[1]

'कविप्रिया' तथा 'रामचंद्रिका' में किंचित् पाठभेद से मिलने वाले कुछ छंद निम्नलिखित हैं :

'बालक मृनालनि ज्यों तोरि डारे सब काल, कठिन कराल त्यों अकाल दीह दुख को।
विपति हरत हठि पद्मिनी के पात सम, पंक ज्यों पताल पेलि पठवै कलुष को।
दूरि कै कलंक अंक भव सीस ससि सम, राखत है केशोदास दास के वपुष को।
सांकरे की सांकरन सनमुख होत तोरै, दशमुख मुख जोवै गजमुख मुख को' ॥[2]

'केशवदास मृगज बछेरू चूषै बाघिनीन,
चाटत सुरभि बाघ बालक बदन है।
सिंहन की सटा ऐंचे कलभ करनि करि,
सिंहन को आसन गयंद को रदन है।
फणी के फणनि पर नाचत मुदित मोर,
क्रोध न विरोध जहँ मद न मदन है।
बानर फिरत डोरे डोरे अंध तापसन,
ऋषि को निवास कैधों शिव को सदन है' ॥[3]

'नाद पूरि, धूरि पूरि, तूरि बन, चूरि गिरि, सोखि सोखि जल भूरि, भूरि थल गाथ की।
केशवदास आसपास ठौर ठौर राखि जन, तिनकी संपति सब आपने ही साथ की।
उन्नत नवाय, नत उन्नत बनाय भूप, शत्रुन की जीविका सुमित्रन के हाथ की।
मुद्रित समुद्र सात, मुद्रा निज मुद्रित कै, आई दस दिसि जीति सेना रघुनाथ की' ॥[4]

तथा : 'जेहि सर मधु मद मर्दि महा मुर मर्दन कीनो।
मार्‍यो कर्कश नरक शंख हनि शंख सुलीनो।
निष्कंटक सुर कटक कर्‍यो कैटभ वपु खंड्यो।
खरदूषण त्रिशिरा कबंध तरु खंड बिहंड्यो।
कुंभ करण जेहि मद हर्‍यौ, पल न प्रतिज्ञा तें टरौं।
तेहि बाण प्राण दसकंठ के कंठ दसौ खंडित करौं' ॥[5]

१. रसिकप्रिया, छं० सं० १५, पृ० सं० २१३ तथा
कविप्रिया, छं० सं० १६, पृ० सं० ६१ (पाठभेद से)

२. कविप्रिया, छं० सं० ६६, पृ० सं० ११४ तथा
रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० १, पृष्ठ सं० १ (पाठभेद से)

३. कविप्रिया, छं० सं १३, पृ० सं० १३०, ३१ तथा
रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ४०, पृ० सं० ४३३ (पाठभेद से)

४. कविप्रिया, छं० सं० २४, पृ० सं० १६२ तथा
रामचन्द्रिका, उत्तरार्ध, छं० सं० १०, पृ० सं० २६५ (पाठभेद से)

५. कविप्रिया, छं० सं० ५५, पृ० सं० २७५, ७६ तथा
रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ५१, पृ० सं० ४१४ (पाठभेद से)

इसी प्रकार 'रामचंद्रिका' तथा 'विज्ञानगीता' में किंचित् पाठभेद से मिलने वाले कुछ छंद नीचे दिये जाते हैं :

'भूलत है कुल धर्म सबै तबही जबही यह आनि ग्रसै जू।
केशव बेद पुराणन को न सुनै, समुझै न त्रसै न, हंसै जू।
देवन ते नरदेवन तें नर ते बर बानर ज्यों बिलसै जू।
यंत्र न मंत्र न मूरि गनै जग जीवन काम पिशाच बसै जू' ॥[१]

'जहाँ भामिनी, भोग तहँ, बिन भामिनि कहँ भोग।
भामिनि छूटे जग छुटै, जग छूटे सुख योग' ॥[२]

'कौन गनै यहि लोक तरीन बिलोकि बिलोकि जहाजन बोरैं।
लाज विशाल लता लपटी तन धीरज सत्य तमालन तोरैं।
बंचकता अपमान अयान अलाभ भुजंग भयानक कृष्णा।
पाटु बड़ो कहुँ घाट न केशव क्यों तरि जाय तरंगिनि तृष्णा ॥[३]

तथा :

'निशि वासर वस्तु विचार करै, मुख सांच हिये करुणा धनु है।
अघनिग्रह, संग्रह धर्मकथान, परिग्रह साधुन को गनु है॥
कहि केशव योग जगै हिय भीतर, बाहर भोगन स्यों तनु है।
मनु हाथ सदा जिनके, तिनको बन ही घरु है, घरु ही बनु है' ॥[४]

वीरसिंहदेव-चरित

यह रचना भी केशवदास-कृत है। इसकी रचना वीरसिंह के ही शासन-काल में सं० १६६४ वि० में हुई और इसमें इस तिथि के पूर्व घटित घटनाओं का उल्लेख है। ओड़छा दरबार में इस समय केशवदास नाम-धारी दो कवि नहीं थे। साथ ही स्थान-स्थान पर ऐसे छंद बिखरे पड़े हैं जो साधारण कवि की कृति नहीं हो सकते। ग्रंथ के अंतिम प्रकाश, जिनमें राजा के कर्तव्य बताये गये हैं, देख कर तो रंचमात्र भी संदेह नहीं रह जाता कि इस रचना का लेखक गम्भीर विद्वान् था, जिसका शास्त्र-सम्बन्धी ज्ञान पौराणिकों के वंश के लिये प्रसंशा की बात थी।[५]

---

१. रामचंद्रिका, छं० सं० ६, पृ० सं० २७ तथा विज्ञानगीता छं० सं० १८, पृ० सं० २४, (पाठभेद से) (उत्तरार्ध)

२. रामचद्रिका, छं० सं० १४, पृ० सं० ६१ तथा विज्ञानगीता, छं० सं० २१, पृ० सं० ७३ (पाठभेद से)

३. रामचंद्रिका, छं० सं० २१, पृ० सं० ६१ तथा विज्ञानगीता, छं० सं० १७, पृ० सं० ३४ (पाठभेद से)

४. रामचंद्रिका, छं० सं० ३६, पृ० सं० ८६ तथा विज्ञानगीता, छं० सं० ४३, पृ० सं० १२३ (पाठभेद से)

५. It was written in Samvat 1664 in the reign of Bir Singh Deo and records events which happened before that date, and there were no two Keshava Das in Orchha Darbar. Besides, the work is interspersed through out with stanzas which no ordinary poet can produce, and the chapters at the end describing the duties of a king establish beyond the shadow of a doubt that the writer was a profound scholar whose great learning in the Shastras did credit to the family of Pauraniks to which he belonged.

"Bir singh Deo and the Death of Abul Fazal," by Sitaram.

दूसरे, इस ग्रंथ के पूर्वार्ध में वीरसिंह देव के युद्धों का जैसा सूक्ष्म वर्णन है, वह निकटतम सम्पर्क में रहने वाले लेखक के द्वारा ही किया जा सकता था और वह लेखक केशवदास ही हो सकते थे, क्योंकि वह तटस्थ निरीक्षक न थे वरन् उन्होंने स्वयं उनमें भाग लिया था। 'वीरसिंह देव-चरित' से ज्ञात होता है कि केशवदास एक बार अंगद और प्रेमा नामक व्यक्तियों के साथ राजा रामसिंह द्वारा संधि के लिये वीरसिंह देव के पास भेजे गये थे।[1] फिर 'विज्ञानगीता' ग्रंथ से यह भी प्रकट होता है कि केशवदास जी वीरसिंह देव के राज्याधिष्ठित होने पर वीरसिंह देव के आश्रित कवि थे और उन्हीं की प्रेरणा से इन्होंने 'विज्ञानगीता' ग्रंथ की रचना की थी।[2] इसके अतिरिक्त 'वीरसिंहदेव-चरित' के उत्तरार्ध का सरोवर, नगर, चौगान, नृत्य, नखशिख, वनवाटिका, जलकेलि और दान आदि का वर्णन 'रामचंद्रिका' ग्रंथ के उत्तरार्ध के इन वर्णनों का परिवर्धित रूप है। बहुत से छन्द किंचित पाठभेद से दोनों ग्रंथों में समान रूप से मिलते हैं जो इस बात का प्रमाण हैं कि दोनों ग्रंथ एक ही कवि की रचनायें हैं। ग्रंथ के पूर्वार्ध में भी इसी प्रकार बहुत से छन्द मिलते हैं। इस प्रकार के कुछ छंद यहाँ उपस्थित किये जाते हैं।

'काहू को न भयौ कहूँ ऐसो सगुन न होत।
वीरसिंह को चलत ही भयौ मित्र उद्दोत'॥[3]

यह छंद 'रामचंद्रिका' में निम्नलिखित रूप में मिलता है :

'काहू को न भयो कहूँ ऐसो सगुन न होत।
पुर पैठत श्रीराम के, भयो मित्र उद्दोत'॥[4]

निम्नलिखित छन्द दोनों ग्रंथों में किंचित पाठभेद से मिलते हैं :

'जहीं बारुनी की करी रंचक रुचि द्विजराज।
तहीं कर्यो भगवन्त बिन संपति सोभा साज'॥[5]

तथा :

'जुद्ध कौ वीर नरेस चढ़े धुनि दुंदुभि की दसहूं दिसि छाई।
प्रात चली चतुरंग चमू बरनी अब केसव क्यौं हू न जाई॥
यौं सब के तन त्रानिनि ते झलकी अरुनोदय की अरुनाई।
अंतर तैं जनु रंजन को रजपूतन की रज ऊपर आई'॥[6]

---

१. 'अंगद पायक पेम बुलाय, पठये केशव मिश्र बुलाय।
जो कछु करि आवहु सुप्रमान, यों कहि पठये राम सुजान'॥
वीरसिंहदेव-चरित, पृ० सं० ६४।

२. विज्ञानगीता, छं० सं० २७, ३५, पृ० सं० ७, ८।

३. वीरसिंहदेव-चरित, पूर्वार्ध, छं० सं० २२, पृ० सं० ८६।

४. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ८, पृ० सं० ६६।

५. वीरसिंहदेव-चरित, पूर्वार्ध, छं० सं० २६, पृ० सं० ७७ तथा
रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० १४, पृ० सं० ७२ (पाठभेद से)।

६. वीरसिंहदेव-चरित, पूर्वार्ध, छं० सं० २६, पृ० सं० ८२ तथा
रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० १८, पृ० सं० १८७ (पाठभेद से)

जहांगीर-जस-चंद्रिका :

यह ग्रंथ भी केशवदास मिश्र ही की कृति है। इस ग्रंथ की रचना सं० १६६६ वि० में हुई। इस समय ओड़छा दरबार के केशवदास के अतिरिक्त इस नाम के किसी अन्य कवि का पता नहीं लगता। दूसरे, जहाँगीर के दिल्ली के सिंहासन पर आसीन होने और उसके द्वारा वीरसिंहदेव को समस्त बुन्देलखंड का राज्य देने पर, ओड़छा-धीशों से प्राप्त अपनी पैतृक पौराणिक वृत्ति को अक्षुण्ण रखने के लिये केशव को वीरसिंहदेव को प्रसन्न रखना आवश्यक था। विशेष कर इसलिये कि युद्ध के समय केशवदास जी वीरसिंहदेव के विपक्षी शिविर में थे। वीरसिंह को प्रसन्न करने के दो उपाय थे। एक तो वीरसिंहदेव के यशोगान के द्वारा और दूसरे वीरसिंहदेव के परम हितैषी सम्राट जहाँगीर का यश गाकर और परोक्ष-रूप से वीरसिंहदेव को प्रसन्न कर। 'वीरसिंहदेव चरित' की रचना के द्वारा केशवदास, वीरसिंह की कीर्त्ति अमर कर चुके थे, 'जहांगीरजस-चंद्रिका' की रचना के द्वारा सम्राट जहाँगीर का यशगान स्वाभाविक ही था। तीसरे, अन्य ग्रंथों के सम्बन्ध में दिये हुये उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि एक ग्रंथ में प्रयुक्त छंदों को किंचित पाठभेद से अपने दूसरे ग्रंथों में प्रयोग करने की ओर केशव की विशेष अभिरुचि थी। इस ग्रंथ में भी, अन्य ग्रंथों के ही समान शब्दावली, वाक्यावली और यहाँ तक कि बहुत से छंद 'रामचंद्रिका' तथा 'कविप्रिया' ग्रंथों में आये हुये छन्दों का रूपान्तर हैं। इस प्रकार के कुछ अंश यहाँ दिये जाते हैं।

(१) 'अरि नगरीनि प्रति करत अगम्यां गोन,
भाव विभिचारी जहाँ चोरी पर पीर की।
भूमिया के नाते भूमि भूधरें तो लेषियतु,
दुर्गनि ही केसोदास दुर्गति शरीर की॥
गढ़नि गढ़ोई आज देवता सी देषियत,
जैसी रीति राजनीति राजे जहांगीर की' ॥[1]

'अरि नगरीन प्रति होत है अगम्या गौन।
दुर्गनहि केशोदास दुर्गति सी आज है।
देवताई देखियत गढ़न गढ़ोई जीवो,
चिरु चिरु रामचंद्र जाको ऐसो राज है' ॥[2]

(२) 'साहिनि को साहि जहांगीर साहि जू को जश,
भूतल के आसपास सागर हुलास सो।
सागर में बड़ भाग वेष सेष नाग को सो,
सेष जू में सुषदानि विष्णु को निवासु हैं।
विष्णु जू में भूरि भाव भव के प्रभाव जैसो,
भव जू के भाल में विभूति को विलास हैं।
विभूति मांझि चन्द्रमा सो चन्द्र में सुधा को अंसु,
अंसुनि में सोहे चारु चन्द्रिका प्रकासु हैं' ॥[3]

---

१. जहांगीर-जस-चंद्रिका, छं० सं० २९, पृ० सं० १४।
२. रामचन्द्रिका, उत्तरार्ध, छं० सं० ३, पृ० सं० १०७।
३. जहांगीर-जस-चन्द्रिका, छं० सं० ३६, पृ० सं० १४-१५।

'राजा राम चन्द्र तुम राजहु सुयश जाको,
भूतल के आसपास सागर के पासु सो।
सागर में बड़भाग वेष शेषनाग जू के,
शेष जू पै चन्द्र भाग विष्णु को निवास सो।
विष्णु जू में भूरि भाग्य भव को प्रभाव सोई,
भव जू के भाल में विभूति को विलास सो।
भूति माँहि चन्द्रमा सो चन्द्र में सुधा को अंशु,
अंशुनि में केशोदास चन्द्रिका प्रकासु सो' ॥[1]

(३) 'जाकी अंग सुबास के वासित होत दिगंत।
को यह सोभतु है सभा जागति जोति अनंत' ॥[2]
'जाके सुख मुख बास ते वासित होत दिगंत।
सो पुनि कहि यह कौन नृप शोभित शोभ अनंत' ॥[3]

(४) 'जल के पगार निज दलन के सिंगार पर,
दल के विगार कर पर पुर पारे रोरि।
ढहे गढ़ ऐसे घन भट ज्यों भिरत रन,
देति देषि आसिष गनेस जूके भोरे गोरि ॥
विधि के से बंधव कलिंद मंद से अमंद,
वंदन की सूढ़ि भरें चन्दन की चारु पोरि।
सूर के उदोतु उदे गिरि से उदित अति,
ऐसे गजराज राजे साहि जहांगीर पोरि' ॥[4]
'जल कै पगार, निज दल के सिंगार, अरि
दल को विगार करि, पर पुर पारै रौरि।
ढाहै गढ़, जैसे घन, भट ज्यों भिरत रन,
देति देखि आशिषा गणेश जू के भोरे गौरि ॥
विंध के से बांधव, कलिंद नन्द से अमन्द,
बंदन कै सूँड भरे, चंदन की चारु खौरि।
सूर के उदोत उदैगिरि से उदित अति,
ऐसे गजराज राजैं राजा रामचन्द्र पौरि' ॥[5]

रतनबावनी

इस ग्रन्थ में ओड़छाधीश मधुकर शाह के पुत्र रतनसेन की वीरता का वर्णन है। शूर

---

१. रामचन्द्रिका, छं० सं० ६, पृ० सं० ११०।
२. जहांगीर-जस-चंद्रिका, छं० सं० ४७, पृ० सं० २१।
३. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० २०, पृ० सं० ४३।
४. जहांगीर-जस-चन्द्रिका, छं० सं० ४२, पृ० सं० १७।
५. कविप्रिया, छं० सं० २८, पृ० सं १६९, ६६।

की प्रशंसा शत्रु भी करते हैं। कुँवर रतनसेन ऐसा असाधारण वीर था जिसकी प्रशंसा स्वयं सम्राट अकबर ने की थी।[१] ऐसे वीर का गुणगान करने के लिए ओड़छा के राज्याश्रित कवि केशवदास द्वारा ग्रंथ लिखा जाना स्वाभाविक ही है। दूसरे, जिस प्रकार इस ग्रंथ में ओज लाने के लिये सज्जिव, फुल्लिव, दिज्जहु, किज्जहु आदि द्वित्व वर्णों का प्रयोग हुआ है, इसी प्रकार की शब्दावली युद्ध तथा वीररस के प्रसंग में कुछ स्थलों पर 'वीरसिंहदेव-चरित' तथा 'रामचंद्रिका' में भी मिलती है यथा :

'प्रथम जाय मतिमान लाज जिय ते जसु भाकौ।
चौकि चले चतुराई तेजु तब हित की ताकौ।
सुख सोभा नसि जाइ सुपुनि प्रति प्रगट प्रमुक्कई।
लच्छि न बच्छइ लच्छ नाउ लेतनि जग थुक्कई।
यह लोक नसै पर लोक पुनि सत्रु निसंकहि खंडई।
कहि केशव सत्रु न छंडियैं जो छंडत सब छंडई' ॥[२]

अथवा : 'मत्त दंत्ति अमत्त ह्वै गये देखि देखि न गज्जहीं।
ठौर ठौर सुदेश केशव दुंदुभी नहि बज्जहीं।
डारि डारि हथ्यार सूरज जीव लै लै भज्जहीं।
काटि के तन त्रान एकहि नारि भेषन सज्जहीं' ॥[३]

नखशिख :

'कविप्रिया' ग्रंथ की कुछ हस्तलिखित प्रतियों में चौदहवें प्रभाव के अन्त और पंद्रहवें प्रभाव के आरम्भ के पूर्व नखशिख-वर्णन मिलने के कारण ला० भगवानदीन ने इसे क्षेपक माना है।[४] किन्तु परीक्षा करने पर यह ग्रंथ केशव-कृत ही सिद्ध होता है। अलंकार-पांडित्य और भाषासम्बन्धी जो प्रौढ़ता केशवदास के 'रामचंद्रिका', 'कविप्रिया' तथा 'रसिकप्रिया' ग्रंथों में है, वही 'नखशिख' के सभी छंदों में है। साथ ही जगह-जगह बुन्देलखंडी भाषा के शब्द बिखरे हैं जो इस ग्रंथ को केशव की रचना प्रमाणित करते हैं। इसके अतिरिक्त 'नखशिख' तथा केशव के अन्य ग्रंथों में अनेक स्थलों पर भाव और शब्द-साम्य भी है। निम्नलिखित छन्द में रेखांकित शब्द बुन्देलखंडी भाषा के हैं :

'बिछिया अनोट वाके घुंघरू जराय जरी,
जेहरि छबीली छुद्र घंटिका की जालिका।
मूँदरी उदार पोंची कंकन और चूरी चारु,
कंठ कंठमाल हार पहिरे गुपालिका ॥

१. 'रतन सेनि तिनसे लघु जानि, गहि आन्यौ तिन ही खंग पानि ॥१०५॥
बानों बाध्यौ ताके माथ, साहि अकब्बर अपने हाथ' ॥१०६॥
वीरसिंहदेव-चरित, पृ० सं० १७।

२. वीरसिंहदेव चरित, छं० सं० १७, पृ० सं० ८६।

३. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० २, पृ० सं० १२१।

४. कविप्रिया, नोट, पृ० सं० २७१।

बेनीफूल शीशफूल कर्णफूल मांगफूल,
खुटिला तिलक नाक मोती सोहै बालिका।
केशवदास नील वास ज्योति जगमगि रही,
देह धरै श्याम सङ्ग मानो दीपमालिका' ॥[1]

भाव तथा शब्द-साम्य के सम्बन्ध में निम्नलिखित अंश द्रष्टव्य हैं :

(१) 'मानो कामदेव वामदेव जू के बैर काम,
साधै सर साधनानि लक्ष्य उर मानिये।
दुहूँ दिसि दुहूँ भुज भृकुटी कमान तानि,
नयन कटाक्ष बान बेधत न जानिये' ॥[2]

'बिन गुन तेरी आन, भृकुटी कमान तानि,
कुटिल कटाक्ष बान, यह अचरज आहि।
एते मान ढीठ, ईठ मेरे को अदीठ मन,
पीठ दै दै मारती पै चूकति न कोऊ ताहि' ॥[3]

(२) 'गोरे गोरे गोल अति अमल अमोल तेरे,
ललित कपोल किधौं मैन के मुकुर द्वै'।[4]

कलित ललित लावन्य कलोल। गोरे गोल अमोल कपोल'।[5]

(३) 'अलकैं कि अलिक अलक लटकति है'।[6]
'लटकै अलक अलक चीकनी'।[7]

(४) 'वेणी पिक बेनी की त्रिवेणी सी बनाई है,।[8]
'केशवदास वेणी तौ त्रिवेणी सी बनाई है'।[9]

निम्नलिखित छंद किंचित पाठभेद से 'नखशिख' तथा 'रसिकप्रिया' दोनों ग्रंथों में मिलता है :

'चन्द्र कैसो भाग भाल भृकुटी कमान ऐसी,
मैन कैसे पैने शर नैनन विलास है।

---

१. कविप्रिया, सरदार कवि, पृ० सं० २१२ तथा कविप्रिया, हरिचरणदास, पृ० सं० ३०६ (पाठभेद से)

२. नखशिख, पृ० सं० २८४।

३. कविप्रिया, पृ० सं० १८८।

४. नखशिख, पृ० सं० २७८।

५. वीरसिंहदेव-चरित, पृ० सं० १३३।

६. नखशिख, पृ० सं० २८६।

७. वीरसिंहदेव-चरित, पृ० सं० १३३।

८. नखशिख, पृ० सं० २२८।

९. रसिकप्रिया, पृ० सं० १६५।

नासिका सरोज गन्धवाह से सुगन्धवाह,
दारयो से दशन केसो बीजुरी सो हास है।
भाई ऐसी ग्रीव भुजपान सो उदर अरु,
पंकज से पांय गति हंसन की सी जास है।
देखी है गुपाल एक गोपिका मै देवता सी,
सोने को शरीर सब सौंधी की सी बास है' ॥[१]

रामालंकृतमंजरी :

प्रस्तुत परिच्छेद के आरम्भ में कहा जा चुका है कि शिवसिंहसेंगर, सूर्यकान्त शास्त्री, खड्गजीतसिंह तथा सूर्यनारायण दीक्षित आदि विद्वानों ने केशवदास जी के ग्रंथों में 'रामालंकृतमंजरी' का भी उल्लेख किया है, किन्तु इनमें से किसी ने नहीं लिखा कि उन्होंने यह ग्रंथ कहाँ देखा। अंग्रेज विद्वान 'के', सूर्यनारायण दीक्षित तथा सूर्यकान्त जी ने इसका छन्द-ग्रंथ होना लिखा है किन्तु कोई उद्धरण नहीं दिया। शिवसिंहसेंगर ने 'शिवसिंहसरोज' में इसके दो छन्द दिये हैं जो निम्नलिखित हैं :

'जदपि सुजाति सुलच्छनी, सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषन बिना न राजई, कविता बनिता मित्त' ॥१॥
प्रकट सब्द में अर्थ जहं, अधिक चमत्कृत होइ।
रस अरु व्यंग्य दुहून ते, अलंकार कहि सोइ ॥२॥[२]

बा० गोविंद दास तथा खड्गजीत सिंह ने अपने लेखों में 'सरोज' में दिये हुये क्रमशः प्रथम और द्वितीय छन्द उद्धृत किये हैं, अन्य नवीन उद्धरण नहीं दिये हैं। इससे प्रकट होता है कि इन विद्वानों ने स्वयं 'रामालंकृतमंजरी' नहीं देखी वरन् सरोजकार के ही अधार पर इसे केशव का ग्रंथ मान लिया है। खोज-रिपोर्टों में इस ग्रंथ का कोई उल्लेख नहीं है। 'रामचन्द्रिका' नामक ग्रंथ में एकाक्षरी छन्द से लेकर कवित्त-सवैये तक के उदाहरण देखकर अनुमान होता है कि इस ग्रंथ की रचना के पूर्व केशव ने पिंगल पर कोई ग्रंथ लिखा होगा। ला० भगवानदीन जी ने अपनी 'केशवकौमुदी' नामक 'रामचंद्रिका' की टीका में बहुत से छन्दों के लक्षण-स्वरूप फुटनोट में छन्द दिये हैं जिनमें से कुछ में 'केशवदास' अथवा 'केशव' की छाप है।[3] सम्भव है विभिन्न छन्दों के यह लक्षण केशवदास की 'रामालंकृतमंजरी' के ही हों। किन्तु इस ग्रंथ के अप्राप्य होने और निश्चित प्रमाणों के अभाव में प्रमाणिक रूप से यह केशव का ग्रंथ नहीं कहा जा सकता। लेखक को खोज करने पर भी इस ग्रंथ का कोई पता नहीं लग सका।

१. नखशिख, पृ० सं० २६१ तथा रसिकप्रिया, छं० सं० ३४, पृ० सं० ४१ (पाठभेद से)

२. शिवसिंहसरोज, पृ० सं० २०।

३. रामचंद्रिका, पूर्वार्धं, पृ० सं० ३४, ४०, ४१, ४२ तथा २०६ (पाद-टिप्पणी)।

जैमुन की कथा :

यह ग्रंथ जैमिनि के अश्वमेध का हिन्दी रूपान्तर है। यह प्रसिद्ध कवि केशवदास की रचना नहीं हो सकती। केशवदास के प्रमाणिक ग्रंथों में केशव, केसव, केसो, केसौ, केशो, केसवराय अथवा केशवदास आदि छाप मिलती है, किन्तु इस ग्रंथ में कवि ने अपनी छाप 'प्रधान केसोराइ' दी है। इसके अतिरिक्त खोज-रिपोर्टकार के अनुसार केशवराय, माधवदास के पुत्र तथा मुरलीधर के भाई थे। केशवराय ने किसी लाला नरसिंह को अपना आश्रयदाता लिखा है और उनका छत्रसाल का धर्मपुत्र होना बताया है। दूसरे स्थान पर कवि ने लिखा है कि छत्रसाल (जन्म १६४६ ई०, मृत्यु १७३१ ई०) ने उसे एक गाँव दिया था। इस ग्रंथ की रचना सम्वत् १७५३ वि० अथवा सन् १६६६ ई० में हुई। इससे भी यही प्रकट होता है कि यह कवि छत्रसाल का समकालीन था।[1] सरोजकार ने 'शालिहोत्र-भाषा' के रचयिता प्रधान केशवराय कवि का उल्लेख किया है।[2] सम्भव है इसी कवि ने जैमुन की कथा भी भाषा में लिखी हो।

हनुमान-जन्म-लीला तथा बालचरित्र:

खोज-रिपोर्ट से उद्धृत अवतरणों को देखने से ज्ञात होता है कि इन ग्रंथों की भाषा ब्रज तथा अवधी भाषाओं का सम्मिश्रण है, साथ ही उनकी रचना इतनी शिथिल है जैसी केशवदास जी के किसी भी ग्रंथ की नहीं है; अतएव यह महाकवि केशवदास जी की रचनायें नहीं हो सकतीं। खोज-रिपोर्टकार का अनुमान है कि सम्भव है इनका लेखक बुंदेलखंड का केशवराय बबुआ हो जिसका जन्म १६४२ ई० में हुआ था।[3]

१. "Translation of the Jaimini Aswamedha by Kesava Rai S/o Madhava Das and brother of Murlidhar. He mentions one Lala Narsingh as his patron and says that he was the Godson of Chatrasala. In another place he mentions that a Village was given to him by Chatrasala (1649 AD–1731 A. D.) From this fact it is certain that he flourished in the time of Chatrasal. He composed this book in Samvat 1753 (1696 A.D.) which fact also corroborates the fact noted above.

Search for Hindi Mss. year 1905

२. शिवसिंह-सरोज, पृ० सं० १६० तथा ४४७।

३ "Keshava Kavi, the writer of Hanuman Janan Lila is an unknown poet. He was certainly not the famous poet of orchha, but may be Keshava Rai Babua of Baghel Khand who was born in 1682 A. D." Search for Hindi Mss, Year 1910—11

आनन्दलहरी :

यह ग्रंथ शंकराचार्य के इसी नाम के संस्कृत ग्रंथ का हिन्दी रुपान्तर है। यह दुर्गा की प्रशंसा में लिखा गया है। इस ग्रंथ में कवि ने 'केशवगिरि' छाप दी है जैसा कि खोज-रिपोर्ट से उद्धृत अवतरणों से ज्ञात होता है; किन्तु केशवदास जी के ग्रंथों में यह छाप कहीं नहीं मिलती। दूसरे, दृश्य-वर्णन में केशवदास जी ने अलंकारों का प्रयोग अवश्य ही किया है किन्तु पीछे के पृष्ठों में खोजरिपोर्ट के आधार पर दिये हुये इस ग्रंथ के उद्धरणों में यह प्रवृत्ति नहीं दिखलाई देती। इस प्रकार यह महाकवि केशवदास की रचना नहीं प्रतीत होती।

रसललित :

यह ग्रंथ नायिका भेद पर लिखा गया है, किन्तु इस विषय पर महाकवि केशवदास ने 'रसिकप्रिया' ग्रंथ लिखा है जिसमें इस विषय का बहुत सूक्ष्म वर्णन किया गया है। 'रसिक-प्रिया' की रचना के बाद इसी विषय पर उनके द्वारा दूसरा ग्रंथ लिखा जाना बुद्धि-संगत नहीं है। इस ग्रंथ में शृंगार रस का लक्षण अंत में दिया गया है जैसा कि खोज-रिपोर्ट के उद्धरणं से ज्ञात होता है। 'रसिकप्रिया' में लक्षण ग्रंथारम्भ में है। दोनों ग्रंथों के लक्षण भिन्न हैं। इसके अतिरिक्त 'रसललित' की भाषा में भी वह प्रौढ़ता नहीं दिखलाई देती जो केशव के ग्रंथों में प्रायः मिलती है। इस प्रकार यह केशवदास जी की रचना नहीं ज्ञात होती। खोज-रिपोर्टकार का अनुमान है कि सम्भवतः इसका लेखक बवेलखंड-निवासी था जिसका जन्म १६८२ ई० में हुआ था। 'हनुमानजन्मलीला' के रचयिता का भी खोज-रिपोर्टकार ने बवेलखंड-निवासी होने का अनुमान किया है, जिसका उल्लेख पूर्वपृष्ठों में किया जा चुका है; किन्तु 'हनुमानजन्म-लीला' 'और' 'रसललित' की भाषा में इतना अंतर है कि दोनों एक ही कवि की कृतियाँ नहीं प्रतीत होतीं।

कृष्णलीला :

खोज-रिपोर्ट में दिये हुए अवतरणों से ज्ञात होता है कि इस ग्रंथ का लेखक केशव उचहरा (ऊँचाहार) के निकट 'भटनवार' नामक गांव का निवासी और परिहार वंशावतंस किसी बख्तावर का आश्रित था, जिसकी आज्ञा से उसने यह ग्रंथ लिखा। इससे स्पष्ट है कि इस ग्रंथ का लेखक महाकवि केशवदास से भिन्न कोई अन्य केशव नाम का कवि है।

केशवदास जी की अमीघूंट :

इस ग्रंथ को देखने से ज्ञात होता है कि यह महाकवि केशव से भिन्न किसी निर्गुण-मार्गी केशवदास की रचना है। इसका विषय, भाषा, छंद आदि प्रायः सभी कबीर आदि निर्गुणमार्गियों के समान है। गुरु की महिमा से ग्रंथारम्भ होता है और आगे निर्गुण, अलख, निरंजन का गुणगान किया गया है। भाषा भी कबीर ही के समान व्रज, खड़ी बोली तथा राजस्थानी की खिचड़ी है। विदेशी-भाषाओं के शब्द भी स्वतंत्रता-पूर्वक प्रयुक्त हुये हैं। साथ ही जगह-जगह पर सुन्न, शब्द, सुरति, निरति आदि कबीर-पंथियों के पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग हुआ है। इस ग्रंथ की भाषा और विषय के उदाहरण-स्वरूप निम्नलिखित छन्द उपस्थित किया जाता है :

'सोई निज संत जिन अंत आपा लियो,
जियो जुग जुग गगन बुद्धि जागी।
प्रान आपान असमान में थिर भया,
सुन्न के सिखर पर जिकिर लागी।
रहत घर बास बिनु स्वास का जीव है,
सक्ति मिलि सीव सों सुरति पागी।
अकह अलिख आदेख को देखिया,
पेखि केसो भयो ब्रह्म रागी' ॥[1]

इस ग्रंथ के लेखक ने अपने गुरु का भी उल्लेख किया है और उसका नाम 'यारी' बतलाया है।[2] इस प्रकार स्पष्ट है कि यह केशवदास मिश्र की रचना नहीं हो सकती। केशवदास जी की 'विज्ञानगीता' का एक छंद किंचित पाठभेद से 'अमीघूंट' में मिलता है। किन्तु उस छंद की भाषा का इस ग्रंथ की भाषा से साम्य नहीं है, अतएव अनुमान होता है कि संग्रहकर्ता ने भूल से वह छंद इस ग्रंथ में दे दिया है। वह छंद निम्नलिखित है :

'निसि वासर वस्तु विचारु सदा,
मुख साच हिये करुना धन है।
अघ निग्रह संग्रह धर्म कथा,
नि परिग्रह साधन को गुन है।
कह केसो भीतर जोग जगै,
इत बाहर भोग मई तन है।
मन हाथ भये जिनके तिनके,
बन ही घर है घर ही बन है' ॥[3]

इस प्रकार केशव के प्रमाणिक ग्रंथ निम्नलिखित हैं :—

१—रसिकप्रिया
२—नखशिख
३—कविप्रिया
४—रामचंद्रिका
५—वीरसिंहदेव-चरित
६—रतनबावनी

१. अमीघूंट, केशवदास, पृ० सं० १०।
२. 'निर्गुन राज समाज है, चंवर सिंहासन छत्र।
तेहि चढ़ि यारी गुरू दियो, केसोंहि अजपा मंत्र' ॥६॥
अमीघूंट, केशवदास, पृ० सं० २।
३. अमीघूंट, केशवदास, पृ० सं० ११ तथा विज्ञानगीता, छं० सं० ४३, पृ० सं० १२३ (पाठभेद से)

७—विज्ञानगीता
तथा ८—जहाँगीर-जस-चंद्रिका

अप्रमाणिक ग्रंथ :

१—जैमुनि की कथा
२—हनुमान-जन्मलीला
३—बालिचरित्र
४—आनन्द-लहरी
५—रसललित
६—कृष्णलीला
तथा ७—अमीघूंट

संदिग्ध ग्रंथ :

रामालंकृतमंजरी

प्रमाणिक ग्रंथों का संक्षिप्त परिचय :

(१) रसिकप्रिया :

इस ग्रंथ की समाप्ति कार्तिक सुदी सप्तमी चन्द्रवार सम्वत् १६४८ वि० को हुई थी।[1] इसकी रचना केशवदास जी के आश्रयदाता, ओड़छाधीश मधुकर शाह के पुत्र इन्द्रजीतसिंह के प्रीत्यर्थ उन्हीं की आज्ञा से की गई थी।[2] ग्रंथारम्भ में केशवदास ने इसका स्वरचित होना स्वीकार किया है किन्तु प्रत्येक प्रकाश के अंत में उन्होंने इसका महाराजकुमार इन्द्रजीत सिंह द्वारा विरचित होना लिखा है।[3] यद्यपि 'रसिकप्रिया' की रचना मुख्य रूप से इन्द्रजीत सिंह के लिये ही हुई थी किन्तु ग्रंथ लिखते समय केशव के मस्तिष्क में अन्य काव्य-रसिकों के मनोरंजन का विचार भी वर्तमान था।[4]

---

१. 'संवत् सोरह सै बरस, बीते अड़तालीस।
कातिक सुदि तिथि सप्तमी, बार बरन रजनीस' ॥११॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० ११।

२.
'इन्द्रजीत ताको अनुज, सकल धर्म को धाम' ॥८॥
'तिन कवि केशवदास सों कीन्हों धर्म सनेहु।
सब सुख दै करि यों कह्यो रसिकप्रिया करि देहु' ॥१०॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० १०, ११।

३. इति श्रीमन्महाराजकुमारइन्द्रजीतविरचितायां रसिकप्रियायां
प्रच्छन्नप्रकाशवर्णनंनाम प्रथमः प्रकाश।'
रसिकप्रिया, पृ० सं० २०।

४. 'अति रति गति मति एक करि, विविध विवेक विलास।
रसिकन को रसिकप्रिया, कीन्ही केशवदास' ॥१२॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० ११।

'रसिकप्रिया' काव्यशास्त्र-सम्बन्धी ग्रंथ है। इसमें रस, वृत्ति और काव्य-दोषों का वर्णन है किन्तु प्रधानता श्रृंगार रस की है। ग्रंथ के तीन-चौथाई भाग में श्रृंगार रस के विविध तत्वों का सांगोपांग वर्णन है। श्रृंगार से इतर रसों को भी केशवदास जी ने श्रृंगार के ही अन्तर्गत लाने की चेष्टा की है। ग्रंथ सोलह प्रकाशों में विभक्त है। प्रथम प्रकाश में मंगलाचरण, ग्रंथ-रचना-कारण, ग्रंथ-रचना-काल आदि के बाद श्रृंगार रस के दोनों पक्ष, संयोग और वियोग का वर्णन है। दूसरे प्रकाश में नायक के भेद बतलाये गये हैं। तीसरे में जाति, कर्म, अवस्था और मान के अनुसार नायिकाओं के भेदों का वर्णन है। चौथे प्रकाश में चार प्रकार के दर्शन का उल्लेख है। पाँचवें प्रकाश में नायक और नायिका की चेष्टा और स्वयंदूतत्व का वर्णन है। इसके साथ ही यह भी बतलाया गया है कि नायक और नायिका किन-किन स्थलों और अवसरों पर किस प्रकार मिलते हैं। छठे प्रकाश में भाव, विभाव, अनुभाव, स्थायी, सात्विक और व्यभिचारी भाव तथा हावों का वर्णन है। सातवें प्रकाश में काल और गुण के अनुसार नायिकाओं के भेद बतलाये गये हैं। आठवें प्रकाश में विप्रलम्भ-श्रृंगार के प्रथम भेद पूर्वानुराग और प्रिय के मिलन न होने के कारण उत्पन्न दशाओं का वर्णन है। नवें प्रकाश में मान के भेद बतलाये गये हैं और दसवें में मानमोचन के उपायों का उल्लेख है। ग्यारहवें प्रकाश में पूर्वानुराग से इतर वियोग श्रृंगार के भेदों का वर्णन है। बारहवें प्रकाश में सखियों के भेदों का उल्लेख है और तेरहवें प्रकाश में सखीजन-कर्म-वर्णन। इस प्रकार यहाँ तक श्रृंगार रस के ही विभिन्न तत्वों का विशद विश्लेषण है। अन्य रसों का वर्णन चौदहवें प्रकाश में संक्षेप में कर दिया गया है। पंद्रहवें प्रकाश में वृत्तियों का वर्णन है और अन्तिम प्रकाश में कुछ काव्यदोष बतलाये गये हैं।

श्रृंगार रस की जानकारी प्राप्त करने के लिये 'रसिकप्रिया' महत्वपूर्ण ग्रंथ है। कवि की प्रथम उपलब्ध कृति होने पर भी काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से केशवदास जी की समस्त रचनाओं में यह सर्वश्रेष्ठ है।

(२) नखशिख :

यह एक छोटी सी पुस्तिका है जिसमें कवि-नियमानुसार राधा के नख से शिख तक प्रत्येक अंग का वर्णन है। दोहे में प्रत्येक अंग के लिये कवि-परम्परा-सिद्ध उपमान बतलाये गये हैं और उसके बाद कवित्त में उन उपमानों की सहायता से अंग-विशेष का वर्णन है।[१] कवि के ही कथनानुसार इस ग्रंथ की रचना कवियों को नखशिख-वर्णन की शिक्षा देने के लिये हुई थी।[२]

'नखशिख' का रचनाकाल ज्ञात नहीं है। 'कविप्रिया' की अधिकांश प्रतियों में चौदहवें प्रभाव की समाप्ति के बाद तथा पन्द्रहवें के आरम्भ के पूर्व नखशिख-वर्णन है, किन्तु स्पष्ट ही

---

१. 'कही जो पूरब पंडितनि ताकी जितनी जानि।
तिनकी कविता अंग की उपमा कहौं बखानि'॥
कविप्रिया, सटीक, सरदार, पृ० सं० १६१।

२. 'इहि विधि वरणहु सकल कवि अविरल छवि अंग अंग'।
कविप्रिया, सटीक, सरदार, पृ० सं० २१४।

यह 'कविप्रिया' से भिन्न कृति है। यदि यह 'कविप्रिया' का अंश होता तो इसका वर्णन पृथक प्रभाव में होना चाहिये था। 'कविप्रिया' के चौदहवें प्रकाश में उपमालंकार का वर्णन है। कदाचित् केशवदास जी ने अपनी शिष्या प्रवीणराय को उपमालंकार समझाते हुये प्रसंग-वश नायिका के विभिन्न अंगों के उपमान भी समझा देना उचित समझा हो। इस अनुमान की पुष्टि स्वयं केशवदास जी के कथन से होती है। नखशिख-वर्णन समाप्त करते हुये कवि ने लिखा है :

'इहि विधि वरणहु सकल कवि, अविरल छवि अंग अंग।
कही यथा मति वरणि कवि, केशव पाय प्रसंग' ॥[3]

इन पंक्तियों से ज्ञात होता है कि 'नखशिख' की रचना सम्वत् १६५८ वि० के पूर्व अथवा इसी समय के लगभग पृथक-रूप से हुई थी; किन्तु प्रवीणराय को उपमालंकार समझाते हुये कवि ने प्रसंग-वश नखशिख-वर्णन फिर से दुहरा दिया। काशी-निवासी रूपचन्द गौड़ द्वारा लिखित 'नखशिख' की एक स्वतंत्र हस्तलिखित प्रति लेखक ने राजकीय पुस्तकालय, रामनगर, बनारस में देखी है। इसका प्रतिलिपि-काल संवत् १८५३ वि० अषाढ़ सुदी नवमी बुधवार दिया है। काव्य की दृष्टि से 'नखशिख' की रचना प्रौढ़ और उच्चकोटि की है।

(३) कविप्रिया :

इस ग्रंथ की समाप्ति कवि के स्वलिखित दोहे के अनुसार फाल्गुन सुदी पंचमी बुधवार सं० १६५८ वि० को हुई थी।[४] स्व० लाला भगवानदीन जी ने इस दोहे की टीका करते हुये उक्त तिथि को ग्रंथारम्भ लिखा है।[५] किन्तु 'अवतार' शब्द से स्पष्ट है कि इस तिथि को ग्रंथ समाप्त होगया था। 'रसिकप्रिया' के समान ही यह भी काव्यशिक्षा-सम्बन्धी ग्रंथ है। इसकी रचना प्रमुख रूप से महाराज इन्द्रजीत सिंह की स्नेह-पात्री और केशव की शिष्या प्रवीणराय को काव्य-शिक्षा देने के लिये हुई थी।[६] किन्तु ग्रंथरचना करते समय इस बहाने अन्य काव्यजिज्ञासुओं को भी काव्यशिक्षा देने का विचार केशवदास जी के मस्तिष्क में वर्तमान था।[७]

३. कविप्रिया, सटीक, सरदार, पृ० सं २१४।

४. 'प्रगट पंचमी को भयो कविप्रिया अवतार।
सोरह से अट्ठावनो फागुन सुदि बुधवार' ॥४॥
कविप्रिया, पृ० सं० ३।

५. कविप्रिया, पृ० सं० ४।

६. 'वृषभ वाहिनी अंग उर, बासुकि लसत प्रवीन।
शिव संग सोहै सर्वदा, शिवा कि राय प्रवीन ॥६०॥
सविता जू कविता दई, ताकहं परम प्रकास।
ताके काज कविप्रिया, कीन्ही केशव दास' ॥६१॥
'कविप्रिया पृ० सं० ११।

७. 'समुझैं बाला बालकहु, वर्णन पंथ अगाध।
कविप्रिया केशव करी, छमियो कवि अपराध' ॥१॥
कविप्रिया, पृ० सं० २४।

यह ग्रंथ सोलह प्रभावों में विभक्त है। प्रथम प्रभाव में नृप-वंश तथा महाराज इन्द्रजीतसिंह के दरबार की गायिकाओं का वर्णन है। द्वितीय प्रभाव में कवि ने अपने वंश का परिचय दिया है। वास्तव में ग्रंथारम्भ तीसरे प्रभाव से होता है। इस प्रभाव में काव्य-दोष बतलाये गये हैं। चौथे प्रभाव में कवि-भेद, कवि-रीति और सोलह शृंगारों का वर्णन है। पांचवे प्रभाव में वर्णालंकार के अन्तर्गत कवि-परम्परानुसार भिन्न-भिन्न रंग की वस्तुओं का परिचय कराया गया है। इसी प्रकार छठे प्रभाव में भिन्न-भिन्न आकृति और गुण वाली वस्तुओं की सूची दी गई है। सातवें प्रभाव में भूमिश्री-वर्णन अर्थात् भूतल के प्राकृतिक दृश्यों और वस्तुओं के वर्णन की विधि बतलाई है। आठवें प्रभाव में राज्यश्री अर्थात् राजा और उससे सम्बन्ध रखने वाले व्यक्तियों, वस्तुओं और बातों का वर्णन किया गया है। नवें से पंद्रहवें प्रभाव तक काव्यालंकारों तथा उनके भेदों-उपभेदों का तथा सोलहवें प्रभाव में चित्रालंकार का वर्णन है। प्रत्येक प्रभाव में दोहों में लक्षण देकर प्रायः कवित्त या सवैया में उदाहरण दिये गये हैं। कुछ उदाहरण काव्य की दृष्टि से बहुत सुन्दर हैं। केशव को कविता के प्रथम आचार्य का पद इसी ग्रंथ की रचना के द्वारा प्रमुख रूप से प्राप्त है।

(४) रामचंद्रिका :

केशवदास जी का यह ग्रंथ उनकी रचनाओं में सबसे अधिक प्रसिद्ध है। बुन्देलखंड, रुहेलखंड आदि प्रदेशों में अब भी इसका बहुत प्रचार है और लोग इस पर धार्मिक श्रद्धा रखते हैं। प्रसिद्ध महाराज छत्रसाल को तो यह ग्रंथ इतना प्रिय था कि वह इसकी एक प्रति सदैव अपने पास रखते थे।[१] जानकी प्रसाद द्वारा लिखित 'रामचंद्रिका' की 'रामभक्ति-प्रकाशिका' नामक टीका के अनुसार इस ग्रंथ को भी केशवदास जी ने महाराज इन्द्रजीतसिंह के नाम से लिखा था।[२] इस ग्रंथ की रचना के लिये प्रेरणा अन्तस्साक्ष्य के अनुसार केशवदास जी को स्वप्न में बाल्मीकि मुनि से मिली थी।[३] ग्रंथ की समाप्ति कवि द्वारा दिये दोहे के अनुसार सं० १६५८ वि० कार्तिक सुदी बुधवार को हुई थी।[४] भगवानदीन जी ने इस दोहे में प्रयुक्त 'बार' शब्द से बारस या द्वादशी का अर्थ लगाया है और उसकी पुष्टि में बुंदेलखंड में प्रचलित ग्यारस, बारस, तेरस आदि शब्दों की ओर संकेत किया है,[५] किन्तु वास्तव में 'बुधवार' एक ही शब्द है।

१. बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, गोरेलाल, पृ० सं० १३७।

२. "इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिन्तामणि श्री रामचंद्रिकायामिन्द्रजिद्विरचितायां रामचंद्रलक्ष्मणयोर्विश्वामित्रतपोवनगमनं नाम द्वितीयः प्रकाश।"

रामचंद्रिका, जानकी प्रसाद, पृ० सं० ३०।

३. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ७, १८, पृ० सं० ५ तथा ८।

४. 'सोरह से अट्ठावने कार्तिक सुदि बुधवार।
रामचन्द्र की चन्द्रिका तब लीन्हों अवतार' ॥६॥

रामचंद्रिका, पृ० सं० ५।

५. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० ५।

'रामचंद्रिका' रामकथा-सम्बन्धी काव्य-ग्रंथ है। पूर्वार्ध का कथानक व्यापक रूप से वाल्मीकि रामायण तथा तुलसीदास जी के रामचरितमानस के ही समान है किन्तु ब्योरों में अन्तर है। ग्रंथ का उत्तरार्ध अधिकांश कवि की उद्भावना है जिसके अन्तर्गत रामचंद्र के सिंहासनासीन होने से आरम्भ कर राम की जीवन-चर्या तथा दैनिक चरित्र का वर्णन है। इस ग्रंथ में सर्वत्र केशवदास जी की पांडित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। भाषा, छन्द, अलंकार सभी पर केशव का पूर्ण अधिकार है। जितने अधिक छंदों का प्रयोग केशवदास ने इस ग्रंथ में किया है, कदाचित् ही हिन्दी भाषा के किसी ग्रंथ में मिलें।

रामकथा-सम्बन्धी ग्रंथ का महात्म्य रामकथा का ही महात्म्य है, अतएव ग्रंथ के अंत में केशवदास जी ने निम्नलिखित शब्दों में 'रामचंद्रिका' के पाठ का महात्म्य-वर्णन किया है :

'अशेष पुन्य पाप कलाप आपने बहाय।
विदेह राज ज्यों सदेह भक्त राम को कहाय॥
लहै सुभुक्ति लोक लोक अंत मुक्त होहि ताहि।
कहै सुनै पढ़ै गुनै जु रामचंद्र चंद्रिकाहि'॥[1]

(५) वीरसिंहदेव-चरितः

इस ग्रंथ की समाप्ति अन्तस्साक्ष्य के अनुसार सं० १६६४ वि० के प्रारम्भ में बसंत ऋतु के शुक्ल पक्ष की अष्टमी बुधवार को हुई थी।[2] यह रचना दान, लोभ और ओड़छा नगर की प्रसिद्ध विन्ध्यवासिनी देवी के संवाद के रूप में लिखी गई है। इसके द्वारा केशवदास ने अपने आश्रयदाता वीरसिंह देव के चरित का गुण-गान किया है। ग्रंथ में तैंतीस प्रकाश हैं। प्रथम और द्वितीय प्रकाश में दान और लोभ का विवाद वर्णित है, जिसमें दोनों अपने को महानतर सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं। दूसरे प्रकाश के अन्त में ओड़छा-नरेशों के वंश का वर्णन है। तीसरे प्रकाश से चौदहवें प्रकाश तक ओड़छाधीश मधुकरशाह के पुत्रों में आपस में शक्ति बढ़ाने की स्पर्धा और भारत-सम्राट अकबर की सेनाओं से वीरसिंह देव के अनेक युद्धों का वर्णन है। अन्त में अकबर की मृत्यु और जहाँगीर के सिंहासनासीन होने पर उसके द्वारा वीरसिंह देव को समस्त ओड़छा राज्य का उत्तराधिकारी बनाये जाने का उल्लेख है। पंद्रहवें प्रकाश से तैंतीसवें प्रकाश तक वीरसिंह देव के ऐश्वर्य तथा दिनचर्या का वर्णम है, जिसके अन्तर्गत नगर, सरोवर, वाटिका, राजमहल, शयनागार, नखशिख तथा वीरसिंह देव के चौगान आदि का विस्तृत वर्णन है। ग्रंथ के अन्तिम प्रकाशों में दान और राजा के कर्तव्य तथा राजनीति का वर्णन है। इस प्रकार यह प्रकाश 'रामचंद्रिका' के उत्तरार्ध का परिवर्धित रूप प्रतीत होते हैं।

१. रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, छं० सं० ३१, पृ० सं० ३४०।
२. 'संवत् सोरह से तैंसठा। बीति गए प्रगटे चौसठा॥
अनल नाम संवत्सर लग्यौ। भाग्यो दुख सब सुख जगमग्यौ॥
ऋतु बसंत है स्वच्छविचार। सिद्धि जोग मिति बसु बुधवार॥
सुकुल पच्छ कवि केशव दास। कीनो वीरचरित्र प्रकास'॥
वीरसिंहदेव-चरित, पृ० सं० २।

'वीरसिंहदेव-चरित' मुख्य-रूप से वीररस-सम्बन्धी ग्रंथ है, किन्तु प्रसंग-वश वीर से इतर रसों का भी उल्लेख हो गया है। काव्य की दृष्टि से इस ग्रंथ का विशेष महत्व नहीं है। ऐतिहासिक दृष्टि से अवश्य यह रचना महत्व-पूर्ण है।

(६) रतनबावनी :

यह ग्रंथ ओड़छा-नरेश मधुकर शाह के पुत्र कुंवर रतनसेन की प्रशंसा में लिखा गया है। रतनसेन बड़ा ही साहसी, वीर तथा कर्तव्यनिष्ठ था। रतनसेन ने सम्राट अकबर की शाही सेना का सामना करते हुये समर में वीरगति प्राप्त की थी। एक विचित्र घटना इस युद्ध का कारण हुई थी। कहा जाता है कि एक बार मधुकर शाह सम्राट अकबर के दरबार में बहुत ऊँचा जामा पहन कर गये थे। सम्राट ने उसका कारण पूछा तो मधुकरशाह ने कहा कि मेरा देश कांटों की भूमि है। अकबर ने इन शब्दों में व्यंग देखा और क्रुद्ध होकर कहा कि मैं तुम्हारा देश देखूँगा। कुछ समय बाद अकबर की सेना ने ओड़छा पर चढ़ाई कर दी। इस घटना का उल्लेख स्वयं केशवदास जी ने अपने इस ग्रंथ में किया है।[1] इस ग्रंथ का रचना-काल कवि ने नहीं दिया है। अनुमान से इस रचना का समय 'वीरसिंहदेव-चरित' के रचनाकाल सं० १६६४ वि० के पूर्व तथा 'रामचंद्रिका' के रचनाकाल सं० १६५८ वि० के बाद किसी समय रहा होगा।

'रतनबावनी' ग्रंथ राजपूताने की डिंगल कविता की शैली पर लिखा गया है। चारण-कवियों के ही समान इस ग्रंथ में छप्पय छंदों का विशेष प्रयोग है। यह रचना बहुत ही ओजपूर्ण है। कुँवर रतनसेन के छोटे किन्तु महत्वशाली जीवन का परिचय मुख्यतया इसी ग्रंथ द्वारा प्राप्त होता है। छत्रपुरनिवासी बा० गोविंददास का अनुमान है कि कवि भूषण ने 'शिवाबावनी' नामक ग्रंथ इसी ग्रंथ को देख कर लिखा था।[2] किन्तु यह कथन भ्रमपूर्ण है। वास्तव में शिवाजी सम्बन्धी ५२ चुने हुये छंदों का संग्रह कर किसी अन्य कवि ने इसका नाम 'शिवाबावनी' रख दिया है।

(७) विज्ञानगीता :

यह दार्शनिक विषय-सम्बन्धी ग्रंथ है। अन्तस्साक्ष्य के अनुसार ग्रंथ-प्रणयन की प्रेरणा केशवदास जी को ओड़छाधीश वीरसिंहदेव द्वारा प्राप्त हुई थी।[3] इस ग्रंथ की रचना सं १६६७ वि० में हुई थी।[4]

---

१. 'देख अकब्बर साहि उच्च जामा तिन केरो।
बोले बचन विचारि कहौ कारन यहि केरो।
तब कहत भयउ बुंदेल मणि मम सुदेश कंटक अवनि।
करि कोप ओप बोले बचन मैं देखौं तेरो भवन' ॥२॥
रतनबावनी, पृ० सं० २।

२. 'लक्ष्मी, भाग ७, अंक ४ तथा ५, 'बुन्देलखंड-रत्नमाला' लेख, गोविंददास।

३. विज्ञानगीता, छं० सं० १७, ३५, पृ० सं० ७।

४. 'सोरह सै बीते बरस, विमल सतसठा पाइ।
भई ज्ञानगीता प्रगट, सबही को सुखदाइ' ॥१३॥
विज्ञानगीता, पृ० सं० ५।

इस ग्रंथ में २१ प्रभाव हैं। प्रथम बारह प्रभावों में विस्तारपूर्वक विवेक तथा महामोह का युद्ध वर्णित है और शेष नव प्रभावों में शिखीध्वज, प्रह्लाद तथा राजा बलि आदि के चरित्र-द्वारा ज्ञान-कथन किया गया है। यह ग्रंथ एक रूपक के रूप में लिखा गया है। महामोह और विवेक दो राजा हैं। मिथ्यादृष्टि, महामोह की रानी है और दुराशा, तृष्णा, चिन्ता, निन्दा आदि उसकी दासियाँ हैं। क्रोध-कामादि महामोह के दलपति, सलाहकारी और मित्र हैं। आलस्य और रोग उसके योद्धा हैं और छल, कपट आदि दूत। दूसरी ओर बुद्धि, विवेकराज की पटरानी तथा श्रद्धा, करुणा आदि अन्य रानियाँ हैं। दान, अनुराग, शील, संतोष, सम, दम आदि उसके कुटुम्बी हैं। विजय, सत्संग और राजधर्म, विवेकराज के मंत्री तथा सभासद हैं, और धैर्य उसका दूत है। महामोह, विवेक का नाश करने के लिये कमर कस चुका है, अतएव दोनों में युद्ध ठनता है। काशी विवेक का प्रधान गढ़ है, जिसको जीतने के लिये महामोह दल-बल सहित प्रस्थान करता है। छल, कपट, दम्भ आदि दूतों को उसने पहले से ही काशी भेज दिया था जहाँ उन्होंने बहुत से लोगों को अपनी ओर कर लिया है। महामोह के विस्तृत प्रभाव को प्रदर्शित करने के लिये उसके द्वारा सातों द्वीपों और भारत के प्रमुख स्थानों को जीत लेने का विस्तृत वर्णन है। अन्त में वह काशी पहुँचता है, जहाँ दोनों सेनाओं की मुठभेड़ और घमासान युद्ध होता है। अन्त में महामोह की हार होती है और विवेक जय-श्री लाभ करता है।

इस प्रकार केशव ने एक दार्शनिक विषय को सरस बनाने का प्रयत्न किया है। यह ग्रंथ केशवदास जी के दार्शनिक विचारों तथा किसी अंश में तत्कालीन सामाजिक स्थिति की जानकारी के लिये विशेष उपयोगी है।

(८) जहाँगीर-जस-चंद्रिका :

इस ग्रंथ की रचना संवत् १६६९ वि० के माह मास में हुई थी।[1] यह रचना उद्यम और भाग्य के कथोपकथन के रूप में लिखी गई है। उद्यम और भाग्य दोनों ही अपने को एक दूसरे से बड़ा सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं और अन्त में विवाद-निर्णय के लिये दोनों शिव जी के पास जाते हैं। शिव जी उन्हें सम्राट जहाँगीर के पास भेजते हैं। इस प्रकार दोनों आगरे जाते हैं। इस बहाने राजधानी का वर्णन किया गया है। राजधानी देखते हुये दोनों सभा में पहुँचते हैं। इस अवसर पर जहाँगीर, उसके सभासद तथा अन्य उपस्थित अधीनस्थ राजा-महाराजाओं का वर्णन किया गया है। अंत में उद्यम और भाग्य के अपना रूप प्रकट करने पर, सम्राट दोनों का आदर-सत्कार करता है और आने का कारण जान कर निर्णय देता है कि उद्यम और भाग्य में कोई छोटा-बड़ा नहीं, दोनों ही का स्थान बराबर है। इसके बाद उद्यम, भाग्य, काजी तथा केशवदास आदि जहाँगीर की प्रशंसा में छन्द पढ़ते और उसे आशीर्वाद देते हैं। यहीं ग्रंथ समाप्त हो जाता है। रचना साधारण कोटि की है।

1. 'सोरह सै उनहत्तरा माहा मास विचारु।
   जहाँगीर सक साहि की करी चंद्रिका चारु ॥२॥
   जहाँगीर-जस-चंद्रिका, पृ० सं० १।

उपसंहार :

केशवदास जी के ग्रंथों को देखने से ज्ञात होता है कि उन्होंने हिन्दी-साहित्य के प्रत्येक काल का प्रतिनिधित्व करते हुये प्रत्येक कोटि के पाठक के लिये पाठ-सामग्री प्रस्तुत की है। 'जहाँगीर-जस-चंद्रिका', 'रतनबावनी' तथा 'वीरसिंहदेव-चरित' ग्रंथों के रूप में चारण-काल की स्मृति है, 'विज्ञानगीता' में निर्गुण-भक्ति का परिचय कराया गया है तथा 'कविप्रिया', 'रसिकप्रिया' और 'नखशिख' के द्वारा रीतिसाहित्य का आधार-शिलान्यास किया गया है। दूसरे दृष्टिकोण से 'रामचंद्रिका' अभिमानी पंडितों के पांडित्य को परखने की कसौटी है; 'जहाँगीर-जस-चंद्रिका', 'रतनबावनी' और 'वीरसिंहदेव-चरित' की रचना साधारण कोटि के पाठकों के लिये भी बोधगम्य है तथा 'रसिकप्रिया', 'कविप्रिया', 'विज्ञानगीता' और 'नखशिख' की रचना मध्यम कोटि के पाठकों के लिये हुई है।

केशव के ग्रंथों का काव्य-स्वरूप तथा विषय के अनुसार वर्गीकरण :

१. प्रबन्ध-काव्य

अ—धार्मिक (१) रामचंद्रिका
(२) विज्ञानगीता

ब—ऐतिहासिक (१) वीरसिंहदेवचरित
(२) जहाँगीर-जस-चंद्रिका
(३) रतनबावनी

२. काव्यशास्त्र-सम्बन्धी ग्रंथ

अ—रसविवेचन तथा नायिका-भेद : रसिकप्रिया
ब—नखशिख : नखशिख
स—कविकर्तव्य तथा अलंकार : कविप्रिया
द—छन्द : रामचंद्रिका

केशव के ग्रंथों का रचनाक्रम

(१) रसिकप्रिया, रचनाकाल सं० १६२८ वि०
(२) रामचंद्रिका, रचनाकाल सं० १६५८ वि० (कार्तिक शुक्ल-पक्ष)
(३) नखशिख, रचनाकाल लगभग सं० १६५८ वि०
(४) कविप्रिया, रचनाकाल सं० १६५८ वि० (फाल्गुन शुक्ल-पक्ष)
(५) रतनबावनी, रचनाकाल सं० १६५८ वि० से १६६४ वि० तक
(६) वीरसिंहदेव-चरित, रचनाकाल सं० १६६४ वि०
(७) विज्ञानगीता, रचनाकाल सं० १६६७ वि०
(८) जहाँगीर-जस-चंद्रिका, रचनाकाल सं० १६६९ वि०

केशवदास जी के ग्रंथों की टीकायें :

जिस टीका में अर्थ, भाव, छंद तथा अलंकारादि का स्पष्टीकरण किया गया हो वह एक प्रकार की आलोचना कही जा सकती है। अच्छा टीकाकार एक ओर तो ग्रंथ-विशेष को बोधगम्य बना कर पाठक का सहायक होता है और दूसरी ओर कवि के पाठवृत्त को बढ़ाने के साथ ही उसकी ख्याति की भी वृद्धि करता है। प्राचीन क्लिष्ट ग्रंथों के लिये टीका की विशेष आवश्यकता है। यदि किसी प्राचीन क्लिष्ट ग्रंथ पर टीका उपलब्ध न हो तो उसका पठन-पाठन क्रमशः बन्द होकर उसके रचयिता का नाम विस्मृति के गर्भ में विलीन हो जायेगा। तुलसीदास जी के रामचरितमानस, नाभादास जी के भक्तमाल तथा बिहारी की सतसई के बाद सबसे अधिक टीकायें केशव के ग्रंथों पर ही लिखी गई हैं। उनकी क्लिष्टता के कारण यह आवश्यक भी था। खोजरिपोर्ट में केशव के विभिन्न ग्रंथों पर लिखी गई टीकाओं का परिचय यहाँ उपस्थित किया जाता है। 'रसिकप्रिया' ग्रंथ पर लिखी गई टीकायें निम्नलिखित हैं :

(१) सुख-विलासिका : पृष्ठ सं० १७२
छन्द सं० ३७००
स्थान : राजकीय पुस्तकालय
महाराजा बनारस

यह टीका ललितपुर-निवासी हरिजन के पुत्र सरदार कवि ने अपने शिष्य नारायण के सहयोग से सं० १९०३ वि० में काशिराज ईश्वरीनारायण प्रसाद सिंह की आज्ञा से लिखी थी। इन बातों का उल्लेख स्वयं कवि ने टीका ग्रंथ के आरम्भ में किया है।[1] यह प्रति लेखक ने महाराजा बनारस के पुस्तकालय में देखी है। यह टीका नवलकिशोर प्रेस लखनऊ से सन् १९११ ई० में छप चुकी है।

(२) जोरावर-प्रकाश (हस्तलिखित)
अ—प्रथम प्रति : पृष्ठ सं० २२०
छं० सं० ४२०८
स्थानः ला० विद्याधर
होरीपुरा, दतिया।

१. 'ताहि निहारि महीप मनि कहे बैन सुष दैन।
रसिकप्रिया भूषन रचो कवि कुल आनंद ऐन॥
धरि सिर आइस भूप की मन मँह मानि अनंद।
रसिकप्रिया भूषन रची जस राका को चंद॥
सिव द्रग गगनो ग्रह सुपुन रद गनेस की साल।
जेठ सुक्ल दसमी सुगुर करो ग्रंथ सुखमाल॥
वास ललितपुर नंद है हरिजन को सरदार।
वंदी जन रघुनाथ को पालत पवन कुमार॥
सुखविलासिका, हस्तलिखित, पृ० सं० ३

ब—द्वितीय प्रति : पृष्ठ सं० १४४
छंद सं० २२६८
प्रतिलिपिकालः सन् १८६१ ई०
स्थान : रमणलाल हरिचंद चौधरी,
बाजार कोसी, मथुरा

(३) रसगाहक-चंद्रिका : (हस्तलिखित)
प्रतिलिपि काल : १८१२ ई०
स्थान : रमणलाल हरिचंद चौधरी,
बाजार कोसी, मथुरा

'जोरावर प्रकाश' तथा 'रसगाहक-चंद्रिका' सूरत मिश्र ने लिखी थी। यह आगरा के निवासी और जहानाबाद दिल्ली के नसरुल्ला खाँ की सेवा में थे। यह सम्भवतः केशव के सर्व प्रथम टीकाकार थे। 'जोरावर-प्रकाश' की रचना सन् १७३४ ई० में नसरुल्ला खाँ उपनाम 'रसगाहक' के कहने से हुई थी।

(४) रसिकप्रिया टीका सहित : पृष्ठ सं० १४४
छंद सं० ४१५८

यह टीका किसी वाजिद के पुत्र कासिम द्वारा लिखी गई है। खोज रिपोर्ट में सुरक्षा का स्थान नहीं दिया है। रिपोर्ट के अनुसार इसका रचना-काल सं० १६४८ वि० दिया है किन्तु केशव-दास जी के उल्लेख के अनुसार 'रसिकप्रिया' की रचना इसी संवत् में हुई थी, अतएव सं० १६४८ वि० में ही इस ग्रंथ की टीका लिखा जाना असम्भव है।

'कविप्रिया' पर लिखी गई टीकायें निम्नलिखित हैं :

(१) काशिराज-प्रकाशिका :
पृष्ठ सं० १३५
छंद सं० २५००
स्थान : राजकीय पुस्तकालय
महाराजा बनारस

इस टीका की रचना भी 'रसिकप्रिया' की टीका के समान ही काशिराज महाराज ईश्वरी नारायण सिंह की आज्ञा से सरदार कवि ने अपने शिष्य नारायण कवि की सहायता से की थी।[1] इसका रचना-काल खोज-रिपोर्ट में नहीं दिया है। यह टीका लेखक ने महाराजा बनारस के पुस्तकालय में देखी है। यह टीका सन् १८८६ ई० में नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से छप चुकी है।

[1] 'आय नरायण शिष्य सों कह्यो सुकवि सरदार।
महाराज दीनों हुकुम करों तिलक सुविचार। ७।
गुरु शिष्य मिलि के कियो याको तिलक अनूप।
जो कछु बिगर्‌यो होय सो छमियो कविवर भूप। ८।
कविप्रिया, सटीक, सरदार, पृ० सं० १।

(२) कविप्रियाभरण (हस्तलिखित)

अ—प्रथम प्रति : पृष्ठ सं० १४१
छंद सं० ६०००
स्थान : राजकीय पुस्तकालय,
महाराजा बनारस ।

ब—द्वितीय प्रति : पृष्ठ सं० २०३
छंद सं० ७५१२
प्रतिलिपिकाल : सं० १८८३ वि०
स्थान : पं० रामवर्ण उपाध्याय,
फैजाबाद ।

यह टीका कविवर हरिचरणदास ने सं० १८३५ वि० में लिखी थी। हरिचरणदास ने ग्रंथ के अंत में स्वयं अपना परिचय दिया है। इसके अनुसार यह चैनपुरा जिला सारन के निवासी सरयूपारी ब्राह्मण रामधन के पुत्र थे। इनका जन्म सं० १७६६ वि० में हुआ था। यह मारवाड़ में कृष्णगढ़ के महाराज बहादुरराज के आश्रय में थे। इस ग्रंथ की रचना यहीं रह कर हुई थी।[1]

(३) धीर-कृत कविप्रिया-तिलक :

पृष्ठ सं० १९३
छंद सं० ६४५०
प्रतिलिपिकाल : सन् १८८० ई०
स्थान : राजकीय पुस्तकालय,
दतिया ।

धीर कवि के विषय में केवल इतना ही ज्ञात है कि यह राजा वीरकिशोर के आश्रित थे और उन्हीं की आज्ञा से यह टीका सन् १८१३ ई० में लिखी गई। धीरकिशोर के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। डा० ग्रियर्सन ने दिल्ली के सम्राट शाह आलम के दरबारी धीरकवि का उल्लेख किया है। स्व० डा० श्यामसुन्दर दास जी के विचार से सम्भव है यही कवि सन् १८०६ ई० में सम्राट शाह आलम की मृत्यु के बाद उपर्युक्त राजा के दरबार चला गया हो किन्तु इसका निश्चित प्रमाण नहीं है।

(४) कविप्रिया सटीक :

पृष्ठ सं० १०००
छंद सं० २२५०
प्रतिलिपिकाल : सं० १८५६ वि० अथवा सन् १७९९ ई०
स्थान : जुगलकिशोर मिश्र, गन्धौली, सीतापूर ।

यह टीका सूरत मिश्र ने लिखी थी। सूरत मिश्र का उल्लेख 'रसिकप्रिया' की टीकाओं

---

1. कविप्रिया, सटीक, हरिचरणदास, छं० सं० १-१७, पृ० सं० ३६९, ३७०।

'जोरावर-प्रकाश' तथा रसग्राहकचंद्रिका' के सम्बन्ध में पूर्वपृष्ठों में किया जा चुका है।

(५) कविप्रिया की टीका :

पृष्ठ सं० ५३

छंद सं० ७३१

रचनाकाल : सं० १८९७ वि० अथवा १८४० ई०

प्रतिलिपि काल : सं० १८९७ वि० अथवा १८४० ई०

स्थान : कन्हैयालाल भट्ट,

असनी, फतेहपूर

यह टीका सं० १८९७ वि० में पं० दौलतराम भट्ट असनी वाले के द्वारा लिखी गई थी। इनका विशेष विवरण ज्ञात नहीं है।

'रामचंद्रिका' पर लिखी गई टीकायें :

(१) रामभक्ति-प्रकाशिका (हस्तलिखित)

पृष्ठ सं० १४१

छंद सं० ६००

प्रतिलिपिकाल : सं० १८७४ वि०

स्थान : राजकीय पुस्तकालय, बनारस।

यह टीका जानकी प्रसाद जी ने सं १८७२ वि० में लिखी थी। 'रामचंद्रिका' पर यह एक मात्र उपलब्ध प्राचीन टीका है। इसमें टीकाकार ने केवल कठिन शब्दों का अर्थ ही दिया है। यह टीका सन् १९१५ ई० में नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से छप चुकी है।

(२) कृष्णशंकर जी शुक्ल ने 'केशव की काव्यकला' नामक ग्रंथ में सरदार कवि द्वारा 'रामचंद्रिका' पर टीका लिखे जाने का उल्लेख किया है किन्तु उसे उन्होंने देखा नहीं है।[1] खोज-रिपोर्ट में इस टीका का कोई उल्लेख नहीं है।

खोज-रिपोर्ट में उल्लिखित उपर्युक्त टीकाओं के अतिरिक्त 'कविप्रिया' पर नाजर सहज-राम-कृत एक और टीका उपलब्ध है। इसकी दो हस्तलिखित प्रतियाँ लेखक ने राजकीय पुस्तकालय, बनारस में देखी हैं। प्रथम प्रति खंडित है। इसकी पृष्ठसंख्या १२३ है। इसके प्रत्येक प्रकाश के अन्त में निम्नलिखित शब्द मिलते हैं :

'इति श्री नाजरसहजरामविरचितायां कविप्रियायां सहजरामचंद्रिकायां बलिभद्रचंद्रिकायां.. ...प्रकाश :'।

'सहजरामचंद्रिका' की दूसरी प्रति पूर्ण है। इसकी पृष्ठ सं० २२७ है। इसके प्रत्येक प्रकाश के अन्त में निम्नलिखित शब्द मिलते हैं :

'इति श्री नाजरसहजरामविरचितायां कविप्रियायां टीकायां सहजरामचंद्रिकायां......... प्रकाश :'।

ग्रंथ-रचना अथवा प्रतिलिपि-काल किसी प्रति में नहीं दिया है। सहजराम कौन थे, इसका भी ग्रंथ में कोई उल्लेख नहीं है। यह टीका प्रश्नोत्तर के रूप में लिखी गई है।

१. केशव की काव्यकला, पृ० सं १५।

उपर्युक्त सब टीकायें एक ही परिपाटी पर लिखी गई हैं। इनकी रचना उस समय हुई थी जब खड़ी बोली गद्य का प्रचार प्रायः नहीं के समान था। अतएव यह टीकायें ब्रज-भाषा गद्य में लिखी गई हैं जिनमें न आजकल की खड़ी बोली-गद्य का सा सुव्यवस्थित वाक्यविन्यास है और न विराम-चिन्हों आदि का उपयुक्त प्रयोग। जानकी प्रसाद जी ने अपनी 'रामचंद्रिका' की टीका में केवल कठिन शब्दों के अर्थ ही दिये हैं। सूरति मिश्र तथा सहजराम आदि की टीकायें प्रश्नोत्तर के रूप में लिखी गई हैं। अलंकारनिर्देश एक मात्र सरदार कवि ने ही अपनी टीकाओं में किया है। इन टीकाओं से कुछ उदाहरण यहाँ उपस्थित किये जाते हैं:

टीका : प्रश्न : 'विघननि को विमुखै कह्यौ, पापनि कह्यो बिलात।
इक को भगिबो एक को नाशन यह समबात ॥२॥
ताते यह दृष्टान्त की क्रया मध्य समतान।
वर्णनीय की नूनता यह कवि जन सुषदानि ॥३॥
उत्तर : विमुख अर्थ यह बिगत मुख काहे कि शिर बिनु होत।
जाते विमुख बिलात को नसिबो अर्थ उद्दोत' ॥४॥

'भीत और भूख युत कहूँ भीख भूखयुत ऐसो भी पाठ है भिक्षा को है भूख चाह जाको केतने शरीर अबल हैं यह गुंगा क्यों करि अबल कह्यो यामें तो बल है तहां काहू सों पुकारि न सके याते जानिये बकरा हरिण इत्यादि अबला स्त्री अबल जाति जानिये'।

'बाढ़ै जाके पढ़े ते रति वह प्रीति। और मति कइहो बुद्धि अतिई और जने सब रसन की रीति और स्वारथ भलो उपदेश देनो। और परमारथ कहा सीहिव को जापुता कुल है कहा पावै रसिकप्रिया सो जु पढ़ोऊ'।

अथवा :

'बहुत जे उच्च अपार घर हैं तिनकी जे बनी पगार परिखा हैं, छार देवालीति कहूँ शिर बन्दी कहते हैं तिनमें लाये अनेक पुर कौतुक देखिये को चिंतामणि सदृश नारी स्त्री ठाढ़ी हैं। चिन्तामणि सदृश जिनको मनोभिलाप पूरे होत हैं इत्यादि'।

अन्य टीकाओं की भाषा भी प्रायः इसी प्रकार की है। इन टीकाओं में सरदार कवि की टीकायें सब से अच्छी हैं। सरदार कवि ने अलंकार भी बतलाये हैं किन्तु भाषा की दुरुहता उनमें भी समान है। समसामयिक समाज के लिये यह टीकायें अवश्य लाभप्रद थीं किन्तु ब्रजभाषा-गद्य से हमारा सम्पर्क न रहने के कारण आजकल के लिये ये टीकायें अधिक उपयोगी नहीं हैं। इस परिस्थिति को दूर करने के लिये स्व० ला० भगवानदीन जी ने 'केशव-कौमुदी' तथा 'प्रियाप्रकाश' नाम से 'रामचंद्रिका' और 'कविप्रिया'-ग्रंथों की टीकायें लिखीं। 'केशव-कौमुदी' में टीका के साथ ही छंदों का अलंकार-निर्णय भी किया गया है और स्थान-स्थान पर आलोचनात्मक टिप्पणियाँ तथा छंदों के लक्षण भी दिये गये हैं। 'प्रिया-प्रकाश,' 'कविप्रिया' की टीका है जिसमें विभिन्न छंद, अलंकारों के उदाहरण के रूप में ही प्रस्तुत किये गये हैं अतएव इसमें अलंकार बतलाने की आवश्यकता नहीं थी। इन टीकाओं के द्वारा हिन्दी-साहित्य का बहुत बड़ा उपकार हुआ और केशव की रचनायें विस्मृति के गर्भ में विलीन होने से बच गईं। दीन जी 'रसिकप्रिया' की टीका लिखने का भी विचार कर रहे थे किन्तु असामयिक मृत्यु के कारण उनकी यह अभिलाषा पूर्ण न हो सकी।

भूदेव शर्मा विद्यालंकार ने इन टीकाओं की आलोचना कुछ वर्ष पूर्व 'प्रिया-प्रकाश की आलोचना,' 'दीन जी की दानाई' तथा 'रामचंद्रिका की केशव-कौमुदी' शीर्षक लेखों द्वारा की थी। शर्मा जी ने अपने लेखों में इन टीकाओं के दोषों और न्यूनताओं को दिखलाते हुये दीन जी को बिल्कुल अयोग्य सिद्ध करने की चेष्टा की और यहाँ तक कह डाला कि 'रामचंद्रिका की केशव-कौमुदी' नाम से लाला जी ने जो टीका की है वास्तव में वह टीका प्राचीन टीकाकार जानकी प्रसाद की टीका का उल्था-मात्र है। ऐसे ही 'कविप्रिया' की 'प्रिया-प्रकाश' नाम से आपने जो टीका छपवाई है वह भी क्या है सरदार कवि की टीका का नवीन संस्करण-मात्र है।[1] इन दोषों पर 'वीणा' में प्रकाशित 'केशव-कौमुदी' शीर्षक विद्वतापूर्ण लेखों में साहित्यालंकार राम जी बाजपेयी ने यथातथ्य विचार किया है।[2] यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि शर्मा जी ने अपने लेखों में जिस बुद्धि का परिचय दिया है वह साहित्य की संहारक ही है, संस्कारक नहीं। कोई भी विद्वान जानकी प्रसाद अथवा सरदार कवि की टीकाओं से लाला भगवानदीन जी की टीकाओं की तुलना कर उनकी विशेषतायें देख सकता है। लाला जी की टीकायें महत्वपूर्ण हैं, उनके द्वारा हिन्दी-साहित्य को जो लाभ हुआ उसे अस्वीकार करना कृतघ्नता होगी।

---

१. माधुरी, श्रावण, फाल्गुन तथा ज्येष्ठ, तुलसी सं ३०४।

२. वीणा, अगहन, पौष, फाल्गुन तथा चैत्र, सं० १९८९ वि०

चतुर्थ अध्याय

काव्य-विवेचन

प्रबन्ध-रचना :

रचना-शैली के विचार से काव्य के दो भेद हैं, मुक्तक और प्रबन्ध। मुक्तक रचना में प्रत्येक पद स्वयं पूर्ण तथा स्वतंत्र होता है, पूर्ववर्ती अथवा परवर्ती पद से उसका कोई संबंध नहीं होता। दूसरी ओर प्रबन्ध-काव्य में सब पद एक दूसरे से किसी प्रबन्ध-कथा अथवा विचार-धारा द्वारा शृंखला की कड़ियों के समान जुड़े रहते हैं। प्रभाव की दृष्टि से मुक्तक की अपेक्षा प्रबन्ध-काव्य का स्थान अधिक ऊँचा है। प्रबन्ध-काव्य में उत्तरोत्तर अनेक दृश्यों द्वारा संगठित जीवन का पूर्ण चित्र रहता है, अतएव पाठक के हृदय पर कथानक का स्थायी प्रभाव पड़ता है, किन्तु मुक्तक क्षण भर ही पाठक को मंत्रमुग्ध करता है; तथापि दोनों ही शैलियों की अपनी उपयोगिता और महत्व है। केशवदास जी ने दोनों ही शैलियों का उपयोग किया है। 'रसिकप्रिया', 'कविप्रिया' तथा 'नखशिख' मुक्तक रचनायें हैं; तथा 'रामचंद्रिका', 'विज्ञानगीता', 'वीरसिंहदेव-चरित', 'रतन-बावनी' तथा 'जहाँगीर-जस-चंद्रिका' प्रबन्ध-काव्य। प्रबन्ध शैली पर लिखी गई रचनाओं में 'रामचंद्रिका' सर्वश्रेष्ठ है। 'विज्ञानगीता' में विवेक और महामोह का युद्ध वर्णित है। इस प्रकार कवि ने एक दार्शनिक विषय को प्रबन्ध का रूप देकर सरस बनाने का प्रयास किया है। इस ग्रंथ में मनोवृत्तियों को पात्रों का स्वरूप देने के कारण कवि के सामने चरित्र-चित्रण का अवसर नहीं आया है।

'वीरसिंहदेव-चरित' ग्रंथ के कथानक का अध्ययन पूर्वार्ध तथा उत्तरार्ध, दो भागों में किया जा सकता है। पूर्वार्ध में सम्राट अकबर की सेनाओं के विरुद्ध वीरसिंहदेव के विभिन्न युद्धों का क्रमिक वर्णन है। इस प्रकार ग्रंथ के पूर्वार्ध का कथानक ऐतिहासिक होने के कारण इस अंश में जीवन की विभिन्न परिस्थितियों के मार्मिक चित्रण का अवसर नहीं था। अधिकांश स्थलों पर घटनाओं का यथातथ्य उल्लेख-मात्र ही है। ग्रंथ के उत्तरार्ध में वर्णन-भाग अधिक है और कथा-भाग प्रायः नहीं के बराबर है। इस ग्रंथ का उत्तरार्ध अधिकांश 'रामचंद्रिका' ग्रंथ के उत्तरार्ध का परिवर्धित संस्करण ही है। पात्र ऐतिहासिक व्यक्ति हैं, अतएव कवि के चरित्र-चित्रण-कौशल को भी नहीं परखा जा सकता। 'रतन-बावनी' ग्रंथ में सम्राट अकबर की सेना से कुंवर रतनसेन के युद्ध और अन्त में रतनसेन की मृत्यु का वर्णन है। कथानक शृंखलित है और अनावश्यक प्रसंग नहीं हैं। इस ग्रंथ में वीर रस का अच्छा परिपाक हुआ है। 'जहाँगीर-जस-चंद्रिका' ग्रंथ में प्रबन्ध का आभास-मात्र है, वास्तव में उसके पद फुटकल रचनायें प्रतीत होती हैं।

रामचंद्रिका के कथानक के सूत्र :

(१) बाल्मीकि रामायण :

प्रबंध-रचना के क्षेत्र में केशव की सबसे महत्वपूर्ण रचना 'रामचंद्रिका' है। इस ग्रंथ की प्रस्तावना में कवि ने लिखा है कि इसकी रचना बाल्मीकि मुनि को स्वप्न में देख कर उनकी प्रेरणा से हुई थी।[1] किन्तु 'रामचंद्रिका' के कथानक पर बाल्मीकि रामायण का विशेष प्रभाव नहीं दिखलाई देता। 'रामचंद्रिका' के कथानक का ढाँचा ही बाल्मीकि रामायण के कथानक के समान है अन्यथा दोनों ग्रंथों के सूक्ष्म ब्योरों में बहुत अधिक अन्तर है। तुलना के लिए बाल्मीकि रामायण का कथानक संक्षेप में यहाँ दिया जाता है।

बाल्मीकि रामायण का कथानक :

बाल्मीकि रामायण के 'बालकांड' में प्रस्तावना, नारद-संवाद, अयोध्या-वर्णन, अश्वमेध यज्ञ, चतुर्भ्रातृ का जन्म, राजा दशरथ के दरबार में विश्वामित्र का आना, रामलक्ष्मण का यज्ञ-रक्षार्थ गमन, ताड़का-वध, विश्वामित्र द्वारा राम को दिव्यास्त्र-प्रदान, सिद्धाश्रम में प्रवेश, यज्ञ-समाप्ति के बाद मिथिला-गमन, धनुर्भंग, दशरथ का मिथिला-आगमन, जनक तथा दशरथ के वंश का वर्णन, राम आदि भाइयों का विवाह, अयोध्या-प्रस्थान, मार्ग में परशुराम का मिलना तथा अंत में पुत्रों-सहित दशरथ के सकुशल अयोध्या लौटने का वर्णन है। बीच-बीच में कई उपाख्यानों तथा कथाओं का भी वर्णन है।

'अयोध्याकांड' में भरत-शत्रुघ्न का ननिहाल जाना, दशरथ का राम को युवराज बनाने का परामर्श, मन्थरा की प्रेरणा से कैकेयी का विघ्न उपस्थित करना, रामबनवास, दशरथ का मरण, भरत का चित्रकूट-गमन तथा राम की पादुका लेकर लौटना और नन्दिग्राम में तप तथा राज्य-प्रबन्ध आदि का वर्णन किया गया है। बीच-बीच में श्रवण की कथा तथा बर्षा का विशद वर्णन भी हुआ है।

'अरण्यकांड' में रामसीता का दंडकवन में प्रवेश, विराध-वध, शरभंग का प्राण-त्याग, राम का सुतीक्ष्ण तथा अगस्त्यादि ऋषियों के आश्रम में जाना, जटायु से मिलन, पंचवटी में निवास, शूर्पणखा के नाक-कान काटा जाना, खरदूषण आदि राक्षसों का वध, रावण का मारीच के साथ आगमन तथा मारीच-वध, रावण द्वारा सीताहरण, जटायु की मृत्यु, सीता के वियोग में राम का विलाप, दक्षिण दिशा की ओर गमन, कबन्ध-वध तथा राम का पम्पासर के निकट आने आदि का वर्णन किया गया है।

'किष्किंधाकांड' में पम्पा सरोवर के सौंदर्य का वर्णन, सीता के वियोग में राम का विलाप, हनूमान-मिलन, सुग्रीव-मैत्री तथा बालिवध, तारा का विलाप, बालि की अन्त्येष्टि, सुग्रीव का राजतिलक, वर्षा तथा शरद ऋतुओं का वर्णन, लक्ष्मण का क्रुद्ध हो किष्किंधा-प्रवेश, सुग्रीव का क्षमा-याचन तथा सीता की खोज के लिये बानरों को भेजना, बानरों को सम्पाति से सीता की खोज मिलना तथा हनूमान को लंका जाने के लिये प्रोत्साहित करने का वर्णन है।

1. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ७-२०, पृ० सं० ८-६।

'सुन्दरकांड' में हनूमान का समुद्र पार करना, लंका में प्रवेश, रावण के अन्तःपुर में भ्रमण, सीता की खोज न मिलने पर हनूमान की चिन्ता, अशोक वाटिका में जाना तथा वहाँ सीता को राक्षसियों के बीच में देखना, रावण का आकर सीता को प्रेम, भय आदि दिखलाना, सीता का एकान्त में विलाप, हनूमान का प्रकट होना और हनूमान-सीता-सम्वाद, सीता का राम के प्रति संदेश देना, हनूमान द्वारा वाटिका उजाड़ना, अक्षकुमार का वध, हनूमान का रावण के सम्मुख जाना, लंका-दहन, हनूमान का सीता से बिदा लेकर प्रस्थान तथा राम के सम्मुख उपस्थित हो सीता की करुण-कथा सुनाने आदि का वर्णन किया गया है।

'युद्धकांड' में बानरों द्वारा समुद्र पर सेतु-बंधन, राम की सेना का सागर पार कर डेरा डालना, रावण से अपमानित विभीषण का राम की शरण में आना, रावण का शुक के द्वारा राम की सेना के विषय में पता लगाना, सीता का विलाप तथा सरमा का उन्हें सान्त्वना देना, रावण के दरबार में अंगद का गमन, राम-रावण-युद्ध का आरम्भ, द्वन्द्व-युद्ध, रात्रि-युद्ध, अंगद से इन्द्रजीत की पराजय, राम-लक्ष्मण का इन्द्रजीत द्वारा नागफांस में बांधा जाना तथा मुक्ति, हनूमान द्वारा धूम्राक्ष तथा अकम्पन-वध, अंगद द्वारा वज्रदंष्ट्र का वध, नील द्वारा प्रहस्त-वध, लक्ष्मण की मूर्छा तथा उपचार द्वारा जागरण, कुम्भकर्ण का घोर संग्राम तथा वध, देवान्तक, महोदर, त्रिशिरा तथा महापार्श्व का वध, लक्ष्मण द्वारा अतिकाय की मृत्यु, अंगद द्वारा कम्पन, शोणिताक्ष आदि का वध, मेघनाथ का लक्ष्मण के द्वारा मारा जाना, राम-रावण युद्ध तथा रावण की मृत्यु एवं दाहक्रिया, विभीषण का राजतिलक, हनूमान का सीता को विजय संदेश-प्रदान, सीता की अग्नि-परीक्षा, राम का अयोध्या-प्रत्यावर्तन, भरत-मिलाप, अयोध्या-प्रवेश, राम का राज्याभिषेक, रामराज्य-काल तथा रामायण-महात्म्य लिखा गया है। वास्तव में ग्रंथ यहीं समाप्त हो जाता है।

'उत्तरकांड' में राम के अभिषेकोत्सव में अगस्त्य आदि ऋषियों का आना, राम द्वारा रावण के जन्म तथा पराक्रम का वर्णन, राम से बिदा लेकर ऋषियों तथा बानरों का गमन, सीता-राम-विहार, राम द्वारा सीता-त्याग, सीता का बाल्मीकि मुनि के आश्रम में निवास तथा लवकुश-जन्म, लवणासुर-वध के लिये शत्रुघ्न का गमन, रामाश्वमेध में लव-कुश का बाल्मीकि के साथ आगमन, बाल्मीकि के आग्रह पर सीता के पुनर्ग्रहण का राम का विचार, सीता का प्राणत्याग, माताओं की मृत्यु, राजा युधाजित का राम को संदेश, भरत द्वारा गन्धर्व देश पर आक्रमण तथा तक्षशिला एवं पुष्कलावर्त का शिलान्यास, लक्ष्मण के पुत्र अंगद तथा चन्द्रकेतु का राजतिलक एवं अंगदीप तथा चन्द्रकेतुपुर की नीव, राम को एक तपस्वी द्वारा गुप्त संदेश देना, दुर्वासा का आगमन, लक्ष्मण का प्राणत्याग, राम का शोक, कुश व लव का अभिषेक, कुशावती तथा श्रावस्ती की नीव, शत्रुघ्न का राम के पास आना, तथा पुरवासियों-सहित राम का महाप्रस्थान तथा परमगति प्राप्त करने का वर्णन किया गया है।

बाल्मीकि रामायण तथा 'रामचंद्रिका' के कथानक की तुलना :

बाल्मीकि रामायण तथा 'रामचन्द्रिका' की तुलना करने से ज्ञात होता है कि दोनों ग्रंथों के कथानक में बहुत अधिक अन्तर है। बाल्मीकि रामायण में वर्णित अनेक प्रसंगों को केशव ने छोड़ दिया है। 'बालकांड' में नारद-संवाद, अश्वमेध यज्ञ, रामादि का जन्मोत्सव,

विश्वामित्र का राम को अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा देना तथा चारों भाइयों के विवाह का वर्णन आदि बाल्मीकि रामायण में वर्णित प्रसंगों का केशव ने कोई उल्लेख नहीं किया है। इसी प्रकार बाल्मीकि रामायण में 'अयोध्याकांड' के अन्तर्गत वर्णित मन्थरा-प्रसंग; 'अरण्यकांड' के अन्तर्गत वर्णित शरभंग का प्राण-त्याग, पंचवटी-निवास करने के पूर्व जटायु का मिलन; 'किष्किंधाकांड' के अन्तर्गत बालि-वध के पश्चात् तारा-विलाप तथा बालि की अन्त्येष्टि क्रिया; 'सुन्दरकांड' में रावण के जाने के पश्चात् सीता का करुण-क्रंदन; 'युद्धकांड' में सीता का विलाप तथा सरमा द्वारा आश्वासन-प्रदान, अंगद द्वारा वज्रदंष्ट्र तथा नरांतक का वध, देवान्तक-महोदर-महापार्श्व-वध, लक्ष्मण द्वारा अतिकाय का वध, पुनः अंगद द्वारा कम्पन-प्रजंघ-शोणिताक्ष का वध आदि प्रसंगों का 'रामचन्द्रिका' ग्रंथ में कोई उल्लेख नहीं है। इसी प्रकार बाल्मीकि रामायण के 'उत्तरकांड' में वर्णित अधिकांश कथा केशव ने छोड़ दी है। बाल्मीकि द्वारा वर्णित अनेक उपाख्यानों, कथाओं तथा गाथाओं का वर्णन भी 'रामचन्द्रिका' में नहीं मिलता है। तथापि कुछ प्रसंग ऐसे हैं जिनके लिखने में केशव को बाल्मीकि रामायण से विशेष प्रेरणा मिली प्रतीत होती है यथा 'बालकांड' के अन्तर्गत अयोध्या का विस्तृत वर्णन तथा बारात लौटते समय मार्ग में परशुराम का मिलना; 'सुन्दरकांड' में हनूमान का सीता की खोज में रावण के अन्तःपुर में भ्रमण तथा 'उत्तरकांड' में शत्रुघ्न का लवणासुर के वध के लिए जाना आदि। इन प्रसंगों का वर्णन बाल्मीकि रामायण में है, तुलसी के 'रामचरित-मानस' में नहीं है।

(२) 'हनुमन्नाटक' :

रामकथा-सम्बन्धी संस्कृत के दो नाटकों का 'रामचन्द्रिका' के कथानक पर विशेष प्रभाव पड़ा है। यह ग्रंथ 'हनुमन्नाटक' तथा 'प्रसन्नराघव' हैं। वैष्णव 'हनुमन्नाटक' को मूल रूप में हनूमान जी द्वारा रचित मानते हैं। इस नाटक के दो संस्करण प्राप्त हैं। प्रथम संस्करण के रचयिता दामोदर मिश्र हैं, जिनका समय लगभग १००० ई० है। इसमें १४ अंक हैं। 'हनुमन्नाटक' का दूसरा संस्करण किसी मधुसूदन दास द्वारा विरचित है।[1] इसमें केवल ६ अंक हैं।

'हनुमन्नाटक' की कथावस्तु :

दामोदर मिश्र—विरचित संस्करण के पहले अंक में मुनि विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण का मिथिला आना, राम का विवाह और रामादि के अयोध्या लौटने का वर्णन है। राम के मिथिलागमन के पूर्व की कथा का संक्षेप में उल्लेखमात्र है। दूसरे अंक में अयोध्या में राम-सीता-सुखोपभोग का वर्णन है। तीसरे अंक में कैकेयी द्वारा दशरथ से वर मांगना, राम का वनवास, वन में सीता का हेम-कुरंग को देख कर मुग्ध होना तथा उसके वध के निमित्त राम के प्रस्थान आदि का वर्णन है। चौथे अंक में सीताहरण तथा रावण-जटायु के युद्ध की कथा वर्णित है। पाँचवें अंक में सुग्रीव-मैत्री तथा बालिवध का वर्णन है। छठे अंक में हनूमान का

[1]. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, पृ० सं० ११८।

लंका-गमन, हनूमान-जानकी-सम्वाद, हनूमान-रावण-सम्वाद तथा लंकादहन आदि की कथा कही गई है। सातवें अंक में राम लंका के लिये प्रस्थान करते हैं, विभीषण राम की शरण में आता है और सेतु-बन्धन होता है। आठवें अंक में अंगद-सम्वाद की कथा कही गई है। नवें अंक में मन्दोदरी तथा विरूपाक्ष आदि मंत्री रावण को समझाने और सीता को लौटा देने की परामर्श देते हैं। दसवें अंक में रावण माया के प्रपंच के द्वारा सीता को वश में करने का निष्फल प्रयत्न करता है। ग्यारहवें अंक में राम की सेना का लंका नगरी में प्रवेश, कुम्भकर्ण द्वारा युद्ध तथा उसके वध का वर्णन है। बारहवें अंक में इन्द्रजीत के युद्ध और वध का वर्णन है। तेरहवें अंक में लक्ष्मण के शक्ति लगने की कथा कही गयी है। चौदहवें तथा अन्तिम अंक में रावण-वध, सीता की अग्नि-परीक्षा, विभीषण का अभिषेक, राम का अयोध्या लौटना, राम का राज्याभिषेक, तथा कुछ कालोपरान्त राम द्वारा सीता-त्याग तक की कथा वर्णित है।

(३) प्रसन्नराघव :

'प्रसन्नराघव' के रचयिता जयदेव हैं। जयदेव विदर्भ देश के कुंडिन नगर के निवासी थे। इनका समय लगभग १२०० ई० माना गया है। इन्होंने ही 'चन्द्रालोक' नामक प्रसिद्ध अलंकार-ग्रंथ की रचना की है। यह 'गीतगोविन्द' के रचयिता जयदेव से भिन्न हैं।[1]

'प्रसन्नराघव' की कथावस्तु :

'प्रसन्नराघव' नाटक में सात अंक हैं। पहले अंक में बाणासुर और रावण दोनों, सीता की याचना कर उपहासास्पद बनते हैं। दूसरे अंक में राम जनकपुर के उद्यान में सीता को अपनी सखी के साथ भ्रमण करते देखते हैं। दोनों में साक्षात्कार होता और दोनों परस्पर आकृष्ट होते हैं। तीसरे अंक में सीता-स्वयंवर तथा चौथे में राम और परशुराम का युद्ध होता है। पांचवें अंक में नदियों के संवाद द्वारा राम-वनवास से लेकर सीताहरण तक की घटनाओं का परिचय दिया गया है। छठे अंक में विरही राम को दो विद्याधर माया द्वारा लंका की घटनायें दिखलाते हैं। सीता, रावण के प्रणय-प्रस्ताव को ठुकरा देती है। रावण क्रोधवश उसे मारने के लिए आगे बढ़ता है। इतने में ही उसके हाथ में उसके पुत्र अक्ष का कटा सिर आकर गिरता है। सातवें अंक में रावण-वध कर राम आकाश मार्ग से अयोध्या लौट आते हैं।

'हनुमन्नाटक' तथा 'रामचंद्रिका' में भावसाम्य :

'हनुमन्नाटक' तथा 'रामचन्द्रिका' के अनेक स्थलों पर भाव-साम्य दिखलाई देता है। कुछ स्थलों पर तो केशवदास जी ने मूल भाव कथा-प्रसंग सहित ले लिया है तथा अन्य स्थलों पर उसका उपयोग भिन्न परिस्थिति में किया है। 'हनुमन्नाटक' के कुछ अंशों का 'रामचंद्रिका' में शब्दशः अनुवाद दिखलाई देता है और कुछ भावों को कवि ने अपने शब्दों में व्यक्त किया है। यह सब बातें दोनों ग्रंथों के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट हो जायेंगी। यहाँ 'हनुमन्नाटक' तथा 'रामचंद्रिका' के भाव-साम्य रखने वाले स्थल उपस्थित किए जाते हैं।

1. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, पृ० सं० २००।

'हनुमन्नाटक' के राम-परशुराम-संवाद के अन्तर्गत परशुराम की प्रशंसा करते हुए राम के शब्द हैं :

'स्त्रीषु प्रवीरजननी जननी तवैव,
देवी स्वयं भगवती गिरिजापि यस्यै।
त्वद्दोर्वंशीकृतविशाखमुखावलोक—
व्रीडाविदीर्णहृदया स्पृहयां बभूव' ॥[1]

अर्थात् 'वीरप्रसू स्त्रियों में एक मात्र आपकी माता ही हैं। आपके बाहुबल द्वारा पराजित स्वामिकार्तिकेय के मुख को देख कर स्वयं भगवती गिरजा का हृदय लज्जा से विदीर्ण हो गया था और उनके हृदय में आपकी माता के प्रति ईर्ष्या उत्पन्न हो गई थी'।

इस श्लोक के भाव के आधार पर केशव ने निम्नलिखित छन्द लिखा है। केशव के छन्द में स्पष्ट रूप से गिरजा द्वारा रेणुका की प्रशंसा की गई है और ईर्ष्या व्यंग्य है। केशव का छन्द काव्य की दृष्टि से अधिक सुंदर है।

'जब हयो हैहयराज इन बिन छत्र छिति मंडल कर्यो।
गिरि बेध षटमुख जीति तारकनन्द को जब ज्यों हर्यो।
सुत मैं न जायो राम सो यह कह्यौ पर्वतनन्दिनी।
वह रेणुका तिय धन्य धरणी में भई जगवंदिनी' ॥[2]

'हनुमन्नाटक' के परशुराम के मुख से कुठार के द्वारा किए हुए कठोर कर्मों की स्मृति दिलाये जाने पर राम के कहे हुए दो छन्द हैं :

'जातः सोऽहं दिनकरकुले क्षत्रियः श्रोत्रियेभ्यो,
विश्वामित्रादपि भगवती दृष्टदिव्यास्त्रपारः।
अस्मिन्वंशे कथयतुजनो दुर्यशो वा यशो वा,
विप्रे शस्त्रग्रहणगुरुणः साहसिक्याद्बिभेमि' ॥[3]

अर्थात् "मैं सूर्यकुलोद्भव क्षत्रिय हूँ जिसे श्रोत्रिय भगवान विश्वामित्र के समान व्यक्ति ने अपार दिव्यास्त्रों की शिक्षा दी है। तथापि मेरे वंश को यश की प्राप्ति हो अथवा अपयश की, मैं ब्राह्मण के विरुद्ध शस्त्र-ग्रहण करने का महान साहस करने से डरता हूँ'।

दूसरा छन्द है :

"हारः कंठे विशतु यदि वा तीक्ष्णधारः कुठारः।
स्त्रीणां नेत्राण्यधिवसतु सुखं कज्जलं वा जलं वा।
सम्पश्यामो ध्रुवमपि सुखं प्रेतभर्तुर्मुखं वा।
यद्वा तद्वा भवतु न वयं ब्राह्मणेषु प्रवीराः' ॥[4]

१. हनुमन्नाटक, छं० सं० ४३, पृ० सं० २०।
२. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० २६, पृ० सं० १३२-१३३।
३. हनुमन्नाटक, छं० सं० ४१, पृ० सं० १६।
४. हनुमन्नाटक, छं० सं० ४४, पृ० स० २० तथा प्रसन्नराघव, छं० सं० ३३, पृ० सं० ५७।

अर्थात् 'हमारे कंठ में हार सुशोभित हो अथवा तीक्ष्णधार वाला कुठार, स्त्रियों के नेत्रों में सुख का द्योतक काजल शोभा पाये अथवा उनसे अश्रुधारा बहे, निश्चय ही हमें सुख की प्राप्ति हो अथवा यम का मुख देखना पड़े, चाहे जो कुछ भी हो हम लोग ब्राह्मणों के लिए वीर नहीं हैं'।

इन दोनों छन्दों के मूलभाव को केशव ने निम्नलिखित एक ही छन्द में सफलतापूर्वक व्यक्त किया है :

'कंठ कुठार परै अब हार कि, फूलै असोक कि सोक समूरो।
कै चितसार चढ़ै कि चिता, तन चंदन चर्चि कि पावक पूरो।
लोक में लोक बड़ो अपलोक, सु केशवदास जु होउ सु होऊ।
विप्रन के कुल को भृगुनंदन, सूर न सूरज के कुल कोऊ' ॥[1]

रामबनवास तथा दशरथ की मृत्यु के पश्चात् जब भरत ननिहाल से लौटकर आते हैं तो वे कैकेयी से रामादि का समाचार पूछते हैं। इस स्थान पर 'हनुमन्नाटक' में प्रश्नोत्तर-समन्वित निम्नलिखित श्लोक दिया हुआ है :

'मातस्तातः क्व यातः सुरपतिभवनं हा कुतः
पुत्रशोकात्कोऽसौ पुत्रश्चतुर्णां त्वमवरजतया यस्य जातः किमस्य।
प्राप्तोऽसौ काननान्तं किमिति नृपगिरा किंतथासौ बभाषे।
मद्वाग्बद्धः फलं ते किमिहि तव धराधीशता हा हतोऽस्मि' ॥[2]

अर्थात् 'हे माता! पिता कहाँ गए हैं? स्वर्गलोक। क्यों? पुत्रशोकवश। चारों पुत्रों में से वह कौन पुत्र हैं? तुम्हारे बड़े भाई। कैसे? वह वन चले गये हैं। क्यों? राजा की आज्ञा से। उन्होंने ऐसा क्यों कहा? मुझसे बचनबद्ध होने के कारण। तुम्हें इससे क्या लाभ होगा? तुम्हारा राज्याभिषेक। हा, मैं हत हुआ!

निम्नलिखित छन्द में केशव ने इस श्लोक का बहुत सफल शाब्दिक अनुवाद किया है :

'मातु कहाँ नृप? तात गये सुरलोकहिं, क्यों? सुत शोक लये।
सुत कौन सु? राम, कहाँ हैं अबै? बन लच्छन सीय समेत गये॥
वन काज कहा कहि? केवल मो सुख, तोको कहा सुख यामे भये?
तुमको प्रभुता, धिक तोकों कहा अपराध बिना सिगरेई हये' ॥[3]

'हनुमन्नाटक' के अन्तर्गत पंचवटी का वर्णन करते हुये लक्ष्मण ने कहा है :

'एषा पंचवटी रघूत्तम कुटी यत्रास्ति पंचावटी।
पान्थस्यैकघटी पुरस्कृततटी संश्लेषभित्तौ वटी॥

१. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ३३, पृ० सं० १३६।
२. हनुमन्नाटक, छं० सं० ८, पृ० सं० ४१।
३ रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ४, पृ० सं० १८२, १८३।

गोदा यत्र नदी तरंगिततटी कल्लोलचंचत्पुटी।
दिव्यामोदकुटी भवाब्धिशकटी भूतक्रियादुष्कटी'॥[१]

अर्थात् 'हे रघूत्तम, इस पाँच वट वृक्षों से युक्त पंचवटी को कुटी बनाइये। पंचवटी क्षण भर के लिये पथिकों को विश्राम करने का निमन्त्रण देती है। इसका द्वार-भाग सुशोभित है, इसकी भित्ति वटवृक्षों द्वारा ही निर्मित है। इसके निकट दिव्यामोद प्रदान करने वाली भवसागर पार करने के लिए पोत के समान तथा सामान्य उपायों द्वारा दुष्प्राप्य कल्लोल करती हुई तरंगों से युक्त गोदावरी नदी प्रवाहित है'।

इस श्लोक के आधार पर केशव ने लक्ष्मण के मुख से पंचवटी का वर्णन कराते हुये निम्नलिखित छन्द दिया है, किन्तु केशव के छन्द में भावसाम्य की अपेक्षा भाषासाम्य अधिक है।

'सब जाति फटी दुख की दुपटी कपटी न रहै जहं एक घटी।
निघटी रुचि मीचु घटी हूँ घटी जग जीव जतीन की छूटी तटी॥
अघ ओघ की बेरी कटी विकटी निकटी प्रकटी गुरु ज्ञान गटी।
चहुँ ओरन नाचति मुक्ति नटी गुन धूरजटी बन पञ्चवटी'॥[२]

'हनुमन्नाटक' में रावण द्वारा कपटमृग का रूप धारण करने के लिये प्रेरित मारीच सोचता है:

'रामादपि च मर्तव्यं मर्तव्यं रावणादपि।
उभयोर्यदि मर्तव्यं वरं रामो न रावणः'।[३]

अर्थात् 'राम के द्वारा भी मृत्यु निश्चित है तथा रावण के द्वारा भी। जब दोनों के द्वारा मृत्यु निश्चित है तो रावण की अपेक्षा राम के हाथों से मरना अधिक उत्तम है'।

इस श्लोक के आधार पर इसी प्रसंग में केशव ने लिखा है:

'जान चल्यो मारीच मन, मरन दुहूँ विधि आसु।
रावन के कर नरक है, हरि कर हरिपुर वास'।[४]

हनुमन्नाटक-कार ने यह स्पष्ट नहीं किया है कि मारीच राम के हाथों मरना क्यों श्रेष्ठतर समझता है, केशव ने यह बात स्पष्ट कर दी है।

'हनुमन्नाटक' के अन्तर्गत कपटमृग को मार कर लौटे हुए राम पर्णशाला में सीता को न पाकर कहते हैं:

"बहिरपि न पदानां पंक्तिरन्तर्न काचित्
किमिदमियमसीता पर्णशाला किमन्या

१. हनुमन्नाटक, छं० सं० २२, पृ० सं० ५१।
२. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० १८, पृ० सं० २०४, २०५।
३. हनुमन्नाटक, छं० सं० २४, पृ० सं० ५३।
४. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ११, पृ० सं० २२२।

अहमपि किल नायं सर्वथा राघवश्चेत्
क्षणमपि नहि सोढ़ा हन्त सीतावियोगम्' ॥[१]

अर्थात् 'न तो बाहर पैरों के चिह्न दिखलाई देते हैं और न कुटी में कोई है, इसका क्या कारण है ? सीता कहाँ है ? अथवा यह कोई दूसरी कुटी है। या मैं स्वयं ही बदल गया हूँ। इस प्रकार राम का हृदय क्षण भर भी सीता का वियोग न सहन कर सका'।

मूल भाव 'हनुमन्नाटक' के उपर्युक्त श्लोक से लेकर उसे और परिष्कृत कर केशव ने निम्नलिखित छन्द लिखा है।

'निज देखौं नहीं शुभ गीतहिं सीतहिं कारण कौन कहौं अबहीं।
अति मो हित कै वन मांझ गई सुर मारग मैं मृग मार्यो जहीं।
कटु बात कछू तुम सों कहि आई किधौं तेहि त्रास दुराय रही।
अब है यह पर्णकुटी किधौं और किधौं वह लक्ष्मण होइ नहीं' ॥[२]

केशव ने अपने छन्द की दूसरी तथा तीसरी पंक्ति में जो शंकायें उठाई हैं, वह बहुत ही स्वाभाविक हैं।

'हनुमन्नाटक' के अन्तर्गत सीता के वियोग के कारण उत्पन्न दुःख का वर्णन करते हुये राम का कथन है :

'चन्द्रश्चण्डकरायते मृदुगतिर्वातोऽपि वज्रायते।
माल्यं सूचिकुलायते मलयजो लेपः स्फुलिंगायते।
रात्रिः कल्पशतायते विधिवशात्प्राणोऽपि भारायते।
हा हन्त प्रमदावियोगसमयः संहारकालायते' ॥[3]

अर्थात् 'हा हन्त, सीता-वियोग-काल प्रलयकाल के समान दुखदायी है। इस समय चन्द्रमा, सूर्य के समान प्रतीत हो रहा है, मंद-मंद बहने वाली वायु वज्र के समान पीड़ा दे रही है, पुष्पमाल सुई की चुभन के समान कष्टप्रद है, चन्दन का लेप अग्नि के समान दग्ध करता है, रात्रि शत कल्पों के समान प्रतीत हो रही है, तथा विधिवश प्राण भारस्वरूप हो रहे हैं।

इस श्लोक के भाव के आधार पर इसी प्रसंग में केशव ने राम के मुख से भी कहलाया है :

'हिमांशु सूर सो लगै सो बात बज्र सी बहै।
दिसा लगैं कृसानु ज्यों विलेप अङ्ग को दहै ॥
विसेस कालिरात्रि सों कराल राति मानिये।
वियोग सीय को न, काल लोकहार जानिये' ॥[४]

१. हनुमन्नाटक, छ० सं० २, पृ० सं० ६० ।
२. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० २७, पृ० सं० २२१ ।
३. हनुमन्नाटक, छं० सं० २६, पृ० सं० ७० ।
४. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ४२, पृ० सं० २२९ ।

'हनुमन्नाटक' में किष्किन्धा के पर्वत पर सुग्रीवादि द्वारा सीता के आभूषण दिखलाये जाने पर राम के शब्द हैं :

'जानक्याः एव जानामि भूषणानीति नान्यथा ।
वत्स लक्ष्मण जानीषे पश्य त्वमपि तत्वतः' ॥[१]

अर्थात 'मैं यह आभूषण जानकी के ही समझता हूँ किसी अन्य के नहीं। वत्स लक्ष्मण, तुम पहचानते हो, जानकी के ही हैं न'।

इस श्लोक के आधार पर केशव ने लिखा है :

'रघुनाथ जबै पटनूपुर देखे। कहि केशव प्राण समानहि लेखे।
अवलोकत लक्ष्मण के कर दीन्हे। उन आदर सो सिर लाइ के लीन्हें' ॥[२]

'हनुमन्नाटक' के छन्द में कोई विशेषता नहीं है। केशव के छन्द में सीता के प्रति राम के प्रेम की स्वाभाविक व्यंजना तथा लक्ष्मण के आदर-भाव का भी प्रकटीकरण है।

'हनुमन्नाटक' में मारीच के वध के पश्चात् जब राम लौट कर अपनी कुटी में आये तो वहाँ सीता जी को न पाकर बहुत दुखी हुये, उस समय सीता जी के उत्तरीय को पाकर राम का कथन है :

'द्यूते पणः प्रणयकेलिषु कंठपाशः
क्रीडापरिश्रमहरं व्यजनं रतान्ते।
शय्या निशीथसमये जनकात्मजायाः
प्राप्तं मया विधिवशादिदमुत्तरीयम्' ॥[३]

अर्थात् 'भाग्यवश मुझे यह उत्तरीय प्राप्त हो गया है। यह जुये का पाँसा है, अथवा प्रणय-केलि के समय का कंठपाश है या सुरति के पश्चात् रतिक्रीडा के परिश्रम को दूर करने के लिये पङ्खा है अथवा रात्रि के समय की सीता की शय्या है'।

केशव ने मूल भाव उपर्युक्त श्लोक से लेकर उसे अपेक्षाकृत अधिक विस्तारपूर्वक निम्नलिखित छन्द में व्यक्त किया है। केशव ने 'हनुमन्नाटक' से भिन्न स्थल में इस भाव का उपयोग किया है। किष्किन्धा के पर्वत पर सुग्रीव के द्वारा राम के सामने सीता का उत्तरीय उपस्थित किये जाने पर राम का कथन है:

'पंजर कै खंजरीट नैनन को केशोदास,
कैधौं मीन मानस को जलु है कि जारु है।
अंग को कि अंग राग गेंडुवा कि गलसुई,
किधौं कोट जीव ही को उरको कि हारु है।
बंधन हमारो काम केलि को कि ताड़िबे को,
ताजनो विचार को, कै व्यजन विचारु है।

१. हनुमन्नाटक, छ० सं० २६, पृ० सं० ७७।
२. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ६१, पृ० सं० २४३।
३. हनुमन्नाटक, छं० सं० १, पृ० सं० ६०।

मान की जमनिका कै कंजमुख मूँदिबे को,
सीता जू को उत्तरीय सब सुख सारु है'।[१]

'हनुमन्नाटक' के अन्तर्गत हनूमान द्वारा सीता के मुद्रिका प्राप्त करने पर सीता तथा हनूमान के प्रश्नोत्तर-समन्वित श्लोक है :

'मुद्रे सन्ति सलक्ष्मणाः कुशलिनः श्रीरामपादाः सुखं
सन्ति स्वामिनि मा विधेहि विधुरं चेतोऽनया चिन्तया।
एनां व्याहर मैथिलाधिपसुते नामान्तरेणाधुना
रामस्त्वद्विरहेण कंकणपदं ह्यस्यै चिरं दत्तवान्'।[२]

सीता जी मुंदरी से पूँछती हैं कि 'हे मुंदरी! रामचन्द्र जी लक्ष्मण-सहित कुशल से तो हैं? हनूमान जी उत्तर देते हैं कि स्वामिनि! इस चिन्ता से हृदय दुखी मत करो। वे सब सकुशल हैं। हे जानकी जी! आज मुंदरी को भिन्न नाम से सम्बोधित कीजिये, आपके विरह में रामचन्द्र जी ने इसे चिरकाल से कंकण का स्थान प्रदान किया है'।

इस श्लोक के भाव को केशव ने निम्नलिखित छन्दों में प्रकट किया है। अन्तर केवल इतना ही है कि केशव ने हनूमान के मुख से मुंदरी के चुप रहने का कारण सीता के पूछने पर कहलाया है।

'कहि कुसल मुद्रिके राम गात। सुभ लच्छमण सहित समान तात।
यह उतरु देत नहिं बुद्धिवंत। केहि कारण धौं हनुमंत संत।
तुम पूछत कहि मुद्रिके, मौन होत यहि नाम।
कंकन की पदवी दई, तुम बिन या कहं राम'॥[3]

'हनुमन्नाटक' के अन्तर्गत विभीषण रावण से सीता जी को लौटा देने का परामर्श देता हुआ कहता है :

'सुवर्णपंखाः सुभटाः सुतीक्ष्णाः
वज्रोपमा वायुमनः प्रवेगाः।
यावन्न गृह्णन्ति शिरांसि बाणाः
प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली'।[४]

अर्थात् 'स्वर्णपंखों से युक्त, दृढ़, तीक्ष्ण, वज्रोपम तथा वायु एवं मन के समान वेग वाले राम के बाण जब तक तुम्हारे शिरों को छिन्न-भिन्न नहीं कर देते तब तक राम को सीता जी को अर्पण कर दो'।

इस श्लोक के भाव को केशव ने निम्नलिखित छन्दों में अपेक्षाकृत अधिक विस्तार से प्रकट किया है।

'देखे रघुनायक धीर रहै, जैसे तरु पल्लव वायु बहै।

---

१. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ६२, पृ० सं० २४३, ४४।
२. हनुमन्नाटक, छं० सं० १६, पृ० सं० ४३।
३. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ८६, ८७, पृ० सं० २८९।
४. हनुमन्नाटक, छं० सं० ८, पृ० सं० १०६।

जौलौं हरि सिंधु तरेई तरै, तौलौं सिय लै किन पांय परै ॥
जौलौं नल नील न सिंधु तरै, जौलौं हनुमंत न दृष्टि परै।
जौलौं नहिं अंगद लंक ढही, तौलौं प्रभु मानहु बात कही ॥
जौलौं नहिं लछमण बाण धरैं, जौलौं सुग्रीव न क्रोध करैं।
जौलौं रघुनाथ न सीस हरौ, तौलौं प्रभु मानहु पाइ परौ' ॥[1]

'हनुमन्नाटक' के अन्तर्गत जिस समय अंगद रावण की सभा में पहुँचता है, रावण का प्रतिहार उसके प्रताप को सूचित करते हुए निम्नलिखित छन्द पढ़ता है :

'ब्रह्मन्नध्ययनस्य नैष समयस्तूष्णीं बहिः स्थीयतां।
स्वल्पं जल्प बृहस्पते जड़मते नैषा सभा वज्रिणः ॥
स्तोत्रं संहर नारद स्तुतिकुलालापैरलं तुम्बुरो।
सीतारल्लकभल्लभग्नहृदयः स्वस्थो न लंकेश्वरः' ॥[2]

अर्थात् 'ब्रह्मा! अध्ययन बन्द करो। यह इसका समय नहीं है। बाहर चुपचाप ठहरो। बृहस्पति! अधिक व्यर्थालाप मत करो। मूर्ख! यह इन्द्र की सभा नहीं है। नारद! स्तोत्र बन्द करो। तुम्बुर (गंधर्व विशेष)! स्तुति करना रोक दो। लंकेश्वर स्वस्थ नहीं है। सीता के सिन्दूर-रेखा-रूपी भाले से उसका हृदय भग्न हो गया है'।

इस श्लोक के भाव के आधार पर इसी प्रसंग में केशव ने निम्नलिखित छंद लिखा है :

'पढौ विरंचि मौन बेद जीव सोर छंडि रे।
कुबेर बेर कै कही न यक्ष भीर मंडि रे।
दिनेश जाय दूरि बैठि नारदादि संगही।
न बोलु चंद मंद बुद्धि इन्द्र की सभा नहीं' ॥[3]

केशवदास जी ने रावण-अंगद-संवाद के अन्तर्गत कई छन्द 'हनुमन्नाटक' के इसी प्रसंग में दिये हुये श्लोकों के भाव के आधार पर लिखे हैं। इस प्रकार के छन्द मूलश्लोक-सहित यहाँ उपस्थित किये जाते हैं। रावण और अंगद के प्रश्नोत्तर से समन्वित श्लोक हैं :

'सोऽपि त्वं कमिवावगच्छसि पुरा योऽदाहि लांगूलतो।
"बद्धो मत्तनयेन हन्त स कथं मिथ्यावदन्नः पुरा।
किं लंकापुरदीपनं तव सुतस्तेनाहतोऽन्यो युधी-
त्युक्तः कोपभयत्रपाभरवशस्तूष्णीमभूद्रावणः' ॥[4]

अर्थात् 'क्या तुम उसको भी जानते हो जिसे कुछ दिवस पूर्व मेरे पुत्र ने बाँधा था और जिसकी पूँछ में आग लगाई गई थी'। अंगद उत्तर में कहता है, 'क्या लंकापुरी को

1. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० १०, १२, पृ० सं० ३१९, २०।
2. हनुमन्नाटक, छं० सं० ४२, पृ० सं० १२९, ३०।
3. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० २, पृ० सं० ३३६।
4. हनुमन्नाटक, छं० सं० ५, पृ० सं० ११३।

जलाने तथा तुम्हारे पुत्र अक्ष को युद्ध में उसके द्वारा मारे जाने की बात मिथ्या है। अंगद के यह कहने पर रावण कोप, भय तथा लज्जा से पराभूत हो चुप हो गया'।

इस श्लोक के भाव के आधार पर केशव ने निम्नलिखित छंद के अन्तिम दो पद लिखे हैं :

'कौन हो पठये सो कौने ह्यां तुम्हैं कह काम है।
जाति बानर, लंकनायक दूत, अंगद नाम है।
कौन है वह बांधि के हम देह पूँछ सबै दही।
लंक जारि संहारि अच्छ गयो सो बात वृथा कही' ॥[1]

'कस्त्वं वन्यपतेः सुतो वनपतिः कः सार्थिकस्त्वेकदा,
यातः सप्तसमुद्रलंघनविधावाह्निको वेद्मि तं।
अस्ति स्वस्ति समन्वितो रघुवरे रुष्टेऽत्र कः स्वस्तिमान्,
को भूयादनरण्यकस्य मरणातीतोचिताम्बुप्रद:' ॥[2]

अर्थात 'तुम कौन हो? बालि के पुत्र। कौन बालि? मैं उसे जानता हूँ? एक बार एक ही दिन में तुम को लेकर सात सागर पार किये थे। वह कुशल से तो है? संसार में राम के रुष्ट होने पर किसकी कुशल रह सकती है' आदि।

इस श्लोक के भाव के आधार पर केशव ने निम्नलिखित छन्द लिखा है :

'कौन के सुत, बालि के वह कौन बालि न जानिये।
कांख चांपि तुम्हैं जो सागर सात न्हात बखानिये॥
है कहाँ वह, वीर अंगद देवलोक बताइयो।
क्यों गयो, रघुनाथ बान विमान बैठ सिधाइयो' ॥[3]

'कस्त्वं वानर रामराज भवने लेख्यार्थसंवाहको।
यातः कुत्र पुराऽऽगतः स हनुमन्निर्दग्धलंकापुरः।
बद्धो राक्षस सूनुनेति कपिभिः संताडितस्तर्जितः।
स व्रीडार्तिपराभवो वनमृगः कुत्रेति न ज्ञायते' ॥[4]

अर्थात् 'तुम कौन हो? रामचन्द्र जी के राजभवन में पत्रवाहक वानर। वह हनूमान कहाँ गया जो कुछ दिनो पूर्व आया था और जिसने लंकापुरी जलाई थी? राक्षस के पुत्र ने उसे बाँधा था, यह कह कर बंदरों द्वारा प्रताड़ित तथा तर्जना दिया गया; लज्जा, दुःख तथा पराभव का अनुभव करता हुआ वह बानर कहाँ है यह नहीं ज्ञात है'।

इस श्लोक के आधार पर केशव का छन्द है :

'कौन भाँति रहौ तहाँ तुम, राज प्रेषक जानिये।
लंक लाइ गयो जो बानर कौन नाम बखानिये।

१. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ४, पृ० सं० ३३७
२. हनुमन्नाटक, छं० सं० १०, पृ० सं० ११५।
३. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ६, पृ० सं० ३३८
४. हनुमन्नाटक, छं० सं० ६, पृ० सं० ११४।

मेघनाद जो बाँधियो वहि मारियो बहुधा तबै।
लोक लाज दुर्‌यो रहै अति जानिये न कहाँ अबै'।[१]

अंगद की रावण के प्रति उक्ति है :

'आदौ वानरशावकः समतरद्‌लंघ्यमम्भोनिधिं।
दुर्भेद्यान्प्रविवेश दैत्यनिवहान्‌ उपेत्य लंकापुरीम्।
क्षिप्त्वातद्वनरक्षिणो जनकजां दृष्ट्वा तु भुक्त्वा वनं।
हत्वाऽक्षं प्रदहत्पुरीं च स गतो रामः कथं वर्ण्यते'॥[२]

'राम के प्रताप का क्या वर्णन किया जाये। आरम्भ में उनके एक वानर-शावक ने दुर्लङ्घ्य सागर को पार किया, राक्षसों के दुर्भेद्य महलों में प्रवेश किया, लंकापुरी को देखा, अशोक वन के रक्षकों को मारा, सीता के दर्शन किये, वन का भोग किया, अक्षकुमार को मारा तथा लंकापुरी को जलाकर चला'।

इस श्लोक का भाव केशव ने निम्नलिखित छंद में प्रकट किया है :

'श्रीरघुनाथ को वानर केशव आयो हो एक न काहू हयो जू।
सागर को मद फारि चिकारि त्रिकूट की देह विहारि गयो जू।
सीय निहारि संहारि कै राक्षस शोक अशोक वनीहि दयो जू।
अक्षकुमारहि मारकै लंकहि जारिकै नीकेहि जात भयो जू'॥[३]

रावण, अंगद को राम के विरुद्ध उत्तेजित करता हुआ कहता है :

'धिग्धिगंगद मानेन येन ते निहतः पिता।
निर्माना वीरवृत्तिस्ते तस्य दूतत्वमागतः'॥[४]

'अंगद! तुम्हारे अहंकार को धिक्कार है, जिसने तुम्हारे पिता को मारा तुम उसी के दूत होकर आये हो। तुम्हारी वीरवृत्ति आत्माभिमान से रहित है'।

इस भाव को केशव ने नीचे दिये हुये छंद में प्रकट किया है। केशव का छंद अपेक्षाकृत अधिक काव्योपयुक्त है। केशव के छंद के अन्तिम पदों में रावण का चातुर्य तथा कूटनीति स्पष्ट है।

'उरसि अंगद लाज कछू गहौ। जनक घातक बात वृथा कहौ।
सहित लछमण रामहि संहरौं। सकल बानर राज तुम्हैं करौं'॥[५]

अंगद रावण की भर्त्सना करता हुआ कहता है :

'रे रे राक्षसवंशघात समरे नाराचचक्राहतं
रामोत्तुंगपतंगचापयुगले तेजोभिराडम्बरे।

१. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ५, पृ० सं० ३३८।
२. हनुमन्नाटक, छं० सं० १२, पृ० सं० ११६।
३. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ८, पृ० सं० ३३९, ४०।
४. हनुमन्नाटक, छं० सं० २६, पृ० सं० १२१।
५. रामचन्द्रिका, छं० सं० १८, पृ० सं० ३४६।

मन्ये शौर्यमिदं त्वदीयमखिलं भूमंडले पातितं ।
गृध्रैरालुठितं शिवाकवलितं काकैः क्षतं यास्यति' ।।[१]

'रे राक्षस-वंश के घातक! रामचन्द्र जी के धनुष-बाण ग्रहण करने पर तेज से आपूरित समरस्थल में राम के बाणों से आहत तेरे सब शिर पृथ्वी पर गिर पड़ेंगे और उन्हें गृद्ध लुंठित करेंगे, शृगाली कवल करेंगी तथा कौवे क्षत-विक्षत करेंगे :

केशव के निम्नलिखित छंद का भी प्रायः यही भाव है :

'नराच श्रीराम जहीं धरैंगे। अशेष माथे कटि भू परैंगे।
शिखा शिवा स्वान गहै तिहारी। फिरैं चहूँ ओर निरै बिहारी' ।।[२]

रावण अपने ऐश्वर्य को सूचित करता हुआ अंगद से कहता है :

'मृत्युः पादान्तभृत्यस्तपति दिनकरो मन्दमन्दं ममाग्रे
ऽप्यष्टौ ते लोकपाला मम भयचकिताः पादरेणुं ववन्दुः ।
दृष्ट्वा तं चन्द्रहासं स्रवति सुरवधूपन्नगीनां च गर्भो ।
निर्लज्जौ तापसौ तौ कथमिह भवतो वानरान्मेलयित्वा' ।।[३]

'मृत्यु मेरे चरणों में स्थित मेरी दासी है। मेरे सम्मुख सूर्य का ताप मन्द हो जाता है, लोकपाल मुझ से भयभीत होकर मेरे चरण-रज की वन्दना करते हैं तथा मेरी चन्द्रहास नामक खड्ग को देख कर सुरवधुओं तथा पन्नगियों का गर्भस्राव हो जाता है। वह दोनों निर्लज्ज तपस्वी (रामलक्ष्मण) बन्दरों को एकत्रित कर मुझ से सीता को कैसे ले सकते हैं'।

इस श्लोक के भाव के आधार पर केशव ने निम्नलिखित छन्द लिखे हैं। केशव ने रावण के मुख से रामलक्ष्मण की असामर्थ्य का उल्लेख न करा कर वानरराज सुग्रीव की अशक्ति का कथन कराया है और इस प्रकार अपने इष्टदेव राम के प्रभुत्व की रक्षा की है।

केशव के छन्द हैं :

'महामीचु दासी सदा पांइ धोवै। प्रतीहार ह्वै कै कृपा सूर जोवै।
छपानाथ लीन्हें रहै छत्र जाको। करैगो कहा शत्रु सुग्रीव ताको ।।
सका मेघमाला शिखी पाककारी। करै कोतवाली महादंड धारी।
पढ़ै वेद ब्रह्मा सदा द्वार जाके। कहा बापुरो शत्रु सुग्रीव ताके' ।[४]

'हनुमन्नाटक' के अन्तर्गत रावण की आज्ञा से महोदर के कुंभकर्ण को जगाने के लिये जाने के अवसर पर दो छंद हैं :

'विरम विरम तूर्णं कुम्भकर्णस्य कर्णा
न्नखलु तव निनादैरेष निद्रां जहाति।

१. हनुमन्नाटक, छं० सं० २०, पृ० सं० १२०।
२. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० २१, पृ० सं० ३४७।
३. हनुमन्नाटक, छं० सं० १६, पृ० सं० ११६।
४. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० २२, २३, पृ० सं० ३४७।

इति कथयति काचित्प्रेयसी प्रेक्षमाणा
मशकगलकरन्ध्रे हस्तियूथं प्रविष्टम्' ॥[1]

'ठहरो-ठहरो, कुम्भकर्ण के कानों में तुम्हारे निनाद करने से उसकी नींद न टूटेगी। यह कहते हुये कुम्भकर्ण की किसी प्रेयसी के देखते ही देखते उसकी सांस के साथ ही हाथियों का यूथ उसके मुँह में समा गया'।

तथाः

'निद्रां तथापि न जहौ यदि कुम्भकर्णः
श्रीकंठलब्धवरकिन्नरकामिनीनाम्
गन्धर्वयक्षसुरसिद्धवरांगनाना
माकर्ण्य गीतममृतं परमं विनिद्रः' ॥[2]

'फिर भी जिस कुम्भकर्ण की नींद न टूटी, वह किन्नर, यक्ष, देवता तथा सिद्धों की स्त्रियों के कंठ की सुरीली तानों को सुन कर जग गया'।

केशव ने इन श्लोकों के आधार पर निम्नलिखित छन्द लिखे हैं। केशव ने हाथियों के कुम्भकर्ण के मुख में समाने का उल्लेख न कर स्वाभाविकता की रक्षा की है।

'राक्षस लाखन साधन कीने। दुन्दुभि दीह बजाइ नवीने।
मत्त अमत्त बड़े अरु बारे। कुंजरपुंज जगावत हारे।
आइ जहीं पुरनारि सभागी। गावन बीन बजावन लागी।
जागि उठो तब ही सुरदोषी। छुद्र छुधा बहु भक्षण पोषी।'[3]

'हनुमन्नाटक' का कुम्भकर्ण युद्ध के लिये राम के सामने उपस्थित होने पर कहता है :

'नाहं बाली सुबाहुर्न खरत्रिशिरसौ दूषण-
स्ताटकाऽहं नाहं सेतुः समुद्रे न च धनुरपि य-
स्त्र्यम्बकस्य त्वयात्तम् रे रे रामप्रतापानल-
कवलमहाकालमूर्त्तिः किलाहं वीराणां मौलि-
शल्यः समरभुविधरः संस्थितः कुम्भकर्णः' ॥[4]

'न मैं बालि हूँ न सुबाहु; न त्रिशिरा, न खरदूषण, न ताड़का ही हूँ, न समुद्र का सेतु हूँ, और न शंकर जी का धनुष, जिसको तुमने सहज ही तोड़ डाला, राम के प्रताप की अग्नि का ग्रास करने वाला महाकाल, वीरों में अग्रणी, युद्धस्थल में निर्भय विचरण करने वाला कुम्भकर्ण तुम्हारे सामने स्थित है'।

यही भाव प्रायः केशव के निम्नलिखित छन्दों का भी है :

'न हौं ताड़का, हौं सुबाहौ न मानो। न हौं शम्भुकोदंड साँची बखानो।
न हौं ताल बाली खरै जाहि मारो। न हौं दूषणै सिंधु सूधे निहारो।

---

१. हनुमन्नाटक, छं० सं० १४, पृ० सं० १६५।

२. हनुमन्नाटक, छं० सं० १५, पृ० सं० १६५।

३. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० २, ३, पृ० सं० ३७७।

४. हनुमन्नाटक, पूर्वार्ध, छं० सं० २४, पृ० सं० १६६।

सुरी आसुरी सुन्दरी भोग कर्णों। महाकाल को काल हौं कुम्भकर्णों।
सुनो राम संग्राम को तोहि बोलौं। बड़ो गर्व लंकाहि आये सु खोलौं।'[1]

'हनुमन्नाटक' में समरभूमि में रावण के महोदर से पूँछने पर कि 'राम कहाँ हैं' महोदर उत्तर देता है :

'अंके कृत्वोत्तमांगं प्लवंगबलपतेः पादमक्षस्य हन्तु—
भूमौ विस्तारितायां त्वचिकनकमृगस्यांगशेषं निधाय।
बाणं रक्षःकुलघ्नं प्रगुणितमनुजेनार्पितं तीक्ष्णमक्ष्णोः
कोणेनोद्वीक्षमाणस्त्वदनुजवचने दत्तकर्णोऽयमास्ते' ॥[2]

'राम पृथ्वी पर कनक मृगछाला बिछाये, सुग्रीव की गोद में शिर तथा हनूमान जी के अंक में पैर रखे लेटे हैं। परशुराम द्वारा अर्पित प्रगुणित धनुष पर राक्षस कुल-घातक बाण चढ़ा है और वह आँखों की कोर से तुम्हारे छोटे भाई विभीषण की ओर देखते हुये कान लगाये उसकी बातें सुन रहे हैं'।

इस भाव का उपयोग केशव ने भिन्न परिस्थिति में किया है। रावण का दूत संधि-प्रस्ताव लेकर राम के पास जाता है। वहाँ से वापस आने पर रावण के पूँछने पर वह कहता है :

'भूतल के इन्द्र भूमि पौढ़े हुते रामचंद्र,
मारिच कनकमृगछालहिं बिछाये जू।
कुंभहर-कुंभकर्ण-नासाहर-गोद सीस,
चरण अकंप-अक्ष-अरि उर लाये जू।
देवान्तक-नरान्तक-अन्तक त्यों मुसकात,
विभीषण बैन तन कानन रुखाये जू।
मेघनाद-मकराक्ष-महोदर-प्राणहर,
बाण त्यों बिलोकत परम सुख पाये जू' ॥[3]

'प्रसन्नराघव' तथा 'रामचंद्रिका' में भावसाम्य :

संस्कृत भाषा-साहित्य का दूसरा ग्रंथ जिसका 'रामचंद्रिका' के कथानक पर गम्भीर प्रभाव दिखलाई देता है, कवि जयदेव-कृत 'प्रसन्नराघव' नाटक है। 'रामचन्द्रिका' के तीसरे, चौथे, पाँचवें तथा सातवें प्रकाश की कथा का क्रम तथा अनेक स्थल एवं उक्तियाँ 'प्रसन्न-राघव' के ही आधार पर लिखी गई हैं। आगामी पृष्ठों में दोनों ग्रंथों के समान अंशों का तुलनात्मक अध्ययन उपस्थित किया जाता है।

'रामचन्द्रिका' के तीसरे प्रभाव में राजा जनक की सभा के बंदीजन सुमति तथा विमति स्वयंवर-स्थल में उपस्थित राजाओं का परिचय प्रश्नोत्तर के द्वारा प्रदान करते हैं।

१. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० २२, २३, पृ० सं० ३८७, ३८८।
२. हनुमन्नाटक, छं० सं० १६३।
३. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० २०, पृ० सं० ३१८।

प्रायः यह सम्पूर्ण प्रसंग 'प्रसन्नराघव' के प्रथम अंक के नूपुरक तथा मंजीरक वन्दी-जनों के इसी प्रकार प्रश्नोत्तर-समन्वित संवाद के आधार पर लिखा गया है। दोनों ग्रंथों के इस प्रसंग के समान अंश यहाँ उद्धृत किये जाते हैं।

'नटति नरकराग्रव्यग्रसूत्राग्रलग्न-
द्विपदशनशलाकामंचपांचालिकेयम्।
त्रिपुरमथनचापारोपणोत्कंठिताना-
मतिरभसवतीवक्ष्माभृतां चित्तवृत्तिः' ॥[1]

मंच पर स्थित राजाओं के स्पर्श से मंच में लगी हुई हाथीदांत की शलाकों के हिलने का वर्णन करते हुये कवि जयदेव का कथन है कि 'हाथीदांत से युक्त मंच-रूपी कठपुतली राजाओं के हाथ में स्थित डोर के सहारे मानो नृत्य कर रही है। मंच-रूपी पांचालिका ठीक उसी प्रकार व्यग्रतापूर्वक नृत्य कर रही है, जिस प्रकार शिव-धनु की प्रत्यंचा चढ़ाने के लिए उत्सुक राजाओं की चित्तवृत्ति'।

इस श्लोक के आधार पर केशव ने लिखा है :

'नचति मंच पंचालिका कर संकलित अपार।
नाचति है जनु नृपन की चित्त वृत्ति सुकुमार' ॥[2]

'प्रसन्नराघव' का नूपुरक प्रश्न करता है :

'वयस्य मंजीरक कोऽयं सीताकरग्रहवासनावसन्तलक्ष्मीविलसत्पुलकमुकुलजालमण्डितं निजभुजसहकारशाखियुगलं विलोकयंस्तिष्ठति'।[3]

'मित्र मंजीरक, सीता के पाणिग्रहण की वासना-रूपी वसन्त-श्री के कारण रोमांच के रूप में मुकुलित अपनी भुजा-रूपी दो सहकार वृक्षों को यह कौन देख रहा है'।

इन पंक्तियों के आधार पर केशव का सुमति प्रश्न करता है :

'को यह निरखत आपनी पुलकित बाहु विशाल।
सुरभि स्वयंवर जनु करी मुकुलित शाख रसाल' ॥[4]

'प्रसन्नराघव' का मंजीरक उत्तर देता है :

'स एष निजयशःपरिमलप्रमोदितचारणचंचरीकचयकोलाहलमुखरितदिक्चक्रराज-
क्ष्मापालकुन्तलालंकारी मल्लिकापीडो नाम'।[5]

'यह कुंतल अलंकार पहने हुये मल्लिकापीड नामक राजा है जिसके यशरूपी परिमल से आमोदित चारण-रूपी भंवरे दिशाओं को उसके यशगान द्वारा मुखरित करते फिरते हैं'।

केशव के विमति का कथन है :

१. प्रसन्नराघव, छं० सं० २८, पृ० सं० ६।
२. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० १६, पृ० सं० ४७।
३. प्रसन्नराघव, पृ० सं० ६।
४. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० १८, पृ० सं० ४८।
५. प्रसन्नराघव, पृ० सं० ६।

'जेहि यश परिमल मत्त चंचरीक चारण फिरत।
दिशि विदिशन अनुरक्त सु तौ मल्लिकापीड़ नृप' ॥[1]

'प्रसन्नराघव' के मंजीरक के शब्द हैं :

'सोऽयं कुबेरदिगंगनाललाटतटविलासलम्पटः काश्मीरतिलकः'।[2]

'यह कुबेर की दिशारूपी स्त्री के ललाटस्थल का लोभी काश्मीर का राजा है'।

केशव का विमति कहता है :

'राजराज दिगबाम भाल लाल लोभी सदा।
अति प्रसिद्ध जग नाम काशमीर को तिलक यह' ॥[3]

'प्रसन्नराघव' के मंजीरक का कथन है :

'स एष निजप्रतापप्रभापटलपिंजरितमलयाचलनितम्बतटः कांचीमंडनो वीरमाणिक्यनामनृपतिः'।[4]

'यह कांची का अलंकारस्वरूप वीरमाणिक्य नामक राजा है जो अपने प्रताप के प्रभा-मंडल से मलयाचल अर्थात् दक्षिण दिशा-रूपी स्त्री के नितम्बों को प्रभापूर्ण करता है'।

केशव के विमति के शब्द हैं :

'नृप माणिक्य सुदेश, दक्षिण तिय जिय भावतो।
कटि तट सुपट सुवेश, कल कांची शुभ मंडई' ॥[5]

'प्रसन्नराघव' के नूपुरक का प्रश्न है :

'कोऽयं हर्षोल्लसत्पुलकविसंष्ठुलकपोलस्थलचलितकुंडलसद्दशनिवेशनापदेशेन प्रकटित हरशरासनकर्णपूरमनोरथो राजते'।[6]

'हर्ष के कारण पुलकित कपोल-भाग पर हिलते हुये कुंडलों के बहाने से शंभु के शरासन को कानों तक खींचने की इच्छा रखने वाला यह कौन राजा है'।

केशव का सुमति प्रश्न करता है :

'कुंडल परसन मिस कहत कौन यह राज।
शंभु सरासन गुण करौं करणालंबित आज' ॥[7]

'प्रसन्नराघव' का मंजीरक बतलाता है :

'सोऽयमसमरणामहार्णवैकमकरो मत्स्यराजः'।[8]

१. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० १६, पृ० सं० ४६।
२. प्रसन्नराघव, पृ० सं० ६।
३. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० २१, पृ० सं० ४६।
४. प्रसन्नराघव, पृ० सं० ६।
५. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० २३, पृ० सं० ५०।
६. प्रसन्नराघव, पृ० सं० ६।
७. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० २४, पृ० सं० ५०।
८. प्रसन्नराघव, पृ० सं० १०।

'यह सागर के ही समान रणस्थल के लिये मकर सदृश मत्स्यराज है'।

केशव का विमति कहता है:

'जानहि बुद्धि निधान, मत्स्यराज यहि राज को।
समर समुद्र समान, जानत सब अवगाहि के' ॥[1]

'प्रसन्नराघव' का मंजीरक घोषणा करता है:

'आकर्णान्तं त्रिपुरभवनोद्दंडकोदंडनद्धां।
मौर्वीमुर्वीवलयतिलकः कोऽपि यः कर्षतीह।
तस्यायान्ती परिसरभुवं राजपुत्री भवित्री।
कूजत्कांचीमुखरजघना श्रोत्रनेत्रोत्सवाय'।[2]

'जो राजा कर्ण-पर्यन्त शिवधनु की प्रत्यंचा खींचेगा, मुखरित मेखला से आभूषित प्रांगण में आने वाली जानकी उस राजा के कानों तथा नेत्रों को सुख-प्रदायिनी होगी'।

केशव का विमति भी प्रायः यही कहता है:

'कोउ आज राज समाज में बल शम्भु को धनु कर्षिहै।
पुनि श्रौण के परिमाण तानि सो चित्त में अति हर्षिहै।
वह राज होइ कि रङ्क केशवदास सो सुख पाइहै।
नृपकन्यका यह तासु के उर पुष्पमालहि नाइहै' ॥[3]

'प्रसन्नराघव' का मंजीरक कहता है:

'पश्य पश्य सुभटैः स्फुटभावं, भक्तिरेव गमिता न तु शक्तिः।
अंजलिर्विरचितो न तु मुष्टिर्मौलिरेव नमितो न तु चापः' ॥[4]

'देखो देखो बड़े बड़े वीरों ने भक्ति ही प्रदर्शित की, शक्ति नहीं। उन्होंने अञ्जलि ही जोड़ी, मुष्टिका नहीं। उनका शिर ही झुका, धनुष नहीं'।

इस श्लोक के भाव के आधार पर केशव का छन्द है:

'शक्ति करी नहि भक्ति करी अब, सो न नयो तिल शीश नये सब।
देख्यो मैं राजकुमारन के वर, चाप चढ़्यो नहि आप चढ़े खर' ॥[5]

'रामचन्द्रिका' के चौथे प्रकाश में रावण-बाणासुर संवाद है। यह अंश भी 'प्रसन्न-राघव' के प्रथम अङ्क के आधार पर लिखा गया है। यहाँ समान अंश तुलना के लिये उपस्थित किये जाते हैं।

'प्रसन्नराघव' का बाण रावण से कहता है:

'यदीदृशं वीराडम्बरं तत्किमारोप्य हरकार्मुकं नानीयते सीता'।[6]

१. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० २५, पृ० सं० ५१।
२. प्रसन्नराघव, छं० सं० २६, पृ० सं० १०।
३. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ३१, पृ० सं० ५२।
४. प्रसन्नराघव, छं० सं० ३१, पृ० सं० १०।
५. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ३३, पृ० सं० ५२।
६. प्रसन्नराघव, पृ० सं १७।

'यदि वीरता का ऐसा आडम्बर है तो शिवधनु को चढ़ा कर सीता को क्यों नहीं ले जाते'।

केशव के बाण का कथन है :

जुपै जिय जोर, तजौ सब शोर।
सरासन तोरि, लहौ सुख कोरि' ॥[1]

'प्रसन्नराघव' के रावण के शब्द हैं :

उद्दंडचण्डिमलसद्भुजदंडखंड,
हेलाचलाचलहराचलचारु कीर्ते,
कीदृग्यशस्तुलितबालमृणालकांड-,
कोदण्डकर्षणकथनयानया मे' ।[2]

'सहज ही कैलाश पर्वत को उठा लेने वाली मेरी उद्दंड तथा प्रचंड भुजाओं की कीर्ति की बालमृणाल के समान कोमल धनु के कर्षण की इस कदर्थना से क्या तुलना'।

यही भाव केशव ने बाण द्वारा कथित निम्नलिखित छन्द में अपेक्षाकृत अधिक विस्तार-पूर्वक प्रकट किया है :

'वज्र को अखर्व गर्व गंज्यो जेहि पर्वतारि
जीत्यौ है, सुपर्व सर्व भाजे लै लै अंगना।
खंडित अखंड आशु कीन्हो है जलेश पाशु,
चंदन सी चन्द्रिका सों कीन्हीं चन्द्र बंदना।
दंडक में कीन्हो कालदंड हू को मानखंड,
मानो कीन्हो काल ही की कालखंड खंडना।
केशव कोदंड बिपदंड ऐसो खंडे अब,
मेरे भुजदंडन की बड़ी है विडम्बना' ॥[3]

'प्रसन्नराघव' का बाण रावण पर व्यंग करता हुआ कहता है :

'बहुमुखता नाम बहुप्रलापितायाः कारणम्'।[4]

'अनेक मुख बहुप्रलाप का कारण होता है'।

केशव का बाण भी इसी प्रकार कहता है :

'बहुत बदन जाके। विविध बचन ताके'।[5]

'प्रसन्नराघव' के रावण का कथन है :

१. रामचन्द्रिका, छं० सं० ८, पृ० सं० ५५।
२. प्रसन्नराघव, छं० सं० ४८, पृ० सं० १७।
३. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ६, पृ० सं० ५६।
४. प्रसन्नराघव, पृ० सं० १७।
५. रामचन्द्रिका, पृ० सं० ५७।

'आः कथं रे प्रलालभारनिः सारेण भुजभारेण वीरमन्योऽसि' ।[१]

अर्थात् 'अरे, तू निस्सार भुजाओं के भार से अपने को वीर समझता है' ।

केशव का रावण भी यही कहता है :

'अति असार भुज भार ही बली होहुगे बाण' ।[२]

'प्रसन्नराघव' का बाण अपनी वीरता की प्रशंसा करता हुआ कहता है :

'पितुः पादाम्भोजप्रणतिरभसोत्सिक्तहृदयः
प्रयातः पातालं न कतिकतिवारानकरवम् ।
सहस्रे बाहूनां क्षितिवलयमासज्य सकलं,
जगद्भारोद्वेला फणफलकमाला फणिपतेः' ॥[3]

'पिता के चरण-कमलों की वन्दना करने की हृद्गत इच्छावश पाताल जाते समय मैंने न जाने कितनी बार शेषनाग द्वारा फणों पर धारण की गई अखिल पृथ्वी को अपनी भुजाओं पर उठाया है' ।

प्रायः यही भाव केशव के निम्नलिखित छन्द का भी है :

'हौं जब ही जब पूजन जात पितापद पावन पाप प्रणासी ।
देखि फिरौं तबहीं तब रावण सातो रसातल के जे विलासी ॥
लै अपने भुजदण्ड अखंड करौं क्षितिमण्डल छत्र प्रभा सी ।
जानै को केशव केतिक बार मैं सेस के सीसन दीन्ह उसासी' ॥[४]

'प्रसन्नराघव' का बाण कहता है :

'अलमलीकवाग्विग्रहेण । तदिदं धनुरावयोस्तारतम्यं निरूपयिष्यति' ।[५]

'व्यर्थ के वाग्विग्रह से कोई लाभ नहीं । यह धनुष हम दोनों के तारतम्य का निरूपण कर देगा' ।

केशव का बाण कहता है :

'हमहिं तुमहिं नहिं बूझिये विक्रम वाद अखंड ।
अब ही यह कहि देहगो मदन कदन कोदंड' ।[६]

'प्रसन्नराघव' के बाण का कथन है :

'त्रिपुरमथनचापारोपणोत्कंठिता धीर्मम न जनकपुत्रीपाणिपद्मग्रहाय ।
अपि तु बहुतबाहुव्यूहनिर्व्यूहमाला, बलपरिमलहेलातांडवाडम्बराय' ।[७]

'शिव-धनु को चढ़ाने की उत्कंठा से पूर्ण मेरी मति जानकी के हस्तकमल को प्राप्त

१. प्रसन्नराघव, पृ० सं० १७ ।
२. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० ५७ ।
३. प्रसन्नराघव, छं० सं० ४६, पृ० सं १७ ।
४. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० १२, पृ० सं० ५७
५. प्रसन्नराघव, पृ० सं १७ ।
६. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं १६, पृ० सं० ६० ।
७. प्रसन्नराघव, छं० सं० ५१, पृ० सं० १८ ।

करने के लिये नहीं है, वरन् पिनाक को परिमल के समान सहज ही उठाकर शिव के समान तांडव नृत्य कर अपनी अनेक भुजाओं के बल-प्रदर्शन के लिये मैं व्यग्र हो रहा हूँ'।

इस श्लोक के भाव को लेकर केशव का निम्नलिखित छंद लिखा गया है :

'केशव और ते और भई गति जानि न जाय कछू करतारी।
सूरन के मिलिबे कहँ आय मिल्यो दसकंठ सदा अविचारी॥
बाढ़ि गयो बकवाद वृथा यह भूल न भाट सुनावहि गारी।
चाप चढ़ाइहौं कीरति को यह राज करै तेरी राजकुमारी'॥[1]

'प्रसन्नराघव' का मंजीरक कहता है :

बाणस्य बाहुशिखरैः परिपीड्यमानं
नेदं धनुश्चलति किंचिदपीन्दुमौलेः।
कामातुरस्य वचसामिव संविधाने
रभ्यर्थित प्रकृतिचारु मनः सतीनाम्'।[2]

'बाण की भुजाओं से पीड़ित शिव जी का यह धनुष किंचितमात्र भी नहीं हिलता, जिस प्रकार से कामातुर के अभ्यर्थनापूर्ण वचनों से सती का स्वभाव से पवित्र हृदय नहीं डिगता है'।

इस श्लोक के भाव का किंचित भेद से केशव ने निम्नलिखित पंक्तियों में प्रयोग किया है :

'कोटि उपाय किये कहि केशव केहूँ न छाड़त भूमि रती को।
भूरि विभूति प्रभाव सुभावहि ज्यों न चलै चित योग यती को'।[3]

'प्रसन्नराघव' के बाण का कथन है :

'अनाहृत्य हठात्सीता नान्यतो गन्तुमुत्सहे।
न श्रृणोमि यदि क्रूरमाक्रन्दमनुजीविनः'।[4]

'बिना सीता को हठपूर्वक लिये मैं किसी और प्रकार से उस समय तक न जाऊँगा जब तक कि अपने किसी अनुगामी जन का क्रूर चिल्लाने का शब्द न सुनूँगा'।

यही भाव केशव के निम्नलिखित छन्द का भी है :

'अब सीय लिये बिन हौं न टरौं। कहुँ जाहुँ न तो लगि नेम धरौं।
जब लौं न सुनौं अपने जन को। अति आरत शब्द हते तन को'।[5]

'रामचंद्रिका' के पाँचवें प्रकाश में केशव ने लिखा है कि जब उपस्थित राजागण धनुष न चढ़ा सके तो सबको यह चिन्ता हुई कि अब सीता का विवाह किससे होगा। इसी अवसर पर एक ऋषिपत्नी एक चित्र बना कर लाई, जिसमें सीता के साथ राम की मूर्ति

१. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० १६, पृ० सं० ६१।
२. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, पृ० ६४।
३. प्रसन्नराघव, छं० सं० ६०, पृ० सं० २०।
४. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० २६, पृ० सं० ६५।
५. प्रसन्नराघव, पृ० सं० १३।

अंकित थी। यह कल्पना 'प्रसन्नराघव' ग्रंथ के ही आधार पर दी गई है। अन्तर केवल इतना ही है कि उक्त नाटक में यह चित्र कालत्रयदर्शिनी सिद्धयोगनी मैत्रेयी देवी ने लिखा है।[४] 'रामचंद्रिका' के पांचवे प्रकाश के ही अन्तर्गत जनक, विश्वामित्र आदि के कथोपकथन पर 'प्रसन्नराघव' के तीसरे अंक का प्रभाव दिखलाई देता है। सम भाव रखने वाले स्थल यहाँ उद्धृत किये जाते हैं।

'प्रसन्नराघव' के जनक की प्रशंसा में विश्वामित्र जी का कथन है :

'अंगैरंगीकृता यत्र षड्भिः सप्तभिरष्टभिः।
त्रयी च राज्यलक्ष्मीश्च योगविद्या च दीव्यति'॥[१]

'जनक ने वेद, वेद के षडांगों, राज्य के सात अंगों तथा योग के अष्ट अंगों को वश में कर लिया है। इस प्रकार वेदत्रयी, राज्यश्री और योगविद्या इनमें सुशोभित हैं'।

केशव के विश्वामित्र के शब्द हैं :

'अंग छ सातक आठक सों भव तीनिहु लोक में सिद्धि भई है।
वेदत्रयी अरु राजसिरी परिपूरणता शुभ योग मई है'॥[२]

'प्रसन्नराघव' के जनक विश्वामित्र के सम्बन्ध में कहते हैं :

'य: कांचनमिवात्मानं निक्षिप्याग्नौ तपोमये।
वर्णोत्कर्षं गतः सोऽयं विश्वामित्रो मुनीश्वर' :' ॥[३]

'जिन्होंने स्वर्ण के समान अपने शरीर को तप की अग्नि में तपा कर उच्चवर्ण को प्राप्त किया है, वह यह विश्वामित्र मुनि हैं'।

केशव का निम्नलिखित छन्द इस श्लोक का शब्दानुवाद है :

'जिन अपनो तन स्वर्ण, मेलि तपोमय अग्नि में।
कीन्हो उत्तम वर्ण, तेई विश्वामित्र ये'॥[४]

'प्रसन्नराघव' के राम का कथन है :

'छत्रंच्छाया तिरयति न यन्नन्न च स्प्रष्टुमीष्टे।
इष्यद्गन्धद्विपमदमषीपंकनामा कलंक :।
लीलालोलः शमयति न पच्चामराणां समीर :।
स्फीतं ज्योतिः किमपि तदमी भूभुजः शीलयन्ति'॥[५]

'इन निमिवंशी राजाओं की कीर्तिज्योति ऐसी है जिसको छत्र की छाया तिरोहित नहीं कर सकती, जिसका स्पर्श नहीं किया जा सकता, जिसे हाथियों के गंडस्थल से स्रवित मद का पंक पंकिल नहीं कर सकता तथा जिसे चमरों की वायु शमित नहीं कर सकती'।

१. प्रसन्नराघव, छं० सं० ७, पृ० सं० ४०।
२. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० १९, पृ० सं० ७६।
३. प्रसन्नराघव, छं० सं० ८, पृ० सं० ४०।
४. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० २०, पृ० सं० ७७।
५. प्रसन्नराघव, छं० सं० १२, पृ० सं० ४१।

इस श्लोक के भाव के आधार पर केशव के राम का कथन है :

'सब छत्रिन आदि दै काहू छुई न छुए बिजनादिक बात डगे।
न घटै न बढ़ै निशि वासर केशव लोकन को तम तेज भगे॥
भव भूषण भूषित होत नहीं मदमत्त गजादि मसी न लगे।
जल हू थल हू परिपूरण श्री निमि के कुल अद्भुत जोति जगे'॥[१]

'प्रसन्नराघव' के जनक अपनी नम्रता दिखलाते हुए कहते हैं :

'भगवन्, इदमस्मदप्राचीनेषु शोभते न तु मयि कतिपयग्रामटिका स्वामिनि'।[२]

'भगवन्, यह कीर्ति हमारे पूर्वजों को ही शोभित थी, कतिपय छोटे-छोटे गाँवों के स्वामी मुझे नहीं'।

केशव के जनक भी प्रायः यही कहते हैं :

'यह कीरति और नरेशन सोहै, सुनि देव अदेवन को मन मोहै।
हम को बपुरा सुनिये ऋषिराई, सब गांउं छ सातक की ठकुराई'॥[३]

'प्रसन्नराघव' के विश्वामित्र का कथन है :

'अवनिमवनिपालाः संघशः पालयन्ता,
भवनिपतियशस्तु त्वां बिना नापरस्य।
जनककनकगौरीं यत्प्रसूतां तनूजां,
जगति दुहितृमन्तं भूर्मवन्तं वितेने'॥[४]

'हे जनक, पृथ्वी का पालन अनेक राजा करते हैं किन्तु उनमें वास्तव में पृथ्वी का पालन करने का यश आपके अतिरिक्त दूसरे का नहीं है, क्योंकि आपने ही संसार में पृथ्वी को दूहितृवान किया है'।

प्रायः यही बात केशव के विश्वामित्र भी अधिक स्पष्टरूप से कहते हैं :

'आपने आपने ठौरनि तो भुवपाल सबै भुव पालैं सदाई।
केवल नामहि के भुवपाल कहावत हैं भुवपाल न जाई।
भूपन की तुम ही धरि देह विदेहन मे कल कीरति गाई।
केशव भूषण की भवि भूषण भू तन से तनया उपजाई'॥[५]

'प्रसन्नराघव' के जनक विश्वामित्र जी की प्रशंसा तथा अपनी नम्रता प्रदर्शित करते हुए कहते हैं :

'भगवन्, नूतनशतभुवननिर्माणनिपुणस्य भगवतः कियतीमभिनववचनचातुरी नाम।'[६]

१. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० २२, पृ० सं० ७७।
२. प्रसन्नराघव, पृ० सं० ४।
३. रामचंद्रिका, छं० सं० २३, पृ० सं० ७८।
४. प्रसन्नराघव, छं० सं० १३, पृ० सं० ४१।
५. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० २४, पृ० सं० ७६।
६. प्रसन्नराघव, पृ० सं० ४२।

'भगवन्, शत नूतन लोकों का निर्माण करने में निपुण आपकी वचनविदग्धता भी नवीन है'।

इन शब्दों के आधार पर केशव के जनक कहते हैं :

'इहि विधि की चित चातुरी तिनको कहा अकत्थ।
लोकन की रचना रुचिर रचिबे को समरत्थ' ॥[1]

'प्रसन्नराघव' के राम का विश्वामित्र के सम्बन्ध में कथन है :

'रोषाभिभूत पुरुहूतपदाभिभूतं
दृष्ट्वा त्रिशंकुभयकोपविपाटलश्रीः।
आकुड्मलीकृतकराम्बुराजिरम्या
संध्यैव दृष्टिरमरैर्यदुपासितास्य' ॥[2]

'इन्द्र के स्थान स्वर्ग से त्रिशंकु को स्खलित देख कर कोप के कारण रक्त कमल के समान शोभा धारण करने वाली विश्वामित्र की दृष्टि की देवताओं ने हस्तरूपी कमलों की अंजलि बना कर संध्या के समान उपासना की थी'।

इस श्लोक के आधार पर केशव का छन्द है :

'केशव विश्वामित्र के रोषमयी दृग जानि।
संध्या सी तिहुँ लोक के किहिन उपासी आनि' ॥[3]

'प्रसन्नराघव' के विश्वामित्र का जनक के प्रति कथन है :

'जज्ञिवान्दशरथः स हि राजा राममिन्दुमिव सुन्दरगात्रम्।
लोकलोचनविगाहनशीलां त्वं पुनः कुमदिनीमिव सीताम्' ॥[4]

'राजा दशरथ ने चन्द्रमा के समान सुन्दर शरीर वाले राम को जन्म दिया है तथा आपने संसार के नेत्रों को आनन्द प्रदान करने वाली कुमुदिनी के समान सीता को'।

'इस श्लोक के भाव के आधार पर केशव ने निम्नलिखित छन्द लिखा है :

'राजराज दशरत्थ तनै जू। रामचन्द्र भुवचन्द्र बने जू।
त्यों विदेह तुम हूँ अरु सीता। ज्यों चकोर तनया शुभ गीता' ॥[5]

'प्रसन्नराघव' के विश्वामित्र शिवधनु देखने की उत्सुकता प्रकट करते हुये राजा जनक से कहते हैं :

'तेन तदानयनायादिश्यन्तां पुरुषाः अथवा किमन्यैः रामभद्र एवादिश्यताम्'।[6]

१. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० २५, पृ० सं० ७६।
२. प्रसन्नराघव, छं० सं० १६, पृ० सं० ४२।
३. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० २७, पृ० सं० ८०।
४. प्रसन्नराघव, छं० सं० ३३, पृ० सं० ४५।
५. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ३३, पृ० सं० ८१।
६. प्रसन्नराघव, पृ० सं० ४५।

'उसे लाने के लिए लोगों को आदेश दीजिये। अथवा दूसरे लोगों की क्या आवश्यकता है, राम भद्र को ही आज्ञा दीजिये'।

इन शब्दों के आधार पर केशव का कथन है :

'अब लोग कहा करिबे अपार। ऋषिराज कही यह बार बार।
इन राजकुमारहि देहु जान। सब जानत हैं बल के निधान' ॥[1]

'प्रसन्नराघव' के विश्वामित्र का राम के प्रति कथन है :

'मारीचमारीचतुरं सुबाहोरपवारणम्।
न्यस्यतां लक्ष्मणकरे ताटकाताडनं धनुः' ॥[2]

'मारीच को मारने वाले, सुबाहु का अपवारण करने वाले तथा ताड़का का हनन करने वाले धनुष को लक्ष्मण के हाथ में दे दो'।

इसी प्रकार केशव के विश्वामित्र भी कहते हैं :

'राम हत्यो मारीच जेहि अरु ताड़का सुबाहु।
लक्ष्मण को यह धनुष दे तुम पिनाक को जाहु' ॥[3]

'प्रसन्नराघव' के जनक का स्वगत कथन है :

'यस्य ख्याता जगति सकले विस्तमिस्रा तपः श्री
मिथ्योत्कंठः कथमिह भवेदेष गाधेस्तूनजः।
बालो रामः किमपि गहनं कार्मुकं चन्द्रमौलेः
दोलारोहं कलयति मुहुस्तेन मे चित्तवृत्तिः' ॥[4]

'जिनकी कालिमारहित तपश्री समस्त संसार में विख्यात है, उन विश्वामित्र की उत्कंठा मिथ्या कैसे हो सकती है। फिर भी राम बालक हैं तथा शिवधनु गहन है अतएव मेरी चित्तवृत्ति दोला के समान चंचल हो रही है'।

इस श्लोक के भाव को संक्षेप में केशव ने निम्नलिखित छन्द में बड़ी सफलता तथा सुन्दरता से प्रकट किया है :

'ऋषिहि देख हरषै हियो, राम देखि कुम्हिलाय।
धनुष देख डरपै महा, चिन्ता चित्त डोलाय' ॥[5]

'प्रसन्नराघव' के अन्तर्गत धनुष टूटने पर जनक का शतानन्द के प्रति कथन है :

'कथं पुनरेतावतीमतिभूमिमवगाहमानोऽपि वत्सो रामभद्रो भवता न निवारिता'।[6]

१. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ३४, पृ० सं० ८३।
२. प्रसन्नराघव, छं० सं० ३२, पृ० स० ४६।
३. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ३७, पृ० सं ८४।
४. प्रसन्नराघव, छं० सं० ३५, पृ० सं० ४६।
५. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० स० ४०, पृ० स० ८६।
६. प्रसन्नराघव, पृ० सं० ५०।

'पृथ्वीमंडल को इस प्रकार के महान शब्द से आपूरित करने पर भी आपने राम का निवारण क्यों न किया'।

इन शब्दों के आधार पर केशव के जनक का कथन है :

'शतानन्द आनन्द मति तुम जु हुते उन साथ।
बरज्यो काहे न धनुष जब तोर्‌यो श्री रघुनाथ'।[१]

'रामचंद्रिका' के सातवें प्रकाश के कुछ अंशों पर भी 'प्रसन्नराघव' नाटक का प्रभाव दिखलाई देता है। नाटक में परशुराम के यह पूछने पर कि धनुष किसने तोड़ा है, तांडायन ऋषि का कथन है :

'सुबाहु मारीचपुरःसर अमी
निशाचराः कौशिकयज्ञघातिनः।
वशे स्थिता यस्य'[२]

'विश्वामित्र के यज्ञ को विध्वंश करने वाले सुबाहु मारीच आदि निशाचर जिसके वश में हैं'।

तांडायन ने यह शब्द राम के सम्बन्ध में कहे थे किन्तु परशुराम ने रावण से तात्पर्य समझा। केशव ने भी परशुराम के भ्रम का वर्णन किया है, किन्तु किंचित् भेद से। 'रामचन्द्रिका' के सातवें प्रकाश में वामदेव का कथन है :

'महादेव को धनुष यह परशुराम ऋषिराज।
तोर्‌यो 'रा' यह कहत ही समुझ्यो रावण राज'॥[३]

इस कल्पना के अतिरिक्त कुछ अन्य स्थलों पर भी 'प्रसन्नराघव' से भाव-साम्य दिखलाई देता है। इस प्रकार के स्थल यहाँ उपस्थित किये जाते हैं।

'प्रसन्नराघव के जामदग्न्य का कथन है :

'नृपशतसुकुमारकंठनालौ कदनकलाकुशलः परश्वधे मे।
दशनवदनकठोरकंठपीठीकदनविनोदविदग्धतां विधातु'॥[४]

'सैकड़ों राजाओं के कोमल कंठों को काटने की कला में कुशल मेरे परसे, तू दशानन के कठोर कंठों को काटने का विनोदपूर्ण चातुर्य दिखला'।

केशव के परशुराम भी यही कहते हैं :

'अति कोमल नृपसुतन की ग्रीवा दली अपार।
अब कठोर दशकंठ के काटहु कंठ कुठार'।[५]

१. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ४४, पृ० स० ८८।
२. प्रसन्नराघव, पृ० सं० ५३।
३. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ४, पृ० सं० १२२।
४. प्रसन्नराघव, छं० सं० ६, पृ० सं० ५४।
५. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ५, पृ० सं० १२२।

'प्रसन्नराघव' के जामदग्न्य द्वारा कथित श्लोक का अंश है :

'कुठारस्य मे

का श्लाघा दशकंठकदलीकांडावलीखंडने' ।[1]

'दशकंठ के कदली के समान कंठों को काटने में मेरे कुठार को क्या कीर्ति-लाभ होगा'।

इस अंश का भावानुवाद केशव की निम्नलिखित पंक्ति है :

'तोहि कुठार बड़ाई कहा कहि ता दसकंठ के कंठहि काटे' ।[2]

''प्रसन्नराघव' के जामदग्न्य के शब्द हैं :

'अर्धमुग्धः खल्वयं जनो यदेनं काम इति वक्तव्ये राम इति जल्पति' ।[3]

'निश्चय ही यह पुरुष अर्ध-मुग्ध है जो इन्हें कामदेव कहने के स्थान पर 'राम' कहता है'।

इन शब्दों के आधार पर केशव का प्रकारान्तर से कथन है :

'बालक विलोकियत पूरण पुरुष गुन
मेरो मन मोहियत ऐसो रूप धाम है ।
बैर जिय मानि वामदेव को धनुष तोरो,
जानत हौं बीस बिसे राम भेस काम है' ॥[4]

'प्रसन्नराघव' के लक्ष्मण, परशुराम के रूप का वर्णन करते हुए कहते हैं :

'मौर्वी धनुस्तनुरियं च बिभर्ति मौञ्जीं
बाणाः कुशाश्च विलसन्ति करे सिताग्राः ।
धारोज्ज्वलः परशुरेषकमंडलुश्च,
तद्वीरशान्तरसयोः किमयं विकारः' ॥[5]

'परशुराम, तर्कश, धनु तथा मेखला शरीर पर धारण किये हैं। एवं बाण तथा कुश इनके हाथों में शोभित हैं। तीक्ष्ण धार वाला कुठार तथा कमंडल लिये हुये यह वीर पुरुष वीर तथा शान्त रस का विकार सा प्रतीत हो रहा है'।

इस श्लोक के आधार पर केशव के भरत का कथन है :

'कुशमुद्रिका समिधैं श्रुवा कुश औ कमंडल को लिये ।
कटिमूल श्रौननि तर्कसो भृगुलात सी दरसै हिये ।
धनु बान तिच्छ कुठार केशव मेखला मृगचर्म स्यों ।
रघुवीर को यह देखिये रस वीर सात्विक धर्म स्यों'' ॥[6]

---

१. प्रसन्नराघव, छं० सं० १०, पृ० सं० २४ ।

२. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० १२२ ।

३. प्रसन्नराघव, पृ० सं० २५ ।

४. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० १२६ ।

५. प्रसन्नराघव, छं० सं० १५, पृ० सं० २५ ।

६. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० १९, पृ० सं० १२७ ।

'प्रसन्नराघव' के राम, परशुराम से पूछते हैं :

'मनोवृत्तिस्तु कीदृशी' ।[1]

'आपकी मनोवृत्ति कैसी है' ।

केशव के राम भी यही प्रश्न करते हैं :

'भृगुवंश के अवतंस ।
मनवृत्ति है केहि अंस' ॥[2]

'प्रसन्नराघव' के भार्गव का राम के प्रति कथन है :

चंडीशकार्मुकविमर्दविवर्धमान-
दर्पावलेपसविशेषविकाशभाजोः ।
बाह्वोस्तवाहमधुना मधुना समानै-
राराधयामि रुधिरैः कठिनं कुठारम्' ।[3]

'शिव जी के धनुष को तोड़ने के कारण बढ़े हुए दर्परूपी अवलेप विशेष से विकसित तुम्हारी भुजाओं के मधु के समान रुधिर से आज मैं अपने कठोर कुठार का आराधन करूँगा' ।

इस श्लोक की छाया केशव के परशुराम तथा राम के प्रश्नोत्तर से समन्वित निम्न-लिखित छन्द पर दिखलाई देती है :

'तोरि सरासन संकर को सुभ सीय स्वयम्बर मांझ बरी ।
ताते बढ्यो अभिमान महा मन मेरियो नेक न संक करी ।
सो अपराध परो हमसों अब क्यों सुधरै तुमहीं तो कहौ ।
बाहु दै दोउ कुठारहि केशव आपने धाम को पंथ गहौ' ॥[4]

'प्रसन्नराघव' के परशुराम का कथन है :

'दारैर्मुक्तकुचांशुकैःपरिवृतं प्राचीनमेषांनृपं
नाहिंसीद्यदसौ कुठारहतकस्तस्यैतदुज्जृम्भितम् ।
पत्नारीकवचान्वयप्रणयिनां क्षत्राधमानामिमा
दुर्वाचः प्रविशन्ति मे श्रवणयोर्धिक्क्षत्रगोत्रे कृपाम्' ॥[5]

'भय के कारण खुले उरोजों के वस्त्र को सम्हालने की सुधि से रहित स्त्रियों से घिरे हुये इनके पूर्वज राजाओं को जो इस नीच कुठार ने नहीं मारा, उसका यह फल है कि नारियों के शरीर-रूपी कवच के प्रेमी राजाओं के इस प्रकार के दुर्वचन मेरे कर्णकुहरों में प्रवेश कर रहें हैं । क्षत्रियों पर कृपा करने को धिक्कार है' ।

१. प्रसन्नराघव, पृ० सं० २६ ।
२. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० १२८ ।
३. प्रसन्नराघव, छं० सं० १४, पृ० सं० ६ ।
४. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० १४, पृ० सं० १२८ ।
५. प्रसन्नराघव, छं० सं० २६, पृ० सं० ४८ ।

इस श्लोक के आधार पर केशव के परशुराम कहते हैं :

'लच्छमण के पुरिषान कियो पुरुषारथ सो न कह्यो परई।
वेष बनाय कियो बनितान को देखत केशव ह्यो हरई।
क्रूर कुठार निहारि तजो फल, ताको यहै जु हियो जरई।
आजु ते तोकहं बन्धु महाद्विज छत्रिन पै जु दया करई' ॥[1]

'प्रसन्नराघव' के राम का परशुराम के प्रति कथन है :

'प्रसीदत्वं रोषाद्विरम कुरु मे चेतसि गिरं
चिरै यंचायासैर्बहुभिरिह वारैर्जितमभूत।
यशोवित्तं कितव इव विक्षोभतरलं
तद्वेतस्मिनवारे भृगुतिलक मा हारय मुधा' ॥[2]

'हे भृगुकुलतिलक! प्रसन्न होइये तथा रोष का निवारण कर मेरी बात पर ध्यान दीजिये। आपने बड़े परिश्रम से अनेक बार में जिस यशरूपी धन का संचय किया है, उसे जुआरी के समान विक्षुब्ध होकर व्यर्थ के लिये इस समय न हारिये'।

इस श्लोक के भाव के आधार पर केशव के राम का कथन है :

'भृगुकुल कमल दिनेश सुनि, जीति सकल संसार।
क्यों चलिहै इन सिसुन पै, डारत हौ यशभार' ॥[3]

'प्रसन्नराघव' के परशुराम का राम के प्रति कथन है :

'ईशत्यक्तपुराणचापदलनप्रोद्भूतगर्वोद्धति—
व्यग्रस्त्वं कतरः स मे तव गुरुः सोढुं न शक्तः शरान्।
तुष्टाद्दिष्टवरप्रदादवगतः पद्मासनात्सादरं
मन्नाराचभयाद्याचत किल ब्राह्मी तनूं कौशिकः' ॥[4]

'शंकर जी द्वारा त्यक्त पुराने चाप को तोड़ने से उत्पन्न गर्व से तुम व्यर्थ ही व्यग्र हो रहे हो। तुम्हारे गुरु विश्वामित्र भी मेरे बाणों को सहन न कर सके। उन्होंने ब्रह्मा के प्रसन्न होकर वर मांगने का आदेश देने पर, मेरे बाणों के भय से आदरपूर्वक ब्राह्मण का शरीर मांगा'।

इस श्लोक के आधार पर केशव के परशुराम का कथन है :

'बाण हमारेन के तनत्राण विचारि विचारि बिरंच करे हैं।
गोकुल, ब्राह्मण, नारि, नपुंसक, जे जगदीन स्वभाव भरे हैं।

१. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ३६, पृ० सं० १३७।
२. प्रसन्नराघव, छं० सं० ३९, पृ० सं० ६१।
३. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ३८, पृ० सं० १३६।
४. प्रसन्नराघव, छं० सं० ३७, पृ० सं० ६१।

राम कहा करिहौ तिनको तुम बालक देव अदेव डरे हैं।
गाधि के नंद, तिहारो गुरु जिनते ऋषि वेश किये उबरे हैं' ।।[1]

उपर्युक्त स्थलों के अतिरिक्त 'रामचन्द्रिका' के कुछ अन्य अंशों पर भी 'हनुमन्नाटक' तथा 'प्रसन्नराघव' का यत्किंचित् प्रभाव दिखलाई देता है किन्तु वह स्थल महत्वपूर्ण नहीं हैं।

कथाक्रम-निर्वाह:

'रामचन्द्रिका' का कथानक, जैसा कि पूर्वपृष्ठों में कहा जा चुका है, चिरपरिचित रामकथा है, किन्तु केशव ने कथाक्रम-निर्वाह की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है। अधिकांश स्थलों पर कवि ने कथा-व्यापार की सूचना-मात्र दी है। दशरथ का संक्षिप्त परिचय तथा राम आदि चारों भाइयों का नाम-मात्र गिनाने के साथ ग्रंथ का आरम्भ होता है। इसके बाद ही अयोध्या में विश्वामित्र के आगमन का वर्णन है। विश्वामित्र राजा दशरथ से यज्ञ-रक्षार्थ केवल राम को मांगते हैं, किन्तु बिदा होते समय लक्ष्मण भी उनके साथ जाते दिखलाई देते हैं। तपोवन में पहुँचकर राम ताड़का-वध करते हैं और उसी के साथ एक ही छंद में मारीच और सुबाहु आदि राक्षसों के वध का भी वर्णन है, यद्यपि इनके आने का कोई उल्लेख नहीं किया गया है। इस घटना के बाद रामलक्ष्मण किसी आगन्तुक ब्राह्मण से मिथिला के धनुषयज्ञ की कथा सुनने लगते हैं। ब्राह्मण से यह सुन कर कि जनकपुर में आये हुये राजाओं का धनुष तोड़ने का प्रयास निष्फल होने पर कोई ऋषिपत्नी चित्र में सीता के भावी वर को अंकित कर लाई तथा उस चित्रखचित वर तथा राम के रूप में साम्य था, विश्वामित्र रामलक्ष्मण के सहित मिथिला के लिये चल पड़ते हैं। इस स्थल पर विश्वामित्र के प्रस्थान का उल्लेख करने के बाद ही छंद की दूसरी पंक्ति में अहिल्योद्धार कह दिया गया है। रामचन्द्र के धनुष तोड़ने पर राजा जनक, दशरथ के पास चारों भाइयों के विवाह का प्रस्ताव भेजते हैं। तुरन्त ही चार बरातें सजा कर राजा दशरथ चल देते हैं। दूसरे छंद में बरातें जनकपुर आ जाती हैं, किन्तु आगे चलकर केवल राम-सीता के ही विवाह का वर्णन किया गया है।

कथा-संक्षेप करने की यही प्रवृत्ति 'बालकांड' से इतर कांडों में भी दिखलाई देती है। 'अयोध्याकांड' के प्रारम्भ में राजा दशरथ राम के राज्याभिषेक का निश्चय करते हैं। दूसरे ही छंद में कैकेयी के प्रतिज्ञाबद्ध राजा दशरथ से दो वरों के द्वारा भरत का राज्याभिषेक तथा राम का चौदह वर्ष के लिये बनवास मांगने का वर्णन है। इसके आगे के छंद में किसी से यह सूचना पाकर राम वनगमन के लिये तत्पर दिखलाई देते हैं। आगे चलकर राम-लक्ष्मण-सम्वाद सुनते-सुनते ही हम देखते हैं कि राम वनमार्ग में विराज रहे हैं। इसी प्रकार अपने मामा के यहाँ से लौट कर भरत राजा दशरथ का शव-दाह आदि कर राम से मिलने चल देते हैं। दूसरे छंद में वह जटायें तथा बल्कल वस्त्र धारण किये निषाद के साथ गंगा पार करते दिखलाई देते हैं। 'अरण्यकांड' में विराध राक्षस को देख कर सीता का डरना तथा राम द्वारा विराध-वध एक ही छंद में वर्णित है। दूसरे छंद में राम अगस्त्य ऋषि के आश्रम में दिखलाई देते हैं। राम का खरदूषण आदि राक्षसों से युद्ध कर उनका वध करना भी तीन छंदों में वर्णित है। इसी प्रकार रावण तथा जटायु के युद्ध का वर्णन भी एक ही

१. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ४१, पृ० सं० १४१।

छन्द में किया गया है। 'किष्किंधाकांड' में बालि-सुग्रीव के युद्ध तथा राम द्वारा बालि-वध का वर्णन आधे छंद में किया गया है। 'सुन्दरकांड' में समुद्र के मध्य में हनूमान जी को सुरसा तथा सिंहिका राक्षसियों का मिलना, उनके द्वारा हनूमान जी का कवलित किया जाना तथा हनूमान जी का उनका पेट फाड़कर निकल आना आदि घटनाओं का वर्णन एक छन्द में चलता कर दिया गया है। 'लंकाकांड' में अवश्य कथा का पर्याप्त विस्तार है, किन्तु 'उत्तरकांड' में कथा-भाग अल्प तथा वर्णन-भाग बहुत अधिक है।

असम्बद्ध स्थलः

'रामचन्द्रिका' में कुछ अंश ऐसे भी हैं जिनका ग्रंथ की कथावस्तु से कोई सम्बन्ध नहीं है, यथा इक्कीसवें प्रकाश का दानविधान तथा सनाढ्योत्पत्ति-वर्णन। इसी प्रकार रामकृत राज्य-श्री-निन्दा तथा रामविरक्ति-वर्णन के लिये भी स्थल निकाले गये हैं। रामविरक्ति-वर्णन करते हुये केशव ने बालकाल, युवावस्था तथा वृद्धावस्था के दुखों का वर्णन किया है। इस सम्बन्ध में काम, लोभ, मोह तथा अहंकार आदि द्वारा जनित कष्टों का उल्लेख है। तदनन्तर वशिष्ठ जी राम को जीव के उद्धार का यत्न बतलाते हैं। ग्रंथ की मुख्य कथावस्तु से इस प्रसंग का कोई सम्बन्ध नहीं है तथा आगे आने वाले राम के क्रियाकलाप को देखते हुये यह सम्पूर्ण वर्णन अप्रासांगिक प्रतीत होता है। इस प्रसंग के लिये उचित स्थल 'विज्ञानगीता' ग्रंथ में था। 'विज्ञानगीता', 'रामचंद्रिका' की रचना के पाँच वर्ष बाद लिखी गई थी। 'रामचंद्रिका' के उपर्युक्त प्रसंग के कुछ छंद 'विज्ञानगीता' में ज्यों के त्यों दिखलाई देते हैं तथा कुछ छंदों का भाव दूसरे शब्दों में प्रकट किया गया है। इससे ज्ञात होता है कि आगे चल कर केशव ने स्वयं 'रामचंद्रिका' में इस विषय के वर्णन की अप्रासांगिकता का अनुभव किया तथा अधिकांश छंद 'विज्ञानगीता' में सम्मिलित कर लिये। सत्यकेतु-आख्यान का भी 'रामचंद्रिका' की मुख्य कथा से कोई सम्बन्ध नहीं है। इस आख्यान के द्वारा कदाचित् केशव राजकाज का भार अपने अधिकारियों पर छोड़ कर आमोद-प्रमोद में मस्त रहने वाले तत्कालीन राजा-महाराजाओं को चेतावनी देना चाहते थे।

वर्णन-विस्तार-प्रियताः

रामकथा कहने की अपेक्षा केशव की रुचि विभिन्न वस्तुओं तथा दृश्यों के वर्णन में अधिक तत्पर दिखलाई देती है। कथा कहते कहते जहाँ अवसर मिला है केशवदास प्रस्तुत कथा-प्रसंग को छोड़ कर दृश्यों तथा वस्तुओं का वर्णन करने लगे हैं। 'बालकांड' में विश्वामित्र के अयोध्या-आगमन के अवसर पर सत्ताइस छन्दों में सरयू, दशरथ के हाथी, बाग तथा अवधपुरी का वर्णन है। तत्पश्चात् ग्यारह छंदों में दशरथ की राजसभा का वर्णन किया गया है। राम-लक्ष्मण के विश्वामित्र के साथ तपोवन पहुँचने पर वन तथा मुनि-आश्रम का वर्णन है। विश्वामित्र के जनकपुर-आगमन के अवसर पर छः छन्दों में सूर्योदय तथा दो छन्दों में मिथिला का वर्णन किया गया है। विवाहोपरान्त राम के अयोध्या आने पर पुनः अयोध्या का विस्तृत वर्णन है। 'अरण्यकांड' में पंचवटी, दंडक वन तथा गोदावरी आदि का विस्तृत वर्णन है। इसी प्रकार 'किष्किंधाकांड' में भी वर्षा तथा शरद ऋतुओं का विस्तृत वर्णन किया गया है। 'लंकाकांड' में सीता की अग्निपरीक्षा, त्रिवेणी तथा भरद्वाज

आश्रम आदि के वर्णन हैं। 'रामचंद्रिका' के उत्तरार्ध में राम के ऐश्वर्य और राजसी ठाटबाट का सूक्ष्म वर्णन किया गया है। इस सम्बन्ध में रामराज्य, राजमहल, राम के शयनागार, बसनशाला, जलशाला, गंधशाला, मेवाशाला, मंत्रशाला आदि का वर्णन है। राम के बाग का वर्णन भी बहुत विस्तृत है। बागवर्णन के अन्तर्गत कृत्रिम सरिता, पर्वत तथा जलाशय आदि के वर्णन किये गये हैं। इस प्रकार 'रामचंद्रिका' में कथाभाग की अपेक्षा वर्णन-भाग अधिक है। इन स्थलों पर केशव को पांडित्य-प्रदर्शन तथा कल्पना के विकास के लिये पर्याप्त अवसर था।

अनियमित कथा-प्रवाह का कारण:

इस प्रकार 'रामचंद्रिका' में राम-कथा का विकास अनियमित रूप से हुआ है तथा स्थल-स्थल पर कथासूत्र टूटता हुआ दिखलाई देता है, यद्यपि कथासूत्र जोड़ने में विशेष कठिनाई नहीं होती। वास्तव में केशव का ध्येय रामकथा कहना न था। केशव से पूर्व तुलसीदास जी 'रामचरित-मानस' में रामकथा का विस्तृत निरुपण कर चुके थे अतएव उन्हीं बातों की पुनरावृत्ति करने की आवश्यकता न थी। स्थल-स्थल पर केशवदास जी द्वारा कथा संक्षिप्त करने की प्रवृत्ति का यह एक प्रमुख कारण है। दूसरे, जैसा कि ग्रंथ के नाम 'रामचंद्रिका' से प्रकट है, केशव का मुख्य ध्येय रामचंद्र के ऐश्वर्य तथा राजसी ठाटबाट का वर्णन करना था। इसके लिये अवसर रामराज्याभिषेक के बाद था। अतएव रामराज्या-भिषेक के पूर्व की कथा कवि ने प्रायः कथा-क्रम के लिये ही लिखी है। राज्याभिषेक के पश्चात् राम के ऐश्वर्य का सूक्ष्म वर्णन किया गया है। 'रामचंद्रिका' के उत्तरार्ध में अधि-कांश वर्णन होने का यही कारण है।

कथाप्रवाह:

पूर्वपृष्ठों में जो कुछ कहा गया है, उसका यह तात्पर्य नहीं है कि 'रामचंद्रिका' में कहीं भी कथा का प्रवाह नहीं है। यद्यपि कवि ने अधिकांश स्थलों पर कथा-व्यापार की सूचना मात्र दी है, फिर भी बहुत से ऐसे स्थल है जहाँ कथा का सम्यक प्रवाह है। उदाहरणस्वरूप धनुष-यज्ञ तथा राम-सीता-विवाह का वर्णन विस्तारपूर्वक किया गया है। धनुष-यज्ञ के ही सम्बन्ध में सुमति-विमति-सम्वाद तथा राम-परशुराम-संवाद में कथा का नियमित विकास हुआ है। इसी प्रकार सीता-हरण के पश्चात् हनूमान का सीता की खोज में लंका जाना, सीता-रावण-संवाद, सीता-हनूमान-संवाद, हनूमान-रावण-संवाद आदि स्थलों पर 'रामचंद्रिका' के कथानक में सम्यक प्रवाह दिखलाई देता है। रावण-अंगद-संवाद के अन्तर्गत भी कथानक का विकास सुचारु तथा प्रवाहयुक्त है। 'लंकाकांड' के अन्तर्गत युद्ध का वर्णन नियमित तथा निरबरोधपूर्ण हुआ है। इसी प्रकार 'उत्तरकांड' के अन्तर्गत राम की सेना का दिग्विजय के लिये प्रस्थान तथा लवकुश से युद्ध एवं पराजय आदि का वर्णन भी विस्तृत तथा प्रवाहपूर्ण है।

प्रबन्ध-रचना-कौशल के विचार से केशवदास जी के प्रबन्ध काव्य निम्नलिखित क्रम से रखे जा सकते हैं:

(१) रामचंद्रिका ।
(२) विज्ञानगीता ।
(३) वीरसिंहदेव-चरित्र ।
(४) रतनबावनी ।
(५) जहांगीर-जस-चंद्रिका ।

(२) चरित्रचित्रण

केशवदास जी का चरित्रचित्रण-कौशल परखने के लिये हमारे सामने कवि का एक मात्र ग्रंथ 'रामचन्द्रिका' ही आता है, क्योंकि 'वीरसिंहदेव-चरित', 'रतनबावनी,' तथा 'जहाँ-गीर-जसचन्द्रिका' आदि प्रबन्ध-काव्य ऐतिहासिक काव्य हैं; अतः इन ग्रंथों के सब पात्र 'ऐति-हासिक व्यक्ति हैं। 'विज्ञानगीता' यद्यपि ऐतिहासिक प्रबन्ध-ग्रंथ नहीं है किन्तु इस में मनोवृत्तियों को पात्रों का स्वरूप दिया गया है। 'रामचन्द्रिका' ग्रंथ में भी केशवदास चरित्र-चित्रण में पूर्ण रूप से सफल नहीं हो सके हैं। इसके अनेक कारण हैं। प्रथम तो केशव ने पांडित्य प्रदर्शन-की रुचि के फेर में पड़ कर कुछ स्थलों पर विभिन्न पात्रों के सम्बन्ध में ऐसी उपमायें तथा उत्प्रेक्षायें दी हैं जिनके कारण पात्रों के चरित्र का पतन हो गया है, जैसे राम के लिये 'उल्लू' तथा 'चोर' की उपमा देना; किन्तु ऐसे स्थल अल्प हैं। दूसरे, रामसीता के इष्टदेव होने पर भी केशव के हृदय में इनके प्रति प्रगाढ़ भक्ति नहीं थी। तीसरा तथा प्रमुख कारण यह है कि पात्रों का चरित्र कथा-प्रवाह में पड़कर ही विकसित होता है, किन्तु जैसा कि पूर्वपृष्ठों में कहा जा चुका है, केशवदास ने कथा-प्रसंग-निर्वाह की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है। अतएव 'रामचन्द्रिका' के अधिकांश पात्रों का चरित्र उस स्तर से गिर गया है जहाँ उन्हें महर्षि बाल्मीकि अथवा मानसकार तुलसी ने अधिष्ठित किया था। उदाहरण के लिए राम आदि भाइयों के विवाह के पश्चात् मिथिला से लौटने पर राजा दशरथ, भरत-शत्रुघ्न को ननिहाल भेज देते हैं। दूसरे ही छंद में राजा दशरथ गुरु वशिष्ठ से राम-राज्याभिषेक के लिये मुहूर्त पूछते हैं। तुलसी के भरत-शत्रुघ्न अपने मामा के बुलाने आने पर जाते हैं। केशव के इस प्रसंग को छोड़ देने के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि राजा दशरथ को यह आशंका थी कि रामराज्याभिषेक के अवसर पर भरत अयोध्या में रहते हुये कुछ उपद्रव करेंगे; अतएव उन्हें मार्ग से हटा दिया गया है। इसी प्रकार मंथरा का प्रसंग छोड़ देने के कारण कैकेयी एक स्वार्थी विमाता के रूप में हमारे सामने आती है। आगे चल कर वन में जाती हुई सीता, विराध राक्षस को देख कर डर जाती है और राम उसे अपने बाण का लक्ष्य बनाते हैं। यहाँ राम उन स्त्रैण पुरुषों की कोटि में दिखलाई देते हैं जो अपनी पत्नी को प्रसन्न करने के लिए कर्तव्याकर्तव्य सब कुछ कर सकते हैं।

'रामचंद्रिका' के पात्रों के सम्बन्ध में एक बात और विशेष द्रष्टव्य है। स्वर्गीय जयशंकर प्रसाद जी के नाटकों के पात्रों के समान ही 'रामचंद्रिका' के पात्र दो व्यक्तित्व रखते हैं; एक निजी और दूसरा कवि द्वारा आरोपित। कवि द्वारा आरोपित व्यक्तित्व विशेषतया दो बातों से प्रकट होता है। प्रथम यह कि केशव के सभी प्रमुख पात्र स्वयं कवि और अलंकार-पंडित हैं और दूसरे, वे व्यवहार-कुशल तथा कूटनीतिज्ञ हैं। केशव के पात्रों की व्यवहार-

कुशलता तथा कुटनीतिज्ञता विभिन्न संवादों का विवेचन करते हुये आगामी पृष्ठों में दिखलाई गई है।

राम

केशव ने जिन पात्रों के चरित्र में नवीनता लाने की चेष्टा की है उनके रूप को, जैसा कि उपर्युक्त पंक्तियों में कहा जा चुका है, बहुत कुछ विकृत कर नीचे गिरा दिया है। राम-कथा के अन्तर्गत राम का चरित्र सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। अनंत शक्ति के साथ, धीरता गम्भीरता तथा सुशीलता ही राम का 'रामत्व' है। बाल्मीकि तथा तुलसी ने यथावसर राम के चरित्र के इन गुणों का दिग्दर्शन कराया है, किन्तु केशवदास जी राम के इस 'रामत्व' की रक्षा करने में पूर्णरूप से सफल नहीं हो सके हैं। केशव के राम के चरित्र में लक्ष्मण के ही समान उग्रता दिखलाई देती है। राम-परशुराम-संवाद में राम की शब्दावली बहुत कुछ तुलसी के लक्ष्मण के समान है। केशव के राम धनुर्भंग से कुपित परशुराम के प्रति कहते हैं:

'टूटै टूटन हार तरु वायुहि दीजत दोष।
त्यों अब हर के धनुष को हम पर कीजत रोष।
हम पर कीजत रोष काल गति जानि न जाई।
होनहार ह्वै रहै मिटै मेटी न मिटाई।
होनहार ह्वै रहै मोह मद सब को छूटै।
होय तिनूका वज्र वज्र तिनुका ह्वै टूटै' ॥[1]

इसी प्रसंग के अन्तर्गत निम्नलिखित छन्द में राम की उग्रता अपनी चरम-सीमा को पहुँच जाती है। राम कहते हैं:

'भगन कियो भव धनुष साल तुमको अब सालौं।
नष्ट करौं विधि सृष्टि ईश आसन ते चालौं।
सकल लोक संहरहुँ सेस सिर ते धर डारौं।
सप्त सिंधु मिलि जाहिं होइ सबही तम भारो।
अति अमल ज्योति नारायणी कहि केशव बुझि जाय वर।
भृगुनन्द संभार कुठारु मैं कियो सरासन युक्त सर' ॥[2]

केशव के राम के चरित्र की यह उग्रता स्थल-स्थल पर दिखलाई देती है। बालि को मार कर राम ने सुग्रीव को किष्किंधा का राज्य प्रदान किया था। इस कृपा के बदले में सुग्रीव ने सीता की खोज में राम की सहायता का वचन दिया था। किन्तु राज्य-सुखोपभोग में पड़ कर वह अपनी प्रतिज्ञा को भूल गया। अतएव वर्षा व्यतीत होने पर केशव के राम ने लक्ष्मण से कहा:

'ताते नृप सुग्रीव पै जैये सत्वर तात।
कहियो बचन बुझाय के कुशल न चाहो गात।

१. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० २०, पृ० सं० १२६।
२. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ४२, पृ० सं० १४२।

कुशल न चाहो गात चहत हौ बालिहि केल्यो ।
करहु न सीता सोध कामवश राम न लेख्यो ।
राम न लेख्यो चित्त लही सुख सम्पत्ति जाते ।
मित्र कह्यो गहि बाँह कानि कीजत है ताते' ॥[1]

इस अवसर पर राम के शब्दों को सुन कर तुलसी के लक्ष्मण को भी राम के क्रुद्ध होने का सन्देह हुआ था, किन्तु तुलसीदास जी ने बड़ी कुशलता से राम के विनम्र स्वभाव की रक्षा की है। इस अवसर पर तुलसी के राम ने लक्ष्मण से कहा था :

'सुग्रीवहु सुधि मोर बिसारी। पावा राज कोष पुर नारी ॥
जेहि शायक मैं मारा बाली। तेहि शर हतौं मूढ़ कहँ काली' ॥[2]

राम के इन शब्दों को सुन कर लक्ष्मण ने उन्हें क्रुद्ध समझा और धनुष पर बाण चढ़ाया। इस परिस्थिति को देख कर करुणासींव राम ने लक्ष्मण को समझाया कि हे तात, मित्र सुग्रीव को केवल भय का प्रदर्शन कर ले आना, इससे अधिक कुछ न करना'।[3]

इस स्थल पर बाल्मीकि के राम को भी एक बार क्रोध आगया था किन्तु अंत में उन्होंने लक्ष्मण से समझा दिया था कि सुग्रीव से रूखे और अप्रिय वचन न कह कर मीठी बातें ही कहना।

केशव के राम की उग्रता के दर्शन एक स्थल पर और होते हैं। लक्ष्मण के शक्ति लगने पर विभीषण ने राम को बतलाया कि यदि सूर्योदय के पूर्व ही लक्ष्मण को औषधि न न दी जा सकी तो लक्ष्मण पुनः जीवित न हो सकेंगे। यह सुन कर राम का कथन है:

'करि आदित्य अदृष्ट नष्ट जम करौं अष्ट वसु।
रुद्रन बोरि समुद्र करौं गंधर्व सर्व पसु।
बलित अबेर कुबेर बलिहिं गहि लेउ इन्द्र अब।
विद्याधरन अविद्य करौं बिन सिद्धि सिद्ध सब।
निजु होहि दासि दिति की अदिति अनिल अनल मिटि जाय जल।
सुनि सूरज, सूरज उवत ही करौं असुर संसार बल' ॥[4]

उग्रता के अतिरिक्त केशव के राम के चरित्र में शृंगारिकता और किसी सीमा तक स्त्रैणता दृष्टिगोचर होती है। बाल्मीकि तथा तुलसी के राम आदर्श पति हैं किन्तु केशव के राम आधुनिक काल के पतियों की श्रेणी में दिखलाई देते हैं। विराध राक्षस को देख कर सीता के भयभीत होने और राम के कर्तव्याकर्तव्य का बिना विचार किये उसको बाण का लक्ष्य बनाने का उल्लेख पूर्वपृष्ठों में किया जा चुका है। 'अयोध्याकांड' के अन्तर्गत वन-गमन के लिये प्रस्तुत केशव के राम, सीता से कहते हैं:

१. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० २८, पृ० सं० २६१।
२. रामायण, किष्किंधाकांड, छं० सं० २८, पृ० सं० ३६१।
३. रामायण, किष्किंधाकांड, छं० सं० २८, पृ० सं० ३६१।
४. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ३१, पृ० सं० ३७२।

'तुम जननि सेव कहं रहहु बाम । कै जाहु आज ही जनक धाम ।।
सुनि चंद्रवदनि गजगमनि एनि । मन रुचै सो कीजै जलजनैनि' ।।[1]

इस अवसर पर बाल्मीकि के राम ने सीता से कहा था कि तुम राजा भरत की आज्ञा का पालन करते हुये धर्म और सत्य में स्थित होकर अयोध्या में ही निवास करो । इसी प्रकार तुलसी के राम ने भी सीता से अयोध्या में ही रह कर श्वसुर-सास के चरणों की सेवा करने का परामर्श दिया था ।[2]

आगे चल कर वन में विचरण करते हुये केशव के राम, सीता के थकने पर किसी शीतल स्थान में बैठ कर अपने बल्कल के अंचल से पंखा झलते और सीता के परिश्रम को दूर करते हैं ।[3] इसके प्रतिकूल बाल्मीकि की सीता मृगया-श्रान्त राम के मस्तक को अपनी गोद में रख कर स्वयं उनके मुख की हवा करती हैं । मर्यादावादी तुलसी ने उन स्थलों पर जाना उचित नहीं समझा है जहाँ राम-सीता एकान्त-सेवन करते हैं ।

रावण-वध के पश्चात् केशव के राम हनूमान जी को बुला कर कहते हैं:

'जय जाय कहौ हनुमंत हमारो । सुख देवहु दीरघ दुःख निवारो ।।
सब भूषण भूषित कै शुभ गीता । हमको तुम वेगि दिखावहु सीता' ।।[4]

तुलसीदास जी ने राम से धीर, गम्भीर पुरुष के चरित्र में यह उतावलापन उचित न समझा । तुलसी के राम हनूमान से केवल इतना ही कहते हैं कि सीता से जाकर सब समाचार कहना और सीता की कुशलक्षेम का पता लगा आना । हनूमान के सीता के निकट जाने पर स्वयं सीता हनूमान से कहती हैं कि कुछ ऐसा यत्न करो जिससे शीघ्र स्वामी के दर्शन प्राप्त हों ।[5]

राज्याभिषेक के बाद तो केशव के राम बिल्कुल केशव के समकालीन शृंगारिक मनोवृत्ति रखने वाले राजा-महाराजाओं के रूप में दिखलाई देते हैं । वह कभी चौगान खेलने जाते हैं, तो कभी सीता के साथ बाटिका की सैर करने ; कभी रनिवास की स्त्रियों के साथ जाकर जल-क्रीड़ा करते हैं, तो कभी दरबार में बैठ कर नाच-गाने का आनन्द लेते हैं; कहीं राज-श्री के साथ जा रहे हैं, तो कहीं प्रीति का हाथ पकड़े हुये; कभी उन्हें शारिका जगाती है, तो कभी शुक के साथ छिपे हुये वह रनिबास की स्त्रियों के रूप-रस का पान करते और बड़े चाव से शुक के मुख से सीता की दासियों का नखशिख-वर्णन सुनते हैं ।

सीता

केशवदास सीता जी के आदर्श पत्नीत्व की भी पूर्ण रक्षा नहीं कर सके हैं । हिन्दू-समाज में पत्नी के लिये पति पूज्य और आराध्य है । वह पत्नी की भक्ति एवं श्रद्धा का पात्र

१. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० २३, पृ० सं० १६६ ।
२. रामायण, अयोध्याकांड, पृ० सं० २०६ ।
३. 'मग को श्रम श्रीपति दूर करैं सिय को शुभ वाकल अंचल सों' ।
रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० १८०
४. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० १, पृ० सं० ४१८ ।
५. रामायण, लंकाकांड, पृ० सं० ५६२, ५६३ ।

है। अतएव वन-मार्ग में जाती हुई तुलसीदास की सीता राम के चरणचिन्हों को बचाती हुई चलती हैं।[1] इसके प्रतिकूल केशव की सीता, सूर्य के ताप से तप्त भूमि के कष्ट से बचने के लिये राम के पदचिन्हों पर ही पैर रखती हुई चलती हैं। केशव ने लिखा है :

'मारग की रज तापित है अति, केशव सीतहिं सीतल लागति।
प्यो पद पंकज ऊपर पायनि, दै जु चलै तेहि ते सुखदायनि'॥[2]

मार्ग-श्रम से थकने पर जब राम-लक्ष्मण आदि किसी नदी अथवा सरोवर के तट पर तमाल की छाँह में कुछ काल विश्राम करते हैं, तो केशव की सीता आधुनिक पाश्चात्य सभ्यतानुगामिनी स्त्रियों के समान ही सुख-पूर्वक राम से पंखा झलवाती हैं और बीच-बीच में 'चंचल चारु दृगंचल' से राम की ओर निहार कर ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझती हैं।

'कहुँ बाग तड़ाग तरङ्गिनी तीर तामल की छाँह विलोकि भली।
घटिका यक बैठत हैं सुख पाय बिछाय तहाँ कुस कास थली।
मग को श्रम श्रीपति दूर करैं सिय को शुभ बाकल अंचल सों।
श्रम तेऊ हरैं तिनको कहि केशव चंचल चारु दृगंचल सों'॥[3]

केशव की सीता वीणा बजाने में भी निपुण हैं और वन में खिन्न पति के मन को रिझाने के लिये उसी का सहारा लेती हैं :

'जब जब धरि वीणा प्रकट प्रवीना बहु गुन लीना सुख सीता।
पिय जियहि रिझावै दुखनि भजावै विविध बजावै गुन गीता'।[4]

तुलसी के राम परमानंद-स्वरूप हैं अतएव तुलसी की सीता को राम को रिझाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। बाल्मीकि की सीता, राम के मृगया से विश्रान्त होने पर स्वयं उनके पंखा झल कर उनका परिश्रम दूर करती हैं।

भरत

केशव के भरत का चरित्र भी बाल्मीकि तथा तुलसी के भरत के चरित्र से बहुत कुछ भिन्न हो गया है। तुलसी के भरत साधुता, संयम, शील तथा विनम्रता की मूर्ति हैं, किन्तु केशव के भरत क्रोधी और हठी हैं। राम-परशुराम-संवाद में केशव के भरत, लक्ष्मण के निकट पहुँचते हुये दिखलाई देते हैं। परशुराम के कुठार से राम का रक्तपान करने के लिये कहने पर केशव के भरत भी लक्ष्मण के ही समान परशुराम के प्रति व्यंग वचनों का प्रयोग करते हुये कहते हैं :

'बोलत कैसे, भृगुपति सुनिये, सो कहिये तन मन बनि आवै।
आदि बड़े हो बड़पन राखिये, जा हित तू सब जग जस पावै।

१. 'प्रभु पद रेख बीच बिच सीता। धरहि चरण मग चलत सभीता'॥
रामायण, अयोध्याकांड, पृ० सं० २२७

२. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ३८, पृ० सं० १७६।

३. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ४४, पृ० सं० १८०।

४. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० २७, पृ० सं० २११।

चंदन हूं में अति तन घसिये, आगि उठै यह गुनि सब
हैहय मारो, नृपजन संहरे, सो यश लै किन युग युग जीजै' ॥[१]

रामचरितमानस में स्वयंवर के अवसर पर परशुराम के आने से तुलसी के भरत के सामने यह अवसर नहीं आया है।

बाल्मीकि तथा तुलसी के राम को भरत की साधुता पर अखंड विश्वास है। चित्रकूट में भरत को दल-बल सहित आते हुये देख कर लक्ष्मण को उनके आक्रमण करने का सन्देह हुआ था। इस अवसर पर बाल्मीकि के राम ने उन्हें समझाया कि हमसे सदा स्नेह करने वाले तथा मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय भरत स्नेहार्द्र हृदय से पिता को प्रसन्न कर हमें लेने आये हैं, तुम उन पर अन्याय करने का सन्देह क्यों करते हो। इसी प्रकार तुलसी के राम ने भी लक्ष्मण को समझाते हुये कहा था:

'भरतहि होहि न राजमद, विधि हरि हर पद पाइ।
कबहुँ कि कांजी सीकरनि, क्षीर सिंधु बिनसाइ' ॥[२]

किन्तु केशव के राम को स्वयं ही भरत के चरित्र पर विश्वास नहीं है। वह वन जाते समय लक्ष्मण को अवध में ही रहने का आदेश देते हुये कहते हैं:

'आय भरत्थ कहा धौं करैं जिय भाय गुनौ।
जो दुख देय तो लै उरगौ यह सीख सुनौ'।[३]

तुलसी के भरत ने चित्रकूट में राम के अयोध्या लौट चलने के विषय में सब कुछ कहने के बाद भी अन्त में यही कहा था कि:

'अब कृपालु जस आयसु होई। करौं शीशधर सादर सोई' ॥[४]

किन्तु केशव के हठी भरत हठ कर गंगा के तट पर बैठ जाते हैं और उन्हें समझाने के लिये स्वयं गंगा को साक्षात् प्रकट होना पड़ता है:

'मद्यपान रत तिय जित होई। सन्निपात युत बातुल जोई।
देखि देखि जिनको सब भागै। तासु बैन हनि पाप न लागै।
ईश ईश जगदीश बखान्यो। वेद वाक्य बल से पहिचान्यो।
ताहि मेटि हठ कै रजिहौ जौ। गंगतीर तन को तजिहौं तौ' ॥[५]

इस स्थल पर केशव के भरत का चरित्र बाल्मीकि के भरत से साम्य रखता है। बाल्मीकि के भरत भी जब राम को किसी प्रकार अयोध्या चलने के लिये राजी नहीं कर पाते तो अनशन-व्रत धारण कर उनकी कुटी के द्वार पर सत्याग्रह कर देते हैं।

रामराज्याभिषेक के बाद लोकापवाद के कारण राम ने सीता के त्याग का निश्चय कर भरत को बुला भेजा और उनसे सीता को वन में छोड़ आने को कहा। इस अवसर पर केशव

---

१. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० २२, पृ० सं० १३१।
२. रामायण, अयोध्याकांड, पृ० सं० २७३।
३. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० १७०।
४. रामायण, अयोध्याकांड, पृ० सं० ३०९।
५. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ३६, ३७, पृ० सं० १९२, १९३।

के भरत विनम्रता को तिलांजलि देकर राम के प्रति कठोरतम शब्दों का प्रयोग करते हुये कहते हैं :

'वा माता वैसे पिता तुम सो भैया पाय।
भरत भयो अपवाद को भाजन भूतल आय' ॥[1]

तुलसी ने रामकथा के इस अंश को छोड़ दिया है।

कौशल्या तथा हनूमान

केशव की कौशल्या तथा हनूमान के चरित्र का भी पतन हो गया है। राम के बनवास का समाचार सुन कर तुलसी की कौशल्या के सामने एक महान समस्या उपस्थित होती है। स्नेह राम को रोकने के लिये प्रेरित करता है तथा कर्तव्य वन-गमन की आज्ञा देने के लिये बाध्य करता है। अंत में कर्तव्य की ही विजय होती है और असीम धैर्य का परिचय देते हुये तुलसी की कौशल्या राम को वनगमन की आज्ञा और आशीर्वाद देती हुई कहती हैं :

'जो पितु मातु कह्यौ बन जाना। तो कानन सत अवध समाना॥
पितु वन देव मातु वन देवी। खग मृग चरण सरोरुह सेवी॥
× × ×
देव पितर सब तुमहि गुसाईं। राखहिं पलक नयन की नाईं' ॥[2]

बाल्मीकि की कौशल्या प्रथम तो तर्क के द्वारा राम को वन-गमन से रोकने का प्रयत्न करती हैं और फिर स्वयं को भी अपने साथ ले चलने का अनुरोध करती हैं। किन्तु अन्त में राम के समझाने तथा राम के अपूर्व धर्मभाव को देखकर विलक्षण सहिष्णुता धारण कर राम के वन-गमन का अनुमोदन करते हुये अश्रु-गद्‌गद् कंठ से आशीर्वाद देती हैं। इस स्थल पर तुलसी की कौशल्या का चरित्र तो महानतम है ही, बाल्मीकि की कौशल्या का चरित्र भी महान है, किन्तु केशव की कौशल्या कुछ इस प्रकार की शब्दावली का प्रयोग करती हैं जिससे ज्ञात होता है कि राम से इतर किसी अन्य से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। वह राम से अनुरोध करती हैं कि वह उन्हें अपने साथ बन ले चलें, फिर अयोध्या में चाहे भरत राज्य करें अथवा 'गाज' पड़े, उनसे कोई मतलब नहीं :

'मोहि चलौ बन सङ्ग लिये। पुत्र तुम्हैं हम देखि जिये॥
औधपुरी मह गाज परै। कै अब राज्य भरत्थ करै' ॥[3]

कौशल्या के समान ही केशव के हनूमान के चरित्र का भी पतन हो गया है। ऋष्य-मूक पर्वत के निकट बनवासी राम से उनका परिचय तथा सीता-हरण का समाचार ज्ञात होने पर हनूमान जी के शब्द हैं :

'या गिरि पर सुग्रीव नृप, ता सङ्ग मंत्री चारि।
बानर लई छड़ाइ तिय, दीन्ही बालि निकारि।

1. रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, छं० सं० ३२, पृ० सं० २४१
2. रामायण, अयोध्याकांड, पृ० सं० १६६।
3. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० १०, पृ० सं० १६६।

ताकहँ जो अपनो करि जानो। मारहु बालि बिनै यह मानौ ॥
राज देउ दै वाकी तिया को। तो हम देहिं बताय सिया कौ' ॥[1]

हनूमान जी के यह शब्द उन्हें संसार के उन साधारण लोगों की कोटि प्रदान करते हैं, जिनके लिये परोपकार का कोई महत्व नहीं है और जो परमार्थ को भी स्वार्थ की ही कसौटी पर कसते हैं। तुलसीदास जी ने इस स्थल पर बड़ी सतर्कता से काम लिया है। तुलसी के हनूमान, राम से केवल इतना ही कहते हैं कि हे नाथ, पर्वत पर कपिपति सुग्रीव रहता है, वह आपका दास है। उससे मित्रता कीजिये और दीन जान कर अभय-दान दीजिये। वह सीता की खोज करा देगा।[2] अग्नि की साक्षी देकर राम-सुग्रीव में मित्रता होती है, और सुग्रीव सीता की खोज करा देने का वचन देता है। अब राम सुग्रीव से उसके वन में निवास करने का कारण पूँछते हैं और सब वृतान्त सुन कर स्वयं बालि को मारने की प्रतिज्ञा करते हैं। बाल्मीकि के हनूमान का भी प्रथम आलाप ऐसा था जिसे सुन कर मुग्ध हो राम ने लक्ष्मण से कहा था कि इसके कंठ से उच्चारण की हुई वाणी हृदयहारिणी है, इसकी बातचीत में एक भी अपशब्द नहीं सुनाई पड़ा।

सीता की खोज में लङ्का जाने पर केशव के हनूमान को रावण के अन्तःपुर में स्त्रियों के बीच भ्रमण करते हुये किसी प्रकार का संकोच नहीं होता। बाल्मीकि के हनूमान व्याकुल हैं कि अन्तःपुर में सोती हुई परस्त्रियों को देखने से धर्म लुप्त हो गया। किन्तु वह कर्तव्य-विवश हैं और फिर उन्होंने अपने हृदय का प्रत्येक कोना देख डाला, उसमें विकार का लेश भी नहीं है। तुलसीदास जी इस प्रसंग को बरा ही गये हैं। उन्होने केवल इतना ही कहा है किः

'गयउ दशानन मन्दिर माहीं। अति विचित्र कहि जात सो नाहीं ॥
शयन किये देखा कपि तेही। मन्दिर महं न दीख वैदेही' ॥[3]

रामभक्त तुलसीदास जी ने अपने आराध्य राम अथवा राम से सम्बन्ध रखने वाले अन्य पात्रों के चरित्र के दोषों पर परदा पड़ा रहने दिया है किन्तु केशव को राम का इष्ट यह करने के लिये बाध्य न कर सका। केशवदास जी अग्नि द्वारा निष्कलंक प्रमाणित की हुई सीता का राम द्वारा पुनः निर्वासन उचित नहीं समझते; अतएव भरत आदि के मुख से उन्होंने राम के इस कृत्य की तीव्र आलोचना कराई है। राम से सीता-निर्वासन का निश्चय सुन कर भरत कहते हैं :

'प्रिय पावनि प्रिय वादिनी पतिव्रता अति शुद्ध।
जग की गुरु अरु गर्विणी छांडत वेद विरुद्ध ॥
वा माता वैसे पिता तुम सो भैया पाय।
भरत भयो अपवाद को भाजन भूतल आय' ॥[4]

१. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छ० सं० २६, २७, पृ० सं० २४२।
२. रामायण, किष्किंधाकांड, पृ० सं० ३४३।
३. रामायण, सुन्दरकांड, पृ० सं० ३७४।
४. रामचंद्रिका, उत्तरार्द्ध, छं० सं० ३४, ३५, पृ० सं० २४८, २४६

आगे चल कर लवकुश द्वारा ससैन्य लक्ष्मण के परास्त होने का समाचार मिलने पर भरत का राम से कथन है :

'पातक कौन तजी तुम सीता। पावन होत सुने जग गीता।
दोष विहीनहि दोष लगावै। सो प्रभु ये फल काहे न पावै' ॥[1]

इसी प्रकार आपत्तिकाल में रावण को त्याग कर विभीषण का राम से मिल जाना तथा भेद की बातें बता कर अपने कुटुम्ब का नाश कराना भी केशव उचित नहीं समझते। अतएव युद्ध में सम्मुख आने पर केशवदास ने लव से विभीषण के प्रति कहलाया है :

'आउ विभीषण तू रण दूषण। एक तुही कुल को निज भूषण।
जूझ जुरे जो भगे भय जी के। शत्रुहि आनि मिले तुम नीके' ॥[2]

यदि यह कहा जाये कि विभीषण रावण की अनीति के कारण राम से जा मिला था तो लव के ही शब्दों में शंका उठती है कि:

'देववधू जबहीं हरि लायो। क्यों तब ही तजि ताहि न आयो।
यों अपने जिय के डर आयो। छुद्र सबै कुल छिद्र बतायो' ॥[3]

विभीषण के चरित्र की दूसरी दुर्बलता अर्थात् रावण-वध के पश्चात् मन्दोदरी को पत्नीरूप में रखना केशव की दृष्टि में अक्षम्य अपराध है। विभीषण के रामभक्त होने के कारण तुलसी ने उसके चरित्र के इस अंश पर परदा पड़ा रहने दिया है, किन्तु केशव इस बात को सहन नहीं कर सके, अतएव उन्होंने लव के मुख से कहलाया है :

'जेठो भैया अन्नदा राजा पिता समान।
ताकी पत्नी तू करी पत्नी मातु समान।
को जानै कै बार तू कही न ह्वैहै माय।
सोई तैं पत्नी करी सुनु पापिन के राय' ॥[4]

(३) भावव्यंजना

(अ) प्रबन्ध-ग्रन्थों में :

प्रबन्धकार कवि की भावुकता का सबसे अधिक पता यह देखने से चल सकता है कि वह किसी आख्यान के अधिक मर्मस्पर्शी स्थलों को पहचान सका है या नहीं।[5] इस कसौटी पर केशव की 'रामचन्द्रिका' को कसने से ज्ञात होता है कि अधिकांश स्थलों पर मार्मिकता के साथ अनुरक्त होने वाली सहृदयता केशव में न थी। रामकथा के अन्तर्गत दशरथ-मरण और

१. रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, छं० सं० ३२, पृ० सं० ३०८।
२. रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, छं० सं० १६, पृ० सं० ३१५।
३. रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, छं० सं० १७, पृ० सं० ३१६।
४. रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, छं० सं० १८-१९, पृ० सं० ३१६।
५. तुलसीदास, शुक्ल, पृ० सं० ८८।

रामवनगमन, चित्रकूट में राम-भरत-मिलाप, शबरी का आतिथ्य, सीताहरण और लक्ष्मण-शक्ति के बाद रामविलाप आदि स्थल अधिक मर्मस्पर्शी हैं। प्रायः इन सभी स्थलों पर केशव की रागात्मिका वृत्ति लीन होती नहीं दिखलाई देती। कदाचित् इसी लिये बहुधा लोग केशव को हृदयहीन कह डालते हैं। किन्तु बुढ़ापे में पनघट पर मृगलोचनी कामिनियों द्वारा 'बाबा' कह कर सम्बोधित किये जाने पर अपने सफेद बालों को कोसने के लिये प्रसिद्ध कवि हृदयहीन था, यह कहना उचित न होगा। केशव में भिन्न-भिन्न मानव-मनोभावों को परखने की पूर्ण क्षमता थी। इस कथन के प्रमाण-स्वरूप 'रसिकप्रिया' और 'कविप्रिया' के स्फुट छन्द उपस्थित किये जा सकते हैं। प्रबन्धकाव्य के क्षेत्र में भी केशव के संवाद उनके मनोवैज्ञानिक पर्यवेक्षण का परिचय देते हैं। संवादों से इतर स्थलों पर भी कवि ने भिन्न-भिन्न प्रकृतस्थ भावों की सुन्दर व्यञ्जना की है, यद्यपि ऐसे स्थल कम अवश्य हैं।

राम, सीता और लक्ष्मण के साथ बन में चले जा रहे हैं। उनके अलौकिक सौंदर्य को देख कर भोले-भाले बनवासी मोहित और किंकर्तव्य-विमूढ़ हो जाते हैं। उनका हृदय तर्क-वितर्क में पड़ जाता है और वे मन में विचार करते हैं कि 'हे भगवान, यह लोग कौन हैं'। किन्तु जब वे कुछ भी निश्चय नहीं कर पाते और उनका चित्त भारी भ्रम में उलझ जाता है तो मानवोचित स्वाभाविक उत्सुकतावश वे राम से एक ही साँस में अनेक प्रश्नों की झड़ी लगा देते हैं।

'कौन हो कित ते चले कित जात हौ केहि काम जू।
कौन की दुहिता बहू कहि कौन की यह वाम जू।
एक गांव रहो कि साजन मित्र बन्धु बखानिये।
देश के पर देश के किधौं पंथ की पहिचानिये' ॥[१]

'शोक' का वर्णन कवि ने तीन स्थलों पर किया है। सीताहरण और लक्ष्मण-शक्ति के बाद राम की शोक-विह्वल दशा के चित्रण में तथा मेघनाथ-वध के पश्चात् रावण की दशा के वर्णन में। मारीच-रूपी स्वर्णमृग को मारने के बाद जब राम अपनी कुटी को वापस आकर सीता को नहीं पाते तो उनके हृदय में स्वाभाविक रूप से अनेक तर्क-वितर्क उठते हैं। वे लक्ष्मण से कहते हैं कि कहीं सीता स्नेहवश मुझे ढूंढने वन में तो नहीं गई, अथवा तुमसे कुछ कहा-सुनी तो नहीं हो गई जिस दुःख में वह कहीं छिपी बैठी है, अथवा यह कोई अन्य पर्णकुटी तो नहीं है।

'निज देखौं नहीं शुभ गीतहि सीतहि कारण कौन कहौ अबहीं।
अति मोहित कै बन माँझ गई सुर मारग में मृग मार्‌यो जहीं।
कटुबात कछू तुम सो कहि आई किधौं तेहि त्रास दुराय रहीं।
अबहै यह पर्णकुटी किधौं और किधौं वह लचमण होइ नहीं' ॥[२]

आशा के क्षीण तन्तु के सहारे राम, सीता की खोज करते आगे बढ़ते हैं किन्तु मार्ग

१. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ३३, पृ० सं० १७३।
२. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० २७, पृ० सं० २२६।

में जटायु से यह समाचार पाकर कि सीता को रावण हर ले गया, राम पर एकाएक अशनि-पात हो जाता है, जो उन्हें पागल बना देता है। सीता के प्रेम में विह्वल राम विलाप करते हुये पक्षियों और वृक्षलताओं आदि से करुणा-पूर्ण शब्दों में पता पूछते हुये दिखलाई देते हैं। चक्रवाक के जोड़े को देख कर राम उनसे कहते हैं कि 'जब जब तुम सीता को हमारे साथ देखते थे तो तुम्हें दुःख होता था। आज मुझे सीता से वियुक्त देखकर कदाचित् तुम्हें संतोष हो रहा हो, किन्तु वैर-भाव त्याग कर हमारी दशा पर सहानुभूति दिखलाते हुये तुम्हें सीता का पता बता देना चाहिये'।

'अवलोकत हे जब हीं जब हीं। दुख होत तुम्हें तबहीं तबहीं।
वह वैर न चित्त कछू धरिये। सिय देहु बताय कृपा करिये' ॥[1]

कुछ और आगे बढ़ने पर राम, चकोर से कहते हैं कि 'चकोर, जिस सीता के चन्द्रमुख को देखकर तुम चन्द्रमा को भी भूल जाते थे, जिसके मुख को देख कर तुम जीवन धारण करते थे, आज वही सीता खो गई है। अतएव सीता के उपकारों को स्मरण कर उसकी खोज में तुम मेरी सहायता करो'।

'शशि को अवलोकन दूर किये। जिनके मुख की छवि देखि जिये।
कृति चित्त चकोर कछूक धरो। सिय देहु बताय सहाय करो' ॥[2]

आगे बढ़ने पर 'करुणा' नामक वृक्ष को देख कर राम कहते हैं कि 'हे करुणा, मकरंद के प्रार्थी भौंरे को चंपा पुष्प पास भी फटकने नहीं देता, इस प्रकार वह याचक का शत्रु है। अतएव मैं उसके पास सीता का पता पूछने नहीं गया। अशोक शोक-रहित है अतएव वह मेरे शोक का अनुभव नहीं कर सकता। केवड़े, केतकी, गुलाब आदि के पास जाना भी व्यर्थ है क्योंकि यह सब तीक्ष्ण स्वभाव (कांटेदार) वाले हैं। तुमको सज्जन जान हम तुमसे ही सीता का पता पूछने आये हैं, किन्तु तुम भी मौन हो। क्या यह उचित है। तुम तो करुणा-मय हो, तुमको तो मुझ पर दया कर सीता का पता बताना ही चाहिये। बोलो, बताओ, सीता कहाँ है'।

'कहि केशव याचक के अरि चंपक शोक अशोक भये हरिकै।
लखि केतक केतकि जाति गुलाब ते तीक्षण जानि तजे डरिकै।
सुनि साधु तुम्हें हम बूझन आये रहे मन मौन कहा धरिकै।
सिय को कछु सोधु कहौ करुणामय हे करुणा करुणा करिकै' ॥[3]

राम के शोक का दूसरा स्थल है लक्ष्मण-शक्ति। लक्ष्मण के शक्ति लगने पर एक बार फिर राम के हृदय के बाँध टूट गये और उनके नेत्रों से अश्रुसरिता प्रवाहित हो गई। उन्होंने कहा 'हे लक्ष्मण, एक बार तो मेरी ओर देखो। मेरे प्राण जा रहे हैं उन्हें बचाओ। मैं तुम्हारे किन-किन गुणों का स्मरण करूँ। तुम तो भाई होते हुये भी पुत्र के समान मेरी आज्ञा का पालन करते थे और पुत्र के समान आचरण करते हुये भी मित्र के समान मेरी

---

१. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ३१, पृ० सं० २३३।
२. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ४०, पृ० सं० २३३।
३. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ४१ पृ० सं० २३४।

सहायता करते थे। तुम मेरी आँखों की ज्योति थे और तुम्हीं मेरे अस्त्र-शस्त्र तथा बल-विक्रम थे। आज तुम्हारे बिना मैं निशस्त्र और निर्बल हूँ। एक बार तो आखें खोलकर मेरी ओर देखो। सत्य समझो, मैं तुम्हारे बिना एक क्षण भी जीवित न रह सकूँगा। मुझे प्राणों का मोह नहीं, दुःख केवल इस बात का है कि विभीषण को लङ्का देने का वचन न पूरा कर सका। अपने 'प्रभु' की सेवा और सहायता के लिये तुम सदैव तत्पर रहते थे। क्या अपने 'प्रभु' को कलंकित होते देख सकोगे। कदाचित् नहीं, तो उठो और मेरी प्रतिज्ञा की रक्षा करो'।

'लछमण राम जहीं अवलोक्यो। नैनन ते न रह्यो जल रोक्यो।
बारक लछमण मोहि बिलोको। मोकहं प्राण चले तजि रोको।
हौं सुमिरौं गुण केतिक तेरे। सोदर पुत्र सहायक मेरे।
लोचन बान तुही धनु मेरो। तू बल विक्रम बारक हेरो।
तू बिन हौं पल प्रान न राखौं। सत्य कहौं कछु झूठ न भाखौं।
मोहि रही इतनी मन शंका। देन न पाई विभीषण लंका।
बोलि उठो प्रभु को प्रन पारौ। नातरु होत है मो मुख कारौ'॥[1]

लक्ष्मण द्वारा मेघनाद का वध किये जाने पर इसी प्रकार रावण पर एकाएक शोक का पहाड़ टूटा था, जिसके फलस्वरूप रावण का कठोर हृदय भी शोक-विह्वल हो गया। जब मनुष्य पर अचानक कोई बहुत बड़ा दुःख पड़ता है तो उसे जीवन, सुख और संसार से विरक्ति हो जाती है और असीम निराशा की दशा में वह सब ओर से उदासीन हो जाता है। मेघनाद के वध से रावण की भी यही दशा हुई थी। ऐसी ही मानसिक स्थिति में रावण कहता है कि 'आज से सूर्य, जल, वायु, अग्नि, चंद्रमा आदि मेरी ओर से निडर होकर आनन्द-पूर्वक विचरण करें। किन्नर गान करें, गंधर्व नाचें और यक्ष सुख-पूर्वक कर्दम का लेप करें। ब्रह्मा रुद्रादि तीनों लोक के देवता जाकर इन्द्र का अभिषेक करें। सीता राम को और लंका का राज्य कुलद्रोही विभीषण को दे दिया जाये। ब्राह्मणगण भी स्वच्छन्दता-पूर्वक जाकर यज्ञानुष्ठान आदि कृत्य करें'।

'आजु आदित्य जल, पवन पावक प्रबल,
चंद आनंद भय, त्रास जग को हरौ।
गान किन्नर करो, नृत्य गंधर्व कुल,
यक्ष विधि लक्ष उर यक्ष कर्दम धरौ।
ब्रह्म रुद्रादि दै, देव तिहुँ लोक के,
राज को जाय अभिषेक इन्द्रहिं करौ।
आजु सिय राम दै, लंक कुलदूषणहिं,
यज्ञ को जाय सर्वज्ञ विप्रहु बरौ'॥[2]

जिस समय रंचमात्र आशा न हो उस समय यदि किसी मनुष्य को प्रियवस्तु अथवा प्रिय समाचार प्राप्त हो जाता है तो एकाएक उसे अपने नेत्रों अथवा कानों

१. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० स० ४३-४६, पृ० सं० ३७०-३७१।
२. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ३, पृ० सं० ३६।

पर विश्वास नहीं होता और बुद्धि चक्कर में पड़ जाती है। नव पल्लव-युक्त अशोक से अग्नि की याचना करने पर अग्नि के स्थान पर राम की मुंदरी मिलने पर सीता के हृदय की यही दशा हुई थी। मुंदरी पर राम का नाम पढ़ कर सीता की मति भ्रम में पड़ गई। उन्हें एकाएक विश्वास न हुआ कि यह राम ही की मुद्रिका है। उनके हृदय में स्वाभाविक रूप से तर्क-वितर्क होता है कि लड़कपन से इस मुंदरी को राम अपने हाथ में धारण करते रहे हैं। यह किस प्रकार उनसे वियुक्त हुई अथवा इसे यहाँ कौन लाया। यह भेद किस प्रकार ज्ञात हो, किस से पूछने जाऊँ।

'जब बाँचि देख्यो नाउं। मन पर्‍यो संभ्रम भाउ।
आबाल ते रघुनाथ। यह धरी अपने हाथ।
बिछुरी सु कौन उपाउ। केहि आनियो यहि ठांउ।
सुधि लहौं कौन प्रभाउ। अब काहि बूझन जाउं' ॥[1]

रावण-वध के पश्चात् हनूमान द्वारा रामादि के प्रत्यागमन का समाचार सुन कर भरत के हृदय की भी बहुत कुछ ऐसी ही दशा हुई थी; यद्यपि इस अवसर पर जड़ मुंदरी के स्थान में चैतन्य हनूमान जी संवादवाहक के रूप में भरत जी के पास आये थे। हनूमान जी से यह सुखद समाचार सुन कर भरत सुख-सागर में निमज्जित हो गये और एकाएक इस समाचार की सत्यता पर उन्हें विश्वास न आया। वे सोचने लगे 'हे ईश, हनूमान जी मुझसे क्या कह रहे हैं। क्या यह सच है, अथवा मैं स्वप्न देख रहा हूँ'।

'सुनि परम भावती भरत बात। भये सुख समुद्र में मगन गात।
यह सत्य किधौं कछु स्वप्न ईश। अब कहा कह्यो मोसन कपीश' ॥[2]

केशवदास जी ने 'हर्ष' की भी बड़ी सुन्दर व्यंजना की है। चिर-वियोग के बाद प्रियतम की मुद्रिका पाकर सीता को जो हर्ष हुआ होगा वह अवर्णनीय है। कविवर केशवदास ने अपनी प्रतिभा का परिचय देते हुये सीता जी से मुद्रिका का वर्णन नाना प्रकार से कराकर सीता के हर्षातिरेक को व्यंजित किया है। हर्षातिरेक में जड़ मुंदरी को सजीव मान कर उससे सीता का बातचीत करना भी मनोवैज्ञानिक है। मुंदरी के प्रति सीता का उपालंभ है :

'श्रीपुर में वन मध्य हौं, तू मग करी अनीति।
री मुंदरी अब तियन की, को करिहै परितीति' ॥[3]

आगे सीता जी उससे राम की कुशल पूछती हैं किन्तु उसके उत्तर न देने पर हनूमान से उसके मौन का कारण पूँछती हैं :

'कहि कुसल मुद्रिके राम गात। सुभ लच्छमण सहित समान तात।
यह उतरु देति नहि बुद्धिवंत। केहि कारण धौं हनुमंत संत' ॥[4]

१. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ६७-६८, पृ० सं० २७८।
२. रामचन्द्रिका, उत्तरार्ध, छं० सं० २४, पृ० सं० ८।
३. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ८२, पृ० सं० २८५।
४. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ८६, पृ० सं० २८२।

हनूमान जी ने भी बड़ी चतुरता के साथ मुंदरी के मौन का कारण और सीता के मुंदरी के प्रति किये गये प्रश्न का उत्तर एक ही साथ दे दिया।

'तुम पूँछत कहि मुद्रिके मौन होत यहि नाम।
कंकन की पदवी दई तुम बिन या कहँ राम' ॥[1]

'लज्जा' भारतीय ललनाओं का भूषण है। केशवदास जी ने एक स्थल पर कुल-वधुओं की लज्जा की भी मनोहर व्यंजना की है। राम के रनिवास की कामिनियाँ बाटिका-विहार के लिये गई हैं। एक स्थान पर वह देखती हैं कि रस-लोलुप भौंरे भौंरियों के सामने ही मालती का चुंबन कर रहे हैं। यह दृश्य देख कर वे ललनायें लजा जातीं हैं और घूंघट के भीतर ही भीतर मुस्कराती हैं।

'अलि उड़ि धरत मंजरी जाल। देखि लाज साजति सब बाल।
अलि अलिनी के देखत धाइ। चुम्बत चतुर मालती जाइ।
अद्भुत गति सुन्दरी बिलोकि। विहँसति है घूँघट पट रोकि' ॥[2]

'हास्य' की एक झलक उस समय दिखलाई देती है जब रावण का यज्ञविध्वंस करने के लिये गये हुये बानरगण रावण की चित्रशाला में मंदोदरी को ढूँढ़ते हुये पहुँचते हैं। अंगद चित्रखचित पुतलियों को रावण की रानियाँ समझ कर पकड़ने दौड़ते हैं किन्तु जब निकट पहुँचते हैं तो उन्हें अपना भ्रम ज्ञात होता है। यह देख-देख कर वहाँ छिपी देवकन्यायें हँसती हैं।

'भगीं देखि कै शंकि लंकेस बाला। दुरी दौरि मंदोदरी चित्रसाला।
तहाँ दौरिगो बालि को पूत फूल्यो। सबै चित्र की पुत्रिका देखि भूल्यो।
गहै दौरि जाको तजै ता दिसा को। तजै जा दिशा को भजै वाम ताको।
भलै कै निहारी सबै चित्रसारी। लहै सुन्दरी क्यों दरी को विहारी।
तजै देखि कै चित्र की श्रेष्ठ धन्या। हँसी एक ताको तहीं देव कन्या' ॥[3]

सीता की खोज लगा कर वापस आये हुए हनूमान जी की रामद्वारा प्रशंसा किये जाने पर हनूमान के शब्दों में स्वाभाविक 'दीनता' का प्रकाशन है। हनूमान जी कहते हैं कि 'हे महाराज, आप व्यर्थ ही मेरी प्रशंसा करते हैं, मैंने किया ही क्या है। आपकी मुद्रिका मुझे समुद्र के उस पार ले गई और सीता जी की मणि के प्रभाव से मैं इस ओर आया हूँ। लंका जलाकर भी मैंने कौन सा विक्रम किया है। वह तो स्वयं मृत थी। अक्षकुमार को मारा, वह भी निर्बल बालक था। तदनंतर शत्रु द्वारा बांधा गया। यदि बली होता तो बांधा ही क्यों जाता। वृक्ष अवश्य तोड़े, किन्तु वे जड़ थे। इस प्रकार मैंने कुछ भी तो विक्रम नहीं किया जो इस प्रकार आप मेरी प्रशंसा कर रहे हैं'।

१. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ८७, पृ० स० २८१।
२. रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, पृ० सं० २१७।
३. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० ४०३।

'गइ मुद्रिका लै पार। मनि मोहि लाई वार।
कह कर्‌यो मैं बल रंक। अति मृतक जारी लंक।
अति हत्यो बालक अच्छ। लै गयो बाँधि विपच्छ।
जड़ वृत्त तोरे दीन। मैं कहा विक्रम कीन' ॥[1]

वीरोचित 'उत्साह' की व्यंजना केशव ने कई स्थलों पर बड़ी मार्मिक की है। महाबली कुंभकर्ण युद्ध-स्थल में रामचन्द्र जी से कहता है, 'हे राम, मुझे ताड़का या सुबाहु न समझना जिसको तुमने सहज ही मृत्यु के घाट उतार दिया। मैं शिव-पिनाक भी नहीं हूँ जिसे तुमने फूल की तरह तोड़ डाला। मैं ताल नहीं हूँ और न बाली अथवा खर हूँ, जिसे तुमने बेध कर रख दिया। खरदूषण भी नहीं हूँ जो तुम्हारे बाणों का लक्ष्य हो गया। तनिक सामने देखो, मैं देव और असुर कन्याओं से भोग करने वाला तथा महाकाल का भी काल कुंभकर्ण हूँ। राम, मैं तुम्हें युद्ध के लिये चुनौती देता हूँ। लंका आकर तुम्हें गर्व हो गया है, आज संसार के सामने तुम्हारा बल प्रकट हो जायगा।

'न हौं ताड़का, हौं सुबाहौ न मानो। न हौं शंभु कोदंड साँची बखानो।
न हौं ताल, बाली, खरै, जाहि मारो। न हौं दूषणै सिंधु सूधे निहारो।
सुरी आसुरी सुन्दरी भोगकर्णै। महाकाल को काल हौं कुंभकर्णै।
सुनौ राम संग्राम को तोहि बोलौं। बढ़ो गर्व लंकाहि आये सु खोलौं' ॥[2]

आगे चल कर कुम्भकर्ण और मेघनाद के वध के पश्चात् निराश रावण को उत्साहित करता हुआ वीर मकराक्ष कहता है कि 'मेरे सामने कुम्भकर्ण और इन्द्रजीत क्या हैं। एक सोया करता था और दूसरा डरते हुये युद्ध करता था। जब तक आपका यह दास जीवित है तब तक सीता को यहाँ से कौन ले जा सकता है। महाराज, आप निश्चिन्त होकर लंका का राज भोगिये। मुझे युद्ध के लिये शीघ्र विदामात्र कर दीजिये। विश्वास रखिये, मैं युद्ध में सुग्रीवादि सहित राम-लक्ष्मण को परमधाम पहुँचा दूंगा और अयोध्या पर अधिकार कर उसे आप की राजधानी बनाकर रहूंगा'।

'कहा कुंभकर्णै कहा इन्द्रजीतौ। करै सोइबो वा करै युद्ध भीतौ।
सुजौलौं जियो हौं सदा दास तेरो। सिया को सकै लै सुनो मंत्र मेरो।
महाराज लंका सदा राज कीजै। करौं युद्ध मोको बिदा वेगि दीजै।
हतौं राम स्यों बन्धु सुग्रीव मारौं। अयोध्याहि लै राजधानी सुधारौं' ॥[3]

इसी प्रकार शत्रुघ्न के बाणों से मूर्छित लव के लिये विलाप करती हुई सीता के प्रति कुश का कथन है, 'माँ, तू व्यर्थ ही शोक करती है। यदि शत्रु स्वयं यमराज है तो भी मैं उसको मार कर और उसके दल को नष्ट कर लव को छुड़ा लूंगा। हे माँ, तभी आकर मैं आपके चरणों का दर्शन करूँगा'।

१. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छ० सं० ३३, ३४, पृ० सं० ३०१।
२. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० २२, ३३, पृ० सं० ३८७, ३८८।
३. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं०, ७, ८, पृ० सं० ३६१।

'रिपुहि मारि संहारि दल यम ते लेहुं छुँड़ाय ।
लवहि मिलैहौं देखिहौ माता तेरे पांय' ॥[1]

वही कुश लक्ष्मण से वीर के सामने आकर भी असीम उत्साह से उन्हें ललकार कर कहता है, 'हे लक्ष्मण, मुझे मकराक्ष या इन्द्रजीत समझने की भूल न करना, जिन्हें तुम अपने बाणों का लक्ष्य बना चुके हो। यहाँ हम तुम्हें रण में सम्मुख देख कर विचलित होने वाले नहीं हैं। जिस यश का आज तक तुमने संचय किया है, मुझसे युद्धकर उसे क्यों गँवाते हो। लक्ष्मण, मुझ से युद्ध कर अपनी माता को व्यर्थ ही अनाथ मत करो'।

'न हौं मकराक्ष न हौं इन्द्रजीत। विलोकि तुम्हैं रण होहुँ न भीत।
सदा तुम लक्ष्मण उत्तम गाथ। करौ जनि आपनि मातु अनाथ' ॥[2]

(ब) मुक्तक रचनाओं में :

केशवदास जी प्रबन्ध की अपेक्षा मुक्तक रचनाओं में विभिन्न मानव-भावों के प्रत्यक्षी-करण में अधिक सफल हुये हैं। प्रेम संसार का मूल है। केशव ने भी अधिकांश मुक्तकों में नायक-नायिका के प्रेम और विभिन्न अवस्थाओं तथा परिस्थितियों में प्रेमिका के भावों की गंभीर और मार्मिक व्यंजना की है। इन मुक्तकों में रसराज कृष्ण तथा गोपियां आलंबन के रूप में प्रयुक्त किये गये हैं। अस्तु। प्रेम का अंकुर धीरे-धीरे उत्पन्न और पल्लवित होता है। नायिका ने नायक के गुणों के विषय में सुना, जिसे सुनकर उसके दर्शन की लालसा हुई। दर्शन मिले पर ठगौरी लग गई। नायक ने नायिका के हृदय में घर कर लिया और अब तो चाहने पर भी वह हृदय से दूर नहीं होता।

'सौहैं दिवाय दिवाय सखी इक बारक कानन आन बसाये।
जानै को केशव कानन ते कित ह्वै हरि नैनन माँझ सिधाये।
लाज के साज धरेई रहे तब नैनन लै मन ही सो मिलाये।
कैसी करौं अब क्यों निकसो री हरेई हरे हिय में हरि आये' ॥[3]

किसी से प्रेम हो जाने तथा उसके न मिलने पर न तो खेल अच्छा लगता है और न हँसी। गीत की ध्वनि बाण के समान प्रतीत होती है। वस्त्र और शृंगार की ओर से अरुचि हो जाती है। प्रेमी से साम्य अथवा सम्बन्ध रखने वाली वस्तुयें ही अच्छी लगती हैं। केशव के नायक रसराज कृष्ण की भी यही दशा है।

'खेलत न खेल कछू हँसी न हसँत हरि,
सुनत न गान कान तान बान सी बहै।
ओढ़त न अंबर न डोलत दिगंबर सो,
शंबर ज्यों शंबरारि दुःख देह को दहै।

१. रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, छ० सं० २६, पृ० सं० २६२।
२. रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, छं० सं० १७, पृ० सं० ३०२।
३. रसिकप्रिया, छ० सं० १६, पृ० सं० ६८।

भूलिहूँ न सूंघै फूल फूल तूल कुम्हिलात
गात, खात बीरहू न बात काहू सो कहै।
जानि-जानि चंद मुख केशव चकोर सम,
चंदमुखी, चंद ही के बिंब ज्यों चितै रहै' ॥[१]

बिहारी की नायिका 'बतरस' के लालच से कृष्ण की मुरली 'लुका' कर रख देती है। इधर केशव के कृष्ण इसी उद्देश से एक गोपी को मार्ग में घेर कर खड़े हो जाते हैं और उससे 'दधि' माँगते हैं। गोपी, कृष्ण को दही देने की इच्छा रखते हुये भी नहीं देती और उन्हें खिझाती है। यह 'प्रेम की रार' है। बातों में रस का सागर छलक रहा है।

'दै दधि, दीनो उधार हो केशव, दानी कहा जब मोल लै खैहैं।
दीन्हें बिना तो गईं जु गईं, न गईं न गईं घर ही फिर जैहैं।
गोहित बैरु कियो, हित हो कब, बैरु किये बरु नीके ही रैहैं।
बैर कै गोरस बेचहुगी अहो बेच्यो न बेच्यो तो ढारि न दैहैं' ॥[२]

यदि प्रेमी अपने प्रिय से हँसी में भी कोई तीखी बात कह देता है तो उसके हृदय पर गहरी चोट लगती है। एक दिन कृष्ण ने अपनी प्रेमिका से हँसी ही हँसी में कह दिया कि जिसको पिता ने अपने घर से निकाल दिया उससे उनसे प्रेम कैसे निभ सकता है। यह सुन कर नायिका के अविरल आँसू बह चले और फिर उसे सान्त्वना देना कठिन हो गया।

'एक समय एक गोपी सों केशव कैसहूँ हाँसी की बात कही।
या कहँ तात दई तजि जाहि कहा हम सो रस रीति नही।
को प्रति उत्तर देइ सखी दग आँसुन की अवली उमहीं।
उर लाय लई अकुलाय तऊ अधिरातिक लौं हिलकी न रहीं' ॥[३]

प्रेम एकाधिपत्य स्वत्व चाहता है। प्रेमी यह कभी सहन नहीं कर सकता कि उसका प्रिय किसी अन्य से भी प्रेम करे। एक बार एक गोपी, कृष्ण से कुछ पूछ रही थी। अचानक कृष्ण के मुख से किसी अन्य नायिका का नाम निकल गया। अब तो नायिका के हाथ का पान का बीड़ा हाथ में और मुँह का मुँह में ही रह गया और आतुरतापूर्वक शब्दों के साथ ही आँखों से अश्रुधार प्रवाहित हो चली।

'बूझत ही वह गोपी गुपालहिं आजु कछू हँसिकै गुणगाथहि।
ऐसे में काहू को नाम सखी कहि कैसे धौं आइ गयो ब्रजनाथहि।
खाति खवावति ही जु बिरी सु रही मुख की मुख हाथ की हाथहि।
आतुर ह्वै उन आँखिन तें अँसुवा निकसे अखरानि के साथहिं' ॥[४]

मान प्रेम का आवश्यक अंग है। यह ऐसी प्रेम की रार है जो प्रेम-रस को बढ़ाती है। मान दुधारी तलवार है जो प्रेमी और प्रेमिका दोनों पर असर करती है। नायिका ने एक बार

---

१. कविप्रिया, छं० सं० २०, पृ० सं० ३२४।
२. कविप्रिया, छं० सं० ३६, पृ० सं० ४१।
३. रसिकप्रिया, छं० सं० ४४, पृ० सं० १०७।
४, रसिकप्रिया, छं० सं० ५, पृ० सं० १७२।

अपने प्रिय से मान किया। वह मना कर हार गया किन्तु वह न मानी। नायक को निराश जाना पड़ा। अब नायिका को स्वयं अपने किये पर पश्चाताप हो रहा है।

'पांइ परेहू तें प्रीतम त्यों कहि केशव क्योंहूँ न मैं दग दीनी।
तेरी सखी शिष सीख न एकहू रोष ही की शिष सीखजू लीनी।
चंदन चंद समीर सरोज जरै दुख देह भई सुख हीनी।
मै उलटी जु करी विधि मोकहँ न्याइन ही उलटी विधि कीनी' ॥[1]

अभिसार प्रेम-परीक्षा की कसौटी है। लोक-लज्जा को तिलांजलि दे, बाधाओं का सामना करते हुये प्रिय से मिलने के लिये जाकर प्रेमिका अपने प्रगाढ़ प्रेम का परिचय देती है। प्रेम अंधा होता है। केशव की नायिका मार्ग में चलने वाले बालक, वृद्ध और युवाओं की चिन्ता न करती हुई प्रेमी से मिलने के लिये चली जा रही है।

'गोप बड़े बड़े बैठे अथाइनि केशव कोटि सभा अवगाहीं।
खेलत बालक जाल गलीन मैं बाल विलोकि विलोक त्रिकाहीं।
आवति जाति लुगाई चहूँ दिशि घूँघट में पहिचानति छाहीं।
चंद सो आनन काढि कहाँ चली सूझत है कछु तोहि कि नाहीं' ॥[2]

रात्रि का समय है। बादल घिरे हैं। घना अंधकार छाया है। काटों और कीच का उलंघन करती हुई नायिका अकेली आई है। उसका साहस देखकर नायक भी चकित रह गया। आज इस प्रकार बिना बुलाये आकर नायिका ने नायक को मोल ले लिया।

'लीने हमे मोल अनबोलें आई जान्यो मोह,
मोहि घनश्याम बनमाला बोलि ल्याई है।
देखो ह्वै है दुख जहां देहऊ न देखी परै,
देखो कैसे बाट केशो दामिनी दिखाई है।
ऊँचे नीचे बीच कीच कंटकन पीड़े पग,
साहस गयंद गति अति सुख दाई है।
भारी भय कारी निशि निपट अकेली तुम,
नाहीं प्राणनाथ साथ प्रेम जो सहाई है' ॥[3]

जिस प्रकार दिन के बाद रात्रि अनिवार्य है, उसी प्रकार सुख के बाद दुःख और संयोग के बाद वियोग, संसार का नियम है। किन्तु प्रेमी के लिये अपने प्रिय से वियुक्त होने की सम्भावना ही कितनी दुःखदायी है, यह वही समझ सकता है जिसने वियोग-दुख को सहन किया है। आज केशव की नायिका का प्रेमी किसी कार्यवश परदेश जा रहा है। बेचारी नायिका किंकर्तव्यविमूढ़ है। यदि वह रहने को कहती है तो प्रभुता प्रकट होती है। यदि यह कहती है कि जो ठीक समझो वह करो तो उदासीनता सूचित होती है। यदि कहती है कि साथ

१. रसिकप्रिया, छं० सं० १९, पृ० सं० १२४।
२. रसिकप्रिया, छं० सं० ३६, पृ० सं० १३८।
३. रसिकप्रिया, छं० सं० ३१, पृ० सं० १३४।

ले चलो तो लोक-लज्जा का प्रश्न सामने आता है। अंत में वह अपने प्रिय से ही पूँछती है कि उस अवसर पर उसे क्या कहना उचित होगा।

'जो हौं कहौं 'रहिये' तो प्रभुता प्रगट होति,
'चलन' कहौं तो हित हानि, नाहिं सहनो।
'भावै सो करहु' तो उदास भाव प्राणनाथ,
'साथ लै चलहु' कैसे लोक लाज बहनो।
केशो राय की सौं तुम सुनहु छबीले लाल,
चले ही बनत जोपै नाहीं राजा रहनो।
तैसिये सिखाओ सीख तुमही सुजान प्रिय,
तुमहिं चलत मोहि जैसो कछु कहनो' ॥[1]

आज नायिका अपने प्रिय से वियुक्त है। आखें मेह से होड़ लगा रही हैं। सांसों के साथ ही रात्रि भी बढ़ती सी जा रही है और काटे नहीं कटती। हँसी भी लुप्त हो गई। नींद क्षण भर के लिये बिजली के समान आती और फिर न जाने कहाँ चली जाती है। पपीहे के समान 'पी-पी' की रट लगी है। शरीर ताप से तप रहा है। इस प्रकार केशव द्वारा अंकित विरहणीं का निम्नलिखित चित्र यथातथ्य है।

'मेह कि हैं सखि आँसू उसासनि साथ निसा सु विसासिनि बाढ़ी।
हांसी गयी उड़ि हंसिनि ज्यों, चपला सम नींद भई गति काढ़ी।
चातकि ज्यों पिउ पीउ रटै, चढ़ी चाप तरंगिनि ज्यों तन गाढ़ी।
केशव वाकी दशा सुनि हौं अब, आगि बिना अंग अंगन डाढ़ी' ॥[2]

ज्यों-ज्यों दिन बीते वियोग-व्यथा बढ़ती ही गई और अब तो उसकी दशा पागलों की सी हो रही है। वह चौंककर इधर-उधर देखती है, पृथ्वी पर अपनी ही परछांई देखकर डर सी जाती है तथा प्रश्न करने पर और का और उत्तर देती है। उसे न तो बड़ों के सामने घूंघट काढ़ने का ध्यान है और न वस्त्र सम्हालने का। आज उसकी सब सुध भूली हुई है। उसकी दशा ऐसी हो रही है जैसे उसे किसी की दृष्टि लग गई हो, सन्निपात ज्वर हो गया हो अथवा किसी ने कुछ करा दिया हो।

'केशव चौंकति सी चितवै छिति पा धर कै तरकै तकि छाहीं।
बूझिये और कहै मुख और सु और की और भई छण माहीं।
डीठि लगी किधौं बाइ लगी मन भूलि परयो कै करयो कछु काहीं।
घूँघट की घट की पट की हरि आजु कछू सुधि राधिकै नाहीं' ॥[3]

सखियां समझाने आती हैं किन्तु उसकी समझ में उनकी सीख नहीं आती और आये भी कैसे, उसकी बुद्धि तो प्रीतम के साथ ही चली गई। अंत में वे स्वाभाविक रूप से खीझ कर चली जाती हैं।

१. कविप्रिया, छं० सं० २०, पृ० सं० २१२।
२. कविप्रिया, छ० सं० ४२, पृ० सं० १७६।
३. रसिकप्रिया, छ० सं० ४२, पृ० सं० १६७।

'कौन के न प्रीति कौन प्रीतमहि न बिछुरत,
तेरे ही अनोखे पतिव्रत गाइयतु है ।
यतन करेही भले आवै हाथ केशव दास,
और कहो पक्षिन के पाछे धाइयतु है ।
उठि चलौ जो न मानै काहू की बलाइ जानै,
मान सो जो पहिचानै ताके आइयतु है ।
याके तो है आजु ही मिलौं कि मरि जाउं माई,
आगि लागे मेरीआली मेह पाइयतु है' ॥[1]

आज कृष्ण के परम सखा उद्धव गोपियों के पास कृष्ण का संदेशा लाये हैं परन्तु वह प्रेम का नहीं, योग का संदेशा है। किन्तु गोपियाँ तो योग-विशेष (वियोग) का साधन कर रही थीं, उनकी दृष्टि में उद्धव के तुच्छ योग का मूल्य ही क्या। अतएव राधा उद्धव को मुँह-तोड़ उत्तर देती हैं।

'राधा राधा रमन के, मन पठयो है साथ।
उद्धव ह्यां तुम कौन सों, कहो योग की गाथ' ॥[2]

अब भी उद्धव अपना राग अलापे ही जाते हैं। सुनते-सुनते गोपियों के कान पक गये और वह खीझ उठीं किन्तु कहें क्या। एक तो उद्धव आज उनके अतिथि हैं और फिर सबसे बड़ी बात यह है कि वह प्रियतम के सखा हैं। अतएव वे इतना ही कह कर रह जाती हैं कि हे उद्धव, हृदय में अच्छी तरह समझ लो, यदि अब भी तुम न माने तो अंत में तुम्हें पछताना पड़ेगा।

'कहौं कहा तुम पाहुने, प्राणनाथ के मित्त।
फिर पीछे पछिताहुगे, ऊधो समुझौ चित्त' ॥[3]

इन दोहों में केशवदास जी विप्रलंभ-शृंगार के सम्राट सूरदास जी के निकट पहुँचते दिखलाई देते हैं। ऊपर दिये हुये उदाहरणों से स्पष्ट है कि शृंगार के दोनों पक्षों, संयोग और वियोग के चित्रण में केशव का पूरा आधिपत्य था और शृंगार रस पर लिखने वाले हिन्दी-साहित्य के किसी भी कवि के छन्दों के समकक्ष इस विषय पर लिखे गये केशव के छन्द रखे जा सकते हैं। केशव के छन्दों में कवि का गंभीर पर्यवेक्षण है, और तन्मयता भी। इस प्रकार के अन्य अनेक उदाहरण 'रसिकप्रिया' और 'कविप्रिया' नामक ग्रंथों में भरे पड़े हैं। हाँ, केशव के कुछ छन्दों में अश्लीलता अवश्य है, किन्तु बहुत कुछ यह उस समय और समाज का प्रभाव है जिसमें केशव उत्पन्न हुये थे। शृंगार रस पर लिखने वाला प्रायः कोई तत्कालीन कवि इस दोष से सर्वथा मुक्त नहीं है। यहाँ तक कि महात्मा सूरदास भी इस दोष से एकदम नहीं बचे हैं।

१. रसिकप्रिया, छ० सं० ६, पृ० सं० ११८
२. कविप्रिया, छ० सं० ३०, पृ० सं० ३७।
३. कविप्रिया, छं० सं० ३१, पृ० सं० ३७।

हम इतना ही कह सकते हैं कि केशवदास जी, भूषण के समान परिस्थितियों के निर्माता न होकर परिस्थितियों द्वारा निर्मित थे।

शृंगार से इतर रसों की व्यंजना

शृंगार रस के बाद यदि किसी रस के निरुपण में केशव को सफलता मिली है तो वह वीर रस है। 'रामचंद्रिका' से केशव के वीररस-सम्बन्धी छन्दों के उदाहरण पूर्वपृष्ठों में दिये जा चुके हैं। यहाँ अन्य ग्रंथों से कुछ छन्द उद्धृत किये जाते हैं। 'रतनबावनी' नामक ग्रंथ में वीररस का सब से अच्छा परिपाक हुआ है। सम्राट अकबर की सेना से लोहा लेने के लिये प्रस्थान करते हुये, योद्धाओं और सामंतों के प्रति कुँवर रतनसेन की वीरोक्ति है :

'रतनसेन कह बात सूरसामंत सुनिज्जिय।
करहु पैज पन धारि मारि सामंतन लिज्जिय।
धरिय स्वर्ग अच्छरिय हरहु रिपु गर्व सर्व अब।
जुरि करि संगर आज सूरमंडल भेदहु सब।
मधुसाह नंद इमि उच्चरइ खंडखंड पिंडहिं करहुँ।
कट्टरहुँ सुदंत हथियान के मर्द्दहुं दल यह प्रन धरहुँ' ॥[१]

दूसरा ग्रंथ जिसमें कुछ स्थानों पर वीररस का अच्छा निरूपण हुआ है केशव का 'वीरसिंहदेव-चरित' है। अकबर की सेना से मुठभेड़ न करने के लिये शिक्षा देने वाले क्षेत्रपाल के प्रति कुमार भूपालराय का कथन है :

'मीत करहि जनि भीति बंस रनजीति हमारो।
व्रतधारी जस अमल ताहि अब करौ न कारो।
राजनि के कुल राज कहा फिरि फिरि अवतरियौ।
अब तब जब कब करन कहत अब ही किनि मरियौ।
सुर सूरज मंडल भेदि ज्यों बिना गये से हरि सरन।
सब सूरनि मंडल भेदि त्यौं रामदेव देखैं सरन' ॥[२]

केशव के ग्रंथों में शृंगार अथवा वीर दो ही रसों की प्रधानता मिलती है, किन्तु प्रसंगवश अन्य रसों का भी यथास्थान निरूपण हुआ है। 'रामचंद्रिका' में कई स्थलों पर रौद्ररस का अच्छा परिपाक हुआ है। परशुराम द्वारा गुरु-निंदा सुन कर शान्तशील राम को असीम क्रोध हुआ और उन्होंने परशुराम को ललकार कर कहा :

'भगन कियो भव धनुष साल तुमको अब सालौं।
नष्ट करौं विधि सृष्टि ईश आसन ते चालौं।
सकल लोक सहरहुं सेस सिरते धर डारौं।
सप्त सिंधु मिलि जाहिं होइ सबही तम भारौ।

१. रतनबावनी, पंचरत्न, छ० सं० ६, पृ० सं० २।
२. वीरसिंहदेव-चरित, छं० सं० २२, पृ० सं० ८०।

अति अमल जोति नारायणी कह केशव बुझि जाय बर।
भृगुनंद संभारु कुठारु मैं कियो सरासन युक्त सर' ॥[1]

इसी प्रकार लक्ष्मण-शक्ति के अवसर पर किसी से यह सुन कर कि सूर्योदय होने के पूर्व ही यदि लक्ष्मण को औषधि न दी जायेगी तो उनकी मूर्छा चिरनिद्रा में परिणित हो जायेगी, राम शोक भूलकर रुद्ररूप ग्रहण कर लेते हैं।

'करि आदित्य अदृष्ट नष्ट जम करौं अष्ट बसु।
रुद्रन बोरि समुद्र करौं गंधर्व सर्व पसु।
बलित अबेर कुबेर बलिहिं गहि देउँ इन्द्र अब।
विद्या धरन अविद्य करौं बिन सिद्धि सिद्ध सब।
निजु होहिं दासि दिति की अदिति अनिल अनल मिटि जाय जल।
सुनि सूरज! सूरज उवत ही करौं असुर संसार बल' ॥[2]

भयानक रस वीररस का सहकारी है। राम की सेना के चलने पर राम के शत्रुओं पर जो आतंक छा जाता था, उसका वर्णन करते हुये कवि ने लिखा है कि व्याकुल होकर राम के शत्रु पर्वत-कन्दराओं में जाकर छिप गये हैं, वस्त्राभूषण आदि इधर उधर बिखरे पड़े हैं। उनको सहेज कर रखने की भी किसी को सुधि नहीं है।

'रामचंद्र कीन्हे तेरे अरिकुल अकुलाय।
मेरु के समान आन अचल धरीनि में।
सारी शुक हंस पिक कोकिला कपोत मृग।
केशोदास कहूँ हय करभ करीनि में।
डारे कहूँ हार टूटे राते पीरे पट छूटे।
फूटे हैं सुगन्ध घट स्रवत तरीनि में।
देखियत शिखर शिखर प्रति देवता से।
सुंदर कुँवर अरु सुंदरी दरीनि में' ॥[3]

महाराज वीरसिंहदेव के युद्ध के लिये प्रयाण करने पर भी भय से संसार भर में खलभली मच जाती है। केशव का कथन है :

'भूतल सकल अभित ह्वै गयो। लोक लोक कोलाहल भयो।
गाजि उठे दिग्गज तिहि काल। संकित सकल अंक दिगपाल।
रौर परी सुरपुरी अपार। बाढ़े सुरपति चित्त विचार।
कलपवृक्ष गज वाजि समेत। सौंपे सुरगुरु को इहि हेत।
धर्म राज के धक पक भई। दंडनीति कुंभज को दई।
चिंता तरुन बरुन उर गुनी। तबही उतरि गई बारुनी' ॥[4]

१ रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ४२, पृ० सं० १४२।
२. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ४६, पृ० सं० ३७२।
३. कविप्रिया, छं० सं० ११, पृ० सं० १२६।
४. वीरसिंहदेव-चरित, पृ० सं० ७३।

युद्ध के बाद युद्ध-स्थल की दशा श्मशान के समान हो जाती है, अतः केशव ने दो-एक स्थलों पर युद्ध के प्रसंग में वीभत्स रस का भी निरूपण किया है। 'वीरसिंहदेव-चरित' ग्रंथ में ओड़छे के युद्ध का वर्णन करते हुये कवि ने लिखा है :

'अति रूरी राजत रन थली। जूझि परे तहं हय गय बली।
खण्डनि खण्ड लसैं गज कुम्भ। श्रोनित भर भभकन्त भसुण्ड।

× × × ×
× × × ×

घन घाइनि घाइल धर परैं। जोगनि जोरि जंघ सिर धरैं।
अंचल मुख पोंछति जगमगी। कण्ठ श्रोन पिय मारग लगी'॥[1]

'रामचंद्रिका', 'कविप्रिया' और 'विज्ञानगीता' ग्रंथों में कवि ने कई स्थलों पर शांत रस की भी मार्मिक व्यंजना की है। निम्नलिखित छंद में कवि कहता है कि चार दिन के लिये संसार में आकर प्राणी सांसारिक वस्तुयें अपनी समझने लगता है। कैसा भ्रमजाल है।

'माछी कहै अपनो घरु माछरु मूसो कहै अपनो घरु ऐसो।
कोने घुसी कहै घूसि घिनौनी बिलारि औ ब्याल बिले महं बैसो।
काटत स्वान सो पच्छि औ भिच्छुक भूत कहैं, भ्रम जाल है जैसो।
हौंहूँ कहौं अपनो घरु तैसहिं ता घरु सो, अपनो घरु कैसो'॥[2]

नीचे दिये हुये छन्द में पाप-सागर में तैरने वाले मूढ़-जनों की करुणाजनक अवस्था का चित्र खींचा गया है।

'पैरत पाप पयोनिधि में नर मूढ़ मनोज जहाज चढ़ाई।
खेल तऊ न तजै जड़ जीव बरु बड़वानल क्रोध डढ़ाई।
झूठ तरंगनि में उरझै सु इते पर लोभ प्रवाह बढ़ाई।
बूड़त है तेहि ते उबरे कह केशव काहे न पाठ पढ़ाई'॥[3]

हास्यरस, श्रृंगार का सहायक माना गया है। केशव ने श्रृंगार की लपेट में स्फुट रूप से 'रसिकप्रिया' के दो-एक उदाहरणों में हास्यरस की बड़ी ही मधुर व्यंजना की है। एक बार कृष्ण स्त्री के वेश में आये। गोपियों ने जाकर राधा से कहा कि महाबन से रति के समान एक सुन्दरी आई है, जो इस प्रकार गाती है मानो स्वयं वीणापाणि सरस्वती पधारी हों। राधा ने उसे बुला लाने को कहा। उसके आने पर राधा सादर उससे मिलीं। यह देख कर वहाँ उपस्थित अन्य गोपियाँ खिलखिला कर हँसने लगीं।

'आई है एक महाबन ते तिय गावत मानो गिरा पगुधारी।
सुंदरता जनु काम की कामिनी बोलि कह्यो वृषभानु दुलारी।

१. वीरसिंहदेव-चरित, भारत जीवन प्रेस, पृ० सं० ३२३।
२. रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, छं० सं० २६, पृ० स० ६८।
३. रामचंद्रिका, उत्तरार्द्ध, छं० सं० २२, पृ० स० ६६।

गोपिकै ल्याइ गुपालहि वै अकुलाइ मिलीं उठि सादर भारी।
केशव भेंटत ही भरि अंक हंसी सब कीक दै गोपकुमारी' ॥[१]

अब कृष्ण के उपहासास्पद बनने की बारी थी। एक गोपी खाली मटकी सर पर रख, कुछ छांछ की छीटें मटकी पर डाले हुये उस ओर निकली जहाँ कृष्ण थे। कृष्ण ने उसे देख, आगे बढ़ कर दही के लालच में उस मटकी को उतारा। जब कृष्ण ने उसे खाली देखा तो खिसिया गये। उधर गोपी अंचल की ओट में हंस दी।

'सखि बात सुनो इक मोहन की निकसी मटुकी शिरसों हलकै।
पुनि बांधि लई सुनिये नत नारु कहूँ कहुँ बुंद करी छलकै।
निकसी उहि गैल हुते जहं मोहन लीनी उतारि जबै चलकै।
पतुकी धरी श्याम खिसाइ रहे उत ग्वार हंसी मुख आंचल कै' ॥[२]

(४) वर्णन

प्रकृति-वर्णन :

प्रकृति मानव क्रिया-कलापों की क्रीड़ा-स्थली है। प्रकृति के साहचर्य में ही मानव-चरित्र विकसित होता है। प्रकृति की रचनात्मक शक्ति सुख में हृदय को आह्लादित करती और दुख में उसकी शान्ति-दायिनी गोद हृदय को सान्त्वना प्रदान करती है। इस प्रकार मानव और प्रकृति का घनिष्ट सम्बन्ध है और इसी लिये काव्य में प्रकृति का प्रमुख स्थान है। व्यापक-रूप से काव्य में चार प्रकार से प्रकृति का वर्णन मिलता है। प्रथम प्रकार को स्वतंत्र प्रकृति-वर्णन कह सकते हैं। इस प्रकार के प्रकृति-वर्णन का ध्येय प्रकृति-वर्णन ही होता है। दूसरा प्रकार वह है जब कवि प्रकृति का वर्णन नायक-नायिका के मनोवेगों से रंजित करके करता है। यह प्रकृति का संग्राही अथवा संक्रामी रूप है। यहाँ प्रकृति नायक नायिका के मन की स्थिति के अनुकूल उनके सुख में सुखी और दुःख में दुखी दिखलाई देती है। प्रकृति-वर्णन का तीसरा प्रकार वह है, जब प्रकृति का उपयोग मनुष्यों के कार्यों या मनोवेगों की क्रीड़ा-स्थली के रूप में किया जाता है, जैसे उपन्यास तथा प्रबन्धकाव्यों में घटना के वर्णन से पूर्व घटनास्थली का वर्णन। अन्तिम प्रकार वह है, जब प्रकृति के नाना रूपों का उपयोग अलंकारों अथवा उदाहरण के रूप में होता है। इनके अतिरिक्त प्रकृति का वर्णन कवि की मनोवृत्तियों, भावनाओं या विचारों पर बहुत कुछ निर्भर रहता है। कहीं वह उसमें ईश्वर के अनिवार्य नियमों का अनुभव करता है। कहीं वह उसमें क्रूरता, असहिष्णुता, कठोरता आदि का दर्शन करता है। और कहीं उसमें सहानुभूति, सहकारिता और आध्यात्मिकता के तत्वों को देखता है। इस प्रकार प्रकृति के भिन्न-भिन्न रूप कवि के स्वभाव के आश्रित रहते हैं। वह प्रकृति में अपने स्वभाव का प्रतिबिंब ढूंढता है और उसे उसी रूप में देख कर अपने मनोनुकूल उसका वर्णन करता है।

१. रसिकप्रिया, छं० सं० १६, पृ० सं० २३६, २३७।
२. रसिकप्रिया, छं० सं० १७, पृ० सं० २३७।

आधुनिक युग के पूर्व हिन्दी-साहित्य के किसी काल में आज का सा संश्लिष्ट, बिम्ब-ग्रहण कराने वाला स्वतंत्र प्रकृति-वर्णन नहीं मिलता। इसके मुख्यतः दो कारण हैं। संस्कृत-साहित्याचार्यों ने प्रकृति को उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत माना था और प्रकृति के विशाल सौन्दर्य में से वन, उपवन, सरोवर, षटऋतु आदि कुछ प्रमुख रूपों को ही स्थान दिया था। सच तो यह है कि 'रसात्मकं वाक्यं काव्यम्'। (रसात्मक वाक्य ही कविता है) की परिभाषा के अन्तर्गत स्वतंत्र प्रकृति-वर्णन के लिये स्थान नहीं था। हिन्दी को संस्कृत-साहित्य-शास्त्र के ग्रंथ पैतृक-सम्पत्ति के रूप में मिले थे। हिन्दी कवियों ने जहाँ उनकी अन्य बातों को ग्रहण किया, प्रकृति-विषयक उपर्युक्त दृष्टिकोण भी ग्रहण कर लिया। दूसरे, संस्कृत के कुछ ग्रंथ जैसे केशव मिश्र का 'अलंकार-शेखर' अथवा अमर का 'काव्यकल्पलतावृत्ति, नवोद्भूत कवियों को काव्य-शिक्षा देने के लिए लिखे गए थे। इनमें दृश्य-विशेष के वर्णन के अन्तर्गत तत्सम्बन्धी वस्तुओं के वर्णन की विधि बतलाई गई थी। हिन्दी के कवियों पर इन ग्रंथों का भी प्रभाव पड़ा, जिसके फल-स्वरूप हिन्दी में किसी दृश्य के वर्णन के सम्बन्ध में वस्तु-परिगणनवाली शैली का आविर्भाव हुआ। इस प्रकार प्रकृति की स्वाभाविकता, प्रकृतिगत सौन्दर्य और उसकी विलक्षणताओं का सच्चा चित्रण हिन्दी-साहित्य में अधिकांश नहीं पाया जाता। केशवदास जी का अधिकांश प्रकृति-वर्णन भी अन्य हिन्दी कवियों के समान परम्परा-मुक्त है। किन्तु फिर भी कुछ वर्णन ऐसे हैं जो हिन्दी-साहित्य के उपर्युक्त कलंक को बहुत कुछ धोते हैं, जैसा कि आगे के विवेचन से स्पष्ट हो जायगा।

केशव का प्रकृति-विषयक दृष्टिकोण बहुत व्यापक था। उन्होंने प्रकृति से उद्दीपन का काम लिया है, अलंकारों और उदाहरण के रूप में उसका उपयोग किया है, वस्तु-परिगणनवाली शैली को अपनाया है और साथ ही बिम्बग्रहण कराने वाले प्रकृति के सुरम्य दृश्यों को भी उपस्थित किया है। केशव का कोई मुख्य ग्रंथ ऐसा नहीं है, जिसमें उन्होंने किसी न किसी रूप में प्रकृति का उपयोग न किया हो। यहाँ तक कि 'रामचंद्रिका,' 'विज्ञानगीता, और वीरसिंहदेव-चरित' आदि ग्रंथों में तो स्थल निकाल कर प्रकृति-वर्णन किया गया है, यद्यपि मुख्य कथावस्तु से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

उपमा-उत्प्रेक्षा के रूप में प्राकृतिक वस्तुओं का उपयोग कवि परम्परा से करते आये हैं। केशव ने अलंकार के रूप में स्थल-स्थल पर प्रकृति का उपयोग किया है। अवधपुरी पर उड़ती हुई पताकाओं के विषय में कवि उत्प्रेक्षा करता है:

'बहु वायु वश वारिद बहोरहिं अरुझि दामिनि दुति मनो'।[1]

सीता के मुख की उपमा कमल से देते हुये कवि का कथन है:

'सुन्दर सुवास अरु कोमल अमल अति,
सीता जू को मुख सखि केवल कमल सो'।[2]

नायिका के कोमल शरीर की उपमा के लिए केशव ने प्रकृति के क्षेत्र से लहलहाती हुई लता को चुना है:

१. रामचंद्रिका, पृ० सं० १६।
२. रामचंद्रिका, पृ० सं० १७८।

'काम ही की दुलही सी काके कुल उलही सी,
लहलही ललित लता सी अवरोहिये'।[1]

इसी प्रकार नायक-नायिका की विरह-दशा के चित्रण तथा मान-मोचन के प्रसंग में कवि ने अनेक स्थलों पर उद्दीपन के रूप में प्रकृति का उपयोग किया है। शीतल समीर, चन्द्रमा की चाँदनी आदि केशव की विरहिणी की विरह-वेदना को और भी उद्दीप्त कर रही है :

'सीतल समीर टारि चन्द्र चन्द्रिका निवारि,
केशव दास ऐसे ही तो हरष हिरातु है'।[2]

एक बार राधा-कृष्ण के मान-मोचन के लिये भी कवि ने प्रकृति की उद्दीपक वस्तुओं को एकत्रित किया था :

'घनन की घोर सुनि मोरन की शोर सुनि,
सुनि सुनि केशव अलाप अली जन को।
दामिनी की दमकि देखि दीप की दिपति देखि,
सुख सेज देखि देखि सुन्दर सुवन को।
कुंकुम की बास घनसार की सुवास भयो,
फूलन की बास मन फूलि कै मिलन को।
हँसि हँसि बोले दोऊ अनही मनायो मान,
छूटि गयो एक बार राधिका रमन को'॥[3]

केशव ने अधिकांश प्राकृतिक दृश्यों अथवा वस्तुओं के वर्णन में वस्तुपरिगणनवाली शैली का उपयोग किया है; अथवा अपने पांडित्य-प्रदर्शन की रुचि से प्रेरित हो अप्रस्तुत-योजना द्वारा 'बात की करामात' दिखाने लगे हैं। 'कविप्रिया' के प्रायः समस्त दृश्यों के वर्णन के अन्तर्गत तत्सम्बन्धी वस्तुओं के नाम गिनाये गये हैं अथवा अप्रस्तुत-योजना की गई है। बसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमंत तथा शिशिर आदि ऋतुयें केशव को क्रमशः शिव का समाज, शंबर-समूह, कालिका, शारदा, विरहिणी और वारिनारि के रूप में दिखलाई दी हैं।[4] 'रामचंद्रिका', 'विज्ञानगीता' और 'वीरसिंहदेवचरित' आदि इतिवृत्तात्मक ग्रंथों में संश्लिष्ट वर्णन के लिये उपयुक्त स्थल था, किन्तु यहाँ भी अधिकांश इन्हीं शैलियों का उपयोग किया गया है। दशरथ के वाटिकान्तर्गत सरोवर, विश्वामित्र के यज्ञस्थल वन और राम की वाटिका आदि के वर्णन इसी प्रकार के हैं। कवि के मतानुसार किसी सरोवर का वर्णन करने में कमलों, भौरों, पक्षियों तथा जलचरों आदि का वर्णन होना चाहिये। अतः केशव ने इन वस्तुओं का नाम-मात्र गिनाया है।

१. कविप्रिया, पृ० सं० १८९।
२. कविप्रिया, पृ० सं० ६८ तथा रसिकप्रिया, पृ० सं० १८।
३. रसिकप्रिया, पृ० सं० ११९।
४. कविप्रिया, छं० सं० २८, ३० ३२, ३४, ३६, पृ० सं० १३८-१४७

'शुभ सर शोभैं। मुनि मन लोभैं।
सरसिज फूले। अलि रस भूले।
जलचर डोलैं। बहु खग बोलैं।
बरणि न जाहीं। उर उरझाहीं'॥[1]

इसी प्रकार वन के वर्णन में नाना वृक्षों, फलों और पक्षियों के नाम-मात्र ही गिनाये गये हैं :

'तरु तालीस तमाल ताल हिंताल मनोहर
मंजुल बंजुल लकुच बकुल कुल केर नारियर
एला ललित लवंग संग पुंगीफल सोहै
सारी शुक कुल कलित चित्त कोकिल अलि मोहै
शुभ राजहंस कलहंस कुल नाचत मत्त मयूर गन
अति प्रफुलित फलित सदा रहै केशवदास विचित्र वन'॥[2]

यहाँ कवि ने इस बात का भी ध्यान नहीं रखा है कि जिस प्रदेश का यह वर्णन है, वहाँ एला, लवंग और पुंगीफल नहीं होते हैं।

राम की वाटिका का वर्णन कवि ने बहुत विस्तारपूर्वक किया है, जिसके अन्तर्गत वृक्षों और पक्षियों का ही वर्णन न होकर कृत्रिम सरिता, जलाशय आदि का वर्णन भी किया गया है। यहाँ कवि ने वस्तुपरिगणनवाली शैली को ही अपनाया है। अतएव वाटिका की शोभा का पूर्ण संश्लिष्ट चित्र सामने नहीं आता। फिर भी एक ही स्थल पर प्रकृति का इतना विस्तृत वर्णन केशव के पूर्व हिन्दी-साहित्य के किसी कवि ने नहीं किया है। यहाँ भी कवि ने लौंग, इलायची के वृक्षों का वर्णन किया है।[3] किन्तु यह राम की वाटिका का वर्णन है अतएव यहाँ इन वृक्षों का वर्णन सदोष न होकर वाटिका की विशेषता का परिचायक है।

वह वर्णन अपेक्षाकृत और भी निम्नकोटि के हैं, जहाँ कवि ने पांडित्य-प्रदर्शन की रुचि से प्रेरित होकर अप्रस्तुतों की कौतूहलपूर्ण योजना की है। ऐसे स्थलों पर केशव ने अप्रस्तुत के गुण प्रस्तुत में ढूँढ़ निकालने की चेष्टा की है। इन वर्णनों को पढ़कर पाठक कवि की खींचातानी से ही प्रभावित होकर रह जाता है। 'रामचंद्रिका' में दंडकवन, चन्द्रमा तथा 'विज्ञानगीता' में वर्षा और शरद आदि के वर्णन इसी कोटि के हैं। दंडकवन के वर्णन में कवि प्रत्येक पंक्ति में प्रस्तुत को छोड़ कर अप्रस्तुत पर दृष्टि डालता है। अर्क (मदार) वृक्ष को देख कर उसे प्रलय-काल के अर्कों (सूर्यों) का ध्यान आ जाता है। वेर भयानक लगती है। अर्जुन, भीम (अम्लवैत) आदि वृक्ष पांडवों का रूप उपस्थित करते हैं। यहाँ कवि यह भी भूल जाता है कि पांडवों का जन्म कृष्णावतार के समय होगा, अभी तो रमावतार ही है। इसी

१. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ३२, ३३, पृ० सं० १२।

२. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० १, पृ० सं० ४०।

३. 'लौंग फूल दल सेवट लेखौ। एल फूल दल बालक देखौ'।
रामचन्द्रिका, उत्तरार्ध, पृ० सं० २२६

प्रकार धाय वृत्त को देख कर उसे दूध पिलाने वाली धाय की स्मृति आ जाती है; और वह वन को कन्या के रूप में देखता है :

'शोभत दंडक की रुचि बनी। भाँतिन भाँतिन सुन्दर घनी।
सेव बड़े नृप की जनु लसै। श्रीफल भूरि मनो जहं बसै।
बेर भयानक सी अति लगै। अर्क समूह जहाँ जगमगै।
नैनन को बहु रूपन ग्रसै। श्रीहरि की जनु मूरति लसै।
पांडव की प्रतिमा सम लेखो। अर्जुन भीम महामति देखो।
है सुभगा सम दीपति पूरी। सिंदुर औ तिलकावलि रूरी।
राजति है यह ज्यों कुल कन्या। धाइ विराजति है संग धन्या।
केलि थली जनु श्री गिरिजा की। शोभ धरे सितकंठ प्रभा की' ॥[1]

इसी प्रकार 'वर्षा' केशव को वियोगिनी कामिनी के रूप में दिखलाई देती है :

'मिलि मेलेहिं गात सुअंबर नील रह्यो लगि बात सुनो गजगामिनि !
जलधार बहै बहु नैननि से न रहे केहि केशव वासर यामिनि।
कबहूँ कबहूँ कछु बात कहै दमकै दुति दन्तनि की जनु दामिनि ।
पिय पीय रटे मिसु चातक के वरषा हरषी कि वियोगिनि कामिनि' ॥[2]

इस प्रकार के वर्णनों को देख कर ऐसा प्रतीत होता है कि 'प्रकृति की रमणीयता में सहृदयता से अनुरक्त होने के लिये जिस सुकुमार हृदय की अपेक्षा है, वह केशव को नहीं मिला था। अथवा उनके काव्य के सिद्धान्त इन सब बातों से मेल नहीं खाते थे'।[3] ऐसे ही वर्णनों से क्षुब्ध होकर स्व० डा० बड़थ्वाल जी ने लिखा है कि प्रकृति के सौन्दर्य से उनका हृदय द्रवीभूत नहीं होता। वह प्रकृति में मनुष्य के सुखदुख के लिये सहानुभूति नहीं पाते, उसमें जीवन का स्पन्दन नहीं पाते, परमात्मा का अन्तर्हित स्वरूप नहीं देखते। फूल उनके लिये निरुद्देश फूलते हैं, नदियाँ बेमतलब बहती हैं, वायु निरर्थक चलती है। प्रकृति में वह कोई सौन्दर्य नहीं देखते, बेर उन्हें भयानक लगती है, वर्षा काली का रूप सामने लाती है और बालरवि कापालिक के खप्पर भरे श्रोनित का रूप उपस्थित करता है। सीता के वीणा-वादन से मुग्ध हो घिर आये मयूर की शिखा, सुए की नाक, केकी का कंठ, हरिणी की आँखें, मराल की मंद गति, इस लिए राम से इनाम नहीं पाते कि यह वस्तुयें वास्तव में सुन्दर हैं, वरन् इस लिए कि कवि इन्हें परम्परा से सुन्दर मानते चले आये हैं।[4] किन्तु इस प्रकार का मत एकांगी है। इसमें सन्देह नहीं कि केशव का अधिकांश प्रकृति-वर्णन परम्पराभुक्त और अप्रस्तुत-योजना के भार से दबा है किन्तु कुछ वर्णन ऐसे भी हैं, जहाँ कवि ने बिम्बग्रहण कराने की सफल चेष्टा की है। ऐसे स्थल इस बात का प्रमाण हैं कि केशव में प्रकृति का

१. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० २०६-२०८।
२. विज्ञानगीता, छं० सं० ८, पृ० सं० ४६।
३. केशव की काव्यकला, शुक्ल, पृ० सं० ७८-७६।
४. ना० प्र० प०, भाग १०, सं० १६८६ में 'आचार्य कवि केशवदास' शीर्षक लेख।

शाब्दिक चित्र खींचने की पर्याप्त क्षमता थी। हाँ ऐसे स्थल कम अवश्य इस प्रकार के कुछ वर्णन यहाँ उपस्थित किये जाते हैं :

'देखि राम बरषा ऋतु आ रोम रोम बहुधा दुखदाई।
आस पास तम की छ छाई राति द्योस कछु जानि न जाई।
मंद मंद धुनि सो घन गाजैं तूर तार जनु आवझ बाजैं।
ठौर ठौर चपला चमकै यों इन्द्रलोक तिय नाचति हैं ज्यों।
सोहैं घन स्यामल घोर घने मोहैं तिनमें बकपांति भनै।
संखावलि पी बहुधा जल स्यों। मानो तिनको उगिलै बल स्यों।
शोभा अति शक्र शरासन में। नाना दुति दीसति है घन में।
रत्नावलि सी दिवि द्वार मनो। वर्षागम बाँधिय देव मनो।
घन घोर घने दसहूँ दिस छाये। मघवा जनु सूरज पै चढ़ि आये।
अपराध बिना छिति के तन ताये। तिन पीड़न पीड़त ह्वै उठि धाये।
अति गाजत बाजत दुंदुभि मानो। निरघात सबै पवि पात बखानो।
धनु है यह गौरवदाइन नाहीं। सरजाल बहै जल धार वृथा हीं।
भट चातक दादुर मोर न बोलैं। चपला चमकै न फिरै खंग खोलै।
दुतिवंतन को विपदा बहु कीन्ही। धरनी कहँ चन्द्रवधू धरि दीन्ही' ॥[1]

अथवा :

'चहूँ दिसा बादल दल नचै। उज्जल कज्जल की रुचि रचै।
दिसि दिसि दमकति दामिनि बनी। चकचौंधति लोचन रुचि घनी।
गाजत बाजत मनौ मृदंग। चातक पिक गायक बहुरंग।

× × × ×

अति सज्जल बद्दल की पांति। तामै हंसावलि बहु भाँति।
जल स्यों संखावलि पी गई। उगलित ताकी सोभा भई।
शक्र सरासन सोभा भर्यो। बरन बरन बहु जोतिन धर्यो।
रतनमई जनु बासन भार। वर्षागम दिवि गंधी बार।
बरषत बुंद वृंद घन घनै। बरनत कवि कुल बुधि बल सनै।
बीर प्रगासा नर परगास। ताको धूम धर्यो आकास।

× × × ×

गरजत व्याजनि बजै निसान। जंगपात निर्वात निधान।
इन्द्र धनुष घन सज्जल धार। चातक मोर सुभट किलकार।
खद्योतन को विपदा भई। इन्द्रवधू धर धरनिहि दई' ॥[2]

१. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ११-१७, पृ० सं० २४१-२४३।
२. वीरसिंहदेव-चरित, पृ० सं० ६७।

कवि ने उपर्युक्त स्थलों पर भी अप्रस्तुत-योजना की है किन्तु प्रमुखता प्रस्तुत की है। यहाँ अप्रस्तुत का उपयोग प्रस्तुत के उत्कर्ष-साधन के लिये हुआ है।

प्रकृतिवर्णन से इतर दृश्य-वर्णन :

(अ) स्वाभाविक एवं सर्वांगपूर्ण वर्णन :

प्रबंध-काव्य में कवि को प्रसंगवश प्रकृति से इतर वस्तुओं और दृश्यों का भी वर्णन करना पड़ता है। केशव ने कुछ दृश्यों के वर्णन में प्रकृति-वर्णन की अपेक्षा अधिक सुरुचि का परिचय दिया है। इन स्थलों पर अलंकारों का प्रयोग प्रायः सुरुचिपूर्ण हुआ है। उदाहरण-स्वरूप राम के शयनागार के वर्णन में आराम-विश्राम से सम्बन्ध रखने वाली कोई वस्तु नहीं छूटी है। दीपक के प्रकाश में आलों में सुगन्धियुक्त पात्र रखे हैं। मोतियों का वितान तना है। उसके नीचे जड़ाऊ पलंग बिछा है। इधर-उधर फूलों के हार लटक रहे हैं। एक ओर नाना प्रकार के फल-फूल रखे हैं, तो दूसरी ओर यक्ष कर्दम, कस्तूरी तथा कपूर आदि सुगन्धित वस्तुयें हैं। निकट ही पान के बीड़े लगे रखे हैं।

'एक दीप दुति विभाति, दीपत मणि दीप पांति,
मानहु भवभूप तेज, मंत्रिन मय राजे।
आरे मणि खचित खरे, बासन बहु बास भरे,
राखित गृह गृह अनेक मनहु मैन साजे।
अमल सुमिल जल निधान, मोतिन के सुभ वितान,
तामह पलका जराय, जड़ित जीव हर्षे।
कोमल तापे रसाल, तन-सुख की सेज लाल,
मनहु सोम सूरज पै, सुधाबिंदु बर्षे॥
फूलन के विविध हार, घोरिलन ओरमत उदार,
बिच बिच मणिश्याम हार, उपमा शुक भाषी।
जीत्यो सब जगत जानि, तुम सों हिय हार मानि,
मनहु मदन निज धनु ते, गुन उतारि राखी।
जल थल फल फूल भूरि, अंबर पटवास धूरि,
स्वच्छ यक्ष कर्दम द्रिय, देवन अभिलाषे।
कुंकुम मेदोज बादि, मृगमद करपूर आदि,
बीरा बनितन बनाय, भाजन भरि राखे'॥[1]

केशव-द्वारा अंकित जल-क्रीड़ा का चित्र भी स्वाभाविक है। केशव के चित्र के सामने स्नान करती हुई बिहारी की नायिकाओं का चित्र फीका पड़ जाता है।

'एक दमयंती ऐसी हरैं हंसि हंस वंश,
एक हंसिनी सी बिसहार हिये रोहियो।

1. रामचन्द्रिका, उत्तरार्ध, छं० सं० २२, २३, पृ० सं० १४४, १४५।

भूषण गिरत एकै लेती बूड़ि बीचि बीच,
मीन गति लीन हीन उपमा न टोहियो।
एकै मत कै कै कंठ लागि लागि बूड़ि जात,
जलदेवता सी देवि देवता विमोहियो।
केशोदास आस पास भंवर भवत जल,
केलि में जलजमुखी जलज सी सोहियो' ॥[१]

काशी के गङ्गा-तट पर आज भी वही दृश्य दिखलाई देता है जो दो-ढाई सौ वर्ष पूर्व कवि ने देखा था।

'देखियो शिव की पुरी शिव रूप ही सुखदानि।
शोभयो न अशेष आनन जाइ वेष बखानि।
न्हात संत अनन्त वेष तरंगिणी युत तीर।
एक पूजत देवता इक ध्यान धारण धीर।
एक पंडित मंडली मह करत वेद विचार।
एक नाम रटैं पढ़ैं श्रुति शुद्ध सारण सार।
एक दंड धरे कमंडलु एक खंडित चीर।
एक संयम नियमवादिक एक साधि समीर।
एक हैं अनुरक्त कर्मनि एक नित्य विरक्त।
विन्दुमाधव केउ माधव के कहावत भक्त' ॥[२]

केशव राजसभाओं से सम्बन्ध रखते थे। उन्होंने अनेक बार तिलकोत्सवों में भाग लिया था और तत्संबंधी कार्य-प्रणाली से पूर्ण-रूप से परिचित थे। अतएव राम के तिलकोत्सव का वर्णन भी यथातथ्य और सर्वांगपूर्ण हुआ है। केशव ने लिखा है कि चंदन चर्चित प्रांगण में फूलों के गमले रखे हुए हैं। स्थान स्थान पर मंगल-कलश शोभित हैं। कहीं फल-फूलों के थाल रखे हैं तो कहीं गजमुक्ताओं के। कर्पूर, कुंकुम-मिश्रित जल उपस्थित राजा-महाराजाओं पर छिड़का जा रहा है। एक ओर पूजन का प्रबंध हो रहा है और दूसरी ओर गान-नृत्य आदि का। सामने सिंहासन पर राम—सीता सुशोभित हैं। सुग्रीव छत्र धारण किये हैं, विभीषण तथा अंगद चंवर ढाल रहे हैं, लक्ष्मण 'आईनाबर्दारी' कर रहे हैं तथा शत्रुघ्न 'खवासी' में उपस्थित हैं। भरत रामचन्द्र जी को उपस्थित राजा-महाराजाओं का परिचय दे रहे हैं। उधर जामवंत, हनूमान तथा नल-नील 'माही-मरातिब' का काम कर रहे हैं। 'छड़ी-बर्दारी' का काम दिग्पालों को सौंपा गया है। ठीक मुहूर्त में ब्रह्मा ऋषियों के सहयोग से राम का राज्याभिषेक करते हैं। तत्पश्चात् रामचंद्र जी अपने स्नेहियों में उपहार वितरण करते हैं। इस प्रकार राम का तिलकोत्सव समाप्त होता है।[३]

१. रामचन्द्रिका, उत्तरार्ध, छं० सं० ३७, पृ० सं० २३०।
२. विज्ञानगीता, छं० स० १०, पृ० स० ४२।
३. रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, छं० सं० १२—३३, पृ० सं० ६४—१०३

कवि ने कई स्थलों पर सेना-प्रयाण का भी स्वाभाविक वर्णन किया है। दिग्विजय के लिये जाती हुई राम की सेना का वर्णन करते हुये कवि का कथन है :

'नाद पूरि धूरि पूरि तूरि बन चूरि गिरि,
सोखि सोखि जल भूरि भूरि थल गाथ की।
केशोदास आस पास ठौर ठौर राखि जन,
तिनकी सम्पति सब आपने ही हाथ की।
उन्नत नवाय नत उन्नत बनाय भूप,
शत्रुन की जीविकाति मित्रन के साथ की।
मुद्रित समुद्र सात मुद्रा निज मुद्रित कै,
आई दिसि दिसि जीति सेना रघुनाथ की' ॥[1]

गोपाचल से नरवर जाते समय अकबर के सेना-प्रयाण का वर्णन अपेक्षाकृत अधिक स्वाभाविक है। इस वर्णन को पढ़ कर सेना-प्रयाण का दृश्य आँखों के सम्मुख उपस्थित हो जाता है।

'जंगम जीवन को जल राइ। उमगि चल्यो जनु कालहि पाइ।
देस देस के राजा घनै। मुगल पठाननि कौ को गनै।
जहाँ तहाँ गज गाजत घनै। पुरवाई के जनु घन बनै।
× × × ×
या रङ्ग एक चलेई जात। एक देखिए पीवत खात।
उलहत ऊँट एक देखिये। लादतु साजु एक पेखिए।
एक तंबू दियो गिराय। रखत उठावत एक बनाइ।
बनिक चलत इक लादि अपार। एकनि के बैठे बाजार।
दल में सबको चित्त भुलाइ। कूच मुकाम न जान्यौं जाइ' ॥[2]

अकबर की सेनाओं तथा ओड़छाधीशों से अनेक बार युद्ध हुये। केशव ने इन युद्धों को निकट से देखा और स्वयं उनमें भाग लिया था। अतएव कवि ने युद्ध-स्थल का वर्णन भी अनेक स्थलों पर स्वाभाविक तथा यथातथ्य किया है।

'हय हींस गर्जि गयंद घोष रथीनि के तेहि काल।
बहु भेव रुंज मृदंग तुंग बजी बड़ी करनाल।
बहु ढोल दुंदुभि लोल राजत विरुद वंदि प्रकाश।
तहं धूरि पूरि उठी दशों दिशि पूरियो सु अकाश' ॥[3]

अथवा :

भीम भाँति विलोकिये रणभूमि भू अति अंत।
श्रोण की सरिता दुरन्त अनन्त रूप सुनन्त।

1 रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, छं० सं० १०, पृ० स० २८५।
2 बीरसिंहदेव-चरित, पूर्वार्ध, पृ० सं० २६, २७।
3 विज्ञानगीता, छं० स० २, पृ० सं० ४७।

यत्र तत्र धुजा परे पट दीह देहनि भूप।
टूटि टूटि परे मनो बहु बात वृक्ष अनूप।
पुंज कुंजर शुभ्र स्यंदन शोभिये अति शूर।
ठेलि ठेलि चले गिरीशनि पेलि शोणित पूर।
ग्राह तुंग तरंग कच्छप चारु चमर विशाल।
चक्र से रथ चक्र पैरत गृद्ध वृद्ध मराल' ॥[१]

(ब) परंपरागत वर्णन :

अवधपुरी का वर्णन करते हुए दृश्य-वर्णन की अपेक्षा कवि का ध्यान नगरी के महत्व-वर्णन की ओर अधिक था। अतएव नगरी की शोभा का यथातथ्य चित्र केशव नहीं उपस्थित कर सके हैं। कुछ ऐसी वस्तुओं का वर्णन भी केशव ने किया है जो उनके निरीक्षण तथा निजी अनुभव का प्रतिफल नहीं हैं यथा सागर, आश्रम आदि। इनके वर्णन में केशव ने परंपरागत सुनी-सुनाई बातों का ही उल्लेख किया है। 'सागर' का वर्णन कवि ने दो स्थलों पर किया है। एक स्थल पर तो उन्होंने अपना ब्रह्मज्ञान दिखलाया है तथा दूसरी जगह वह उनके सामने नागरिक का रूप उपस्थित करता है। दोनो स्थलों पर किये गये वर्णन यहाँ क्रमशः उपस्थित किये जाते हैं।

'सेष धरे धरनी धरनी धरे केशव जीव रचे विधि जेते।
चौदह लोक समेत तिन्हें हरि के प्रति सोमहि में चित तेते।
सोवत तेउ सुने इनहीं में अनादि अनंत अगाध हैं एते।
अद्भुत सागर की गति देखहु सागर ही महं सागर केते' ॥[२]

तथा

'भूति विभूति पियूषहु को विष ईस सरीर कि पाय बियो है।
है किधों केसव कस्यप को घर देव अदेवन के मन मोहै।
संत हियो कि बसै हरि संतत सोभ अनन्त कहै कवि को है।
चंदन नीर तरंग तरंगित नागर कोउ कि सागर सोहै' ॥[३]

केशवदास जी ने सुन रखा था कि ऋषियों के आश्रम में असीम शान्ति रहती है तथा हिंसक और अहिंसक जीव वैर-भाव त्याग कर एक साथ रहते हैं, किन्तु उन्होंने स्वयं कभी आश्रम देखा न था। अतएव केशव का निम्नलिखित वर्णन सर्कस का 'पंडाल' बन गया है।

'केसौदास मृगज बछेरू चोषै बाघनीन,
चाटत सुरभि बाघ बालक बदन है।
सिंहन की सटा ऐंचें कलभ करनिकर।
सिंहन को आसन गयंद को रदन है।

१. विज्ञानगीता, छं० सं० ३, पृ० सं० ६०।
२. कविप्रिया, छं० सं० २९, पृ० सं० १३७।
३. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ४१, पृ० सं० ३१३।

फनी के फनन पर नाचत मुदित मोर।
क्रोध न विरोध जहाँ मद न मदन है।
बानर फिरत डोरे डोरे अंध तापसन।
ऋषि को समाज कैधों शिव को सदन है' ॥[१]

कुछ दृश्यों का वर्णन काव्य-शिष्टता के विरुद्ध समझा जाता है, जैसे विवाह, भोजन, राज्य-विप्लव, मृत्यु तथा रति आदि। केशव ने 'रामचन्द्रिका' में राम के ऐश्वर्य-प्रदर्शन के लिये एक बार उनके भोजन का वर्णन किया है, किन्तु सूर, जायसी आदि कवियों की अपेक्षा अधिक संयत रूप से। सूर, जायसी आदि ने अनेक प्रकार की मिठाइयां, चावल तथा शाक-भाजियों के नाम गिनाये हैं किन्तु केशव ने केवल इतना ही लिखा है कि इतने प्रकार को दाल अथवा चावल आदि थे। फिर भी यह वर्णन रुचिकर नहीं है। रामसीता के विवाह के संबंध में दायज-वर्णन में केशव ने अपेक्षाकृत अधिक सुरुचि का परिचय दिया है। इस स्थल पर केशव ने इतना ही कहा है कि

'मत्त दंतिराजि राजि बाजिराजि राजि कै।
हेम हीर हार मुक्त चीर चारु साजि कै॥
वेष वेष वाहिनी असेप वस्तु सोधियो।
दायजो विदेहराज भाँति भाँति को दियो॥
वस्त्र भौन स्यों वितान आसने बिछावने।
अस्त्र सस्त्र अंग गान भाजनादि को गने॥
दासि दास बासि बास रोमपाट को कियो।
दायजो विदेहराज भाँति भाँति को दियो' ॥[२]

नखशिख-वर्णन

साहित्य में नखशिख-वर्णन की परिपाटी बहुत प्राचीन है। नायिका के अंग-प्रत्यंग की शोभा का वर्णन हिन्दी के कवियों ने बड़े चाव और परिश्रम से किया है। केशव के बड़े भाई बलभद्र, स्वयं केशव और रहीम आदि कवियों ने तो नखशिख-वर्णन के लिये स्वतंत्र पुस्तक ही लिख डाली है। नायिका के नखशिख की शोभा का वर्णन करने के लिये स्वतंत्र पुस्तक लिखने पर कवि-कल्पना के खेल के लिये अच्छा अवसर मिल जाता है। केशव ने अपने ग्रंथ में नायिका के भिन्न-भिन्न अंगों का वर्णन पृथक्-पृथक् कवित्त में किया है और प्रत्येक अंग के लिये संदेहालंकार की सहायता से अनेक उपमान दिये हैं। किन्तु बहुत से उपमान ऐसे हैं जिनका अंग-विशेष से कोई सादृश्य नहीं है जैसे, 'कटि' को 'भूत की मिठाई' अथवा कंठ को 'कवित्त रीति आरभटी' कहना। किसी उपमान और अंग-विशेष में क्या सादृश्य अथवा सम्बन्ध है, इसकी ओर दृष्टि जाने के पूर्व ही उसे ठेल कर दूसरा उपमान सामने आ जाता है, जिससे अंग-विशेष के सौष्ठव पर दृष्टि नहीं जमने पाती। उदाहरणार्थ 'ग्रीवा' का वर्णन है :

१. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं सं० ४०, पृ० सं० ४३३।
२. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं सं० ६३, ६४, पृ० सं० ११६।

'सुर नर प्राकृत कवित्व रीति आरभटी,
सात्विकी सुभारती की भारतीयौ भोरी की।
किधौं केशवदास कलगानता सुजानता,
निशंकता सों वचन विचित्रता किसोरी की।
वीणा वेणु पिक सुर शोभा की त्रिरेख,
रुचि मन वच क्रमन कि पिय मन चोरी की।
अंबु साइँ की सौं मोहै अम्बिकाऊ देखि देखि,
अंबुज नयन कंबु ग्रीवा गोल गोरी की' ॥[1]

अधिकांश वर्णन इसी कोटि का है किन्तु कुछ छन्द ऐसे भी हैं जो अंग-विशेष के सौष्ठव का पूरा भान कराते हैं, जैसे नायिका के 'केश' अथवा 'अधर' का वर्णन। केश का वर्णन करते हुये कवि ने लिखा है :

'कोमल अमल चल चीकने चिकुर चारु,
चितये तें चित चकचौंधियत केशोदास।
सुनहु छबीली राधा छूटे तें छुवै छवानि,
कारे सटकारे हैं सुभाव ही सदा सुवास।
सुनि के प्रकाश उपहास निशि वासर को,
कीनो है सुकेशव वसुवास जाय कै अकास।
यद्यपि अनेक चन्द्र साथ मोरपच्छ तऊ,
जीत्यो एक चन्द्रमुख रूप तेरे केशपाश' ॥[2]

काव्य की दृष्टि से 'रामचंद्रिका' अथवा 'वीरसिंहदेव-चरित' ग्रंथ का नखशिख-वर्णन अपेक्षा-कृत अधिक सुन्दर है। 'रामचंद्रिका' में केशव ने राम के विवाह के अवसर पर राम के नखशिख तथा राम-राज्याभिषेक के बाद शुक के मुख से सीता जी की दासियों के नखशिख का वर्णन किया है। 'वीरसिंहदेव-चरित' ग्रंथ में मदन-महोत्सव के अवसर पर वाटिका में क्रीड़ा करती हुई युवतियों का नखशिख-वर्णन सीता जी की दासियों के नखशिख-वर्णन का रूपान्तर ही है। उपमा तथा उत्प्रेक्षायें आदि प्रायः सब वही हैं। इन स्थलों पर केशव का नखशिख-वर्णन उनके स्वतंत्र निरीक्षण का परिचायक है। सूरदास जी द्वारा वर्णित कृष्ण अथवा राधिका का नखशिख-वर्णन कहीं-कहीं भूल-भुलैया सा हो गया है, जिसके अर्थ समझने में आवश्यकता से अधिक माथा पच्ची करनी पड़ती है। किन्तु केशव का नखशिख-वर्णन बिना किसी कठिनाई के बोधगम्य है। केवल राम का नखशिख-वर्णन इस कथन का अपवाद है। इसका कारण कदाचित् यह है कि केशव के राम ब्रह्म हैं। अतएव ब्रह्म के रूप-निरूपण में अस्पष्टता होना स्वाभाविक है। राम के अंगों का वर्णन करते समय कवि ने राम के ब्रह्मत्व का ध्यान रखा है।

१. नखशिख, ह० लि०, पृ० सं० ८।
२. नखशिख, ह० लि०, पृ० सं० १६-१७।

'ग्रीवा श्री रघुनाथ की, लसति कंबु वर वेष।
साधु मनो वच काय की, मानो लिखी त्रिरेख' ॥[१]
'शुभ मोतिन की दुलरी सुदेश। जनु वेदन के आखर सुवेश।
गज मोतिन की माला विशाल। मन मानहु संतन के रसाल' ॥[२]

सीता की दासियों का नखशिख-वर्णन राम की अपेक्षा अधिक उत्कृष्ट है। यहाँ कवि ने भिन्न-भिन्न अंगों के आभूषणों का भी वर्णन किया है। कल्पनायें अधिकांश नवीन, कवि की निजी और सुन्दर हैं। यहाँ दो उदाहरण दिये जाते हैं।

'ताटंक जटित मणि श्रुति बसंत। रवि एक चक्र रथ से लसंत।
जनु भाल तिलक रवि व्रतहि लीन। नृप रूप अकाशहिं दीप दीन' ॥[3]

अथवा :

'लटकै अलिक अलक चीकनी। सूक्ष्म अमल चिलक सों सनी।
नकमोती दीपक दुति जानि। पाटी रजनी ही उनमानि।
ज्योति बढ़ावत दृशा उतारि। मानहु स्यामल सींक पसारि।
जनु कविहित रवि रथ ते छोरि। स्यामपाट की डारी डोरि' ॥[४]

नखशिख-वर्णन के प्रसंग में कवि कभी-कभी अंगों का नाम न लेकर उपमान-मात्र ही गिनाते हैं। सूरदास जी ने राधा-कृष्ण का नखशिख-वर्णन करने के लिये कुछ स्थलों पर इसी शैली को अपनाया है। केशवदास जी ने भी एक स्थल पर इस शैली का उपयोग किया है किन्तु नखशिख-वर्णन के प्रसंग में नहीं। 'कविप्रिया' ग्रंथ में विरुद्ध-रूपक का उदाहरण प्रस्तुत करते हुये केशव ने इस शैली पर नायिका का नखशिख-वर्णन किया है।

'सोने की एक लता तुलसी बन क्यों बरणों सुनि बुद्धि सकै छ्वै।
केशव दास मनोज मनोहर ताहि फले फल श्रीफल से व्वै।
फूलि सरोज रह्यो तिन ऊपर रूप निरूपत चित्त चलै च्वै।
तापर एक सुवा शुभ तापर खेलत बालक खंजन के द्वै' ॥[५]

'वीरसिंहदेव-चरित' ग्रंथ में एक स्थल पर केशव के पांडित्य ने नखशिख-वर्णन द्वारा पाठक के मनोरंजन की सामग्री भी जुटाई है। राजसिंह की 'पति' (मर्यादा) रूपी वधू का वर्णन करते हुये कवि ने लिखा है :

'राजसिंह की पति पद्मिनी। नव दुलहिनि गुन सुख सद्मिनी।
सिर सब सिसोदिया सुदेस। बानी बड़गूजर वर वेस।

१. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ४२, पृ० सं० ११३।
२. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ४६, पृ० सं० ११५।
३. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० १४, पृ० सं० १६६।
४. रामचन्द्रिका, उत्तरार्ध, छं० सं० १८, १९, पृ० सं० १६८।
५. कविप्रिया, छं० सं० १८, पृ० सं० ३२९।

श्रुति सिर फूल सुलंकी जान । बानी बड़ गूजर वर वान ।
भनि भदौरिया भूषित भाल । भृकुटि भैटि भाटी भूपाल ।
कछवाहे कुल कलित कपोल । नैषध नृप नासिका अमोल ।
दीखत दसन सुहाड़ा हास । बीरा बसै बनाफर वास ।
मुख रुख मारु चिबुक चंदेल । ग्रीवा गौर सुबाहु बवेल ।
कुल कनौजिया कंचुकि चारु । कुच करचुली कठोर विचारु ।
पान पवैया परम प्रवीन । नृप नाहर नख कोरि नवीन ।
कोसल कटि, जादौ जुग जानु । पदप लवा कैकेय बखानु ।
तोंबर मन मद, मन पड़िहार । पद राठौर सरूप पंवार ।
गूजर वे गति परम सुवेस । हाव भाव भनि भूरि नरेस ।
केसौ मारू सखि सुख दानि । दामोदर दासी उर जानि' ।[१]

सिसोदिया, सोलंकी और चौहान आदि राजे राजसिंह के सहायक और उसकी मर्यादा के रक्षक थे अतएव इनको राजसिंह की मर्यादा-रूपी स्त्री के अंग कहना ठीक ही है । इस उद्धरण की विशेषता यह है कि जो शब्द जिस अंग का निर्देशक है वह शब्द और निर्दिष्ट अंग का वाचक शब्द दोनों अधिकांश एक ही अक्षर से आरम्भ होते हैं जैसे पति-रूपी 'पद्मिनी' का सिर, 'सिसोदिया'; बानी, 'बड़गूजर'; भाल, 'भदौरिया' तथा नखकोर, 'नृपनाहर' आदि ।

(५) संवाद

संवाद इतिवृत्तात्मक काव्य का एक आवश्यक अंग है । कथा पढ़ते-पढ़ते जब पाठक का मन ऊबने लगता है तो संवाद नाटकीय वातावरण का निर्माण कर रोचकता का प्रसार करते और कथाक्रम को आगे बढ़ाते हैं । दूसरे, चरित्र-चित्रण का सब से अच्छा ढंग अभिनयात्मक प्रणाली ही है, अर्थात् जब लेखक या कवि पात्रों को स्वयं अपने मुख, कार्य और अन्य पात्रों के कथन के द्वारा अपने चरित्र को प्रकाशित करने के लिये छोड़ देता है । इस प्रकार पात्रों के साथ जो सहानुभूति और साहचर्य की भावना उत्पन्न होती है वह स्थायी होती है । साथ ही जिस बात की जानकारी कवि या लेखक पंक्तियों में करायेगा वह संवाद में कुछ शब्दों में ही सुगमता से हो जाती है । अंत में, कवि या लेखक का बहुरूपियापन पाठक के लिये विशेष मनोरंजन की वस्तु है, क्योंकि संवाद में उसे भिन्न-भिन्न पात्रों का स्वांग भरना पड़ता है ।

जायसी, तुलसी आदि सभी कवियों ने संवाद लिखे हैं किन्तु केशव के समान सफलता किसी को नहीं मिल सकी । इसका कारण यह है कि केशव का जीवन ही राज-दरबारों में बीता था । अतएव राजनीतिक दांवपेंच और कूटनीति का जितना ज्ञान केशव को था, हिन्दी के अधिकांश कवियों को न था । संवाद लेखक के लिये भाषा-प्रवीणता और व्यवहार-कुशलता आवश्यक है । केशव में यह गुण पर्याप्त मात्रा में थे । केशव के संवाद उनकी प्रत्युत्पन्नमति और सूक्ष्म मनोविज्ञान के परिचायक हैं । व्यंग, जो संवाद का आवश्यक गुण है, केशव के संवादों की प्रमुख विशेषता है ।

१. वीरसिंहदेव-चरित, पृ० सं० ५०, ५१ ।

केशव ने 'रामचंद्रिका', 'वीरसिंहदेव-चरित', 'विज्ञानगीता' और 'जहाँगीर-जस-चंद्रिका' आदि सभी ग्रंथों में संवादों का उपयोग किया है। 'विज्ञानगीता', 'वीरसिंहदेव-चरित' और 'जहाँगीर-जस-चंद्रिका' नामक ग्रंथ तो आद्योपान्त संवाद ही के रूप में लिखे गये हैं। 'विज्ञान-गीता' आदि से अन्त तक शिवपार्वती-संवाद है, यद्यपि इसके अन्तर्गत भी अनेक संवाद हैं जैसे 'कलह-रति-काम-संवाद', 'अहंकार-दंभ-संवाद', 'मिथ्यादृष्टि-महामोह-संवाद' तथा 'विवेक जीव-संवाद' आदि। इसी प्रकार 'वीरसिंहदेव-चरित', दानलोभ-संवाद के रूप में और 'जहाँ-गीर-जस-चंद्रिका', उद्यम-भाग्य के संवाद के रूप में लिखे गये हैं। यह सब संवाद प्रायः एक ही परिपाटी पर लिखे गये हैं, तथा इनमें कोई ऐसी निजी विशेषता नहीं है जिसके आधार पर इन्हें एक दूसरे से अलग किया जा सके। प्रायः एक पात्र कुछ कहता है और दूसरा उसका उत्तर दे देता है। यह संवाद अधिकांश कथोपकथन-मात्र हैं।

'वीरसिंहदेव-चरित' में कथानक आरम्भ होने के पूर्व दान और लोभ का विवाद और 'जहाँगीर-जस- चंद्रिका' नामक ग्रंथ के आरम्भ में भाग्य और उद्यम का विवाद सुंदर है। दान और लोभ तथा भाग्य और उद्यम तर्क-पूर्वक एक दूसरे की उक्तियों का खंडन करते हुये अपनी महत्ता सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं। दान और लोभ के संवाद में कुछ स्थलों पर कवि ने इस बात का भी ध्यान रखा है कि दान और लोभ हृदय की जिन वृत्तियों के परि-चायक हैं, उनके कथन भी उसी के अनुकूल हों। व्यापक रूप से लोभ हृदय की संकुचित वृत्ति का परिचायक है और दान हृदय की विशालता का। दान के शब्दों से भी विशालता लक्षित होती है। विशाल-हृदय दान, लोभ के मित्र राजा बेन, बाणासुर और शिशुपाल आदि की दुर्दशा को स्पष्ट रूप से न कह कर उनकी ओर केवल संकेत ही करता है।

'बेनु बान हरिनाच्छ हिरन कस्यप दुख दावन।
सहस बाहु सिसुपाल कहैं तेरे मन भावन' ॥[1]

इसी प्रकार निम्नलिखित शब्द दान के हृदय की विशालता, सज्जनता और शान्ति-पूर्ण प्रकृति के परिचायक हैं।

'बहुत निहोरो तोसौं करौं। कहे त तेरे पाइन परौं।
तोसौं हौं सिखऊं सिख एक। छांड़ि देइ जो अपनो टेक'।[2]

दूसरी ओर लोभ हृदय की नीच वृत्ति है, अतएव लोभ के शब्दों में भी ईर्ष्या और व्यंग सन्निहित है। लोभ, दान से कहता है कि 'तुमने मुझसे बड़ी ही अच्छी बात कही, जिसे सुन कर मेरा रोम-रोम पुलकित हो गया। धर्म के तात, तुम बहुत बड़े हो और शिक्षा भी बड़ी ही सुंदर दे रहे हो'।

'भली कही तुम मोसौं बात। मैं पुनि सुख पायौ सब गात।
तुम अति बड़े धर्म के तात। सिखवत हौ सिख अति अवदात'।[3]

१. वीरसिंहदेव-चरित, भारत जीवन प्रेस, पृ० सं० १२।
२. वीरसिंहदेव-चरित, भारत जीवन प्रेस, पृ० सं० १३।
३. वीरसिंहदेव-चरित, भारत जीवन प्रेस, पृ० सं० १३।

संवादों के लिये केशव की सबसे अधिक महत्वपूर्ण रचना 'रामचंद्रिका' है। 'रामचंद्रिका' में निम्नलिखित संवाद हैं :

(१) सुमति-विमति-संवाद
(२) रावण-बाणासुर-संवाद
(३) राम-परशुराम संवाद
(४) राम-जानकी-संवाद
(५) राम- लक्ष्मण-संवाद
(६) सूर्पणखा- राम-संवाद
(७) सीता-रावण-संवाद
(८) सीता-हनूमान-संवाद
तथा (९) रावण-अंगद-संवाद

छोटे संवादों में सूर्पणखा-राम-संवाद, सीता-रावण-संवाद और सीता-हनूमान संवाद तथा बड़े संवादों में रावण-बाणासर-संवाद, राम-परशुराम-संवाद तथा रावण-अंगद-संवाद विशेषतया सुन्दर हैं।

सूर्पणखा-राम-संवाद :

सूर्पणखा, राम के पास आकर बड़े ही स्वाभाविक ढंग से बातचीत आरम्भ करती है। वह जानती है कि किसी को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिये उसके रूप-गुण की प्रशंसा आवश्यक है। नीचे दिये हुये छन्द में सूर्पणखा राम का परिचय पूछने के साथ ही उनके सौन्दर्य और वीरता की प्रशंसा भी करती है :

'किन्नर हौ नर रूप विचच्छन जच्छ कि स्वच्छ सरीरन सोहौ।
चित्त चकोर के चंद किधौं मृग लोचन चारु विमानन रोहौ।
अंग धरे कि अनंग हौ केशव अंगी अनेकन के मन मोहौ।
वीर जटान धरे धनुबान लिये बनिता बन में तुम को हौ' ॥[1]

राम का उत्तर भी राम के चातुर्य को प्रदर्शित करता है। एक अपरिचित से अपने वन आने का वास्तविक कारण बता कर पिता को निन्दा का पात्र बनाना उचित न होता, अतएव राम का कथन है :

'हम हैं दसरत्थ महीपति के सुत।
सुभ राम सु लच्छन नामन संजुत।
यह सासन दै पठये नृप कानन।
मुनि पालहु घालहु राछस के गन' ॥[2]

इस प्रकार राम ने यह भी संकेत कर दिया की वह राक्षसों को मारने आये हैं, अतएव

१. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ३३, पृ० सं० २१४।
२. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ३४, पृ० सं० २१५।

वह एक राक्षसी से सम्बन्ध कैसे कर सकते हैं। किन्तु काम-पीड़ित व्यक्ति की विचारशक्ति शिथिल हो जाती है अतएव वह राम का संकेत न समझ सकी। तब राम ने अपने को विवाहित कह कर उसे लक्ष्मण के पास भेज दिया। धन और ऐश्वर्य कौन नहीं चाहता अतएव वह लक्ष्मण के पास जाकर उनके सम्मुख धन का लोभ रखती है :

'राम सहोदर मोतन देखो। रावण की भगिनी जिय लेखो।
राज कुमार रमौ रंग मेरे। होहिं सबै सुख संपति तेरे' ॥[1]

किन्तु यहाँ उसे अपने नाक और कान से भी हाथ धोने पड़े।

रावण-सीता-संवाद :

रावण-सीता-सम्वाद भी मनोवैज्ञानिक तथा कवि की नीति-कुशलता का प्रमाण है। रावण को जो कुछ कहना है वह एक ही बार में कह डालता है। इसी प्रकार सीता उसे एक ही बार में उत्तर देती है। ऐसा करके केशव ने अपनी कुशाग्र-बुद्धि का ही परिचय दिया है। सीता सी पतिव्रता सती को पर पुरुष से, जिसकी उस पर कुदृष्टि हो, बातचीत करने में संकोच होना स्वाभाविक ही था। सुनते-सुनते जब सीता के कान पक गये तो उसे विवश होकर बोलना पड़ा।

यह साधारण व्यवहार की बात है कि यदि प्रेमिका को उसके प्रेमी की ओर से उदासीन करना हो तो प्रेमी के अवगुण बतलाते हुये प्रेमिका की ओर से उसकी उदासीनता और अन्य स्त्रियों के प्रति आकर्षण दिखलाये। अतएव रावण कहता है :

**'कृतघ्नी कुदाता कुकन्याहि चाहै। हितू नग्न मुंडीन ही को सदा है।
अनाथै सुन्यो मैं अनाथानुसारी। बसै चित्त दंडी जटी मुंड धारी।
तुम्हें देवि दूषै हितू ताहि मानै। उदासीन तो सो सदा ताहि जानै।
महानिर्गुणी नाम ताको न लीजै। सदा दास मोपे कृपा क्यों न कीजै' ॥[2]**

सुख और ऐश्वर्य की बांकी झाँकी दिखा कर उसने दूसरे अस्त्र का प्रयोग किया :

**'अदेवी नृदेवीन की होहु रानी। करैं सेव बानी मघौनी मृडानी।
लिये किन्नरी किन्नरी गीत गावैं। सुकेसी नचैं उर्वसी मान पावैं' ॥[3]**

उधर सीता जी के उत्तर-स्वरूप तीन छन्दों में सीता का क्रोध उत्तरोत्तर बढ़ता दिखलाई देता है। प्रथम छन्द में मुस्कराती हुई सी सीता कहती है :

**'दस मुख सठ को तू कौन की राजधानी।
दशरथ सुत द्वेषी रुद्र ब्रह्मा न भासै।
निसिचर बपुरा तू क्यों न स्यों मूल नासै' ॥[4]**

कुछ क्रोध और बढ़ने पर व्यंग-मिश्रित स्वर में सीता का कथन है :

१. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ३७, पृ० सं० २१६।
२. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ५८, ५९, पृ० सं० २७३, २७४।
३. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ६०, पृ० सं० २७५।
४. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ६१, पृ० सं० २७६।

'अति तनु धनु रेखा नेक नाकी न जाकी ।
खल सर खर धारा क्यों सहै तिच्छ ताकी' ॥[१]

तीसरे छन्द में सीता के हृदय का दबा हुआ क्रोध एकदम भड़क उठता है :

'उठि उठि शठ ह्यां ते भागु तौ लौं अभागे ।
मम वचन विसर्पी सर्प जौ लौं न लागे' ॥[२]

इस सम्वाद की भाषा भी बड़ी स्वाभाविक है । 'सुनो देवि मोपै कछू दृष्टि दीजै', 'इतो सोच तो राम काजै न कीजै' अथवा 'दशमुख सठ को तू कौन की राजधानी' ठीक दैनिक बोलचाल के शब्द हैं । 'कछू' और 'तो' आदि छोटे-छोटे शब्द यदि हटा दिये जायें तो भावों का गम्भीर सागर लुप्त हो जायेगा ।

सीता-हनूमान-संवाद :

सीता-हनूमान-संवाद सीता के चातुर्य और हनूमान की कुशाग्र-बुद्धि का परिचायक है । सीता मायावी राक्षसों के बीच रहती थीं । संभव था कि राम के वियोग में प्राण देने के लिये उद्यत सीता को इस कृत्य से रोकने के लिये रावण ने किसी मायावी राक्षस को राम-दूत बना कर भेजा हो अतएव हनूमान की भली भाँति परीक्षा लेकर उनका विश्वास करना स्वाभाविक था । सीता हनूमान को राम का दूत जान कर उनसे रघुनाथ से परिचय और आने का कारण पूंछती हैं ।

'कर जोरि कह्यो हौं पौन पूत । जिय जननि जान रघुनाथ दूत ।
रघुनाथ कौन, दशरत्थनंद । दशरत्थ कौन, अज तनय चंद ।
केहि कारण पठये यहि निकेत । निज देन लेन संदेस हेत' ॥[३]

किन्तु सम्भव था कि प्रसिद्ध रविवंश के विषय में उन्होंने किसी से सुन लिया हो । अथवा चतुर रावण ने ही यह सब सिखला कर भेजा हो, अतएव सीता जी हनूमान से राम के गुण, रूप आदि के विषय में पूँछती हैं :

'गुण रूप सील सोभा सुभाउ । कछु रघुपति के लक्षण सुनाउ' ।[४]

हनूमान जी कुशाग्र-बुद्धि थे ही, अतएव उन्होंने जब यह परिस्थिति देखी तो ऐसी बातें बताना उचित समझा जो केवल घनिष्ट लोगों को ही ज्ञात हो सकती थीं ।

'अति जदपि सुमित्रानंद भक्त । अति सेवक हैं अति सूर शक्त ।
अरु जदपि अनुज तीनो समान । पै तदपि भरत भावत निदान' ॥[५]

१. रामचंद्रिका, पूर्वार्धं, छं० सं० ६२, पृ० सं० २७६ ।
२. रामचंद्रिका, पूर्वार्धं, छं० सं० ६३, पृ० सं० २७७ ।
३. रामचंद्रिका, पूर्वार्धं, छं० सं० ७३-७४, पृ० सं० २७१ ।
४. रामचंद्रिका, पूर्वार्धं, पृ० सं० २७१ ।
५. रामचंद्रिका, पूर्वार्धं, छं० सं० ७५, पृ० सं० २८० ।

यद्यपि अब अविश्वास के लिये स्थान न था फिर भी सीता ने इतना और पूँछ लेना उचित समझा :

'प्रीति कहि धौं सुनर बानरनि क्यों भई'।[1]

बाण-रावण-संवाद :

बड़े संवादों में सबसे पहले बाण-रावण-संवाद हमारे सामने आता है। यह संवाद आदि से अंत तक नाटकीय है। बातचीत दोनों समान बल-शाली योद्धाओं के उपयुक्त है। दैनिक बोल-चाल की भाषा में दोनों एक दूसरे पर बड़े ही अनूठे ढंग से व्यंग-प्रहार करते हैं। फिर भी यह विवाद अनावश्यक सा प्रतीत होता है और यदि यह निकाल दिया जाय तो ग्रंथ के मुख्य कथानक पर कोई प्रभाव न पड़ेगा।

रावण रंगशाला में प्रवेश कर अपनी वीरता के उपयुक्त शब्दों का ही प्रयोग करता है :

'शंभुकोदंड दै। राजपुत्री कितै।
टूक द्वै तीन कै। जाहुँ लंकाहि लै'॥[1]

यह सुन कर बाण व्यंग करता है :

'जुपै जिय जोर। तजौ सब सोर।
सरासन तोरि। लहौ सुख कोरि'॥[2]

रावण गर्व के साथ उत्तर देता है :

'बज्र को अखर्व गर्व गंज्यो, जेहि पर्वतारि जीत्यो है, सुपर्व सर्व भाजे लै लै अंगना।
खंडित अखंड आशु किन्हो है जलेश पाशु, चंदन सी चन्द्रिका सो कीन्हीं चन्द बंदना।
दंडक में कीन्हों कालदंड हू को मान खंड, मानो कीन्हीं काल ही की कालखंड खंडना।
केशव कोदंड विषदंड ऐसो खंडै अब, मेरे भुजदंडन की बड़ी है विडम्बना'॥[3]

बाण फिर व्यंग करता है :

'बहुत बदन जाके। विविध बचन ताके'।[4]

रावण भी उसी प्रकार व्यंग-मिश्रित स्वर में उत्तर देता है :

'बहु भुज युत जोई। सबल कहिय सोई'।[5]

अथवा :

'अति असार भुज भार ही बली होहुगे बाण'।[6]

बाण के बढ़-बढ़ कर बातें करने पर रावण एक बार फिर बाण के मर्म-स्थल पर प्रहार करता है :

१. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ४, पृ० सं० ५४।
२. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ८, पृ० सं० ५५।
३. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ९, पृ० सं० ५६।
४. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० ५७।
५. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० ५७।
६. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० ५७।

'तुम प्रबल जो हुते। भुज बलनि संयुते।
पितहि भुव ल्यावते। जगत यश पावते' ॥[१]

किन्तु इस बार उसे मुंह की खानी पड़ी :

'पितु आनिये केहि ओक। दिय दच्छिणा सब लोक।
यह जानु रावन दीन। पितु ब्रह्म के रस लीन' ॥[२]

रावण ने अब अधिक बात बढ़ाना उचित न समझा। उसने सीता को देखकर धनुष पर अपना बल-प्रयोग करने का प्रस्ताव किया। इस स्थल पर बाण और रावण की बातचीत बड़ी स्वाभाविक है। रावण के अनुचित प्रस्ताव को सुनकर बाण मुँह-तोड़ जवाब देता है :

'बेगि कह्यो तब रावण सों अब बेगि चढ़ाउ शरासन को।
बातैं बनाइ बनाइ कहा कहै छोड़ि दे आसन बासन को।
जानत है किधौं जानत नाहिन तू अपने मद नासन को।
ऐसोई कैसे मनोरथ पूजत पूजे बिना नृप शासन को' ॥[३]

रावण कहता है :

'बाण न बात तुम्हैं कहि आवै'।[४]

बाण उसी प्रकार व्यंग-पूर्ण शब्दों में उत्तर देता है :

'सोई कहौं जिय तोहि जो भावै'।[५]

अब रावण तनिक गम्भीर होकर कहता है :

'का करिहौ हम योंहीं बरैंगे'।[६]

बाण भी उसी प्रकार गम्भीरता के साथ रावण को उसके प्रति सहस्रार्जुन द्वारा किये गये व्यवहार की याद दिला कर कहता है :

'हैहयराज करी सो करैंगे'।[७]

इस वाद-विवाद का अंत अस्वाभाविक है, किन्तु इसका कारण है। जिस रावण को महापराक्रमी राम से लोहा लेना था, उसके लिये धनुष न उठा सकना उचित न होता। रावण, धनुष के पास जाकर उसकी परीक्षा करता और फिर बड़ी बुद्धिमानी से हट आकर बाण से कहता है :

'हौं पलक मांहि लेहौं चढ़ाय। कछु तुमहूँ तो देखो उड़ाय'।[८]

१. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० १३, पृ० सं० ४८।
२. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० १४, पृ० सं० ४८।
३. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० २१, पृ० सं० ६२।
४. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० ६२।
५. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० ६२।
६. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० ६२।
७. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० ६२।
८. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० ६५।

किन्तु बाण यह कह कर चला जाता है कि

'मेरे गुरु को धनुष यह सीता मेरी माय'।[1]

राम-परशुराम-संवाद :

'रामचंद्रिका' के संवादों में राम-परशुराम-संवाद तथा रावण-अंगद-संवाद सर्वश्रेष्ठ हैं। 'मानस' के राम-परशुराम-संवाद में केवल लक्ष्मण, परशुराम के विपक्षी के रूप में हमारे सामने आते हैं किन्तु यहाँ लक्ष्मण का स्थान भरत ने ग्रहण किया है। दूसरे, मानस में परशुराम एक क्रोधी चिड़चिड़े बाबा के रूप में दिखलाई देते हैं और लक्ष्मण एक उद्धत बालक के रूप में, जो उन्हें चिढ़ा रहा हो। केशव के राम-परशुराम-संवाद में मर्यादा और शील की पूर्ण रक्षा की गई है। कथोपकथन का विकास भी उत्तरोत्तर और मनौवैज्ञानिक हुआ है। लोकोक्ति, मुहावरों और व्यंग-पूर्ण शब्दावली ने सरल भाषा के साथ मिलकर उसे प्रभावशाली बना दिया है।

परशुराम के आने पर एक ओर राम ने भाइयों सहित उन्हें प्रणाम कर अपने शील और नम्रता का परिचय दिया तो दूसरी ओर उन्हीं परशुराम ने, जो कुछ क्षण पूर्व रघुवंश को कुठार की धार में बोरने की प्रतिज्ञा कर रहे थे, रघुवंशी राम को रण में अजय होने का आशीर्वाद देकर, उस भारतीय संस्कृति का परिचय दिया जिसके लिये चिरकाल से भारत को गर्व रहा है। इस शिष्टाचार के बाद स्वाभाविक रूप से बातचीत आरम्भ हो जाती है। परशुराम राम से कहते हैं :

'तोरि सरासन संकर को सुभ सीय स्वयंबर माँझ बरी।
ताते बढ्यो अभिमान महा मन मेरियो नेक न संक करी'।[2]

राम शान्ति-पूर्वक उत्तर देते हैं :

'सो अपराध परो हमसों अब क्यों सुधरे तुमही तो कहौ'।[3]

परशुराम भी उसी प्रकार धीरे से कह देते हैं :

'बाहु दै दोऊ कुठारहि केशव आपने धाम को पंथ गहौ'।[4]

उत्तर में राम का कथन है :

'टूटै टूटन हार तरु वायुहि दीजत दोष।
त्यों अब हर के धनुष को हम पर कीजत रोष।
हम पर कीजत रोष काल गति जान न जाई।
होनहार ह्वै रहै मिटै मेटी न मिटाई।
होनहार ह्वै रहै मोह मद सब को छूटै।
होय तिनूका वज्र वज्र तिनुका ह्वै टूटै'॥[5]

१. रामचन्द्रिका, पूर्वार्धं, पृ० सं० ६१।
२. रामचन्द्रिका, पूर्वार्धं, पृ० सं० १२८।
३. रामचन्द्रिका, पूर्वार्धं, पृ० सं० १२८।
४. रामचन्द्रिका, पूर्वार्धं, पृ० सं० १२८।
५. रामचन्द्रिका, पूर्वार्धं, छं० सं० २०, पृ० सं० १२६।

गुरुदेव शंकर के पिनाक के लिए राम के इन निरादर-पूर्ण शब्दों को सुन कर परशुराम को क्रोध आजाना स्वाभाविक था, अतएव परसे को संबोधित करते हुये परशुराम का कथन है :

'केशव हैहयराज को मास हलाहल कौरन खाय लियो रे।
तालगि मेद महीपन को घृत घेरि दियो न सिरानो हियो रे।
मेरो कह्यौ करि मित्र कुठार जो चाहत है बहुकाल जियो रे।
तौ लौं नहीं सुख जौ लग तू रघुवीर को श्रोण सुधा न पियो रे' ॥[1]

राम के प्रति इन अपमान-जनक शब्दों को सुन कर भरत को क्रोध आजाना भी बड़ा ही स्वाभाविक है। किन्तु इस क्रोध में उफान नहीं है, वह उनके विनम्र शील के नीचे दबा है।

'बोलत कैसे भृगुपति सुनिये, सो कहिये तन-मन बनि आवै।
आदि बड़े हौ, बड़पन रखिये, जा हित तू सबजग जस पावै।
चन्दन हूँ में अति तन घसिये, आगि उठै यह गुनि सब लीजै।
हैहय मारो, नृप जन संहरे, सो यश लै किन युग युग जीजै' ॥[2]

राम ने जब बात अधिक बढ़ते देखी तो एक ओर तो अपने भाइयों को शान्त किया और दूसरी ओर परशुराम को शान्त करने के लिये उनके पराक्रम और वीरता की प्रशंसा की, जिसका परशुराम पर मनोवांछित प्रभाव पड़ा; किन्तु बड़े भाई भरत के प्रति परशुराम की ललकार शत्रुघ्न चुपचाप न सुन सके और उन्होंने कहा :

'हौ भृगुनंद बली जग माहीं। राम विदा करिये घर जाहीं।
हौं तुमसों फिर युद्धहि मांडौं। क्षत्रिय वंश को वैर लै छाडौं' ॥[3]

वास्तव में गुरु-द्रोही राम ही थे, अतः परशुराम ने अन्य भाइयों को क्षमा कर दिया और राम को सम्बोधित कर कहा :

'राम तिहारेइ कंठ को श्रोनित पान को चाहै कुठार पियोई' ॥[4]

अब लक्ष्मण की बारी थी, किन्तु केशव के लक्ष्मण तुलसी के समान उद्धत नहीं हैं। वह मीठी मार मारना जानते हैं।

'जिनको सु अनुग्रह वृद्धि करै। तिन को किमि निग्रह चित्त परै।
जिनके जग अच्छत सीस धरै। तिन को तन सच्छत कौन करै' ॥[5]

परशुराम ने इस प्रकार के शब्दों से राम और उनके भाइयों को कायर समझा। तब राम ने परशुराम को सावधान करते हुये कहा :

१. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० २१, पृ० सं १२९, ३०।
२. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० २२, पृ० सं० २३१।
३. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० २८, पृ० सं० १३३।
४. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० १३४।
५. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ३२, पृ० सं० १३५।

'भृगुकुल-कमल-दिनेश सुनि, जीति सकल संसार ।
क्यों चलिहै इन सिसुन पै, डारत हौ यशभार' ।।[1]

इस व्यंग से तिलमिला कर परशुराम उबल पड़े :

'राम सुबंधु संभारि, छोड़त हौं सर प्राणहर ।
देह हथ्यारन डारि, हाथ समेतिन वेगि दै' ।।[2]

राम ने एक बार फिर परशुराम को समझाने की चेष्टा की कि मैं अवतार हूँ :

'सुनि सकल लोक गुरु जामदग्नि, तप विशिष अनेकन की जु अग्नि ।
सब विशिष छांडि सहिहौं अखंड, हर धनुष कियो जिन खंड खंड' ।।[3]

परशुराम इस संकेत को भी न समझ सके और राम के गुरु विश्वामित्र का अपमान करते हुये बोले :

'राम कहा करिहौ तिनको, तुम बालक देव अदेव डरे हैं ।
गाधि के नंद तिहारे गुरु, जिनते ऋषि वेश किये उबरे हैं' ।।[4]

गुरु-निन्दा सुन कर राम का धैर्य जाता रहा और उन्हें भी क्रोध आगया ।

'भगन कियो भव धनुष साल तुमको अब सालौं ।
नष्ट करौं बिधि सृष्टि ईश आसन ते चालौं ।
सकल लोक संहरहुँ सेस सिरते धर डारौं ।
सप्त सिंधु मिलि जाहिं होइ सबही तम भारौं ।
अति अमल जोति नारायणी कहि केशव बुझि जाय बर ।
भृगुनंद संभारि कुठारु मैं कियो सरासन युक्त सर' ।।[5]

इस प्रकार उत्तरोत्तर बढ़ते-बढ़ते जब राम और परशुराम दोनों का क्रोध चरम सीमा को पहुँच जाता है तब शंकर जी स्वयं उपस्थित होकर दोनों को समझाते हैं ।

रावण-अंगद-संवाद :

रावण-अंगद-संवाद में दो प्रज्ञाशील, नीतिज्ञ, व्यवहार-कुशल वीर अपनी बुद्धि और व्यवहार-कुशलता का परिचय देते हैं । एक पराक्रमी राजा है, जिसके आतंक से स्वर्ग के देवता भी काँपते हैं और दूसरा युवराज है, जिसके पिता ने रावण को भी अपनी कोख में दबा रखा था । रावण और अंगद दोनों ही मर्यादा का पूरा-पूरा ध्यान रखते हुये अपनी सामाजिक स्थिति के अनुकूल स्वाभाविक ढंग से बातचीत करते हैं । भाषा में कहीं भी शिथिलता नहीं है । बातचीत में पात्रों का नाम न होने पर भी सरलता से समझ में आ जाता है कि कौन

१. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ३८, पृ० सं० १३९ ।
२. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ३९, पृ० सं १४० ।
३. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं सं० ४०, पृ० सं० १४१ ।
४. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० १४१ ।
५. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ४२, पृ० स० १४२ ।

किससे कह रहा है। रावण और अंगद दोनों ही बड़े चातुर्य से एक दूसरे पर व्यंग करते हुए प्रसंगानुकूल प्रतिपक्षी की हीनता और अपनी महत्ता दिखलाते चलते हैं। रावण सब कुछ जानते हुये भी अपने प्रतिपक्षी के दूत के सामने उसकी हीनता दिखलाने के लिए अनजान बन कर पूँछता है :

'कौन है वह बांधि के हम देह पूछ सबै दही'।[1]

अंगद की तीव्र दृष्टि से रावण का अभिप्राय छिपा न रहा। वह भी उसी प्रकार अनजान बन कर पूँछता है :

'लंक जारि संहारि अच्छ गयो सो बात वृथा कही'।[2]

रावण ने मुँह की खाकर इस बात को और आगे बढ़ाना उचित न समझ अंगद से उसका परिचय पूछा। अंगद से यह जान कर कि वह बालि का पुत्र था, रावण का बालि से जानकारी छिपाना स्वाभाविक ही था, क्योंकि वह बालि की कोख में दबा रह चुका था। किन्तु अंगद कब चूकने वाले थे। वह तुरन्त ही कहते हैं कि 'तुम उस बालि को भी नहीं जानते जिसकी कोख में तुम दबे रह चुके हो'।

'कौन के सुत? बालि के, वह कौन बालि न जानिये!
काँख चाँपि तुम्हें जो सागर सात न्हात बखानिये'॥[3]

उत्तर-प्रत्युत्तर के क्रम से बातों की धारा को मोड़ कर अपनी प्रत्युत्पन्न-मति का परिचय देते हुये अंगद चतुराई से राम की महत्ता और रावण की हीनता दिखलाता है :

'राम को काम कहा? रिपुजीतहिं, कौन कबै रिपु जीत्यौ कहा!
बालि बली, छल सों, भृगुनन्दन गर्व हर्‍यो द्विज दीन महा।
दीन सुक्यों छिति छत्र हत्यो बिन प्राणन हैहयराज कियो।
हैहय कौन? वहै बिसर्‍यो जिन खेलत ही तोहि बांधि लियो'॥[4]

रावण ने जब महत्व-प्रदर्शन द्वारा अंगद पर आतंक जमते न देखा तो उसने भेदनीति से काम लिया और अंगद को पिता की मृत्यु का प्रतिशोध लेने के लिये उकसाता हुआ बोला :

'नील सुखेन हनू उनके नल और सबै कपिपुंज तिहारे।
आठहु आठ दिसा बलि दै, अपनो पदु लै, पितु जा लगि मारे।
तोसे सपूतहि जाय कै बालि अपूतन की पदवी पगु धारे।
अंगद संग लै मेरो सबै दल आजुहि क्यों न हतै बपु मारे'॥[5]

1. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० ३३७।
2. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० ३३७।
3. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० ३३८।
4. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ११, पृ० सं० ३४२।
5. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं १२, पृ० सं० ३४३।

नीति भी यही कहती है कि

'जो सुत अपने बाप को बैर न लेइ प्रकास।
तासों जीवत ही मरयो लोग कहैं तजि आस' ॥[1]

अंगद पर इन बातों का भी कोई प्रभाव न पड़ा। तब रावण कहता है कि अच्छा यदि तुम्हें लाज नहीं है तो मैं स्वयं राम-लक्ष्मण को संहार कर तुम्हें वानरराज बनाऊँगा।

'सहित लक्ष्मण रामहिं संहरौं। सकल बानर राज तुम्है करौं'।[2]

अंगद यह सुन कर मुँहतोड़ जवाब देता है :

'आप मुख देखि अभिलाष अभिलापहू।
राखि भुज सीस तब और कहूँ राखहू' ॥[3]

जब अंगद, राम का गुणानुवाद गाता ही जाता है तो एक बार रावण को भी क्रोध आ जाता है।

'तपी जपी विप्रन छिप्र ही हरौं। अदेव द्वेषी सब देव संहरौं।
सिया न दैहौं यह नेम जी धरौं। अमानुषी भूमि अबानरी करौं' ॥ [४]

क्रोध के लिये यह उपयुक्त अवसर न था, अतएव रावण दूसरे ही क्षण सम्हल जाता है और कहता है कि अच्छा मैं कुछ शर्तों पर सीता को लौटाने के लिये तय्यार हूँ। उसकी पहली शर्त है :

'देहि अंगद राज तोकहं मारि बानरराज को'।[४]

रावण का यह अंतिम अस्त्र भी खाली गया। रामभक्त के लिये राज्य और सम्पदा का मूल्य ही क्या।

(६) भाषा :

भाषा विचार का साकार रूप है। किन्तु केशव उस दल के कवि नहीं थे जो अपने विचारों को उसी भाषा में व्यक्त करते हैं, जिसमें वह उनके मन में उठते हैं। केशव उस कुल में उत्पन्न हुये थे जिसके 'दास' भी 'भाषा'[५] बोलना नहीं जानते थे।[६] अतएव 'भाषा' में लिखना वह अपने लिये हेय समझते थे। किन्तु समय और समाज की आवश्यकताओं ने

१. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० स० १६, पृ० स० ३४१।
२. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० ३४६।
३. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० ३४६।
४. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ३०, पृ० सं० ३५१।
४. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० ३५२।
५. तुलसीदास जी ने मानस में अपनी भाषा के विषय में लिखा है :
'भाषा भनिति मोर मति थोरी'। इससे प्रकट होता है कि उस समय हिन्दी भाषा 'भाषा' मात्र कही जाती थी।
६. 'भाषा बोलि न जानहीं जिनके कुल के दास।
भाषा कवि भो मंद मति तेहि कुल केशवदास' ॥
कविप्रिया, छं० सं० ७, पृ० सं० २१

उन्हें 'भाषा' को अपनाने के लिये बाध्य किया। फिर भी पंडित-कुल की छाप स्थल-स्थल पर उनकी भाषा पर बहुल अलंकार-प्रयोग और संस्कृत-शब्दावली के रूप में दिखलाई देती है। केशव के समकालीन तुलसीदास जी ने लिखा है :

'भाषा भनिति मोरि मति थोरी। हंसिबे योग्य हंसे नहि खोरी'॥ [१]

इस कथन से स्पष्ट है कि उस समय केशव के कुल वालों के समान ही पंडित-वर्ग का विचार था कि हिन्दी में उत्तम विचारों को प्रकट करने की क्षमता नहीं है। किन्तु तुलसी तथा केशव का विचार था कि हिन्दी भाषा में भी सुन्दर काव्य की रचना हो सकती है, गूढ़ से गूढ़ भावों को प्रकट किया जा सकता है; केवल कवि में निपुणता होनी चाहिये।[२] तुलसी का विचार था कि श्रेष्ठ विषय असुधरी भाषा का भी सुधार कर सकता है।[3] तुलसी और केशव ने अपनी रचनाओं द्वारा इस बात को सिद्ध भी कर दिया है।

केशव के काव्य-क्षेत्र में आने पर उनके सामने दो काव्य-भाषायें थीं, अवधी और ब्रज। किन्तु केशव ने ब्रज को ही अपनाया। इसका मुख्य कारण यह था कि केशव बुन्देलखंड के निवासी थे और बुन्देलखंडी भाषा ब्रज-भाषा से बहुत कुछ साम्य रखती है; क्योंकि ब्रज, बुन्देलखंडी और खड़ी बोली एक ही भाषा, शौरसेनी की विभिन्न शाखायें हैं। इनमें प्रचार की दृष्टि से ब्रज सबसे अधिक व्यापक थी। व्यापकता के विचार से ब्रज के बाद अवधी का स्थान था किन्तु उसमें ब्रज की सी स्वाभाविक मिठास न थी। इसके अतिरिक्त विदेशी भाषाओं के शब्दों को पचाने की शक्ति तथा शब्दों को तोड़ने-मरोड़ने का अवकाश भी ब्रज में अवधी भाषा की अपेक्षा अधिक रहता है। अतएव केशव ने ब्रजभाषा को ही अपनी काव्य-भाषा बनाया। कारक-लोप, 'णकार', 'शकार', 'क्षकार' के स्थान पर क्रमशः 'न', 'स' और 'छ' का प्रयोग, प्राकृत भाषा के प्राचीन शब्दों का व्यवहार, पंचम वर्ण के स्थान पर अधिकाँश अनुस्वार का प्रयोग इत्यादि जितनी ब्रजभाषा की विशेषतायें हैं, वे सब उनकी रचना में पाई जाती हैं।

केशवदास जी संस्कृत के तो विद्वान् थे ही अतएव उनके प्रत्येक ग्रंथ में संस्कृत शब्दों का तत्सम रूप में बहुल-प्रयोग हुआ है। वह संस्कृत भाषा के शब्दों तक ही नहीं रुके वरन् उन्होंने संस्कृत भाषा की विभक्तियों का भी प्रयोग किया है, जैसा कि आगे के विवेचन से स्पष्ट हो जायेगा। 'रामचन्द्रिका' ग्रंथ की भाषा पर संस्कृत का सबसे अधिक प्रभाव दिखलाई देता है। इसका कारण यह है कि इस ग्रंथ की रचना पांडित्य-प्रदर्शन की प्रेरणा से हुई थी। अतएव इस ग्रंथ में बहुत से ऐसे छन्द लिखे गये हैं जिनके दो-दो अर्थ निकलते हैं। ऐसे छन्दों में संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोगाधिक्य अनिवार्य था, क्योंकि यह गुण संस्कृत भाषा के ही शब्दों में है। 'रामचन्द्रिका' के दो-एक छंदों की भाषा तो अधिकांश संस्कृत ही है, यथा :

१. रामायण, बालकांड, पृ० सं० ६।

२. 'भाषा निबन्धमतिमंजुलमातनोति'।
रामायण, बालकांड, पृ० सं० ३।

३. 'भणित भदेस वस्तु भल बरणी'।
रामायण, बालकांड, पृ० सं० ६।

'रामचंद्रपदपद्मं, वृन्दारकवृन्दाभिवंदनीयम् ।
केशवमति भूतनया, लोचनं चंचरीकायते' ॥[1]

अथवा

'सीता शोभन ब्याह उत्सव सभा संभार संभावना ।
तत्तत्कार्य समग्र व्यग्र मिथिलावासी जना शोभना ।
राजाराजपुरोहितादि सुहृदा मंत्री महा मंत्रदा ।
नाना देश समागता नृपगणा पूज्यापरासर्वदा' ॥[2]

और

'अनंता सबै सर्वदा शस्ययुक्ता ।
समुद्रावधिः सप्त ईतिर्विमुक्ता' ॥[3]

इसी प्रकार 'विज्ञानगीता' नामक ग्रंथ में विन्दुमाधव और गंगा जी की स्तुति भी संस्कृत-गर्भित है ।

'अनंगी अनंगादि ज्योति प्रकाशी । अनंताभिधेयं अनंतादि वाशी ।
महादेव हू की अबाधा निवाधो । प्रबोधो उदो देहि श्री विंदुमाधो' ॥[4]

अथवा

'शिरश्चन्द्र की चन्द्रिका चारु हाशे । महापातकी ध्वांत धाम प्रणाशे ।
फणी दुग्ध भावे अनंगारि अंगे । नमो देवि गंगे नमो देवि गंगे' ॥[5]

किन्तु सर्वत्र इस प्रकार की भाषा का प्रयोग नहीं किया गया है । संस्कृत की विभक्तियों का प्रयोग भी विशेषतया 'रामचंद्रिका' नामक ग्रंथ में ही कुछ स्थलों पर दिखलाई देता है जैसे :

'सिरसि जटा बाकल वपुधारी' ।[6]
'ज्यों नारायण उर श्री वसंति' ।[7]
'उरसि अंगद लाज कछू गहो' ।[8]
'तदपि सृजति रागन की सृष्टि' ।[9]
'अनंता सबै सर्वदा शस्ययुक्ता ।
समुद्रावधिः सप्तईतिर्विमुक्ता' ।[10]

१. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० १६, पृ० सं० ८ ।
२. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० १३, पृ० सं० ४६ ।
३. रामचन्द्रिका, उत्तरार्ध, पृ० सं० १२२ ।
४. विज्ञानगीता, छं० सं० २४, पृ० सं० ५४ ।
५. विज्ञानगीता, छं० सं० ४०, पृ० सं० ५६ ।
६. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० २४० ।
७. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० २८० ।
८. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० ३४६ ।
९. रामचन्द्रिका, उत्तरार्ध, पृ० सं० ४१ ।
१०. रामचन्द्रिका, उत्तरार्ध, पृ० सं० १२२ ।

केशव के ग्रन्थों में बुन्देलखंडी भाषा के शब्द भी स्थल स्थल पर बिखरे दिखलाई देते हैं। यह स्वाभाविक ही था। केशव का जन्म बुन्देलखंड में हुआ था, जीवन का अधिकांश भाग भी वहीं बीता, और ग्रन्थों का निर्माण भी वहीं हुआ। उन्होंने स्यों, समदौ, भांड्यो, बोक, गौरमदाइन, आनिबी, जानिबी, कोद आदि अनेक बुन्देलखंडी शब्दों का प्रयोग किया है।

'देवन स्यों जनु देव सभा शुभ सीय स्वयंबर देखन आई'।[1]
'दुहिता समदौ सुख पाय अबै'।[2]
'कहूँ भांड भांड्यो करैं मान पावैं'।[3]
'कहूँ बोक बांके कहूँ रोष सूरे'।[4]
'अंग को कि अंगराग गेड़ुवा कि गलसुई'।[5]
'सिवसिर ससि श्री को राहु कैसे सुछीवैं'।[6]
'धनु है यह गौरमदाइन नाहीं'।[7]
'फूल सी ओढ़ि लई'।[8]
'फूलन के विविध हार, घोरिलन ओरमत उदार'।[9]
'चंद जू के चहूँ कोद वेष परिवेप कैसो'।[10]
'भौन भौंहरे हू भारे भय अवरेखिये'[11]
'चौंकि चौंकि परैं चारु चेटुवा मराल के'।[12]
'कीबो कियो आँखिन के ऊपर खिलाइबो'।[13]
'जाही मैं आन को आनिबी छांड़िबो'।[14]
'न मैल हू समान मन मेनका न मानिबी'।[15]

१. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० ४७।
२. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० ६०।
३. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं ६४।
४. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० ६४।
५. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० २४३
६. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० २७६
७. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० २५२
८. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० ३६८।
९. रामचन्द्रिका, उत्तरार्ध, पृ० सं० १४५।
१०. कविप्रिया, पृ० सं० ८४।
११. कविप्रिया, पृ० सं० ८६।
१२. कविप्रिया, पृ० सं० ६७।
१३. कविप्रिया, पृ० सं० २०६।
१४. रसिकप्रिया, पृ० सं० ५३।
१५. रसिकप्रिया, पृ० सं० ६७।

'जानु जानिहौं जो जाहि केहूँ पहिचानिबी' ।[1]
'केशोदास रति में रतीक ज्योति जानिबी' ।[2]
'तोहि सखी समदै संग वाके' ।[3]

इस प्रकार केशव ने इतने अधिक बुन्देलखंडी शब्दों का प्रयोग किया है कि इनकी भाषा को 'बुन्देलखंडी-मिश्रित' ब्रजभाषा कहना अधिक उपयुक्त होगा।

केशव की रचना में कहीं-कहीं अवधी भाषा के शब्दों का प्रयोग भी मिलता है। 'वीरसिंहदेव-चरित' नामक ग्रंथ में अन्य ग्रंथों की अपेक्षा अवधी के रूपों का अधिक प्रयोग हुआ है। इसका कारण कदाचित् यह हो कि इस ग्रंथ की रचना अधिकांश दोहा-चौपाई अथवा चौपई छंदों में हुई है और तुलसीदास जी ने 'मानस' की रचना कर इन छंदों के लिए अवधी को सबसे अधिक उपयुक्त प्रमाणित कर दिया था। केशव द्वारा प्रयुक्त अवधी के शब्द इहाँ, उहाँ, दिखाउ, रिझाउ आदि हैं।

'आइ गये घनश्याम बिहाने' ।[4]
'एक इहाँ ऊ उहाँ अति दीन सुदेत दुहूँ दिसि के जन गारी' ।[5]
'प्रभाउ आपनो दिखाउ छोंड़ि बाल भाइ कै'।
'रिझाउ राजपुत्र मोहिं राम लै छुड़ाइ कै' ।[6]
'हंसि बंधु त्यों दृगदीन' ।[7]
'श्रुति नासिका बिनु कीन' ।[8]
'मैं तेरो बलि बंधु बंधायो बावन यह है' ।[9]
'यहै मुक्ति जग जानिये' ।[10]
'समुझि देखि हिय, लोभ प्रवीन' ।[11]

अरबी-फारसी आदि विदेशी भाषा के शब्दों का प्रयोग भी केशव के प्रायः सभी ग्रंथों में हुआ है। केशव का समय सम्राट अकबर और जहाँगीर का राजत्व-काल था जबकि हिन्दू-मुसलमानों में घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित हो चुका था और मुसलमान विदेशी न रहकर एक प्रकार से भारतीय ही हो गये थे। केशव का स्वयं बीरबल, टोडरमल, खानखाना आदि दिल्ली

१. रसिकप्रिया, पृ० सं० ६७।
२. रसिकप्रिया, पृ० सं० ६७।
३. रसिकप्रिया, पृ० सं० १५६।
४. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० ७४।
५. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० ११।
६. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० १३२।
७. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० २१७।
८. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० २१७।
९. वीरसिंहदेव-चरित, पृ० सं० ६।
१०. वीरसिंहदेव-चरित, पृ० सं० ७।
११. वीरसिंहदेव-चरित, पृ० सं० ७।

सम्राट के सभासदों से परिचय था अतएव इनकी रचनाओं में अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग स्वाभाविक है। किन्तु विदेशी भाषा के शब्दों का प्रयोग करते समय केशव ने अधिकांश हिन्दी भाषा की प्रकृति की रक्षा का ध्यान रखा है। उन्होंने अरबी-फारसी भाषा की विभक्तियों को प्रायः नहीं अपनाया है और शब्दों का प्रयोग भी तद्भव रूप में ही किया है। एक-दो स्थलों पर फारसी ग्रंथों के भाव को भी इन्होंने अपना लिया है। विदेशी भाषा के शब्दों का प्रयोग सबसे कम 'रसिकप्रिया' और 'कविप्रिया' नामक ग्रंथों में तथा सबसे अधिक 'वीरसिंहदेव-चरित' में हुआ है। केशव द्वारा प्रयुक्त विदेशी भाषा के कुछ शब्द नीचे दिये जाते हैं :

'गणपति सुखदायक, पशुपति लायक सूर सहायक कौन गनै'।[1]
'देखि तिन्हैं तब दूरि ते गुदरानो प्रतिहार'।[2]
'पुनि तुम दीन्ही कन्यका त्रिभुवन की सिरताज'।[3]
'मिले आगिली फौज को परशुराम पहुंचाय'।[4]
'जामवंत हनुमन्त नल नील मरातिब साथ'।[5]
'कूकुर एक फिरादहिं आयो'।[6]
'शोर भयो सकुचे समुझे'।[7]
'बिरह विनोद फील पेलियत पचि कै'।[8]
'शतरंज कैसी बाजी राखी रचिकै'।[9]
'बूझिबे की जक लागी है कान्हहि'।[10]
'नीके ही नकीब शम'।[11]
'शेरशाह असलेम के उर साली समसेर'।[12]
'चरण धरत चिंता करत नींद न भावत शोर'।[13]

१. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० २१।
२. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० ३०।
३. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० ६८।
४. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० १२१।
५. रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, पृ० सं० १०१।
६. रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, पृ० सं० २५६।
७. रसिकप्रिया, पृ० सं० ११३।
८. रसिकप्रिया, पृ० सं० १५२।
९. रसिकप्रिया, पृ० सं० १५२।
१०. रसिकप्रिया, पृ० सं० १६५।
११. रसिकप्रिया, पृ० सं० २५०।
१२. कविप्रिया, पृ० सं० ६।
१३. कविप्रिया, पृ० सं० २५।

'निजदूत अभूत जरा के किधौं अफताली जुरा जनु लायक के'।[1]
'सुनत श्रवण बकसीस एक ईश की'।[2]
'मधुसाहि की तेग बढ़्यो दिन ही दिन पानी'।[3]
'कूँच न कीजै राज अब आयो वरषा काल'।[4]
'नृपनायक के दरबार गये'।[5]
'सोचहिं सातहु सिंधु सात हज्जार रसातल'।[6]
'हौ गरीब तुम प्रगट ही सदा गरीब निवाज'।[7]
'हजरत सों जो मिलिहै आज'।[8]
'साहि सलेम कियो फरमान'।[9]
'हमसै दीनन दीनी दादि'।[10]
'करौ नवाजसु वाकी जाइ'।[11]
'देखि पयादो बल को धाम'।[12]

अन्त्यानुप्रास अथवा मात्रा-पूर्ति के लिये कभी-कभी कवि शब्दों को परिवर्तित रूप में लिखते हैं। सूर, तुलसी आदि हिन्दी के प्रायः सभी कवियों ने इस अधिकार का उपयोग समय-समय पर किया है। इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि शब्द का रूप इस प्रकार न बदल जाये कि वह दूसरे शब्द का ही रूप ग्रहण कर ले। केशव ने इस अधिकार का उपयोग करते हुये कुछ स्थलों पर शब्दों का इस प्रकार रूपान्तर किया है कि वह दूसरा शब्द ही प्रतीत होता है, यद्यपि ऐसे स्थल बहुत कम हैं; जैसे 'साधु' के स्थान पर 'साध', 'लाजक' के स्थान पर 'लायक', 'परवाह' के स्थान पर 'प्रवाह', 'समाय' के स्थान पर 'माइ', 'वेश्या' के स्थान पर 'विस्वा'।

'अशेष शास्त्र विचारिकै, जिन जान्यौ मत साध'।[13]

१. कविप्रिया, पृ० सं० ६६।
२. कविप्रिया, पृ० सं० ११९।
३. विज्ञानगीता, पृ० सं० ९।
४. विज्ञानगीता, पृ० सं० ४८।
५. वीरसिंहदेव-चरित, पृ० सं० ५२।
६. वीरसिंहदेव-चरित, पृ० सं० ७।
७. वीरसिंहदेव-चरित, पृ० सं० ३२।
८. वीरसिंहदेव-चरित, पृ० सं० ३३।
९. वीरसिंहदेव-चरित, पृ० सं० ४२।
१०. वीरसिंहदेव-चरित, पृ० सं० ४६।
११. वीरसिंहदेव-चरित, पृ० सं० ४७।
१२. वीरसिंहदेव-चरित, पृ० सं० ५३।
१३. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० ५।

'बरषा फल फूलन लायक की' ।[1]
'एते पर केशवदास तुम्है न प्रवाह' ।[2]
'विहना फूल्यो अंग न माइ' ।[3]
'मदिरा पी विस्वा पहं जाइ' ।[4]

केशवदास जी ने कुछ शब्द गढ़ लिये हैं जैसे बालकता, घालकता, बर्ष्यो, जेय, लेय, देयमान, मुचावन तथा दिखसाध आदि ।

'अति कोमल केशव बालकता ।
बहु दुस्कर राकस घालकता' ।[5]
'देवन गुण पर्ष्यो, पुष्पन बर्ष्यो, हर्ष्यो अति सुरनाहु' ।[6]
'अखंड कीर्ति लेय, भूमि देयमान मानिये' ।
'अदेव देव जेय भीत रक्षमान लेखिये' ।[7]
'मान मुचावन बात तजि कहिये और प्रसंग' ।[8]
'आजु कहा दिखसाध लगी है' ।[9]

कुछ शब्द अप्रचलित अर्थ में भी प्रयुक्त हुये हैं, जैसे 'अन्त' के अर्थ में 'विशेष', 'शत्रुघ्न' के लिये 'रघुनंदन', 'बाप के मारने वाले' के अर्थ में 'बपमारे', तथा 'मारणीय' के अर्थ में 'मारने' आदि । इस प्रकार के शब्द 'रामचंद्रिका' नामक ग्रंथ में अधिक हैं ।

'अनंत मुख गावै विशेषहि न पावै' ।[10]
'लीन्हो लवणासुर शूल जहाँ
'मारयो रघुनंदन बाण तहाँ' ।[11]
'अंगद संग लै मेरो सबै दल आजुहि क्यों न हतै बपमारे' ।[12]
'ब्रह्मदोष युत मारने कहा तात कहा मात' ।[13]

१. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० ५ ।
२. रसिकप्रिया, २१६ ।
३. वीरसिंहदेव-चरित, ६ ।
४. वीरसिंहदेव-चरित, ३ ।
५. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० ३४ ।
६. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० ३४ ।
७. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० ४५ ।
८. रसिकप्रिया, पृ० सं० १८८ ।
९. रसिकप्रिया, पृ० सं० २०६ ।
१०. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० ७ ।
११. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० २७६ ।
१२. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० ३४४ ।
१३. विज्ञानगीता, पृ० सं० ४५ ।

केशवदास जी ने कुछ ऐसे शब्दों का भी प्रयोग किया है जो आजकल प्रायः अप्रचलित हैं। इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग अधिकांश 'वीरसिंहदेव-चरित' नामक ग्रंथ में ही हुआ है, जैसे बिबूचे, उनमान, ओसिलौ, सांथर आदि।

'बहुत बिबूचे तोसे घनै'।[1]
'बात कहहि अपने उनमान'।[2]
'कहि धौं कछू ओसिलौ भयो'।[3]
'देख नगर सांथर गढ़ ग्रामा'।[4]

मात्रा-पूर्ति अथवा अन्त्यानुप्रास के लिये कवि कभी-कभी भरती के शब्दों का भी प्रयोग करते हैं। केशव द्वारा प्रयुक्त किल, सु, जु आदि शब्द इसी प्रकार के हैं। मात्रा-पूर्ति ही के लिये केशव ने कुछ स्थलों पर ऐसी संधियाँ भी की हैं जो सन्धि के नियमों का अपवाद हैं, जैसे मिलै + अब = मिलेब अथवा भये + अब = भयेब।

'कै श्रोणित कलित कपाल यह किल कापालिक काल को'।[5]
'जनु तरुनी है रतिनायक की'।[6]
'सु आनी गहे केश लंकेश रानी'।[7]
'सोदर सुंदरि बंधु तजे जू।
बोध को कानन जाइ बसे जू'।[8]
'मन लेहु मिलेब गहैं हम गैलो'।[9]
'केशवदास दुख दीबे लायक भयेब तुम'।[10]

भाषा को सजाने और आकर्षक बनाने के लिये कविगण लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग करते हैं। केशव की रचनायें भी लोकोक्तियों और मुहावरों से भरी पड़ी हैं। मुहावरों का प्रयोग अन्य ग्रंथों की अपेक्षा 'रसिकप्रिया' में अधिक हुआ है। भाषा में चमक लाने के साथ ही इनका प्रयोग कवि की व्यवहार-कुशलता, प्रयोग-नैपुण्य और सूक्ष्म-निरीक्षण का परिचायक है। कुछ मुहावरे और लोकोक्तियाँ यहाँ दी जाती हैं।

१. वीरसिंहदेव-चरित, पृ० सं० ७।
२. वीरसिंहदेव-चरित, पृ० सं० ८।
३. वीरसिंहदेव-चरित, पृ० सं० ३८।
४. वीरसिंहदेव-चरित, पृ० सं० ४०।
५. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० ७०।
६. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० १२६।
७. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० ४०४।
८. विज्ञानगीता, पृ० सं ६३।
९. रसिकप्रिया, पृ० सं० २२०।
१०. रसिकप्रिया, पृ० सं० २४२।

मुहावरे

'राजसभा तिनुका करि लेखौं' ।[1]
'बीस बिसे ब्रत भंग भयो' ।[2]
'बंचक कठोर ठेलि कीजै बाराबाट आठ
झूठ पाठ कंठ पाठकारी काठ मारिये' ।[3]
'बोलत बोल फूल से झरैं' ।[4]
'मामी पिये इनकी मेरी माइ को
हे हरि आठहू गांठ हठाये' ।[5]
'काको घर घालिबे को बसे कहा घनश्याम' ।[6]
'अब जो तू मुख मोरिहै' ।[7]
'फूल्यौ अंग न माय' ।[8]

लोकोक्तियाँ:

'होनहार ह्वै रहै मिटै मेटी न मिटाई' ।[9]
'होय तिनूका वज्र वज्र तिनुका ह्वै टूटै' ।[10]
'आग को तो दाध्यो अंग आग ही सिरातु है' ।[11]
'ऊँटहि ऊँटकटारहि भावै' ।[12]
'कहि केशव आपनी जाँघ उघारि के आपही लाजन को मरई' ।[13]
'तातो है दूध सिराइ न पीजै' ।[14]
'प्यास बुझाइ न ओस के चाटे' ।[15]

कुछ स्थलों पर केशव ने बुंदेलखंडी अथवा अवधी भाषा के मुहावरों और लोकोक्तियों का भी प्रयोग किया है, यथा:

१. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० ६१ ।
२. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं ७४ ।
३. रामचन्द्रिका, उत्तरार्ध, पृ० सं० १११
४. रामचन्द्रिका, उत्तरार्ध, पृ० सं० १६७ ।
५. रसिकप्रिया, पृ० सं २७ ।
६. रसिकप्रिया, पृ० सं १२५ ।
७. रसिकप्रिया, पृ० सं० १७८ ।
८. वीरसिंहदेव-चरित, पृ० सं० ६ ।
९. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० १२६ ।
१०. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० १२६ ।
११, कविप्रिया, पृ० सं० ६८ ।
१२. रसिकप्रिया, पृ० सं० ३३ ।
१३. रसिकप्रिया, पृ० सं० १७८ ।
१४. रसिकप्रिया, पृ० सं० २१५ ।
१५. रसिकप्रिया, पृ० सं० २१८ ।

'रामचंद्र कटि सों पट्ट बांध्यो' ।[१]
'जबै धनु श्री रघुनाथ जू हाथ कै लीनो' ।[२]
'ओली ओड़त हौं' ।[३]
'दह पारी भूंजी माछरी' ।[४]

भाषा की सांकेतिकताः

कभी-कभी कवि किसी बात को कहना तो चाहता है किन्तु उसका स्पष्टीकरण अरुचिकर और अवांछनीय समझता है, तथा कभी भाव-विशेष के स्पष्टीकरण में उसकी गंभीरता और अभीष्ट प्रभाव सुरक्षित रखने में अपने शब्दों को असमर्थ पाता है। ऐसे स्थलों पर वह चुने हुये संयमित शब्दों के द्वारा एक संकेत-मात्र देकर मौन हो जाता और भाव-विशेष का स्पष्टीकरण पाठक पर छोड़ देता है। केशव ने भी कुछ स्थलों पर इस प्रकार के संकेत किये हैं, यद्यपि उनकी भाषा का यह स्वाभाविक गुण नहीं है।

यज्ञभूमि की रक्षा के लिये विश्वामित्र ने दशरथ से उनके लाडले रामलक्ष्मण को माँगा। बहुत तर्क-वितर्क के बाद वशिष्ठ के समझाने पर दशरथ ने उन्हें विश्वामित्र को सौंप दिया। किन्तु उस समय उनके हृदय की क्या दशा हुई होगी, इसका अनुभव वही कर सकता है जिसकी पुत्र-प्राप्ति की इच्छा जीवन भर अतृप्त रह कर जीवन की संध्या में फलवती हुई हो और उन्हीं पुत्रों को समर्थ होते न होते ऐसे स्थल पर भेजना पड़ रहा हो जहाँ से लौटना न लौटना भाग्याधीन हो। दशरथ की इसी दशा का चित्रण केशव ने कुछ शाब्दिक रेखाओं द्वारा किया है यथाः

'राम चलत नृप के युग लोचन।
वारि भरित भये वारिद रोचन।
पायन परि ऋषि के सजि मौनहिं।
केशव उठि गये भीतर भौनहिं'।[५]

केशव का मौन उनके हृदय की तीव्र और गम्भीर वेदना का मापक है। वेदना की गम्भीरता का वर्णन किसी दूसरे प्रकार से नहीं हो सकता था। राजा का भवन में चले जाना भी सकारण है। उनके नेत्रों में आंसू छलछला आये थे। सभा में रो देना धीर-गम्भीर दशरथ के चरित्र की महानता घटा देता। अतएव कवि ने उन्हें उस स्थल से हटा दिया। कौन जाने भवन में पहुँचते ही उनके हृदय का बांध न टूट गया हो।

अन्य स्थल पर राम के बाण से घायल होकर मारीच मरते-मरते राम के स्वर से लक्ष्मण को सहायतार्थ पुकारता है। सीता उनसे जाने का अनुरोध करती है। लक्ष्मण उन्हें

१. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० ८६।
२. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० ८६।
३. रसिकप्रिया, पृ० सं० २१८।
४. बीरसिंहदेवचरित, पृ० सं ६।
५. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० २७, पृ० सं० ३७-३८

जंगल में अकेली छोड़ना उचित नहीं समझते। वह भली भाँति जानते हैं कि राम पर कोई आपत्ति नहीं आ सकती। सीता इसका कुछ और ही अर्थ लगाकर जो कुछ कहती हैं, उसको निम्नलिखित छंद में स्पष्ट न कह कर भी केशव ने जिस कौशल से कह दिया है, वह सराहनीय है।

'राजपुत्रिका कह्यौ सु और को कहै सुनै।
कान मूंदि बार बार सीस बीसधा धुनै' ॥[1]

पांडित्य-प्रदर्शन की प्रेरणा से जो छन्द नहीं लिखे गये हैं, उनमें कभी-कभी विषय, भाव और रस के अनुकूल शब्दों का सुन्दर प्रयोग हुआ है। यदि कहीं किसी विशेष ध्वनि का वर्णन करना है तो शब्दों से वही ध्वनि निकल रही है। यदि भाव मधुर है तो भाषा में भी स्वाभाविक माधुर्य आगया है। यदि कहीं ओज का प्रदर्शन वांछित है तो भाषा ओजमयी हो गई है। धनुष टूटने पर उसकी भीषण 'टंकोर' कवि ने ट, ड, और न आदि अक्षरों के प्रयोग द्वारा उत्पन्न करने की चेष्टा की है।

'प्रथम टंकोर झुकि झारि संसार मद,
चंड कोदंड रह्यो मंडि नवखंड को।
चालि अचला अचल घालि दिगपाल बल,
पालि ऋषिराज के वचन परचंड को।
सोधु दै ईश को बोधु जगदीश को,
क्रोध उपजाइ भृगुनंद बरबंड को।
बांधि वर स्वर्ग को साधि अपवर्ग को, धनु
भंग को शब्द गयो भेदि ब्रह्मंड को' ॥[2]

इसी प्रकार सारंगी के तारों की झनकार और बाँसुरी के छिद्रों से उत्पन्न सांस की सरसराहट के लिये क्रमशः 'न' और 'अनुस्वार' तथा 'स' और 'र' का प्रयोग किया गया है:

'कहूँ किन्नरी किन्नरी लै बजावैं।
सुरी आसुरी बांसुरी गीत गावैं' ॥[3]

लवकुश के आखेट के लिये चलने पर चारों ओर जो खलभली मच जाती है उसका अनुभव शब्दों से ही हो जाता है।

'खलक में खैल भैल, मनमथ मन ऐल,
शैलजा के शैल गैल गैल प्रति रोक है।
सेनानी के सटपट, चन्द्र चित चटपट,
अति अति अटपट अंतक के ओक है।
इन्द्र जू के अकबक, धाता जू के धकपक,
शंभु जू के सकपक केशोदास को कहै।

१. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० २२५।
२. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ४३, पृ० सं० ८७-८८।
३. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० २६१।

जब जब मृगया को राम के कुमार चढ़ैं,
तब तब कोलाहल होत लोक लोक है' ॥[1]

इसी प्रकार राम की सेना के प्रस्थान करने पर पृथ्वी किस प्रकार धसकती सी प्रतीत होती है, इसका अनुभव कराने के लिये कवि ने 'दचकनि दचकति,' 'मचकत,' 'थलथल,' 'लचकि लचकि जात,' 'अतल वितल तल' आदि शब्दों का प्रयोग किया है।

'उचकि चलत कपि दचकनि दचकत,
मंच ऐसे मचकत भूतल के थल थल।
लचकि लचकि जात सेस के असेस फन,
भाग गई भोगवती अतल वितल तल' ॥[2]

युद्ध की उग्रता प्रदर्शित करने के लिए केशव ने कर्णकटु अक्षरों का प्रयोग किया है :

'भेरे से भट भूरि भिरे बल खेत खरे करतार करे कै।
'भोरे भिरे रण-भूधर भूपन टारे टरे इभ कोट अरे कै।
'रोप सों खर्ग हने कुश केशव भूमि गिरे न टरेहू मरे कै।
राम विलोकि कहैं रस अद्भुत खाये मरे नग नाग परे कै' ॥[3]

भाषा में गुण :

गुण यद्यपि रस-का उत्कर्ष बढ़ाते हैं फिर भी इनका सम्बन्ध शब्दों और उनके द्वारा वाक्यों से ही है। माधुर्य, ओज और प्रसाद ये तीन मुख्य गुण हैं। इन गुणों को उत्पन्न करने के लिये शब्दों की बनावट के प्रकार क्रमशः मधुरा, परुषा और प्रौढ़ा हैं। केशव के काव्य में यथास्थान सभी गुण स्थित हैं। माधुर्य गुण चित्त को द्रवीभूत और आह्लादित करता है। इसकी स्थिति संयोग शृंगार से करुण में, करुण से वियोग में, और वियोग से शांत रस में उत्तरोत्तर अधिक होती है। टवर्ग श्रुतिकटु है, अतएव माधुर्य का विघातक कहा गया है। केशव की रचनाओं में माधुर्य गुण की सबसे अधिक स्थिति 'रसिकप्रिया' नामक ग्रन्थ में है। इस ग्रंथ के प्रायः सभी छंद माधुर्य गुण-पूर्ण हैं। इसका कारण यह है कि इसका अधिकांश शृंगार रस को ही अर्पित है। कुछ माधुर्य गुण-पूर्ण छन्दों के उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं। निम्न-लिखित छन्द केशव की रचनाओं में सबसे अधिक श्रुति-मधुर है। इसे पढ़ कर मैथिल-कोकिल विद्यापति अथवा नन्ददास की कोमलकान्त पदावली की स्मृति आ जाती है :

'एक रदन गज बदन सदन बुधि मदन कदन सुत।
'गौरि नंद आनंद कंद जगबंद चंद युत।
'सुख दायक दायक सुकृत्त जग नायक नायक।
'खल घायक घायक दरिद्र सब लायक लायक।

१. कविप्रिया, छं० सं० ३५, पृ० सं १६१।
२. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० ३११।
३. रामचन्द्रिका, उत्तरार्ध, छं० सं० १६, पृ० सं० ३२३।

गुण गण अनंत भगवंत भव भगतवंत भव भय हरण।
जय केशवदास निवासनिधि लंबोदर अशरण शरण' ॥[१]

'मेरे तो नाहिने चञ्चल लोचन नाहिने केशव बानि सुहाई।
जाने न भूषण भेद के भाव न भूलहु नैनहि भौंह चढ़ाई।
भोरेहू न चितयो हरि ओर त्यों घैर करैं इहि भाँति लुगाई।
रंचक तो चतुराई न चित्तहि कान्ह भये वश का हेत माई' ॥[२]

'मेह कि हैं सखि आंसू उसासनि साथ निसा सुविसासिनि बाढ़ी।
हांसी गई उड़ि हंसिनि ज्यों, चपला समनींद भई गति काढ़ी।
चातकि ज्यों पिउ पीउ रटै, चढ़ी चाप तरंगिनि ज्यों तन गाढ़ी।
केशव वाकी दशा सुनि हौ अब, आगि बिना अंग अंगन डाढ़ी' ॥[३]

ओज गुण चित्त का उद्दीपन करता है। वीर, वीभत्स और रौद्र रसों में इसकी स्थिति उत्तरोत्तर अधिक होती है। द्वित्ववर्ण, संयुक्त वर्ण, अर्धरकार, टवर्ग, और लम्बे-लम्बे समास आदि ओज गुण के व्यंजक माने गये हैं। वीर, रौद्र आदि रसों का प्रसंग आते ही केशव की भाषा में भी स्वाभाविक रूप से ओज आ गया है। ऐसे स्थल 'रामचंद्रिका' और 'रतनबावनी' नामक ग्रंथों में विशेष हैं, यथा :

'बोरौं सबै रघुवंश कुठार की धार में बारन बाज सरत्थहिं।
बाण की वायु उड़ाइ के लच्छन लच्छ करौं अरिहा समरत्थहिं।
रामहि बाम समेत पठै बन कोप के भार में भूँजौ भरत्थहिं।
जो धनु हाथ धरै रघुनाथ, तौ आजु अनाथ करौं दशरत्थहिं' ॥[४]

अथवा :

'जहं अमान पठ्ठान ठान हिय बान सु उट्ठिव।
तहं केशव काशी नरेश दल रोष भरिट्ठिव।
जहं तहं परजुरि जोर ओर चहुँ दुंदुभि बज्जिय।
तहां विकट भट सुभट छुटक घोटक तन तज्जिय' ॥[५]

जिन रचनाओं का अर्थ पढ़ते ही हृदयंगम हो जाता है, वहाँ प्रसाद गुण माना जाता है। माधुर्य और ओज गुणों की स्थिति रस-विशेष में ही होती है किन्तु प्रसाद गुण की स्थिति सब रसों में हो सकती है; क्योंकि माधुर्य और ओज का सम्बन्ध शब्दों के वाह्य रूप से है और प्रसाद का उनके अर्थ से। भाषा की दृष्टि से यद्यपि केशव की अधिकांश रचना प्रसाद गुण-युक्त

१. रसिकप्रिया, छं० सं० १, पृ० सं० ३, ४।
२. रसिकप्रिया, छं० सं० ६, पृ० सं० २२।
३. कविप्रिया, छं० सं० ४२, पृ० सं० १७५, १७६।
४. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० १२, पृ० सं० १२५।
५. रतनबावनी, पंचरत्न, छं० सं० १०, पृ० सं० २, ३।

है किन्तु इस सम्बन्ध में हिन्दी सहित्य-संसार में बड़ा भ्रम फैला हुआ है। कोई उन्हें 'कठिन काव्य का प्रेत' समझ कर उनके ग्रंथों का अवलोकन तो दूर रहा, उनकी परछांई से भी दूर भागता है; तो किसी ने लिख मारा है कि यदि किसी कवि को विदाई न देनी हो तो केशव की कविता का अर्थ पूँछे।[1] स्व० डा० बड़थ्वाल ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि माधुर्य और प्रसाद गुण से तो जैसे वे खार खाये बैठे थे।[2] किन्तु इन कथनों में तथ्य बहुत कम है। वास्तव में 'रामचंद्रिका' ग्रंथ के कुछ छंद तथा 'कविप्रिया' के दो-चार छन्दों के अतिरिक्त 'रसिकप्रिया', 'वीरसिंहदेव-चरित', 'जहाँगीर-जस-चंद्रिका' तथा 'रतनबावनी' आदि ग्रंथों के अधिकांश छन्द प्रसाद गुण-पूर्ण हैं। 'रामचन्द्रिका' और 'कविप्रिया' के कठिन छन्दों की कठिनता भी कवि की जानी-समझी कठिनता है, जो पाण्डित्य-प्रदर्शन के लिए श्लिष्ट शब्दों के प्रयोग द्वारा उत्पन्न की गई है। कुछ थोड़े से चुने हुये छन्दों की भाषा के आधार पर इस प्रकार के आक्षेप उचित नहीं हैं। सूर और तुलसी के ग्रंथों में केशव से कम कठिनता नहीं है, अधिक भले ही हो।[3] तुलसी की 'विनयपत्रिका' का प्रथमार्ध और सूर के दृष्टिकूट पद प्रमाण-स्वरूप उपस्थित किये जा सकते हैं। केशव के प्रसाद गुणयुक्त कुछ छन्द अवलोकनार्थ यहाँ उपस्थित किये जाते हैं।[4]

'शोभित मंचन की अवली गजदंतमयी छवि उज्ज्वल छाई।
ईश मनो वसुधा में सुधारि सुधाधर मंडल मंडि जोन्हाई।
तामहँ केशवदास विराजत राजकुमार सबै सुखदाई।
देवन स्यों जनु देवसभा शुभ सीयस्वयंबर देखन आई' ॥[5]

१. 'कवि को दीन न चहै विदाई। पूछै केशव की कविताई' ॥

२. ना० प्र० प०, भाग १०, सं० १९८६, पृ० सं० ३६८।

३. 'सूरदास के न जाने कितने पदों के अर्थ अभी तक नहीं लग सके। तुलसीदास की कविता में बहुत से स्थल अभी तक विवाद-ग्रस्त हैं। परन्तु इन दोनों कवियों पर क्लिष्ट होने का आक्षेप नहीं किया जाता'।

केशव की काव्य-कला, शुक्ल, पृ० सं० १४६।

४. 'भूलि गयो सब सो रस रोष, मिटे भव के भ्रम रैन विभातो।
को अपनो पर को, पहिचान न, जानति नाहिने सीतल तातो।
नेकही में वृषभान लली की भई, सुन जाकी कही परै बातौ।
एकहि बेर न जानिये केशव काहेते छूटि गये सुख सातौ' ॥

कविप्रिया, छं० सं० ४३, पृ० सं० १७७।

'कौन गनै इनि लोकन रीति विलोकि विलोकि जहाजनि बोरै।
लाज विशाल लता लपटी तन धीरज सत्य तमालनि तोरै।
वंचकता अपमान अयान अलाभ भुजंग भयानक कृष्णा।
पाइ बढ़ो कहुँ घाट न केशव क्यों तरि जाइ तरङ्गिनि तृष्णा' ॥

विज्ञानगीता, छं० सं० १७, पृ० सं० ३४।

५. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० स० १५, पृ० सं० ४७।

'केकिन की केका सुनि काके न मथत मन,
मनमथ मनोरथ रथ पथ सोहिये।
कोकिला की काकलीन कलित ललित बाग,
देखत न अनुराग उर अवरोहिये।
कोकन की कारिका कहत शुक शारिकान,
केशोदास नारि का कुमारिका हू मोहिये।
हंसमाल बोलन ही मान की उतारि माल,
बोले नन्दलाल सों न ऐसी बाल को हिये' ॥[1]

'केशव क्यौंहूँ भर्‍यो न परै अरु जोर भरे भय की अधिकाई।
रीतत तौ रितयो न घरी कहुं रीति गये अति आरतताई।
रीतो भलो न भरो भलो कैसहु रीते भरे बिन कैसे रहाई।
पाइये क्यों परमेश्वर की गति पेटन की गति जान न जाई' ॥[2]

इस प्रकार स्पष्ट है कि केशव को अपनी काव्य-भाषा पर पूर्ण अधिकार है। यदि तुलसी के समान ब्रज और अवधी दोनों भाषाओं पर उन्हें समानाधिकार न था तो इस कमी की पूर्ति ब्रजभाषा पर केशव का असीमाधिकार कर देता है। तुलसी अथवा सूर के टीकाकार उनकी पंक्ति या छन्द का दो या तीन अर्थ भले निकालें किन्तु इन कवियों को भी यह सब अर्थ प्रकट करना अभीष्ट था, यह संदिग्ध है। दूसरी ओर केशवदास डंके की चोट पर कहते हैं कि उनके अमुक छन्द से पाठक अमुक-अमुक अर्थ निकाले। उदाहरण-स्वरूप नीचे दिये हुये छंद में एक साथ लोकनाथ (ब्रह्मा), त्रिलोकनाथ (कृष्ण), नाथ-नाथ (शिव), रघुनाथ तथा राना अमरसिंह की श्लेष की सहायता से प्रशंसा की गई है।

'भावत परम हंस जात गुण सुनि सुख,
पावन संगीत मीत बिबुध बखानिये।
सुखद सकति धर समर सनेही बहु,
बदन विदित यश केशवदास गनिये।
राजै द्विजराज पद भूषन विमल कमला-
सन प्रकासे परदार प्रिय मानिये।
ऐसे लोकनाथ कै त्रिलोकनाथ नाथ-
नाथ कैधौं रघुनाथ कै अमरसिंह जानिये' ॥[3]

केशव की भाषा के विषय में स्व० डा० श्यामसुन्दर दास जी ने लिखा है कि जो लोग हिन्दी भाषा को भाषा ही नहीं समझते और कहते हैं कि हिन्दी के शब्दों में मनोभाव प्रगट करने की शक्ति बहुत ही अल्प है, उनसे हमारा निवेदन है कि वे केशव के ग्रंथ पढ़ें और

१. कविप्रिया, छं० सं० ४६, पृ० सं० १०३, १०४।
२. विज्ञानगीता, छं० सं २७, पृ० सं० १४, १५।
३. कविप्रिया, छं० सं० २३, पृ० सं० २४१।

देखें कि इस भाषा में क्या चमत्कार है। जिस भाषा वाले को अपनी भाषा की समृद्धि और पूर्णता का अहंकार हो वह उस भाषा का सर्वोत्तम छंद लेकर केशव के चुनिंदा छंदों से मिलान करे तो मालूम हो जायगा कि उसकी भाषा हिन्दी भाषा के सामने तुच्छातितुच्छ है। क्या किसी भाषा का कवि अपने किसी छन्द के चार-चार और पाँच-पाँच तरह के शब्दार्थ लगा सकता है। केशव की कविता में ऐसे छंद बहुत हैं जिनका अर्थ दो-तीन तरह से होता है। इतना ही नहीं, कुछ छंद ऐसे भी हैं जिनका शब्दार्थ पाँच-पाँच तरह का होता है। इसी कठिनता के कारण कुछ लोग केशव की कविता को कम पढ़ते हैं। हमारी दृढ़ धारणा है कि केशव ने हिन्दी को महान गौरव प्रदान किया है। जिस प्रकार तुलसी अपनी सरलता और सूर अपनी गंभीरता के हेतु सराहनीय हैं, वैसे ही वरन् उससे भी बढ़ कर केशव अपनी भाषा की परिपुष्टता के लिये प्रशंसनीय हैं।[1]

(७) छन्द

छन्दशास्त्र का महत्व :

भारतीय छन्दशास्त्र का इतिहास बहुत प्राचीन है। वेद संसार के प्राचीनतम ग्रंथ माने जाते हैं और वेदों की रचना छंदों में ही हुई है। इस प्रकार भारत छंदरचना के क्षेत्र में भी संसार का अग्रणी है। वैदिक काल में काव्य के लिये छंद का कितना महत्व था, यह इसी बात से प्रकट है कि छंदशास्त्र को वेदों के षडंगों (शिक्षा, निरुक्त, व्याकरण, कल्प, ज्योतिष तथा छन्द) में माना गया है और उसे वेदों का 'पाद' (चरण) कहा गया है।[2] यह ठीक ही है। वास्तव में काव्य में बिना छन्द के सम्यक 'गति' नहीं आती। फिर जीवन में संगीत का भी एक महत्वपूर्ण स्थान है। संगीत में मनुष्य तो क्या पशुओं और वृक्षलतादि को भी प्रभावित करने की शक्ति है। अतएव यदि कविता जीवन के लिये है तो संगीत को उससे अलग करना अथवा दूसरे शब्दों में छन्दबन्धन की अवहेलना करना कविता की सम्मोहक शक्ति को कम कर देना होगा, क्योंकि छन्द-शास्त्र नाद-सौंदर्य (सङ्गीत) उत्पन्न करने के नियमों का शास्त्र है।

छन्द के भेद :

छन्द दो प्रकार के माने गये हैं, वैदिक और लौकिक। कुछ छन्द ऐसे हैं जिनका प्रयोग केवल वेदों में ही दिखलाई देता है जैसे अनुष्टुप, गायत्री, उष्णिक आदि। इनको वैदिक छन्द कहा गया है। वेद से इतर शास्त्र, पुराण, काव्यादि ग्रंथों में प्रयुक्त होने वाले छन्दों की 'लौकिक' संज्ञा है। लौकिक छन्दों के तीन भेद माने गये हैं, मात्रिक (जाति) जिनमें लघु-

१. रामचन्द्रिका, मनोरञ्जन पुस्तकमाला, पृ० सं० ४, ५।

२. 'छन्दः पादौतु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ कथ्यते ।
ज्योतिषामयनं नेत्रं निरुक्तम् श्रोत्रमुच्यते ।
शिक्षा घ्राणान्तु वेदस्य मुख व्याकरणं स्मृतम् ।
तस्मात् सांगमधीत्येव ब्रह्मलोके महीयते' ॥

छन्दप्रभाकर, भानु, भूमिका, पृ० सं० २।

गुरु की गणना होती है; वर्णिक (वृत्त) जिनमें गणों की गणना होती है, और 'अक्षर' जिनमें केवल अक्षरों की गणना की जाती है। हिन्दी में लौकिक छन्दों के प्रथम दो ही भेद, मात्रिक और वर्णिक माने गये हैं और कवित्त आदि छन्द, जिनमें अक्षरों की गणना होती है, वर्णिक के अन्तर्गत मान लिये गये हैं।

केशव से पूर्व हिन्दी काव्य-साहित्य में प्रयुक्त छन्द :

केशवदास ने अपनी रचनाओं में मात्रिक और वर्णिक दोनों ही प्रकार के छंदों का प्रयोग किया है। दूसरे, जितने अधिक छन्दों का प्रयोग केशव ने किया है उतने छन्दों का प्रयोग केशव के पूर्ववर्ती, समकालीन अथवा परवर्ती हिन्दी-साहित्य के किसी कवि की रचना में आज तक नहीं दिखलाई देता। हिन्दी-साहित्य के प्रारम्भिक काल की जैन संतों की अपभ्रंश रचनाओं में दूहा छन्द का प्रयोग मिलता है। इसके बाद 'पृथ्वीराज रासो' आदि वीर-काव्यों में छप्पय, दूहा, तोमर, त्रोटक, गाहा और आर्या आदि उस समय के प्रसिद्ध छन्द प्रयुक्त हुये हैं। भक्ति-काल के निर्गुण संत कवियों कबीर आदि ने छन्दों में चिरपरिचित दोहे का अधिक प्रयोग किया है। जायसी आदि प्रेमाश्रयी कवियों ने अपने आख्यानों के लिये दोहा-चौपाई छन्दों को अपनाया है। केशव के समकालीन अष्टछाप कवियों ने अधिकांश पद लिखे हैं। सूरदास, नंददास परमानंद दास आदि कुछ कवियों ने कुछ स्थलों पर दोहा, चौपही, रोला, छप्पय, सार और सरसी आदि छंदों का भी प्रयोग किया है। हाँ, केशव के समकालीन कवियों में एक महाकवि तुलसीदास अवश्य ऐसे हैं जिन्होंने केशव से पूर्व सबसे अधिक छंदों का प्रयोग किया है। तुलसीदास जी ने मात्रिक छंदों में चौपाई, दोहा, सोरठा, चौपैया, डिल्ला, तोमर, हरिगीतिका, त्रिभंगी, छप्पय, भूलना, और सोहर तथा वर्णिक छंदों में अनुष्टुप, इन्द्रवज्रा, तोटक, नगस्वरूपिणी, भुजंगप्रयात, मालिनी, रथोद्धता, वसन्ततिलका, वंशस्थविलम्, शार्दूलविक्रीडित, स्रग्धरा, किरीटी, मालती, दुर्मलिका तथा कवित्त का प्रयोग किया है। केशवदास जी इस क्षेत्र में तुलसी से भी आगे हैं।

केशव द्वारा प्रयुक्त छन्द :

केशव के विभिन्न ग्रंथों में जिन मात्रिक अथवा वर्णिक छन्दों का प्रयोग किया गया है, वे निम्नलिखित हैं :

रसिकप्रिया :

मात्रिक (१) दोहा (२) छप्पय (३) सवैया

वर्णिक कवित्त

नखशिख :

मात्रिक (१) दोहा (२) सवैया

वर्णिक कवित्त

कविप्रिया :

मात्रिक (१) दोहा (२) सवैया (३) छप्पय (४) पद्मावती (५) रोला (६) सोरठा (७) चौपाई

वर्णिक (१) कवित्त (२) प्रमानिका

रामचंद्रिका :

मात्रिक (१) दोहा (२) रोला (३) घत्ता (४) छप्पय (५) प्रज्झटिका (६) अरिल (७) पादाकुलक (८) त्रिभंगी (६) सोरठा (१०) कुंडलिया (११) सवैया (१२) गीतिका (१३) डिल्ला (१४) मधुभार (१५) मोहन (१६) विजया (१७) शोभना (१८) सुखदा (१६) हीर (२०) पद्मावती (२१) हरिगीतिका (२२) चौबोला (२३) हरिप्रिया (२४) रूपमाला

वर्णिक (१) श्री (२) सार (३) दंडक (४) तरणिजा (५) सोमराजी (६) कुमारललिता (७) नगस्वरूपिणी (८) हंस (६) समानिका (१०) नराच (११) विशेषक (१२) चंचला (१३) शशिवदना (१४) शार्दूलविक्रीड़ित (१५) चंचरी (१६) मल्ली (१७) विजोहा (१८) तुरंगम (१६) कमला (२०) संयुता (२१) मोदक (२२) तारक (२३) कलहंस (२४) स्वागता (२५) मोटनक (२६) अनुकूला (२७) भुजंगप्रयात (२८) तामरस (२६) मत्तगयंद (३०) मालिनी (३१) चामर (३२) चन्द्रकला (३३) किरीटसवैया (३४) मदिरा सवैया (३५) सुन्दरी सवैया (३६) तन्वी (३७) सुमुखी (३८) कुसुमविचित्रा (३६) बसंततिलका (४०) मोतियदाम (४१) सारवती (४२) त्वरितगति (४३) द्रुतविलंबित (४४) चित्रपदा (४५) मत्तमातङ्ग लीलाकरणदंडक (४६) अनंगशेखर दण्डक (४७) दुर्मिल सवैया (४८) इन्द्रवज्रा (४६) उपेन्द्रवज्रा (५०) रथोद्धता (५१) चन्द्रवर्त्म (५२) वंशस्थविलम् (५३) प्रमिताक्षरा (५४) पृथ्वी (५५) मल्लिका (५६) गंगोदक (५७) मनोरमा (५८) कमल

वीरसिंहदेव-चरित :

मात्रिक (१) छपदु (छप्पय) (२) चौपही (३) दोहा (दोहरा) (४) हीर (५) कुंडलिया (६) सोरठा

वर्णिक (१) नगस्वरुपिणी (२) भुजंगप्रयात (३) कवित्त (४) दण्डक (५) नाराच

रतनबावनी :

मात्रिक (१) दोहा (२) छप्पय

विज्ञानगीता :

मात्रिक (१) छप्पय (२) सवैया (३) दोहा (४) सोरठा (५) कुंडलिया (६) रुपमाला (७) मरहट्टा (८) हरिगीतिका (६) गीतिका (१०) त्रिभङ्गी (११) तोमर

वर्णिक (१) नराच (२) दंडक (३) तारक (४) हीरक (५) भुजंगप्रयात (६) दोधक (७) नगस्वरुपिणी (८) कवित्त (६) चामर (१०) मल्लिका (११) सुन्दरी (१२) तोटक (१३) हरिलीला (१४) नलिनी (१५) स्वागता (१६) मदिरा (१७) समानिका

जहाँगीरजसचन्द्रिका :

मात्रिक (१) छप्पय (२) दोहा (३) सवैया (४) सोरठा (५) चंचरी (६) रूपमाला

वर्णिक (१) कवित्त (२) भुजंगप्रयात (३) समानिका (४) निशिपालिका

इस सूची से स्पष्ट है कि केशव ने 'रामचन्द्रिका' नामक ग्रंथ में सबसे अधिक छन्दों का प्रयोग किया है। 'रसिकप्रिया', 'कविप्रिया' और 'नखशिख' लक्षण-ग्रंथ हैं, अतएव इनमें अधिकांश दोहा, कवित्त और सवैया का ही उपयोग किया गया है। दोहों में लक्षण दिये गये

हैं और कवित्त अथवा सवैया में उदाहरण। लक्षण-ग्रंथों के लिये यह छन्द सबसे अधिक उपयुक्त भी हैं। मोहन लाल, गोप आदि केशव के पूर्ववर्ती आचार्यों के ग्रन्थ अप्राप्य होने के कारण यह नहीं कहा जा सकता कि इन्होंने उनमें किन छन्दों का उपयोग किया है किन्तु केशव के परवर्ती आचार्यों ने अपने लक्षण-ग्रंथों में प्रायः इन्हीं छन्दों का प्रयोग किया है। 'रसिकप्रिया' नामक ग्रंथ में केवल एक बार मंगलाचरण में छप्पय का प्रयोग हुआ है। 'नखशिख' में दोहा, कवित्त तथा सवैया से इतर छन्दों का प्रयोग नहीं हुआ है। 'कविप्रिया' ग्रंथ में अवश्य छप्पय, रोला, सोरठा आदि कुछ अन्य छंदों का भी प्रयोग किया गया है। इस ग्रंथ में शिक्षाक्षेत्र के अन्तर्गत बारहमासे का वर्णन बारह छप्पयों में हुआ है। इसी प्रकार 'उत्तर' अलंकार के विभिन्न भेदों के उदाहरण के लिये तीन बार छप्पय, एक बार रोला तथा एक बार दोहे का उपयोग किया गया है। जहाँ बड़े छंद के प्रयोग की आवश्यकता समझी गयी, वहाँ केशव ने छप्पय और रोला का प्रयोग किया है और जहाँ छोटे छंद के प्रयोग की आवश्यकता समझी गयी, वहाँ सोरठा छंद का प्रयोग हुआ है। 'यमक' अलंकार का एक उदाहरण प्रमानिका और एक चौपाई छंद में दिया गया है। 'कविप्रिया' में विभिन्न छंदों का प्रयोग केशव की उस रुचि की ओर संकेत कर रहा है जिसके फलस्वरूप 'रामचंद्रिका' में अनेक छंदों का प्रयोग कर उसे स्व० डा० बड़थ्वाल जी के शब्दों में 'छंदों का अजायब-घर, बनाया गया है। जितने अधिक छन्दों का प्रयोग केशव ने 'रामचंद्रिका' में किया है, हिन्दी-साहित्य के किसी ग्रंथ में आज तक नहीं हुआ है। घत्ता, बिजोहा, कमल, मोटनक, सोमराजी, तथा निशिपालिका आदि नाम कदाचित् ही छन्दशास्त्र से इतर किसी ग्रंथ में दिखलाई दें। इसी प्रकार हिन्दी के सुपरिचित दंडक के उपभेद अनंगशेखर तथा मत्तमातंगलीला-करण भी अन्य ग्रंथों में ढूँढने से ही मिलेंगे। सवैया के भी प्रायः सभी प्रसिद्ध उपभेदों मत्तगयंद, चंद्रकला, किरीटि, मदिरा, सुन्दरी तथा दुर्मिल का प्रयोग किया गया है। इतना ही नहीं, छोटे से छोटे तथा लम्बे से लम्बे छन्दों का उपयोग केशव ने इस ग्रंथ में किया है। एकाक्षरी से लेकर अष्टाक्षरी छन्द तक के नमूने तो एक ही स्थल पर ग्रंथारम्भ में उपस्थित किये गये हैं, यद्यपि प्रबन्ध-काव्य के लिये इतने छोटे-छोटे छंदों के प्रयोग की अनुपयुक्तता स्पष्ट है।[1]

1. श्री छंद = सी, धी। री धी ॥८॥
   सार छंद = राम, नाम। सत्य, धाम ॥९॥
   और, नाम। को न, काम ॥१०॥
   रमण छंद = दुख क्यों। टरि है।
   हरि जू। हरि है ॥११॥
   तरणिजा = वरणियो। बरण सो ॥ जगत को। शरण सो ॥१२॥
   प्रिया = सुख कंद है। रघुनन्दन जू ॥
   जग यों कहै। जग वंद जू ॥१३॥
   सोमराजी = गुनी एक रूपी, सुनो वेद गावैं।
   महादेव जाको, सदा चित्त लावैं ॥१४॥

'रामचंद्रिका' में केशव ने मात्रिक की अपेक्षा वर्णिक छंदों का अधिक प्रयोग किया है। वर्णिक छंदों में भी तोटक, तारक, दोधक, नराच, दंडक, तोमर, तथा भुजंगप्रयात का अधिक प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार मात्रिक छंदों में पद्धटिका, त्रिभंगी तथा रूपमाला केशव को अधिक प्रिय प्रतीत होते हैं। 'रामचंद्रिका' में केशव ने बहुत ही शीघ्र छन्द-परिवर्तन किया है। ऐसे स्थल बहुत कम हैं जहाँ कवि ने सात-आठ बार लगातार एक ही छंद का प्रयोग किया हो। सीता को खोजते हुये हनूमान के लंका पहुँचने पर रावण के राजमहल, सीता की दयनीय दशा तथा रावण-सीता-सम्वाद का वर्णन लगातार ग्यारह भुजंगप्रयात छंदों में किया गया है। कुम्भकरण के युद्ध के वर्णन में भी सात बार भुजंगप्रयात छंद का प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार राम के राज्याभिषेक के अवसर पर देवताओं और पितरों की स्तुति के प्रसंग में लगातार सात बार दंडक तथा पंद्रह बार रूपमाला का प्रयोग किया गया है। रामकृत राज्यश्री-निंदा के प्रसंग में भी लगातार सात बार 'जयकरी' का प्रयोग हुआ है।

'वीरसिंहदेव-चरित' नामक प्रबंधकाव्य में, जैसा कि पूर्वपृष्ठों में दिखलाया गया है, अधिकांश दोहा-चौपाई छंदों का प्रयोग किया गया है। केशव के पूर्व जायसी आदि प्रेमगाथाकारों तथा केशव के समकालीन तुलसीदास जी ने 'रामचरितमानस' लिखकर प्रबंध-काव्य के लिए दोहा-चौपाई छंदों की उपयुक्तता सिद्ध कर दी थी। कदाचित् इसीलिये केशवदास जी ने भी अपने प्रबंध-काव्य के लिए दोहा-चौपाई छन्दों को ही चुना हो किन्तु ग्रंथ के पूर्वार्ध में युद्ध का वर्णन होने के कारण इस अंश के लिए इन छंदों का प्रयोग अधिक उपयुक्त नहीं है। दूसरे, इस ग्रंथ में ब्रजभाषा का प्रयोग किया गया है। दोहा-चौपाई अवधी के अपने छंद हैं। ब्रजभाषा में इनका प्रयोग उतना सुन्दर नहीं लगता। फिर भी ग्रंथ के उत्तरार्ध में युद्ध से इतर प्रसंगों का वर्णन होने के कारण इन छंदों का प्रयोग इतना नहीं खटकता।

'रतनबावनी' में वीर रस का वर्णन है और उसके अनुकूल ही वीरगाथा-काल की द्वित्वाक्षरयुक्त शब्दावली के साथ उस काल के प्रसिद्ध दोहा और छप्पय छन्दों का प्रयोग किया गया है।

'विज्ञानगीता' में केशवदास जी एक बार फिर विविध छंदों के प्रयोग की रुचि से प्रेरित दिखलाई देते हैं। इस ग्रंथ में 'रामचंद्रिका' के समान ही मात्रिक की अपेक्षा वर्णिक छंदों का अधिक प्रयोग किया गया है किन्तु यहाँ न तो अपरिचित छंदों का प्रयोग हुआ है और न इतने शीघ्र छंद बदले गये हैं। 'विज्ञानगीता' में अन्य छन्दों की अपेक्षा दोहा, दोधक, तारक, रूपमाला तथा सरस्वती छन्दों का विशेष प्रयोग हुआ है।

'जहाँगीर-जस-चन्द्रिका' में अधिकांश कवित्त-सवैयों का प्रयोग हुआ है। दोहे के अतिरिक्त अन्य छन्दों का प्रयोग बहुत कम स्थलों पर दिखलाई देता है। इस ग्रन्थ में सम्राट जहाँ-

कुमारललिता छंद = विरंचि गुण देखै। गिरा गुणनि लेखै।
अनन्त मुख गावै। विशेषहि न पावै ॥१५॥
नगस्वरूपिणी = भलो बुरो न तू गुनै। वृथा कथा कहै सुनै।
न राम देव गाइहै। न देव लोक पाइहै ॥१६॥
रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं ६-७।

गीर का यश वर्णित है। यश-वर्णन के लिये कवित्त-सवैयों का प्रयोग उपयुक्त ही था। आश्रय-दाताओं का यश-गान करने के लिए कवित्त तो वीरगाथा-काल के चारण कवियों का सबसे अधिक प्रिय छंद रहा है।

छन्द-प्रयोग के क्षेत्र में केशव की मौलिकता :

केशव के छन्द-प्रयोग के नैपुण्य को देखने के लिये सबसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'रामचंद्रिका' है। इस ग्रंथ में छन्द-प्रयोग के क्षेत्र में केशव की कुछ नवीनतायें परिलक्षित होती हैं। तेईसवें प्रकाश में दो स्थलों पर केशव ने चौबोला और जयकरी छन्द का मिश्रण कर दिया है।[1] कहीं चौबोला के दो चरण पहले प्रयुक्त हुये हैं और कहीं जयकरी के। नीचे दिये प्रथम उदाहरण में प्रथम दो चरण चौबोला के हैं, और दूसरे में जयकरी के।

'सादर मन्त्रिन के जु चरित्र। इनके हमपै सुनि सखमित्र।
इनहीं लगे राज के काज। इनही ते सब होत अकाज'।[2]

तथा

'कालकूट ते मोहन रीति। मणि गण ते अति निष्ठुर प्रीति।
मदिरा ते मादकता लई। मन्दर उदर मई भ्रम भई'।[3]

संस्कृत भाषा के काव्य-ग्रन्थों में कहीं-कहीं एक ही भाव डेढ़ श्लोक में वर्णित दिखलाई देता है। हिन्दी में यह परिपाटी नहीं है। हिन्दी के काव्य-ग्रंथों में किसी एक भाव अथवा वस्तु का वर्णन एक अथवा एक से अधिक पूर्ण छन्दों में मिलता है। केशव ने एक दो स्थलों पर एक ही भाव अथवा वस्तु का वर्णन डेढ़ छंद में किया है, जैसे राम के रनिवास की स्त्रियों के नखशिख-वर्णन के अन्तर्गत उनके 'शिरोभूषण' और 'भृकुटि' के वर्णन में यथा :

'शीष फूल शुभ जर्‌यो जराय। मांगफूल सोहै सम भाय।
वेणीफूलन की बर माल। भाल भले बेंदा युग लाल।
तम नगरी पर तेजनिधान। बैठे मनो बारहो भान'।[4]

अथवा :

'भृकुटि कुटिल बहु भायन भरी। भाल लाल दुति दीसत खरी।
मृगमद तिलक रेख युगबनी। तिनकी सोभा सोभित घनी।
जनु जमुना खेलति शुभगाथ। परसन पितहि पसार्‌यो हाथ।[5]

---

१. जयकरी और चौबोला दोनों ही छन्द पन्द्रह मात्रा के हैं, भेद केवल इतना ही है कि जयकरी के अंत में गुरु-लघु होना चाहिये और चौबोला में लघु-गुरु। जयकरी का दूसरा नाम चौपई भी है।

छन्द-प्रभाकर, भानु, पृ० सं० ४८।

२. रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, छं० सं० १४, पृ० सं० ४०।

३. रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, छं० सं० २४, पृ० सं० ४४।

४. रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, पृ० सं० १६४।

५. रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, पृ० सं० १६४।

'ताटंक' और स्नानान्तर तियतन-शोभावर्णन में क्रमशः पद्धटिका तथा हाकलिका छन्द के दो ही चरणों का प्रयोग किया गया है, यथा :

'अति कुञ्जमुलीन सह झलकलीन । फहरात पताका अति नवीन' ।[1]

अथवा :

'केशनि ओरनि सीकर रमै । अच्छनि को तमयी जनु वमै' ।[2]

इस सम्बन्ध में केशव के चौबोला और कुंडलिया का उल्लेख भी आवश्यक है। चौबोला पन्द्रह मात्राओं का छन्द है जिसके अन्त में लघुगुरु होता है। केशव का चौबोला इस लक्षण पर ठीक उतरने पर भी वर्णिक वृत्त है, जिसका रूप है तीन भगण तथा लघु-गुरु, यथा :

'संग लिये ऋषि शिष्यन घने । पावक से तपतेजनि सने ।
देखत बाग तड़ागन भले । देखन औधपुरी कहं चले' ।[3]

कुण्डलिया, आदि में एक दोहा तथा उसके बाद एक रोला छंद रखने से बनता है। अधिकांश कवियों ने कुंडलिया के दूसरे चरण का तीसरे के साथ सिंहावलोकन प्रदर्शित किया है। गिरिधरदास जी ने, जिनकी कुण्डलियाँ प्रसिद्ध हैं, इसी रीति का अनुसरण किया है; किन्तु कभी-कभी कुछ कवियों ने दूसरे चरण का तीसरे के साथ और चौथे चरण का पाँचवें के साथ सिंहावलोकन कराया है। केशवदास जी ने दोनों मार्गों का अनुसरण किया है। यहाँ केशव की दोनों शैलियों की कुंडलियों का क्रमशः एक-एक उदाहरण दिया जाता है :

'नारी तजै न आपनो सपनेहू भरतार ।
पंगु गुंग बौरा बधिर अंध अनाथ अपार ।
अंध अनाथ अपार वृद्ध बावन अति रोगी ।
बालक पंडु कुरूप सदा कुबचन जड़ जोगी ।
कलही कोढ़ी भीरु चोर ज्वारी व्यभिचारी ।
अधम अभागी कुटिल कुमति पति तजै न नारी' ।।[4]

तथा :

'ताते नृप सुग्रीव पै जैये सत्वर तात ।
कहिये बचन बुझाय कै कुशल न चाहो गात ।
कुशल न चाहो गात चहत हौ बालिहि देख्यो ।
करहु न सीता सोध कामवश राम न लेख्यो ।

१. रामचन्द्रिका, उत्तरार्ध, पृ० सं० १६६ ।
२. रामचन्द्रिका, उत्तरार्ध, पृ० सं० २३२ ।
३. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ३६, पृ० सं० १८ ।
४. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० १६, पृ० सं० १६४ ।

राम न लेख्यो चित्त लही सुख सम्पति जाते।
मित्र कह्यो गहि बांह कान कीजत है ताते'॥[1]

'रामचंद्रिका' में रामसीता के विवाह-वर्णन के सम्बन्ध में शिष्टाचार-वर्णन के प्रसंग में अतुकान्त का भी प्रयोग हुआ है, यद्यपि उस समय के प्रायः सभी हिन्दी काव्य-ग्रंथों में तुकान्त का ही प्रयोग होता था। हिन्दी से इतर मराठी, गुजराती, पंजाबी, फारसी, उर्दू आदि अन्य भारतीय भाषाओं के प्राचीन काव्य-ग्रन्थों में भी तुकान्त का ही प्रयोग दिखलाई देता है। अँगरेजी और बंगला भाषाओं में भी अतुकान्त का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। इसका कारण अन्त्यानुप्रास अथवा तुकान्त के कारण उत्पन्न हुई सरसता एवं कर्णमधुरता है। संस्कृत में अवश्य अधिकांश अतुकान्त का ही प्रयोग मिलता है। संस्कृत वृत्त भिन्नतुकान्त के लिये उपयुक्त भी हैं। हिन्दी में आजकल संस्कृत वृत्तों के प्रयोग के साथ ही भिन्नतुकान्त का प्रयोग बढ़ रहा है। अयोध्यासिंह जी उपाध्याय का 'प्रियप्रवास' और अनूपशर्मा का 'सिद्धार्थ' भिन्न-तुकान्त संस्कृत वृत्तों में ही लिखे गये हैं। किन्तु केशव द्वारा अतुकान्त का प्रयोग यह प्रदर्शित करता है कि भिन्नतुकान्त हिन्दी के लिये नवीन वस्तु नहीं है। केशव से भी पूर्व वीरगाथा-काल में संस्कृत वृत्तों के प्रयोग के साथ ही महाकवि चंद ने अतुकान्त का प्रयोग किया है। इस सम्बंध में अयोध्यासिंह जी उपाध्याय ने अपने ग्रंथ 'हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास' में चंद के निम्नलिखित अतुकान्त छन्द का उल्लेख किया है :

'हरित कनक कान्तिं कापि चंपेव गौरा।
रसित पदुम गंधा फुल्ल राजीव नेत्रा।
उरज जलज शोभा नाभि कोषं सरोजं।
चरण कमल हस्ती लीलया राजहंसी'॥[2]

चंद के बाद आज से लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व केशवदास जी की 'रामचंद्रिका' में निम्नलिखित अतुकान्त छन्द का प्रयोग मिलता है।

'गुण गणमणिमाला चित्त चातुर्य शाला।
जनक सुखद गीता पुत्रिका पाय सीता।
अखिल भुवन भर्ता ब्रह्म रुद्रादि कर्ता।
थिर चर अभिरामी कीय जामातु नामी'॥[3]

इस छंद में 'माला-शाला,' 'गीता-सीता', 'भर्ता-कर्ता' तथा 'अभिरामी-नामी' आदि शब्दों में अन्त्यानुप्रास है।[4]

१. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० २८, पृ० सं० २६०, ६१।
२. हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास, उपाध्याय, पृ० सं २१०-११।
३. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० २७, पृ० सं० ९९-१००।
४. 'अन्त्यानुप्रास छंद के चरणों में सभी कहीं रखा जाता एवं जा सकता है, यह बात तुक में नहीं होती'।
अलंकार-पीयूष, पूर्वार्ध, रसाल, पृ० सं० ११४।

रसानुकूल छंद :

छन्द का भाव और रस से भी घनिष्ट सम्बंध है। छन्द-विशेष में भाव अथवा रस-विशेष अधिक प्रभावोत्पादक हो जाता है, जैसे संस्कृत वृत्तों मंदाक्रान्ता, द्रुतविलम्बित, शिखरिणी और मालिनी में शृंगार, शांत और करुण रस अधिक मनोहर लगते हैं। इसी प्रकार भुजंगप्रयात, वंशस्थ और शार्दूलविक्रीड़ित में वीर, रौद्र और भयानक रस विशेष प्रभावोत्पादक हो जाते हैं। हिन्दी छंदों में सवैया और बरवै में शृंगार, करुण और शान्त; छप्पय में वीर, रौद्र तथा भयानक; नराच में वीर; तथा घनाक्षरी, दोहा, चौपाई और सोरठा में प्रायः सभी रस उद्दीप्त होते हैं। केशव ने इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है, फिर भी इनके विभिन्न ग्रंथों से ऐसे उदाहरण उपस्थित किये जा सकते हैं जहाँ रस अथवा भाव-विशेष के लिये उसके उपयुक्त छन्दों का प्रयोग हुआ है। केशव ने अपने वीर-रसात्मक ग्रंथ 'रतनबावनी' में अधिकांश 'छप्पय' का ही प्रयोग किया है, यथा :

'जहं अमान पट्ठान ठान हिय बान सु उट्ठिव।
तहं केशव काशी नरेश दल रोष भरिट्ठिव।
जहं तहं पर जुरि जोर ओर चहुँ दुन्दुभि बज्जिय।
तहां बिकट भट सुभट छुटक घोटक तन तज्जिय।
जहं रतनसेन रण कहं चलिव हल्लिय महि कंप्यो गगन।
तहं ह्वै दयाल गोपाल तब विप्र भेष बुल्लिय बयन'॥[1]

'रामचन्द्रिका' में रौद्र रस का वर्णन कई स्थलों पर 'छप्पय' में ही किया गया है, यथा :

'भगन कियो भव धनुष साल तुमको अब सालौं।
नष्ट करौं विधि सृष्टि ईश आसन ते चालौं।
सकल लोक संहरहुँ सेस सिर ते धर डारौं।
सप्त सिंधु मिलि जाहि होइ सबही तम भारौं।
अति अमल जोति नारायणी कह केशव बुझि जाय बर।
भृगुनंद संभारु कुठारु मैं कियो सरासन युक्त सर'॥[2]

इसी प्रकार 'नराच' और 'वंशस्थ' में भी केशव ने वीररस का वर्णन किया है, यथा :

नराच—'जुरे प्रहस्त हस्त लै हथ्यार दिव्य आपने।
कुमार अच्छ तिच्छ बाण छुट्टयो घने घने।
कपीस जुद्ध क्रुद्ध भो संहारि अच्छ डारियो।
प्रहस्त सीस में तबै प्रहारि मुष्ट मारियो'॥[3]

१. रतनबावनी, पंचरत्न, छं० सं० १०, पृ० सं० २—३।
२. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ४२, पृ० सं० १४२।
३. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० २६१।

वंशस्थ —'तपी जपी विप्रन छिप्र ही हरौं। अदेव द्वेषी सब देव संहरौं।
सिया न देहौं यह नेम जी धरौं। अमानुषी भूमि अबानरी करौं' ॥[1]

सवैया छन्द में शृंगार, करुण और शान्त रस अधिक प्रभावोत्पादक हो जाते हैं। केशव ने इन रसों के लिए बहुधा सवैया का ही प्रयोग किया है, यथा :

शृंगार रस :

'तोरि तनी टकटोरि कपोलनि जोरि रहे कर त्यों न रहौंगी।
पान खवाय सुधाधर पान कै पाय गहे तस हौं न गहौंगी।
केशव चूक सबै सहिहौं मुख चूमि चले यह पै न सहौंगी।
कै मुख चूमन दे फिरि मोहि कै आपनी धाय सों जाय कहौंगी' ॥[2]

अथवा :

'सौंह को शोच सकोच न पांच को डोलत शाहु भये कर चोरी।
बैनन बंचकताई रची रति नैनन के संग डोरति डोरी।
लाज करैं न डरैं हित हानि ते आनि अरे जिय जानि कि भोरी।
नाहिनै केशव शाख जिन्हें बकि के तिन से दुखवै मुख को री' ॥[3]

करुण रस :

'कल हंस कलानिधि खंजन कंज कछू दिन केशव देखि जिये।
गति आनन लोचन पायन के अनुरूपक से मन मानि लिये।
यहि काल कराल ते सोधि सबै हठि के बरषा मिस दूर किये।
अब धौं बिनु प्राणप्रिया रहि हैं कहि कौन हितू अवलंब हिये' ॥[4]

शान्त रस :

'हाथी न साथी न घोरे न चेरे न गाँव न ठाँव को नाव बिलैहै।
तात न मात न मित्र न पुत्र न वित्त न अंग हू संग न रैहै।
केशव काम को राम विसारत और निकाम न कामहि ऐहै।
चेत रे चेत अजौ च्ति अंतर अंतक लोक अकेलहि जैहै' ॥[5]

भावानुकूल छन्द :

भावानुभूति तीव्र करने के लिये भी अनेक स्थलों पर केशव ने भावानुकूल छंदों का प्रयोग किया है। सीता की खोज के लिये बानर-गण उछलते-कूदते चले जा रहे हैं। केशव के निम्नलिखित छंदों का प्रवाह बानरों की गति के समान है। छंद भी उछलते-कूदते आगे बढ़ रहे हैं।

१. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छ० सं० ३०, पृ० सं० ३२१।
२ कविप्रिया, छं० सं० १२, पृ० सं० ३१।
३ रसिकप्रिया, छं० सं० १७, पृ० सं० २८।
४ रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० २२, पृ० सं० २४७।
५ कविप्रिया, छं० सं० ४६, पृ० सं० १०८।

त्रिभंगी—'सुग्रीव संघाती, मुखदुति राती, केशव साथहि सूर नये।
आकाश विलासी, सूर प्रकासी, तब ही बानर आय गये।
दिसि दिसि अवगाहन, सीतहि चाहन, यूथप यूथ सबै पठये।
नलनील ऋक्षपति, अंगद के संग दक्षिण दिसि को बिदा भये' ॥[1]

अथवा :

हीरक—'चंड चरन, छंडि धरनि, मंडि गगन धावहीं।
तत्क्षण हुइ दच्छिन दिसि लक्षयहि नहिं पावहीं।
धीर धरन बीर बरन सिंधुतट सुभावहीं।
नाम परम, धाम धरम, राम करम गावहीं' ॥[2]

राम, बाटिका-विहार के लिये जा रहे हैं। उनकी सवारी के लिये घोड़ा आता है। घोड़े के वर्णन के लिये केशव ने 'चंचला' छंद का प्रयोग किया है, जिसमें १६ वर्ण होते हैं और ८ बार क्रमशः गुरु-लघु रखे जाते हैं। छंद पढ़ते समय ऐसा प्रतीत होता है मानो घोड़ा खूँद कर रहा हो।

'भोर होत ही गयो सुराज लोक मध्य बाग।
बाजि आनियो सु एक इंगितज्ञ सानुराग।
शुभ्र सुम्म चारि हून अंश रेणु के उदार।
सीखि सीखि लेत हैं तो चित्त चंचला प्रकार' ॥[3]

लवकुश के बाणों के प्रहार से व्याकुल राम की सेना के भागने का वर्णन 'नराच' छंद में किया गया है। 'नराच' सोलह वर्णों का छंद है जिसमें क्रम से ८ बार लघु-गुरु रखे जाते हैं। इस प्रकार छंद भी मानों भागने वालों की भाँति क्रम से एक पैर रखता और एक उठाता चला जा रहा है।

'भगे चये चमू चमूप छोड़ि छोड़ि लक्ष्मणै।
भगे रथी महारथी गयंद वृन्द को गनै।
कुशै लवै निरंकुशै बिलोकि बंधु राम को।
उठ्यो रिसाय कै बली बंध्यो जु लाज दाम को' ॥[4]

राजा-महराजा मधुर बाजों की ध्वनि से जगाये जाते हैं। केशव ने रामचन्द्र जी को जगाने के लिये मधुर संगीतपूर्ण 'हरिप्रिया' छन्द का प्रयोग किया है।

'जागिये त्रिलोक देव, देव देव राम देव,
भोर भयो, भूमि देव भक्त दरस पावैं।

१. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ३१, पृ० सं० २६१।
२. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ३३, पृ० सं० २६२।
३. रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, छं० सं० १, पृ० सं० १९०।
४ रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, छं० सं० १६, पृ० सं० ३०१।

ब्रह्मा मन मन्त्र वर्ण, विष्णु हृदय चातक घन,
रुद्र हृदय कमल-मित्र, जगत गीत गावैं।
गगन उदित रवि अनन्त, शुक्रादिक जोतिवन्त,
छन छन छवि छीन होत, लीन पीन तारे।
मानहु परदेश देश, ब्रह्मदोष के प्रवेश,
ठौर ठौर से विलात जात भूप भारे'॥[१]

कुछ दोष :

इस प्रकरण को समाप्त करने के पूर्व छन्द-सम्बन्धी कुछ दोषों का भी उल्लेख कर देना आवश्यक है। छन्द के सम्बन्ध में तीन दोष मुख्य हैं। प्रथम, लक्षण-ग्रंथों में दिये लक्षण पर छन्द का ठीक-ठीक न उतरना; दूसरे, लक्षण के अनुकूल होने पर भी छंद का प्रवाह ठीक न होना और तीसरे, यति का ठीक स्थान पर न होना अथवा एक चरण के शब्द का टूट कर दूसरे चरण में चले जाना। केशवदास जी ने 'कविप्रिया' में काव्यदोषों के प्रकरण में छंद-सम्बन्धी दो ही दोषों प्रथम और तीसरे का उल्लेख किया है और प्रथम को 'पङ्गु' तथा दूसरे को 'यतिभंङ्ग' कहा है।[२]

लक्षण-ग्रंथों में दिये लक्षणों पर ठीक-ठीक न उतरने वाले छन्द केशव के उन ग्रंथों में विशेष दिखलाई देते हैं जिनका अभी सम्पादन नहीं हुआ है। सम्भव है यह प्रतिलिपि-कारों की भूल हो। सुसम्पादित ग्रंथों 'रामचंद्रिका', 'कविप्रिया' आदि में ऐसे छन्द दो-एक हैं। यहाँ 'रामचंद्रिका' से इस प्रकार के दो छन्द उपस्थित किये जाते हैं। नीचे दिये दोहे के चतुर्थ चरण में एक मात्रा अधिक है यथा :

'आगम कनक कुरङ्ग के, कही बात सुखपाइ।
कोपानल जर जाय जनि। शोक समुद्र न बुड़ाइ'॥[३]

चन्द्रकला सवैया का लक्षण है 'आठ सगण और एक गुरु', किन्तु नीचे दिये छन्द के द्वितीय चरण के आरम्भ में 'यगण' है, यथा :

'दिन ही दिन बाढ़त जाय हिये जरि जाय समूल सो औषधि खैहै।
किधौं याहि के साथ अनाथ ज्यों केशव आवत जात सदा दुख सैहै।
जग जाकी तू ज्योति जगै जड़ जीव रे कैसहु तापहं जात न पैहै।
सुनि, बाल दशा गई ज्वानी गई जरि जैहै जराऊ दुराशा न जैहै'॥[४]

यतिभंग दोष केशव की रचनाओं में बहुत कम है। कवित्त-सवैयों में विरति भंग दोष अवश्य दिखलाई देता है, यथा :

१. रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, छं० सं० १८, पृ० सं० १६९।
२. कविप्रिया, पृ० सं० २७ तथा ३२।
३. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ३१, पृ० सं० ३०७;
४. रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, छं० सं० १३, पृ० सं० ६०।

'अविलोकन आलापपरि, रंभन नख रद दान ।
चुंबनादि उद्दीपये, मर्दन परस प्रवान' ॥[1]

'सोंधे कैसी शोधी देह सुधा सों सुधारी पांव,
धारी देव लोक तै कि सिंधु ते उधारी सी' ।[2]

'जीरन जनम जात घोर जुर घोर, परि
पूरण प्रगट परिताप क्यों कह्यो परै' ।[3]

'बामिन को बामदेव, कामिनि को कामदेव,
रण जयथंभ रामदेव मन भाये जू ।
'काशीश कुल कलस, जंबूद्वीप केशो—
दास को कलपतरु इन्द्रजीत आये जू' ।[4]

(८) अलंकार-प्रयोग

काव्य के क्षेत्र में भाव, रस, रूप, गुण आदि का उत्कर्ष-साधन करने वाली चमत्कार-पूर्ण उक्ति की 'अलंकार' संज्ञा है। अलंकार काव्य के वाह्याङ्ग अथवा परिधान हैं, और रस, भाव आदि अन्तरात्मा। जिस प्रकार आत्मा के बिना शरीर निर्जीव है उसी प्रकार रस के बिना काव्य। अलंकार, रस, भाव आदि की अनुभूति में सहायक होकर काव्य की शोभा की वृद्धि करते हैं, किन्तु उनका स्थान नहीं ग्रहण कर सकते। केशव का मत है कि अलंकारों के बिना कामिनी तथा काव्य की शोभा नहीं होती।[5] किन्तु यह धारणा भ्रमपूर्ण है। सुरुचिपूर्ण आभूषण पहनने से ही कामिनी के सौन्दर्य की वृद्धि होती है। सामंजस्य का ध्यान न रख कर पहने हुए आभूषण सौन्दर्य के स्थान पर असौंदर्य की ही वृद्धि करते और शरीर पर भारस्वरूप प्रतीत होते हैं। आभूषण न पहनने पर भी कामिनी का सहज सौंदर्य तो रहता ही है। इसी प्रकार उपयुक्त अलंकार-योजना काव्य के सौंदर्य की वृद्धि करती है किन्तु अलंकार-प्रयोग के लिये ही की हुई योजना काव्य के लिये भार हो जाती है। अलंकार-योजना न होने पर भी काव्य का भावगत सौंदर्य अक्षुण्ण रहता है। इस प्रकार अलंकार को काव्य का अस्थिर धर्म कह सकते हैं। बिना अलङ्कार के भी सरस काव्य की रचना हो सकती है, किन्तु रसहीन अलङ्कार-पूर्ण उक्ति पद्य-मात्र ही है।

केशवदास जी ने 'रसिकप्रिया' ग्रंथ में काव्य के लिए रस के सर्वोपरि महत्व को स्वीकार करते हुये लिखा है कि रसाल वाणी से रहित कवि ज्योतिहीन नेत्रों के समान शोभा

---

१. रसिकप्रिया, छं० सं० ७, पृ० सं० ६१।
२. रसिकप्रिया, पृ० सं० २०६।
३. कविप्रिया, पृ० सं० १६।
४. कविप्रिया, पृ० सं० ३२६।
५. 'जदपि सुजाति सुलच्छणी, सुबरन सरस सुवृत्त ।
भूषण बिनु न विराजई, कविता बनिता मित्त' ॥१
कविप्रिया, पृ० सं० ५६।

नहीं पाता, अतएव कवि को सरस कविता करनी चाहिए।[१] किन्तु केशव स्वयं अनेक स्थलों पर अपनी शिक्षा का अनुसरण नहीं कर सके हैं। केशव के ग्रंथों में अनेक स्थल ऐसे हैं जहाँ कवि ने पांडित्य-प्रदर्शन तथा उक्ति-वैचित्र्य एवं दूर की सूझ के फेर में पड़ कर कविता के बाह्य को विविध अलङ्कारों से आभूषित किया है और काव्य की आत्मा, भाव-सरसता की उपेक्षा कर दी है। इसका कारण कुछ तो केशव की पांडित्य-प्रदर्शन की अभिरुचि थी और कुछ उस समय के वातावरण का प्रभाव, जिसमें रह कर केशव-काव्य ने रचना की। प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रथम परिच्छेद में बताया जा चुका है कि केशव का समय वैभवशाली मुगल-सम्राटों अकबर तथा जहाँगीर का शासन-काल था। इन सम्राटों के प्रोत्साहन से वस्तु तथा चित्र आदि कलायें उन्नति की चरमावस्था को प्राप्त हो चुकी थीं। इस वातावरण में उत्पन्न कविता के क्षेत्र में भी कला की सृष्टि हुई। इसके अतिरिक्त तुलसी तथा सूर के द्वारा कविता की अंतरात्मा अर्थात् भावपक्ष पूर्णरूप से विकास को प्राप्त हो चुका था। केशव तथा उनके परवर्ती कवियों ने कलापक्ष पर अधिक ध्यान दिया और कविता के बाह्य को विविध अलंकारों से सजाया और संवारा।

केशव के अलंकार-प्रयोग पर विचार करने पर कवि की कुछ रचनाओं में तो कतिपय प्रमुख अलंकारों का ही प्रयोग मिलता है और कुछ में अलंकार-प्रयोग के संबंध में कवि का विशेष आग्रह दिखलाई देता है। प्रथम कोटि की रचनाओं में नखशिख, रतनबावनी, विज्ञान-गीता तथा जहाँगीरजस-चंद्रिका हैं और द्वितीय कोटि की रचनाओं में रसिकप्रिया, रामचंद्रिका तथा वीरसिंहदेवचरित। 'कविप्रिया' में विभिन्न अलंकारों का विवेचन करते हुए उनके उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। अतएव यहाँ इस ग्रंथ पर विचार नहीं किया गया है। उपर्युक्त सात रचनाओं पर ही क्रमशः विचार किया गया है।

नखशिख :

इस रचना में परम्परा से चले आते तथा प्राचीन संस्कृत आदि भाषा के ग्रंथों में वर्णित उपमानों के सहारे नायिका के अंग-प्रत्यंग की शोभा का वर्णन किया गया है। इस रचना में संदेहालंकार का प्रयोग विशेष है। इसके अतिरिक्त कुछ स्थलों पर उपमा, उत्प्रेक्षा, तथा प्रतीप आदि अलंकारों का भी प्रयोग हुआ है। इस ग्रंथ में नायिका के विभिन्न अंगों के लिए अनेक ऐसे उपमानों का प्रयोग हुआ है जिनका अंग-विशेष से कोई सादृश्य अथवा संबंध नहीं है, जैसे नायिका की कटि को 'भूत की मिठाई' अथवा कंठ को 'कवित्त रीति आरभटी' कहना। किन्तु इसके लिए केशव दोषी नहीं ठहराये जा सकते, क्योंकि उन्होंने रचना के आरम्भ में स्पष्ट कह दिया है कि उनसे पूर्व के पंडितों ने नायिका के विभिन्न अंगों के लिए जो उपमान बतलाये हैं उनके द्वारा कवि विभिन्न अंगों का वर्णन कर रहा है।[२] फिर भी कुछ

---

१. 'ज्यों बिनु डीठ न शोभिये, लोचन लोल विशाल।
त्यों ही केशव सकल कवि, बिन वाणी न रसाल॥१३॥
ताते रुचि शुचि शोचि पचि, कीजै सरस कवित्त।
केशव स्याम सुजान को, सुनत होइ वश चित्त'॥१४॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० ११-१२।

२. नखशिख, ह० लि०, छं० सं० २, पत्र सं० १।

स्थलों पर सुन्दर एवं स्वाभाविक अलंकार-योजना हुई है। यहाँ इस प्रकार के दो छंद उपस्थित किये जाते हैं। निम्नलिखित छंद में प्रतीप अलंकार के सहारे राधा के मुखमंडल का वर्णन करते हुए कवि का कथन है :

'ग्रहनि में कीनो गेह सुरन में दीनो देह,
सिव सों कियो सनेह जग्यो जुग चार्यो है।
तपनि में तप्यो तप जपनि में जप्यो जप,
केसोदास वपु मास मास प्रति गार्यो है।
उडग नई सद्धि जई स उपधीष भयो,
यद्यपि, जगत ईस सुधा में सुधार्यो है।
सुनि नंद नंद प्यारी तेरे मुष चंद सम,
चंद पै न भयो कोटि छंद करि हार्यो है' ॥[1]

निम्नलिखित छंद में उपमालंकार के द्वारा राधा की सम्पूर्ण मूर्ति का वर्णन किया गया है :

'तारा सी कान्ह तराइन संग अ चंद्र कला निसि चंद्र कला सी।
दामिनी सी घन स्याम समीप लगै तन श्याम तमाल लता सी।
सोने की सींक सी दूरि भए तें मिलै उर हार विहार प्रभा सी।
आधि को औषधि सी कहि केशव काम के धाम में दीप सिपा सी' ॥[2]

रतनबावनी :

रतनबावनी में काव्य के स्वाभाविक प्रवाह में ही कुछ स्थलों पर उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, सन्देह तथा क्रम आदि कतिपय अलंकारों का प्रयोग हुआ है। कवि ने ढूँढ़-ढूँढ़ कर अलंकारों का प्रयोग करने का प्रयास नहीं किया है। इस रचना में अधिकांश अलंकारों का प्रयोग सुरुचिपूर्ण तथा भाव-व्यंजना में सहायक है। कुछ उदाहरण अवलोकनार्थ यहाँ उपस्थित किये जाते हैं।

निम्नलिखित पंक्तियों में रतनसेन के द्वारा अकबर की सेना के छिन्न-भिन्न होने के सम्बन्ध में कवि उत्प्रेक्षा करता है कि शत्रु-सेना ठीक उसी प्रकार से रतनसेन की सेना के सामने न टिक सकी जिस प्रकार पवन के झोंकों के सामने मेघ-खंड।

'तब फटक भये दल भट्ट सब तुरत सेन दपटंत रन।
जनु बिज्जु संग मिल एक इक एकहि पवन झकोर घन' ॥[3]

सन्देह तथा उत्प्रेक्षालंकार के सहारे रतनसेन के शिरत्राण का वर्णन करते हुए कवि का कथन है :

'किधौं सत्त की शिखा शोभ साखा सुषदायक।
जनु कुल दीपक जोति जुद्ध तम मेटन लायक।
किधौं प्रकट पति पुंज पुन्य कर पल्लव पिख्खिय
किधौं किति परभात तेज मूरति करि लिख्खिय।

---

१. नखशिख, ह० लि०, छं० सं० ७२, पत्र सं० १०।

२. नखशिख, ह० लि०, छं० सं० ६४, पत्र सं० १३।

३. रतनबावनी, छं० सं० २६, पृ० सं० ८।

कहि केशव राजत परम पर रतनसेन शिर सुम्मियहु ।
जनु प्रलयकाल फणपति कहूँ फणपति-फण उदित कियहु' ।।[१]

निम्नलिखित छंद में क्रमालंकार का स्वाभाविक प्रयोग हुआ है :

'गई भूमि पुनि फिरहि बेलि पुनि जमै जरे तैं ।
फल फूले तें लगहिं फूल फूलन्त झरे तैं ।
केशव विद्या विकट निकट बिसरे तें आवै ।
बहुरि होय धन धर्म गई संपति पुनि पावै ।
फिरि होइ स्वभाव सुशील मति जगत भक्त यह गाइये ।
प्राण गए फिरि मिलहि पति न गए पति पाइये' ।।[२]

विज्ञानगीता :

विज्ञानगीता में अलङ्कारों का प्रयोग बहुत कम स्थलों पर मिलता है। इस ग्रन्थ में उपमा, रूपक तथा उत्प्रेक्षा आदि कुछ ही अलङ्कारों का यत्र-तत्र प्रयोग हुआ है, किन्तु वह अधिकांश सुरुचिपूर्ण तथा भाव-व्यंजना में सहायक है। केशव ने मिथ्या संसार को सत्य समझने वाले जड़ जीव की दशा का वर्णन करते हुए निम्नलिखित छन्द में उपमालंकार का प्रयोग किया है। इस छंद में संसार के जीवों की तुलना काठ के घोड़े पर चढ़ कर खेलने वाले बालकों अथवा गुड़िया-गुड्डे खेलने वाली बालिकाओं से कर कवि ने सांसारिक जीवों की जड़ता का स्पष्टीकरण बहुत ही सुचारु रूप से किया है।

'जैसे चढ़े बाल सब काठ के तुरङ्ग पर,
तिनके सकल गुण आपुही मे आने हैं।
जैसे अति बालिका वै खेलति पुतरि अति,
पुत्र पौत्रादि मिलि विषय बिताने हैं।
आपनो जो भूलि जात लाज साज कुल कर्म,
जाति कर्म कादिकन ही सो मनमाने हैं।
ऐसे जड़ जीव सब जानत हौं केशौदास,
आपनी सचाई जग सांचोई कै जाने हैं' ।।[३]

निम्नलिखित छंद में रूपक अलङ्कार के सहारे कवि ने उदर की तुलना सागर से की है। जिस प्रकार सागर के उदर में सब कुछ समा जाता है, उसी प्रकार मानव का उदर भी बड़ा ही गम्भीर है। जिस प्रकार सागर में मगर आदि जन्तु रहते हैं और अनेक जीवों का ग्रास कर भी उनकी क्षुधा नहीं शान्त होती, उसी तरह मानव के उदर की क्षुधा भी नहीं मिटती। इसी प्रकार जैसे सागर में बड़वानल का निवास है, जिसकी प्यास निरन्तर सागर का जल पान करते हुए भी नहीं बुझती, उसी प्रकार मानव की तृष्णा भी कभी शान्त नहीं होती।

१. रतनबावनी, छं० सं० २८, पृ० सं० ८।
२. रतनबावनी, छं० सं० १२, पृ० सं० ३।
३. विज्ञानगीता, छं० सं० ४४, पृ० सं० ४६।

'तृषा बड़ी बड़वानलो, क्षुधा तिमिंगिल क्षुद्र।
ऐसो को निकसै जु परि उदर उदार समुद्र' ॥[1]

अन्य स्थल पर कवि ने तृष्णा और तरंगिनी का रूपक बाँधा है। वास्तव में जिस प्रकार से किसी गहरी नदी को, जो बढ़ी हुई हो, पार करना कठिन है, उसी प्रकार तृष्णा का पार पाना भी कठिन है। कवि का कथन है :

'कौन गनै इनि लोकन रीति बिलोकि बिलोकि जहाजनि बोरे।
लाज विशाल लता लपटी तन धीरज सत्य तमालनि तोरे।
बंचकता अपमान अमान अलाभ भुजङ्ग भयानक कृष्णा।
पाटु बढ़ो कहुँ घाट न केशव क्यों तरि जाइ तरङ्गिनि तृष्णा' ॥[2]

इसी प्रकार कुछ स्थलों पर उत्प्रेक्षा का प्रयोग भी भाव-व्यंजना को तीव्र करने के लिए हुआ है। महामोह के सेना-प्रयाण का वर्णन करते हुये कवि का कथन है :

'रथ राजि साजि बजाइ दुंदुभि कोह सौं करि साजु।
विन्दु माधव को चल्यो दल भूमि को अधिराजु।
उठि धूरि भूरि चली अकाशहुँ शोभिये जु अशेष।
जनु सोध देन चली पुरन्दर को धरा सुविशेष' ॥[3]

उपर्युक्त छन्द में आकाश में छाई हुई धूल के लिए कवि उत्प्रेक्षा करता है कि मानों पृथ्वी, इन्द्र को शोध देने के लिये जा रही है। इस उत्प्रेक्षा के द्वारा कवि ने सेना की विशालता की ओर संकेत किया है।

निम्नलिखित छंद में कवि वाराणसी का वर्णन करते हुये वहाँ के महलों पर सुशोभित पताकाओं के लिये उत्प्रेक्षा करता है कि वे मानों स्वर्गमार्ग में विचरण करने वाले मुक्त पुरुषों के ज्योतिपुंज का प्रकाश हैं। इस प्रकार कवि ने महलों की ऊँचाई और परोक्ष-रूप से वाराणसी के विशाल वैभव को प्रकट किया है।

'वाराणसी अति दूरि ते अवलोकियो मग पूत।
ऊँचे अवासनि उच्च सोहति हैं पताक विधूत।
शोभा विलास विलोकि केशवराइ यों मति होति।
बैकुण्ठ मारग जात मुक्तनि की नवै ज्यों जोति' ॥[4]

वर्षा तथा शरद ऋतुओं के वर्णन के प्रसंग में केशव ने सन्देह तथा श्लेषालङ्कार के सहारे अनेक रूपक बांधे हैं। इन स्थलों पर भाव-व्यंजना के स्पष्टीकरण की अपेक्षा चमत्कार-प्रदर्शन ही विशेष है, यथा :

'ज्वाल जगै कि चलै चपला नभधूम घनो कि घनो घनघूरो।
खेचर लोगनि के अंशुआ जल बूँद किधौं बरनो मति शूरो।

१. विज्ञानगीता, छं० सं० २६, पृ० सं० १४।
२. विज्ञानगीता, छं० सं० १७, पृ० सं० ३४।
३. विज्ञानगीता, छं० सं० ३, पृ० सं० ४१।
४. विज्ञानगीता, छं० सं० ४, पृ० सं० ४१।

केकी कहै इह कीकई केशव गौ जरि जोर जवासो समूरो।
भागहु रे बिरही जन भागहु पावस काल कि पावक पूरो' ॥[१]

अथवा

'दूषित है पर पंकज श्रीगति हंसनि को न तऊ सुखदाई।
अंबर ओट किये मुख चंदहि छूटि छपै छन भानु छपाई।
सोहति है जलजावली केशव पीन पयोधर मे दुखदाई।
मारग भूलती देखत ही अभिसारिणि सी वरषा बनि आई' ॥[२]

जहाँगीर-जस-चंद्रिका :

जहाँगीर-जस-चंद्रिका में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, विरोधाभास, विभावना, सन्देह तथा परिसंख्या आदि अलङ्कारों का विशेष प्रयोग हुआ है। 'जहाँगीरजस-चन्द्रिका' में प्रयुक्त अलंकार भाव-व्यंजना का उत्कर्ष-साधन अथवा स्वरूप के स्पष्टीकरण की अपेक्षा चमत्कार-प्रदर्शन ही विशेष करते हैं। इस रचना में सम्राट जहाँगीर के यश तथा प्रताप और उसकी सभा तथा सभासदों आदि का वर्णन किया गया है, अतएव कवि की चमत्कार-प्रदर्शन की भावना की प्रधानता नहीं खटकती। केशव द्वारा प्रयुक्त कुछ अलंकारों के उदाहरण यहाँ उपस्थित किये जाते हैं। विरोधाभास अलंकार के सहारे जहाँगीर के प्रताप का वर्णन करते हुये कवि का कथन है :

'एक थल थित में बसत जगन जिय,
द्विकर में देस देस कर कों धरतु हैं।
त्रिगुन बलित बहु ललित बलित,
गुननि के गुन तरु फलित करतु हैं।
च्यारहू पदारथ को लोभ केसोदास थाको,
सबको पदारथ समूह को भरतु हैं।
साहिनि कों साहि जहाँगीर साहि आहि,
पंचभूत की प्रभूत भवभूति को सरतु हैं' ॥[३]

निम्नलिखित छंद में परिसंख्या अलंकार के द्वारा जहाँगीर की सुशासन-व्यवस्था का वर्णन किया गया है।

'नगर नगर पर घन ईतों गाजे घोरि,
ईति की न भीति भीति अधम अधीर की।
अरि नगरीन प्रति करत अगम्या गोन,
भावै विभिचारी जहाँ चोरी पर पीर की।
भूमिया के नाते भूमि भूधरे तो लेखियतु,
दुर्गनि ही केसोदास दुर्गति शरीर की।

१. विज्ञानगीता, छं० सं० ६, पृ० सं० ४८।
२. विज्ञानगीता, छं० सं० १०, पृ० सं० ४९।
३. जहाँगीरजस-चन्द्रिका, ह० लि०, छं० सं० ३३, पृ० सं० १३

गढ़नि गढ़ोई आज देवता सी देपियतु,
ऐसी रीति राजुनीति राजे जहाँगीर की' ।।[1]

निम्नलिखित छंद में विभावना अलंकार की सहायता से जहाँगीर के प्रताप का वर्णन किया गया है :

'अरिगन ईंधन जरि गये जदपि केसोदास।
तदपि प्रतापानलन को पल पल बढ़त प्रकास' ।।[2]

निम्नलिखित छन्द में अतिशयोक्ति अलंकार के द्वारा जहाँगीर के सभासद तथा बीरबल के पुत्र धीर के दान का वर्णन किया गया है :

'भूमिदेव नरदेव देव देव आदि कोन,
कोन दीनो दान दीन ऊंचो करि करु है।
कोरि विधि करि करि मेर करतारु करि,
आवत न तेंसीं कर नूतिनि को धरु है।
परदुख दारिदनि कोऊ न सकतु हरि,
केसोराई जदपि जगतु हरि हरु है।
या बिन कवि अभूत भूत से भंवत,
ताहि राजा वीरवर जू को बेटो धीरवरु है' ।।[3]

रसिकप्रिया :

इस ग्रंथ में केशव ने उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अपन्हुति, विभावना, प्रतीप, अतिशयोक्ति, सन्देह, स्वभावोक्ति, सहोक्ति, पर्यायोक्ति तथा समाहित आदि अनेक अलंकारों का प्रयोग किया है; तथा अधिकांश स्थलों पर अलंकारों का प्रयोग भावव्यंजना का उत्कर्ष-साधन करने एवं रूप को अधिक स्पष्ट करने के लिए ही हुआ है। ऐसे स्थल बहुत कम हैं, जहाँ कवि की कल्पना अस्वाभाविक हो गई हो अथवा पांडित्य-प्रदर्शन की रुचि से प्रेरित होकर उसने अलंकार-योजना की हो। निम्नलिखित छन्द में अतिशयोक्ति अलंकार के सहारे अभिसारिका नायिका का वर्णन किया गया है, किन्तु यहाँ केशव को कल्पना अस्वाभाविक हो गई है :

'उरभत उरग चपत चरणनि फणि,
देखत विविधि निशिचर दिशि चारि के।
गनत न लागत मुसलधार बरषत,
झिल्ली गन घोष निरघोष जलधारि के।
जानति न भूषण गिरत पट फाटत न,
कंटक अटकि उर उरज उजारि के।

१. जहाँगीरजस-चन्द्रिका, ह० लि०, छं० सं० ३५, पृ० सं० १४।
२. जहाँगीरजस-चंद्रिका, ह० लि०, छं० सं० ११३, पृ० स० ३७।
३. जहाँगीरजस-चंद्रिका, ह० लि०, छं० सं० ८५, पृ० स० २६।

प्रेतनी की पूछैं नारि कौन पै तैं सीख्यों यह,
योग कैसो सार अभिसार अभिसारिके' ॥[१]

निम्नलिखित छन्द में नायिका के हृदय और शतरंज की बाजी का रूपक बाँधते हुए कवि ने अपना पांडित्य प्रदर्शित किया है; उपमेय तथा उपमान में कोई सादृश्य नहीं है :

'प्रेम भय भूप रूप सचिव संकोच शोच,
विरह विनोद फील पेलियत पचि कै।
तरल तुरग अविलोकनि अनंत गति,
रथ मनोरथ रहे प्यादे गुन गनि कै।
दुहू ओर परी जोर घोर घनी केशोदास,
होइ जीत कौन की को हारै जिय लषि कै।
देखत तुम्हैं गुपाल तिहिं काल उहिं बाल,
उर शतरंज कैसी बाजी राखी रचि कै' ॥[२]

किन्तु अधिकांश स्थलों पर, जैसा कि आरम्भ में कहा गया है, केशव का अलङ्कार-प्रयोग स्वाभाविक तथा भाव-व्यंजना में सहायक है। यहाँ कुछ छंद अवलोकनार्थ उपस्थित किये जाते हैं।

स्वभावोक्ति अलङ्कार के द्वारा नायिका को देख कर कृष्ण की चेष्टाओं का वर्णन करते हुए कवि का कथन है :

'छोरि छोरि बांधै पाग आरस सों आरसी लै,
अनत ही आन भाँति देखत अनैसे हौ।
तोरि तोरि डारत तिनूका कहौ कौन पर,
कौन के परत पाँय बावरे ज्यों ऐसे हौ।
कबहूँ चुटक देत चटकी खुजावौ कान,
मटकी यों डाड जुरी ज्यों जम्हात जैसे हौ।
बार बार कौन पर देत मणिमाला मोहिं,
गावत कछूक कछू आज कान्ह कैसे हौ' ॥[३]

निम्नलिखित छंद में केशव ने घन तथा कृष्ण का रूपक बांधा है :

'चपला पट मोर किरीट लसै मघवा धनु शोभ बढ़ावत हैं।
मृदु गावत आवत बेणु बजावत मित्र मयूर नचावत हैं।
उठि देखि भटू भरि लोचन चातक चित्त की ताप बुझावत हैं।
घनश्याम घने घनवेष धरे सु बने बन ते ब्रज आवत हैं' ॥[४]

१. रसिकप्रिया, छं० सं० ३५, पृ० सं० १३८।
२. रसिकप्रिया, छं० सं० १८, पृ० सं० १५२।
३. रसिकप्रिया, छं० सं० ११, पृ० सं० ७५।
४. रसिकप्रिया, छं० सं० २६, पृ० सं० ६८।

निम्नलिखित छंद में कवि ने सदेहालकार का स्वाभाविक प्रयोग किया है। नायिका नायक के न आने के संबंध में अनेक कल्पनायें करती है :

'केधों गृह काज कै न छूटत सखा समाज,
कैधों कछु आज कस बासर विभात तैं।
दीन्ही तैं न शोध किधों काहू सों भयो,
विरोध उपजो प्रबोध किधौं उर अवदात तैं।
सुख मै न देइ किधौं मोहीं सों कपट नेह,
किधौं अति मेह देख डरे अधिरात तैं।
किधौं मेरी प्रीति की प्रतीत लेत केशवदास,
अजहूँ न आये मन सूधो कौन बात तैं' ॥[1]

कृष्ण तथा राधिका सरोवर से स्नान करके निकले हैं। उत्प्रेक्षालंकार के सहारे उनकी उस समय की शोभा का वर्णन करते हुए कवि का कथन है :

'हरि राधिका मान सरोवर के तट ठाढ़े री हाथ सो हाथ छिये।
प्रिय के शिर पाग प्रिया मुकताङर राजत माल दुहून हिये।
कटि केशव काछ्नी श्वेत कसे सब ही तन चंदन चित्र किये।
निकसे जनु क्षीर समुद्र ही ते संग श्रीपति मानहु श्रीहि लिये' ॥[2]

बिना कारण के कार्य की सिद्धि विभावना का क्षेत्र है। निम्नलिखित छंद में केशव ने विभावना का स्वाभाविक रूप से प्रयोग किया है :

'देखत ही जिहिं मौन गही अरु मौन तजे कटु बोल उचारे।
सोहैं किये हू न सोहैं कियो मनुहार किये हू न सूधे निहारे।
हा हा कै हारि रहे मन मोहन पाइं परे जिन्ह लातनि मारे।
मंडतु है मुँह ताहीं को अंक लै हैं कछु प्रेम के पाठ निनारे' ॥[3]

निम्नलिखित छंद में अपन्हुति अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है :

'भोजन कै वृषभानु सभा महं बैठे हैं नंद सदा सुखकारी।
गोप घने बलवीर विराजत खात बनाइ बिरी गिरधारी।
राधिका झाँकि झरोखनि ह्वै कवि केशव रीझि गिरे सुविहारी।
शोर भयो सकुचे समुझे हरवाहि कह्यौ हरि लागि सुपारी' ॥[4]

समाहित अलंकार वहाँ होता है जहाँ कार्य की सिद्धि दैववश होती है। निम्नलिखित छंद में समाहित अलंकार के द्वारा कवि ने राधाकृष्ण का मिलन कराया है :

'एक समय सब देखन गोकुल गोपी गोपाल समूह सिधाये।
राति ह्वै आई चले घर को दश हूँ दिशि मेघ महामदि आये।

१. रसिकप्रिया, छं० सं० ८, पृ० सं० १२१।
२. रसिकप्रिया, छं० सं० ३७, पृ० सं० ८७।
३. रसिकप्रिया, छं० सं० २४, पृ० सं० ११९।
४. रसिकप्रिया, छं० सं० २१, पृ० सं० ११३।

दूसरौ बोलत ही समुझै कहि केशव यों छिति में तम छाये।
ऐसे मे श्याम सुजान बियोग बिदा कै दियो सु किये मन भाये'॥[1]

इसी प्रकार इस ग्रंथ से अनेक अन्य छन्द उपस्थित किये जा सकते हैं जिनमें अलंकारों का स्वाभाविक रूप से प्रयोग हुआ है।

रामचंद्रिका :

रामचंद्रिका की रचना प्रमुख रूप से पांडित्य-प्रदर्शन के लिये हुई थी, अतएव केशव ने अलंकार-प्रयोग के क्षेत्र में भी इस ग्रंथ में अपना पांडित्य-प्रदर्शन किया है। विविध अलंकारों के प्रयोग का जितना आग्रह इस रचना में दिखलाई देता है कवि की किसी अन्य रचना में नहीं दिखलाई देता। अनेक स्थलों पर तो कवि ने उपमा, उत्प्रेक्षा तथा सन्देह आदि अलंकारों की लड़ी सी लगा दी है। इस रचना में प्रयुक्त अलंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, प्रतीप, व्यतिरेक, अपन्हुति, विभावना, अतिशयोक्ति, सहोक्ति, स्वभावोक्ति, श्लेष, परिसंख्या तथा विरोधाभास मुख्य हैं। इनमें भी जितना अधिक प्रयोग उत्प्रेक्षा अलंकार का हुआ है, किसी अन्य अलंकार का नहीं हुआ।

श्लेष, परिसंख्या तथा विरोधाभास आदि अलंकार भावव्यंजना में विशेष सहायक न होकर चमत्कारवृत्ति को ही विशेष संतुष्ट करते हैं। पाठकों को चमत्कृत करने की भावना से प्रेरित होकर कवि ने अनेक स्थलों पर इन अलंकारों का प्रयोग किया है। श्लेषालंकार के द्वारा जनकपुरी का वर्णन करते हुए कवि का कथन है :

'तिन नगरी तिन नागरी प्रति पद हंसक हीन।
जलज हार शोभित न जहं प्रकट पयोधर पीन'॥[2]

इस दोहे में श्लेष का सुरुचिपूर्ण प्रयोग हुआ है; किन्तु कुछ स्थल ऐसे भी हैं जहाँ कवि ने श्लेष के सहारे प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत में कोई साम्य न होते हुये भी अप्रस्तुत के गुण प्रस्तुत में ढूँढ़ निकालने का प्रयास किया है। प्रवर्षणगिरि, दण्डकवन तथा सागर का वर्णन आदि ऐसे ही प्रसंग है। प्रवर्षणगिरि का वर्णन करते हुये कवि ने लिखा है :

'सिसु सो लसै सङ्ग धाय। बनमाल ज्यों सुर राय।
अहिराज सो यहि काल। बहु सीस सोभनि भाल'।[3]

इसी प्रकार श्लेष के सहारे 'नागर' के गुण 'सागर' में ढूँढ़ निकालने का प्रयत्न किया गया है :

'भूति विभूति पियूषहु की विष ईश शरीर कि पाय बियो है।
है किधौं केशव कश्यप को घर देव अदेवन के मन मोहै।

१. रसिकप्रिया, छं० सं० ३१, पृ० सं० ८४।
२. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० १६, पृ० सं० ७३।
३. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ८, पृ० सं० २५०।

संत हियो कि बसै हरि संतत शोभ अनन्त कहै कवि को है।
चन्दन नीर तरङ्ग तरंगित नागर कोउ कि सागर सोहै' ॥[1]

फिर भी श्लेषालङ्कार का प्रयोग भाषा पर कवि के अधिकार का परिचय देता है। दो अर्थों को प्रकट करने वाले अनेक छंद 'रामचन्द्रिका' में ही हैं। केशव के ग्रंथों विशेषतया 'कविप्रिया' में कुछ छन्द तीन-तीन, चार-चार और पाँच-पाँच अर्थ प्रकट करते हैं।

परिसंख्या अलङ्कार केशव को विशेष प्रिय प्रतीत होता है। 'रामचन्द्रिका' के पूर्वार्ध में अवधपुरी-वर्णन एवं विश्वामित्र तथा भरद्वाज मुनि के आश्रम के वर्णन के प्रसंग में तथा उत्तरार्ध में देव-स्तुति तथा राम-राज्य-व्यवस्था के वर्णन के प्रसंगों में परिसंख्या अलङ्कार का प्रयोग किया गया है। यहाँ दो उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं। अवधपुरी का वर्णन करते हुये कवि का कथन है :

'मूलन ही की जहाँ अधोगति केशव गाइय।
होम हुताशन धूम नगर एकै मलिनाइय।
दुर्गति दुर्गन ही जु कुटिल गति सरितन ही में।
श्रीफल को अभिलाष प्रगट कवि कुल के जी में' ॥[2]

राम-राज्य की सुव्यवस्था का वर्णन करते हुये कवि ने लिखा है :

'जूझहि मे कलह कलह प्रिय नारदै,
कुरूप है कुबेरै लोभ सबके चयन को।
पापन की हानि डर गुरुन को बैरी काम,
आगि सर्वभच्छी दुखदायक अयन को।
विद्या ही मे बादु बहुनायक है वारिनिधि,
जारज है हनुमन्त मीत उदयन को।
आँखिन आछत अंध नारिकेर कृश कटि,
ऐसो राज राजै राम राजिव नयन को' ॥[3]

विरोधाभास अलंकार का भी कवि को विशेष आग्रह प्रतीत होता है। राजा दशरथ की वाटिका के वर्णन में, विश्वामित्र द्वारा राम आदि चारों भाइयों का जनक से परिचय दिये जाने के अवसर पर राम के नखशखि-वर्णन तथा शिव जी द्वारा राम की स्तुति आदि के प्रसंग में इस अलंकार का प्रयोग हुआ है। राम के नखशिख-वर्णन के प्रसंग में कवि ने लिखा है :

'जदपि भृकुटि रघुनाथ की, कुटिल देखियति जोति।
तदपि सुरासुर नरन की निरखि शुद्ध गति होति' ॥[4]

१. रामचन्द्रिका, पूर्वार्धं, छं० सं० ४१, पृ० सं० ३१३।
२. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ४८, पृ० सं० २४।
३. रामचन्द्रिका, उत्तरार्ध, छं० सं० पृ० सं० १३०।
४. रामचन्द्रिका, पूर्वार्धं, छं० सं० ४८, पृ० सं० १११।

यहाँ इस अलंकार का प्रयोग बड़ा ही स्वाभाविक हुआ है। यही स्वाभाविकता शिव जी द्वारा राम की स्तुति के प्रसंग में भी है।

'अमल चरित तुम बैरिन मलिन करो,
साधु कहैं साधु परदार प्रिय अति हौ।
एक थल थित पै बसत जग जन मध्य,
केशोदास द्विपद पै बहु पद गति हौ।
भूषण सकल युत शीश धरे भूमि भार,
भूतल फिरत यों अभूत भुवपति हौ।
राखौ गाइ ब्राह्मणनि राजसिंह साथ चिरु,
रामचन्द्र राज करौ अद्भुत गति हौ' ॥[1]

सादृश्यमूलक अलङ्कारों उपमा-उत्प्रेक्षा आदि का प्रयोग करते हुये केशवदास ने अपने पांडित्यप्रदर्शन की धुन में कुछ स्थलों पर ऐसा अप्रस्तुत-विधान किया है, जिससे प्रस्तुत का रूप तनिक भी स्पष्ट नहीं होता है तथा कुछ स्थलों पर अप्रस्तुत विधान बड़े अरुचिकर रूप में हुआ है। इस प्रकार के कुछ उदाहरण यहाँ उपस्थित किये जाते हैं। पंपासर में खिले हुये 'कमल' का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है :

'सुन्दर सेत सरोरुह में करहाटक हाटक की द्युति को है।
तापर भौंर भलो मनरोचन कोक विलोचन की रुचि रोहै।
देखि दई उपमा जलदेविन दीरघ देवन के मन मोहै।
केशव केशवराय मनो कमलासन के सिर ऊपर सोहै' ॥[2]

इसी प्रकार 'रामचन्द्रिका' के उत्तरार्ध में राजमहल के वर्णन के प्रसंग में मंडप का वर्णन करते हुये कवि उत्प्रेक्षा करता है :

'मण्डप सेत लसै अति भारी। सोहत है छतुरी अति कारी।
मानहु ईश्वर के सिर सोहै। मूरति राघव की मन मोहै' ॥[3]

प्रथम उत्प्रेक्षा में ब्रह्मा के शिर पर विष्णु के बैठने तथा दूसरी उत्प्रेक्षा में शंकर जी के मस्तक पर राम के शोभित होने की कल्पना नहीं की जा सकती। यह दोनों ही कल्पनाएं उपहासास्पद हैं। इसी प्रकार निम्नलिखित अवतरणों में भी अप्रस्तुत-विधान अरुचिकर रूप में हुआ है। सीता-राघव के संवाद के अन्तर्गत सीता की उपमा बाज पक्षी से दी गई है।

'विड़कन घन घूरे भक्षि क्यों बाज जीवै।
सिवशिर शशिश्री को राहु कैसे सु छीवै' ॥[4]

१. रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, छं० सं० २, पृ० सं० १०६।
२. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ४१, पृ० सं० २३८।
३. रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, छं० सं० ३२, पृ० सं० १२०।
४. रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० २७६।

इसी प्रकार हनूमान, राम की विरहावस्था का वर्णन करते हुये राम की उपमा 'उलूक' से देते हैं :

'बासर की संपति उलूक ज्यों न चितवत'।[1]

अग्नि की ज्वाला में जलते हुए राक्षसों का वर्णन करते हुए कवि ने राक्षसों की तुलना कामदेव से की है :

'कहूँ रैनचारी गहे ज्योति गाढ़े। मनो ईश रोषाग्नि मे काम डाढ़े'।[2]

निम्नलिखित अवतरण में धनशाला का प्रेक्षण करने जाते हुए राम की उपमा 'चोर' से दी गई है :

'चतुर चोर से शोभित भये। धरणीधर धनशाला गये'।[3]

जिन स्थलों पर कवि ने पांडित्य-प्रदर्शन अथवा दूर की सूझ का आग्रह त्याग दिया है, वहाँ सुन्दर अलङ्कार-योजना मिलती है जो भावव्यंजना में सहायक है। इस प्रकार के कुछ छन्द यहाँ उद्धृत किये जाते हैं। निम्नलिखित छंद में कवि ने हनूमान द्वारा समुद्रोल्लंघन का वर्णन करते हुये अनेक उपमायें दी हैं, जो हनूमान के वेग तथा हनूमान द्वारा समुद्र लांघने के कार्य के सम्पादन की शीघ्रता प्रदर्शित करती हैं :

'हरि कैसो वाहन कि विधि कैसो हेमहंस,
लोक सी लिखत नभ पाहन के अंक को।
तेज को निधान राम मुद्रिका विमान कैधों,
लच्छन को बाण छूट्यो रावण निशंक को।
गिरिराज गंड ते उड़ान्यो सुबरन अलि,
सीता पद पंकज सदाऽकलंक रङ्क को।
हवाई सी छूटी केशोदास आसमान में,
कमान कैसो गोला हनुमान चल्यो लङ्क को'॥[4]

रामचन्द्र जी रावण के बध के उपरान्त अयोध्या लौट रहे हैं। भरत उनके आने की सूचना पाकर जिस ओर से विमान आ रहा है उधर बढ़ते हैं। रामचंद्र जी यह देख कर विमान पृथ्वी पर उतार देते हैं। भरत, राम के चरणों की ओर इस प्रकार दौड़ कर बढ़ते हैं, जिस प्रकार भौंरा कमल की ओर। इस उपमा के द्वारा कवि ने राम के प्रति भरत के प्रेम की सुन्दर व्यंजना की है। कवि का कथन है :

'आवत विलोकि रघुबीर लघुबीर तजि,
व्योमगति भूतल विमान तब आइयो।

१. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० २८६।
२. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० २९६।
३. रामचन्द्रिका, उत्तरार्ध, पृ० सं० १२१।
४. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ३८, पृ० सं० २६१।

रामपद पद्म सुख सद्म कह बन्धु युग,
दौरि तब षटपद समान सुख पाइयो' ॥[१]

इसी प्रकार भावव्यंजना में सहायक उत्प्रेक्षा अलङ्कार के प्रयोग के भी दो उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं। उत्प्रेक्षा के सहारे लङ्का में स्थित सीता की करुणाजनक स्थिति का चित्रण निम्नलिखित अवतरण में कवि ने सफलता से किया है :

'धरे एक बेणी मिली मैल सारी।
मृणाली मनो पंक तें काढ़ि डारी' ॥[२]

लङ्का में हनूमान ने आग लगा दी है। सोने की लङ्का का सोना पिघल कर समुद्र में जा रहा है। इसके लिये कवि की उत्प्रेक्षा है :

'कंचन को पघिलो पुर पूर पयोनिधि में पसरो सो सुखी ह्वै।
गंग हजार मुखी गुनि केशो गिरा मिली मानो अपार मुखी ह्वै' ॥[३]

इसी प्रकार 'रामचंद्रिका' में प्रयुक्त कुछ अन्य प्रमुख अलंकारों के उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं।

रूपक :

'चढ़ो गगन तरु धाय, दिनकर बानर अरुन मुख।
कीन्हो झुकि झहराय, सकल तारका कुसुम बिन' ॥[४]

अथवा

'सातहु दीपन के अवनीपति हारि रहे जिय में जब जाने।
बीस बिसे ब्रत भंग भयो सु कहौ अब केशव को धनु ताने।
शोक की आग लगी परिपूरण आइ गये घनश्याम बिहाने।
जानकि के जनकादिक के सब फूलि उठे तरु पुण्य पुराने' ॥[५]

प्रतीप :

'कलित कलंक केतु केतु अरि सेत गात,
भोग योग को अयोग रोग ही को थल सो।
पून्योई को पूरन पै प्रति दिन दूनो दूनो,
छण छण छीण होत छीलर को जल सो।
चन्द्र सो जो बरणत रामचंद्र की दोहाई,
सोई मति मंद कवि केशव कुशल सो।
सुन्दर सुवास अरु कोमल अमल अति,
सीता जी को मुख सखि केवल कमल सो' ॥[६]

---

१. रामचन्द्रिका, उत्तरार्ध, पृ० सं० ११।
२. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० २७०।
३. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० २१७।
४. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं १२, पृ० सं० ७२।
५. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० १७, पृ० सं ७४।
६. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ४१, पृ० सं० १७८।

अपन्हुति :

'हिमांशु सूर सो लगै सो बात बज्र सी बहै।
दिसा लगै कृसानु ज्यों विलेप अंग को दहै।
बिसेस कालिराति सों कराल राति मानिये।
वियोग सीय को न, काल लोकहार जानिये' ॥[1]

विभावना :

'रामचंद्र कटि सों पटु बांध्यो। लीलयेव हरि को धनु सांध्यो।
नेकु ताहि कर पल्लव सो छ्वै। फूल मूल जिमि टूक कर्यौ द्वै' ॥[2]

अथवा

'नाम वरण लघु वेश लघु, कहत रीझि हनुमंत।
इतो बड़ो विक्रम कियो, जीते युद्ध अनंत' ॥[3]

अतिशयोक्ति :

'दशग्रीव को बंधु सुग्रीव पायो। चल्यौ लंक लैके भले अंक लायो।
हनूमंत लातै रह्यो देह भूल्यो। छुट्यौ कर्ण नासाहि लै इन्द्र फूल्यौ।
संभार्यौ घरी एक दू मैं मरू कै। फिर्यौ रामही सामुहे सो गदा लै।
हनूमंत सो पूँछ सों लाइ लीन्ही। न जान्यौ कबै सिन्धु में डारि दीन्ही' ॥[4]

सहोक्ति :

'प्रथम टंकोर झुकि झारि संसार मद,
चंड कोदंड रह्यो मंडि नवखंड को।
चालि अचला अचल घालि दिगपाल बल,
पालि ऋषिराज के बचन परचण्ड को।
सोधु दै ईश को बोध जगदीश को,
क्रोध उपजाइ भृगुनंद बरिबण्ड को।
बांधि वर स्वर्ग को साधि अपवर्ग,
धनुभंग को शब्द गयो भेदि ब्रह्मंड को' ॥[5]

स्वभावोक्ति :

'कंपै उर बानि डगै बर डीठि त्वचाऽति कुचै सकुचै मति बेली।
नवै नवग्रीव थकै गति केशव बालक ते संग ही संग खेली।

१. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ४२, पृ० सं० २२९।
२. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ४१, पृ० सं० ८६।
३. रामचन्द्रिका; उत्तरार्ध, छं० सं० ४, पृ० सं० ३१२।
४. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० २५, २६, पृ० सं० ३८८, ८९।
५. रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, छं० सं० ४३, पृ० सं० ८७, ८८।

लिये सब आधिन व्याधिन संग जरा जब आवै ज्वारा की सहेली।
भगै सब देह दशा, जिय साथ रहै दुरि दौरि दुराश अकेली' ॥[1]

वीरसिंहदेव-चरित :

इस रचना के प्रथमार्ध में अकबर की सेनाओं से वीरसिंहदेव के अनेक युद्धों का वर्णन किया गया है। अतएव इस भाग में केशव को अपना अलंकार-प्रयोग-नैपुण्य दिखलाने का अधिक अवकाश नहीं मिला है। इस अंश में दृश्य तथा वस्तुवर्णन में ही कुछ स्थलों पर अलंकार-योजना हुई है। ग्रंथ के उत्तरार्ध में वीरसिंहदेव के यश और प्रताप का वर्णन है। यह अंश रामचंद्रिका के उत्तरार्ध का परिवर्धित तथा संशोधित संस्करण ही है। अधिकांश प्रसंग, दृश्य तथा वस्तुयें वही हैं, जिनका वर्णन 'रामचंद्रिका' ग्रंथ में किया गया है। अतएव इनके सम्बन्ध में प्रायः वही कल्पनायें की गई हैं, जो 'रामचंद्रिका' में मिलती हैं।

जिन स्थलों पर कवि ने अपना पांडित्य-प्रदर्शन अथवा पाठकों में चमत्कार की भावना जागृत करने का प्रयास किया है, उन स्थलों पर कवि की अलंकार-योजना भावव्यंजना अथवा दृश्य तथा वस्तु के उत्कर्ष-साधन में सफल नहीं हो सकी है। इस प्रकार के दो उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं। प्रयाग में वीरसिंह द्वारा दान के लिये प्रस्तुत हाथी का वर्णन उत्प्रेक्षालंकार की सहायता से किया गया है, किन्तु हाथी की उपमा तुलसी वृक्ष से देना उपहासास्पद है:

'जब गज गंगाजल महं गयो। बहुत भांति करि सोभित भयो।
स्वेत कुसुम चौसर मय स्वच्छ। सोहत तुलसी कैसो वृच्छ'।[2]

अन्य स्थल पर वर्षा का वर्णन करते हुये वर्षा की तुलना अनुसूया अथवा द्रौपदी से की गई है यद्यपि वास्तव में दोनों में कोई साम्य नहीं है:

'अनुसूया सी सुनौ सुदेस। चारु चन्द्रमा गर्व सुवेस।
राचस पति सो दल देखियो। स्वर्ग सामुही गति लेखियो।
× × × × ×
द्रुपद सुता कैसी दुति धरै। भीम भूरि भावनि अनुसरै' ॥[3]

किन्तु फिर भी वीरसिंहदेवचरित में अनेक स्थल ऐसे हैं जहाँ कवि सुन्दर अलंकार-योजना करने में पूर्णरूप से सफल हुआ है। कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं। वीरसिंह एक के बाद दूसरा स्थान छोड़ता हुआ चला जाता है। उपमालंकार की सहायता से इस तथ्य का वर्णन करते हुये कवि कहता है कि, 'वीरसिंह के प्रयाण करने पर उसके सम्मुख एक के बाद दूसरा स्थान उसी प्रकार विलुप्त होता चला जाता है जिस प्रकार सूर्य के उदय के साथ तारागण'।

'प्रात भये तारानि ज्यों, रवि को होत प्रवेस।
हरै हरै छूटत चल्यो केसव दीरघ देस' ॥[4]

---

१. रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, छं० सं० ११, पृ० सं० ४८।
२. वीरसिंहदेवचरित, ना० प्र० सं०, पृ० सं० ३१।
३. वीरसिंहदेवचरित, ना० प्र० स०, पृ० सं० ६७।
४. वीरसिंहदेवचरित, ना० प्र० स०, पृ० सं० ६१।

अबुलफजल की मृत्यु के समाचार से सम्राट अकबर के नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित है। उसके नेत्रों के लिये केशव ने 'रहटघरी' से उपमा दी है जो सुन्दर तथा स्वाभाविक है :

'भरि भरि रीति रीति, रीति रीति भरै पुनि।
रहट घरी सी आँख साहि अकबर की'।[१]

इसी प्रकार कई स्थलों पर केशव ने उत्प्रेक्षायें भी बड़ी ही स्वाभाविक की हैं। अबुलफजल की मृत्यु के समाचार से सम्राट अकबर के अश्रुपूर्ण नेत्रों के लिये कवि का कथन है :

'चंचल लोचन जल झलझले।
पवन पाइ जनु सरसिज हले'।[२]

कलकल करती हुई बहती वेतवा का वर्णन करते हुये कवि उत्प्रेक्षा करता है कि मानो राजा रामशाह की प्रिया (नदी) उनसे रूठ कर बरबराती चली जाती है :

'शब्दति चंचल चतुर विभाति।
मनौ राम सों रूठी जाति'।[3]

एक स्थल पर युद्ध के वर्णन में कवि ने युद्ध-स्थल तथा वर्षा का स्वाभाविक रूपक बांधा है:

'दलबल सहित उठे दोइ बीर। मनौ घनाघन घोर गंभीर।
धुन्ध धूरि धुरवा से गनौ। बाजत दुन्दुभि गर्जत मनौ।
जहाँ तहाँ तरवारै कढ़ी। तिनकी दुति जनु दामिनि बढ़ी।
तुपक तीर धुव धारा पात। भीत भये रिपुदल भट ब्रात।
श्रोनित जल पैरत तिहिं खेत। कूरम कुल सब दलहि समेत'।[४]

इसी प्रकार अन्य अनेक उदाहरण उपस्थित किये जा सकते हैं जहाँ कवि ने सुन्दर अलंकार-योजना की है। अंत में यदि केशव की रचनाओं पर सामूहिक रूप से विचार किया जाये तो यह मानना पड़ेगा कि यदि कुछ स्थलों पर कवि ने पांडित्य-प्रदर्शन, दूर की सूझ तथा पाठकों में चमत्कार-वृत्ति जाग्रत करने के लिये आकाश-पाताल एक कर दिया है तो अनेक स्थलों पर स्वाभाविक, भावव्यंजना में सहायक तथा दृश्य एवं वस्तु का उत्कर्ष-साधन करने वाली अलंकार-योजना भी की है और ऐसे स्थल ही अधिक हैं। अतएव अलंकार-योजना के क्षेत्र में केशव को असफल सिद्ध करने का प्रयास करना हठधर्मी होगी।

१. वीरसिंहदेवचरित, ना० प्र० स०, पृ० सं० ४०।
२. वीरसिंहदेवचरित, ना० प्र० स०, पृ० सं० ३१।
३. वीरसिंहदेवचरित, ना० प्र० स०, पृ० सं० ६१।
४. वीरसिंहदेवचरित, ना० प्र० स०, पृ० सं० २३।

पंचम् अध्याय

आचार्यत्व

केशव के पूर्व रीति-ग्रंथों की परम्परा :

केशवदास जी काव्य-शास्त्र के प्रथम ाचार्य और रीति-मार्ग के प्रवर्तक माने जाते हैं किन्तु रीतिग्रंथों की रचना का सूत्रपात्र इनसे पूर्व ही हो चुका था। हिन्दी का सर्वप्रथम कवि पुष्य माना जाता है जो शिवसिंह सेंगर के अनुसार सं० ७०० वि० में हुआ। पुष्य का ग्रंथ, जो अब अप्राप्य है, अलंकार-ग्रंथ कहा जाता है। इस मार्ग का अनुसरण करने वालों में व्रज के क्षेम कवि और मुनिलाल का नाम भी लिया जाता है। इनमें मुनिलाल तो इस प्रकार के ग्रंथों का जन्मदाता ही माना गया है।[1] क्षेमकवि तथा मुनिलाल का विशेष विवरण अज्ञात है। इनके ग्रंथ भी प्राप्य नहीं हैं। हिन्दी-साहित्य-शास्त्र-सम्बन्धी प्रथम प्राप्य ग्रंथ कृपाराम का 'हित-तरंगिणी' नामक रसग्रंथ है। इन्हीं के समसामयिक गोप और मोहन लाल कवि भी थे। गोप ने दो छोटे-छोटे अलंकार-ग्रंथ 'राम-भूषण' और 'अलंकार-चन्द्रिका' लिखे थे किन्तु यह सब अप्राप्य हैं। मोहनलाल ने 'शृंगार-सागर' लिखा था किन्तु वह भी अप्राप्य है। नाम से यह रस-ग्रंथ प्रतीत होता है। इसी समय के लगभग रहीम ने बरवै में 'नायिका-भेद' लिखा और कर्णेश कवि ने अलंकार पर तीन छोटे-छोटे ग्रंथ 'कर्णाभरण', 'श्रुति-भूषण' और 'भूप-भूषण' लिखे थे। स्वयं केशव के बड़े भाई बलभद्र मिश्र ने 'दूषण-विचार' और 'नखशिख' लिखा था। किन्तु ये सब क्षीण और उथले प्रयत्न थे और शनैः शनैः परिवर्तित होती हुई लोकरुचि की ओर संकेत-मात्र करते थे। वास्तव में साहित्य-शास्त्र को व्यवस्थित रूप देकर उसके लिये अप्रतिबंध मार्ग खोलने का श्रेय आचार्य केशव को ही है, अतएव केशव को ही रीतिमार्ग का प्रवर्तक मानना ठीक होगा।[2]

1. "A small begining had been made prior to him (Kesava) by Khem of Braj and one Muni Lal, he is regarded as the founder of the Technical School of Poetry."

Introduction, Search-Report for Hindi Mss. 1906-8 by B. Shyam Sunder Das.

2. "Kesava Das (1555-1617) was practically the founder of the Technical School of Hindi Poetry."

Search for Hindi Mss 1909-11 By
Shyam Behari Missra.

आचार्यत्व का आधार और मौलिकता :

केशव के आचार्यत्व की प्रतिष्ठापक मुख्यतया दो पुस्तकें हैं, 'कविप्रिया' तथा 'रसिक-प्रिया।' 'कवि-प्रिया' में सोलह प्रभाव हैं। पहले प्रभाव में गणेश-वन्दना के बाद ग्रंथ-प्रणयन-काल और फिर नृपवंश-वर्णन है। नृपवंश-वर्णन के साथ ही कवि के आश्रयदाता इन्द्रजीत सिंह की षट्पातुरों का भी वर्णन है। दूसरे प्रभाव में कवि ने अपने वंश का वर्णन किया है। तीसरे प्रभाव में काव्य के दोष तथा गण-अगण का विचार किया गया है। इस प्रकार वास्तविक ग्रंथ का आरम्भ तीसरे प्रभाव से ही होता है। छंद दो प्रकार के होते हैं मात्रिक, जिनमें दीर्घ-लघु का विचार किया जाता है और वर्णिक, जिनमें वर्णों तथा अक्षरों की गणना की जाती है। वर्णिक छंदों के सम्बन्ध में गण-अगण का विचार किया जाता है। तीन अक्षरों के समूह को 'गण' कहते हैं। प्रत्येक अक्षर गुरु अथवा लघु दो प्रकार का होता है। तीन अक्षर के गण के आठ स्वरूप हो सकते हैं, अतएव आठ गण बतलाये गये हैं। केशवदास जी ने इन्हीं आठों स्वरूपों अथवा गणों का वर्णन किया है। तीनों अक्षर गुरु हों तो 'मगण', लघु हों तो 'नगण' तथा केवल आदि में गुरु हो तो 'भगण' तथा लघु हो तो 'यगण'। यह चार गण शुभ माने गये हैं। इसी प्रकार मध्य में गुरु हो तो 'जगण', मध्य में लघु हो तो 'रगण', अंत में गुरु हो तो 'सगण' तथा अंत में लघु हो तो 'तगण'। यह चार गण अशुभ माने गये हैं।

'मगन नगन पुनि भगन अरु, यगन सदा शुभ जानि।
जगन रगन अरु सगन पुनि, तगनहिं अशुभ बखानि॥
मगन त्रिगुरु युत त्रिलघुमय, केशव नगन प्रमान।
भगन आदि गुरु आदि लघु, यगन बखानि सुजान॥
जगन मध्य गुरु जानिये, रगन मध्य लघु होय।
सगन अंत गुरु अंत लघु, तगन कहै सब कोय'॥[1]

वृत्तरत्नाकर आदि छंद-ग्रंथों में गण के देवता, गणों की मैत्री तथा शत्रुता और देवतानुसार गणों के फल का वर्णन भी किया गया है। 'मगण' का देवता 'पृथ्वी', 'नगण' का 'स्वर्ग', 'यगण' का 'जल', 'भगण' का 'चन्द्र', 'जगण' का 'सूर्य', 'रगण' का 'अग्नि', 'सगण' का 'वायु' तथा 'तगण' का देवता 'आकाश' माना गया है। 'मगण' और 'नगण' आपस में मित्र कहे गये हैं, 'मगण' और 'रगण' दास, 'जगण' और 'तगण' उदासीन तथा 'रगण' और 'सगण' आपस में शत्रु माने गये हैं। गणों के फल के सम्बन्ध में 'मगण' का फल 'लक्ष्मी' बतलाया गया है, 'नगण' का 'आयु', 'भगण' का 'यश', 'यगण' का 'वृद्धि', 'जगण' का 'रोग', 'तगण' का 'धनहानि', 'रगण' का 'विनाश' तथा 'सगण' का 'देशाटन'।[2] केशवदास जी ने भी यह सब वर्णन किया है।

१. कविप्रिया, तीसरा प्रभाव, छं० सं० १६-२१, पृ० सं० ३३, ३४।

२. 'मो भूमिस्त्रिगुरुः श्रियं दिशति यो वृद्धिं जलं चादिग्यो।
रोऽग्निर्मध्यलघुर्विनाशमनिलो देशाटनं सोन्त्यगः।
तो व्योमान्तलघुर्धनापहरणं जोऽर्को रुजं मध्यगो।

'मही देवता मगन को, नाग नगन को देखि ।
जल जिय जानौं यगन को, चंद भगन को लेखि ॥
मगन नगन को मित्रगनि, भगन यगन को दास ।
उदासीन ज त जानिये, र स रिपु केशवदास ॥
भूमि भूरि सुख देय, नीर नित आनन्द कारी ।
आगि अंग दिन दहै, सूर सुख सोखें भारी ॥
केशव अकल अकाश वायु किल देश उदासें ।
मंगल चंद अनेक नाग बहु बुद्धि प्रकासें' ॥[1]

केशवदास जी का गण-अगण-वर्णन 'वृत्तरत्नाकर' के वर्णन के समान है, केवल देवतानुसार गणफल-वर्णन में कुछ अन्तर है। केशव के अनुसार 'मगण' का फल सुखाधिक्य है, 'नगण' का बुद्धि, 'भगण' का मंगल अथवा कल्याण, 'यगण' का आनन्द, 'जगण' का सुखहानि, 'तगण' का निष्फलता, 'रगण' का शारीरिक क्लेश तथा 'सगण' का देश से उदासीनता।

कवि-भेद-वर्णन :

चौथे प्रभाव में कवि-भेद तथा कवि-रीति का वर्णन है। केशवदास जी ने तीन प्रकार के कवि माने हैं उत्तम, मध्यम और अधम। इनका वर्णन करते हुये लिखा है :

'हैं अति उत्तम ते पुरषारथ जे परमारथ के पथ सोहैं ।
केशवदास अनुत्तम ते वर संतत स्वारथ संयुत जोहैं ॥
स्वारथ हू परमारथ भोग न मध्यम लोगनि के मन मोहैं ।
भारत पारथ मित्र कह्यो परमारथ स्वारथ हीन ते को हैं' ॥[2]

यह छन्द भर्तृहरि के श्लोक के आधार पर लिखा गया है। भर्तृहरि ने मनुष्यों की कोटि बतलाते हुये इसी प्रकार कहा है कि 'सज्जन वे हैं जो स्वार्थ का त्याग कर परमार्थ का साधन करते हैं। सामान्य पुरुष वे हैं जो स्वार्थ का विरोध न होने पर परमार्थ करते हैं। वे मनुष्यों में राक्षस के समान हैं जो स्वार्थ के लिये दूसरों के हित की हानि करते हैं और वे कौन हैं, जो निरर्थक ही दूसरों की हित की हानि करते हैं, नहीं कहा जा सकता'।[3]

मश्चन्द्रोयशउज्ज्वलं सुखगुरुर्नोनाक आयुस्त्रिलः ॥
वृत्तरत्नाकर-टीका ।

'मनौ मित्रे भ-यौ भृत्यावुदासीनतौ ज तौ स्मृतौ ।
रसावरी नीच संज्ञौ ज्ञेयवैतौ मनीषिभिः ॥
वृतरत्नाकर-टीका ।

१. कविप्रिया, तीसरा प्रभाव, छंद सं० २३-२६, पृ० सं० ३४, ३५ ।

२. कविप्रया, तीसरा प्रभाव, छं० सं० ३, पृ० सं० ४८ ।

३. 'एते सत्पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थं परित्यज्य ये ।
सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृतः स्वार्थाविरोधेन ये ।
तेऽमी मानवराक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये ।
ये तु घ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे' ॥
भर्तृहरि, नी० श०, श्लोक ७४, पृ० सं० १०१ ।

कविरीति-वर्णनः

कविरीति के अन्तर्गत केशव ने तीन बातों का उल्लेख किया है, सत्य को झूठ कहना, झूठ को सत्य मान कर वर्णन करना, और कवियों के नियमबद्ध-वर्णन अर्थात् वह वर्णन जो कवि परम्परा से करते चले आते हैं। कविरीति-वर्णन से लेकर सप्तम प्रभाव तक के लिये सामग्री संचित करते समय केशव के सम्मुख दो ग्रंथ थे। एक तो अमर कवि-कृत 'काव्यकल्प-लता-वृत्ति' और दूसरा कोट कांगड़ा के राजा माणिक्य चन्द्र के आश्रित केशव मिश्र का 'अलंकार-शेखर'। यह दोनों ग्रंथ नवोद्भूत कवियों को कवि-कर्म की शिक्षा देने के लिये लिखे गये थे। इन दोनों ग्रंथों के बहुत से अंश एक दूसरे से प्रायः ज्यों के त्यों मिल जाते हैं। कहीं-कहीं तो केवल दो-एक अक्षर या शब्द का ही अन्तर है। केशव कविरीति-वर्णन के लिये 'अलंकार-शेखर' के ही ऋणी प्रतीत होते हैं। इस अनुमान की पुष्टि इस बात से होती है कि कवि के नियमबद्ध-वर्णन के अन्तर्गत केशव ने लिखा है :

'ईश शीश शशि वृद्धि की बरनत बालक बानि'।[1]

तथा

'वर्णत देवन चरण तें, सिर तें मानुष गात'।[2]

इन दोनों बातों का उल्लेख 'काव्यकल्पलतावृत्ति' में न होकर केवल 'अलंकार-शेखर' ही में है।[3] कविरीति-वर्णन के अन्तर्गत अलंकार-शेखर-कार ने अपेक्षाकृत अधिक उदाहरण दिये हैं, किन्तु केशव ने थोड़े से उदाहरण देकर पथ-प्रदर्शन-मात्र किया है। सत्य को झूठ कहना, और झूठ को सत्य मानकर वर्णन करने के सम्बन्ध में केशव द्वारा दिये हुये उदाहरणों का आधार 'अलंकार-शेखर' ही है। केवल दो चार उदाहरण ऐसे हैं जिनका उल्लेख केशव मिश्र ने नहीं किया है यथा :

'कृष्ण पक्ष की जोन्ह ज्यों शुक्ल पक्ष तम तूल'।[4]

अथवा

'अंजुलि भर पीवन कहैं, चन्द्र चंद्रिका पाय'।[5]

कवि के नियम-बद्ध वर्णन के अन्तर्गत अधिकांश उदाहरण केशव के अपने हैं, केवल निम्नलिखित ही 'अलंकार-शेखर' से लिये गये हैं :

'वर्णत चंदन मलय ही, हिमगिरि ही भुजपात।
वर्णत देवन चरण तें, सिर तें मानुष गात'॥[6]

---

१. कविप्रिया, चतुर्थ प्रभाव, पृ० सं० ४४।

२. कविप्रिया, चतुर्थ प्रभाव, पृ० सं० ४४।

३. 'चिरंतनस्यापि तथा शिवचन्द्रस्य बालता'।
अलंकार-शेखर, मरीचि १५, पृ० सं० ५६।

४. 'मानवा मौलितो वर्ण्या देवाश्चरणतः पुनः'।
अलंकार-शेखर, मरीचि १५, पृ० सं० ५६।

५. कविप्रिया, चतुर्थ प्रभाव, पृ० सं० ५०।

६. कविप्रिया, चतुर्थ प्रभाव, छं० सं० ११, पृ० स० ४४।

'कोकिल को कलि बोलिबो बरनत हैं मधुमास।
वर्षा ही हर्षित कहैं, केकी केशवदास' ॥[1]
'दनुजन सों दिति सुतन सों, असुरै कहत बखानि।
ईश शीश शशि वृद्धि की, बरनत बालक बानि' ॥[2]

अलंकार-भेद-वर्णन

वर्णालंकार :

केशव ने अलंकारों के दो भेद किये हैं। साधारण और विशिष्ट, और फिर साधारण अलंकारों के चार भेद किये हैं वर्णालंकार, वरार्यालंकार, भूमिश्री-वर्णन तथा राज्य-श्री-वर्णन। कविप्रिया के पांचवे प्रभाव में वर्णालंकार का वर्णन किया गया है। वर्णालंकार के अन्तर्गत केशवदास ने कविता में सात रंगों, श्वेत, पीत, काला, अरुण, धूमर, नीला और मिश्रित के वर्णन की शिक्षा दी है।[3] 'काव्यकल्पलतावृति' में केवल छः रंगों का उल्लेख है, श्वेत, पीत, काला, नीला, अरुण और धूमर।[4] 'अलंकार-शेखर' में केवल पाँच ही रंग गिनाये गये हैं, श्वेत, पीत, अरुण, नीला और धूमर।[5] काले रंग को केशव मिश्र ने नीले के ही अन्तर्गत माना है। अमर ने कृष्ण, चंद्रांक, राहु, यम, राक्षस, शनि, द्रोपदी, विष, अम्बर, कुहू, अगरु, पाप, तम और निशा आदि का वर्णन काले रंग के अन्तर्गत किया है और केशव मिश्र ने नीले के अन्तर्गत। केशवदास ने अमर का अनुसरण करते हुये इन वस्तुओं को काले रंग के ही अन्तर्गत माना है। अमर ने हरे रंग का उल्लेख नहीं किया है। किन्तु केशव मिश्र ने उपलक्षण के रूप में हरे रंग का भी उल्लेख किया है। बुध तथा मरकत मणि आदि वस्तुयें हरे रंग की बतलाई हैं। केशवदास ने अमर का ही अनुसरण करते हुये हरे रंग का उल्लेख नहीं किया है और हरे रंग को नीले के अन्तर्गत माना है। इस प्रसंग को समाप्त करते हुये केशव मिश्र ने दो रूप अर्थात मिश्रित रंगवाली वस्तुओं की ओर संकेत-मात्र किया है किन्तु ऐसी वस्तुओं का नाम नहीं दिया है।[7] अमर ने ऐसी वस्तुओं का उल्लेख

१. कविप्रिया, चतुर्थ प्रभाव, छं० सं० १४, पृ० सं० ५४।
२. कविप्रिया, चतुर्थ प्रभाव, छं० सं० १५, पृ० सं० ५४।
३. 'सेत पीत कारे अरुण धूमर नीले वर्ण।
मिश्रित केशवदास कहि, सात भांति शुभ कर्ण' ॥४॥
कविप्रिया, पांचवा प्रभाव, पृ० सं० ६०।
४. का० क० वृत्ति, प्रतान ४, स्तबक २, पृ० सं० ११७-१२२।
५. अलंकार-शेखर, मरीचि १७, पृ० सं० ६१।
६. इदमुपलक्षणम्।
'हरिताः सूर्यतुरगा बुधो मरकतादयाः।
अलंकार-शेखर, मरीचि १७, पृ० सं० ६२।
७. 'द्वैरूप्ये चाप्रसद्धौ च नियमोऽमुदाहृतः।
अन्यद्वस्तु यथा यस्स्यातत्तथैवोपवर्ण्यते'।
अलंकार-शेखर, मरीचि १७, पृ० सं० ६२।

किया है। मिश्रित रङ्ग के अन्तर्गत अमर ने श्वेत और श्याम, श्वेत और रक्त, श्वेत और पीत, रक्त और श्याम, पीत और श्याम, तथा पीत और रक्त का बोध कराने वाले द्वयार्थी शब्द गिनाये हैं।[1] किन्तु केशव ने केवल श्वेत और कृष्ण, श्वेत और पीत, तथा श्वेत और लाल रङ्ग का बोध कराने वाले द्वयार्थी शब्दों का ही उल्लेख किया है; अमर द्वारा दिये हुये अन्य भेदों को छोड़ दिया है। इसके अतिरिक्त अमर ने बहुत सी वस्तुओं का उल्लेख किया है किन्तु केशवदास ने उनमें से कुछ ही गिनाई हैं। श्वेत और लाल के अन्तर्गत केशव ने शुचि, हरि, पुष्कर, हंस, अर्क, अब्ज और कमल, सात शब्द दिये हैं। श्वेत और पीत के अंतर्गत केशवदास ने छः शब्द दिये हैं शंभु, रजत, अष्टापद, सोम, कलधौत और तारकूट। 'सोम' शब्द अमर के हेम का पर्यायवाची है। श्वेत और कृष्ण के अन्तर्गत केशवदास ने हरि, विधु, अभ्रक, पाख, घन, नागराज, पयोराशि, सिंहीज, अनंत तथा अर्जुन दस शब्द दिये हैं। अमर ने पयोरासि का उल्लेख नहीं किया है। अन्य शब्द अमर के अनुसार हैं। केशवदास का 'नागराज' और अमर द्वारा दिया हुआ 'नागेन्द्र' एक ही है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि मिश्रित रंग के अन्तर्गत दी हुई सूची के प्रायः सब शब्द केशव ने 'काव्य-कल्पलता-वृत्ति' से ही लिये हैं। किन्तु अन्य रङ्गों के अन्तर्गत दी हुई सूची के लिये केशवदास 'अलंकार-शेखर' और 'काव्य-कल्पलता-वृत्ति' दोनों ही ग्रंथों के ऋणी हैं, यद्यपि प्रथम की अपेक्षा द्वितीय ग्रंथ का ऋण अधिक है। यह स्वाभाविक ही था क्योंकि अमर की सूची केशव मिश्र की सूची की अपेक्षा अधिक विस्तृत है। इन दोनों ग्रंथों में भिन्न-भिन्न रङ्गों के अन्तर्गत दी हुई सूची और केशवदास द्वारा दी हुई सूची की तुलना करने पर कुछ शब्द ऐसे मिलते हैं जो 'अलङ्कार-शेखर' और 'काव्यकल्पलता-वृत्ति' दोनों में आये हैं। इन शब्दों के लिये यह नहीं कहा जा सकता कि केशव ने यह शब्द दोनों में से किस ग्रंथ से लिये हैं। कुछ शब्द ऐसे हैं जो केवल 'अलङ्कार-शेखर' या 'काव्यकल्पलता-वृत्ति' ही में मिलते हैं। कुछ शब्द ऐसे भी हैं जो दोनों ग्रंथों में नहीं मिलते। यह स्पष्ट ही केशव के निजी हैं। एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायेगी। श्वेत रङ्ग के अन्तर्गत केशवदास द्वारा दी हुई वस्तुओं में से निम्नलिखित शब्द दोनों ग्रंथों में आये हैं :

हरिहय, हर, नारद, बल (बलराम) शेष, सिंह, सौध, कांचली, हिम, सस, कमल, सिकता, सुधा, खांड, और शशि।

निम्नलिखित शब्द केवल 'अलङ्कार-शेखर' में ही आये हैं, जो इसी ग्रंथ से लिये गये हैं :

सुरवारण, भांडर (अभ्रक), सुरसरित, शरदघन, मुरार (मृणाल)।

निम्नलिखित शब्द 'काव्य-कल्पलतावृत्ति' से लिये गये हैं :

छत्र, सीप, कौड़ी, उड़मार (नक्षत्र), सूर, करका, (ओला) शारदा (वाणी), जोन्ह (चन्द्रप्रभा), हरि (इन्द्र), सत्वगुण, सतयुग, सुकृति (पुराय), शुक्र, हरिगिरि, मंदार, कपास, कांस, घनसार, कीरति, चंदन, दधि, हाड़, खटिका, फटिक, भस्म, जरा, चंवर, हीरा, वज्र, दूध, कमल, जल, निर्झर, पारद, हंस, बक, संख तथा कुंद।

---

१. का० क० वृ०, प्रतान ३, स्तबक २ तथा ३, पृ० सं० ६७—७३।

केशव के निजी शब्द :

केवड़ा, शुचि, संतमन, चून, फेन ।

वर्ण्यालंकार :

कविप्रिया के छठे प्रभाव में केशवदास ने वर्ण्यालंकार का वर्णन किया है। जिन वस्तुओं की आकृति या गुण लेकर कोई उक्ति कही जाये उनको केशव ने वर्ण्यालंकार माना है। इस प्रकरण के अन्तर्गत केशव ने २८ प्रकार की वस्तुओं का उल्लेख किया है। इनमें से सम्पूर्ण, कुटिल, त्रिकोण, सुवृत्त तथा मंडलाकार वस्तुओं का आधार काव्यकल्पलतावृति का प्रतान ४, स्तबक ३, तथा तीक्ष्ण, कोमल, कठोर, निश्चल, चंचल, सुखद, दुखद, मंदगति, शीतल, तप्त, सुरूप, कुरूप, सुस्वर, मधुर, अबल, बलिष्ट, तथा दानी का आधार इसी ग्रन्थ का प्रतान ४, स्तबक ४ है। अमर ने बहुत से अन्य आकार और गुणवाली वस्तुओं का भी वर्णन किया है जिनको केशव ने छोड़ दिया है तथा दूसरी ओर केशव ने कुछ अन्य वस्तुयें दी हैं जिनका अमर ने कोई उल्लेख नहीं किया है, जैसे आवर्ताकार, गुरु, सत्य, झूठ, अगति तथा सदगति आदि का वर्णन। इन वस्तुओं का वर्णन केशव का निजी है। जिन वस्तुओं का अमर ने वर्णन किया है उनके अन्तर्गत उन्होंने केशवदास जी की अपेक्षा अधिक विस्तृत सूची दी है। केशव ने कुछ वस्तुयें तो अमर से ली हैं शेष अपनी ओर से बतलाई हैं। उदाहरण-स्वरूप कोमल वस्तुओं के अन्तर्गत अमर ने स्त्री के अंग, शिरीष पुष्प, नव पल्लव, हंस के रोयें, कदली-स्तम्भ तथा रेशमी वस्त्र का उल्लेख किया है।[1] केशवदास ने निम्नलिखित वस्तुयें बतलाई हैं :

'पल्लव, कुसुम, दयालुमन, माखन मैन, सुरार।
पाठ पामरी, जीभ, पद, प्रेम, सुपुन्य विचार'।।[2]

कुछ वस्तुओं के अन्तर्गत दी हुई केशव की सब वस्तुयें अमर से मिल जाती हैं, किन्तु ऐसे उदाहरण बहुत कम हैं, जैसे सुरूप, निश्चल आदि वस्तुयें। निश्चल के अन्तर्गत केशव ने निम्नलिखित वस्तुयें बतलाई हैं :

'सती, समर भट, संतमन, धर्म, अधर्म निमित्त।
जहाँ जहाँ ये बरनिये, केशव निश्चल चित्त'।[3]

अमर ने भी यही वस्तुयें गिनाई हैं।[4]

१. 'कोमलान्यंगनांगानि शिरीषनवपल्लवाः।
हंस रोमराजिकदलीस्तम्भाः पट्टांशुकान्यपि'।।
काव्यकल्पलतावृत्ति, प्रतान ४, स्तबक ४, पृ० सं० १४२।

२. कविप्रिया, छठा प्रभाव, छं० सं० ४, पृ० सं० ६८।

३. कविप्रिया, छठा प्रभाव, छं० सं० २३, पृ० सं० ६३।

४. 'स्थिराणि पृथ्वी शैलो धर्माधर्मो सतां मनः।
सती शैलं रणे धीरः प्रतिपन्नंमहात्मनाम्'।।
काव्यकल्पलतावृत्ति, प्रतान ४, स्तबक ४, पृ० सं० १४०।

भूमिश्री तथा राज्यश्री वर्णन :

'कविप्रिया' के सातवें प्रभाव में केशवदास ने भूमिश्री का वर्णन किया है और आठवें प्रभाव में राज्यश्री का। देश, नगर, वन, बाग, गिरि, आश्रम, सरिता, रवि, शशि, सागर और षटऋतु को केशव ने भूमिश्री के अन्तर्गत माना है और राजा, रानी, राजसुत, प्रोहित, दलपति, दूत, मंत्री, मंत्र, प्रयाण, हय, गय और संग्राम को राज्यश्री के अन्तर्गत। इन वस्तुओं का वर्णन अमर तथा केशव मिश्र दोनों ही ने किया है। इन दोनों आचार्यों ने इस प्रकार का कोई विभाजन नहीं किया है और इन सब वस्तुओं के वर्णन की विधि एक ही प्रकरण के अन्तर्गत बतलाई है।

'काव्यकल्पलतावृत्ति' में कुछ ऐसी वस्तुओं का उल्लेख है जो 'अलंकार-शेखर' में नहीं हैं जैसे मंत्री, राजकुमार, पुरोहित, दलपति, दूत और मंत्र। केशव ने इनका वर्णन किया है, अतएव स्पष्ट ही इनके लिये 'काव्यकल्पलता-वृत्ति' से सहायता ली है। 'अलंकार-शेखर' में भी कुछ ऐसी बातों का उल्लेख है जिनका वर्णन 'काव्यकल्पलता-वृत्ति' में नहीं है जैसे सायंकाल, अभिसार और अन्धकार। केशव ने भी अमर के ही समान इन वस्तुओं को छोड़ दिया है। अतएव यह निश्चय करना कि केशव ने 'अलंकार-शेखर' से भी सहायता ली है या नहीं, कठिन हो जाता है। कुछ वस्तुयें ऐसी हैं जिनका वर्णन 'अलंकार-शेखर' और 'काव्यकल्पलता वृत्ति' में अक्षरशः मिलता है जैसे गिरि, सूर्योदय और वर्षा। राजा, रानी, मंत्री तथा हय के वर्णन में 'काव्यकल्पलतावृत्ति' में 'अलंकार-शेखर' की अपेक्षा अधिक विस्तार से काम लिया गया है।

देश, नगर, वन, सरिता, आदि केशव द्वारा वर्णित शेष वस्तुओं के वर्णन में दोनों ग्रंथों में बहुत सूक्ष्म अन्तर है। कुछ स्थलों पर तो केवल एक ही दो शब्दों का अन्तर है। इस भिन्नता के आधार पर हमारे प्रश्न का निर्णय हो सकता है। केशव ने प्रत्येक वस्तु की वर्णन-विधि बतलाते हुये अधिकांश उन्हीं वस्तुओं का उल्लेख किया है जो दोनों ग्रन्थों में मिलती हैं। फिर भी कुछ स्थलों पर कुछ ऐसी वस्तुओं का उल्लेख है जो केवल 'अलंकार-शेखर' में हैं, जैसे देश के वर्णन के सम्बन्ध में अमर ने खान, नाना द्रव्य, पण्य, धान्य, दुर्ग, ग्राम, जन-समूह, नदी आदि के वर्णन करने की शिक्षा दी है।[1] 'अलंकार-शेखर' में 'पण्य' के स्थान पर 'पशु' का उल्लेख है। केशवदास ने भी पशु का उल्लेख किया है;

> **'रतन खानि, पशु, पच्छि, बसु असन सुगन्ध सुवेश।**
> **नदी, नगर, गढ़ बरनिये, भाषा, भूषण देश' ॥[2]**

इसी प्रकार विरह के सम्बन्ध में अमर ने ताप, निश्वास, मौन, कृशांगता, अब्ज-शय्या,

1. 'देशे बहुखनिद्रव्यपण्यधान्यकरोद्भवाः।
   दुर्गग्रामजनाधिक्यनदीमातृकतादयः' ॥
   काव्कल्प० वृत्ति, श्लोक ६२, पृ० सं० २१।
2. कविप्रिया, सातवां प्रभाव, छं० सं० २, पृ० सं० १२३।

निशादीर्घता, जागरण, ठंडक, उष्मता आदि के वर्णन की शिक्षा दी है।[1] 'अलंकार-शेखर' में 'चिन्ता' का भी उल्लेख है।[2] केशवदास ने भी 'चिन्ता' का उल्लेख किया है :

'स्वास निशा चिन्ता बढ़ै, रुदन परेखे बात।
कारे पीरे होत कृश, ताते सीरे गात' ॥[3]

इस प्रकार ज्ञात होता है कि केशवदास ने कहीं-कहीं 'अलंकार-शेखर' से भी सहायता ली है। किन्तु 'अलंकार-शेखर' की अपेक्षा 'काव्यकल्पलतावृत्ति' से अधिक सहायता ली गई है जैसा कि मंत्री, राजकुमार, पुरोहित आदि के वर्णन से ज्ञात होता है। यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि केशव ने सर्वत्र इन ग्रन्थों में दिये लक्षणों का शब्द प्रतिशब्द अनुवाद करके नहीं रख दिया है, वरन् अपने ज्ञान और अनुभव से भी काम लिया है। ऐसे स्थल बहुत कम हैं जहाँ केशव के लक्षण इन ग्रन्थों से अक्षरशः मिल जाते हैं जैसे "चन्द्रोदय' और 'स्वयंवर' की वर्णन-विधि। 'स्वयंवर' के सम्बन्ध में अमर ने शची द्वारा रक्षा, मंच-मण्डप आदि का सजाव, राजकुमारी तथा राजाओं के आकार, अवयव, चेष्टा आदि के वर्णन की शिक्षा दी है।[4] 'अलंकार-शेखर' में भी इन्हीं बातों का उल्लेख है, केवल 'सज्जता' के स्थान पर 'सज्जना' पाठ है।[5] केशव ने भी इन्हीं बातों के वर्णन की शिक्षा दी है।[6]

कुछ स्थल ऐसे भी हैं जहाँ केशव ने अधिकांश बातें इन ग्रन्थों से ही ली हैं जैसे 'नगर' अथवा 'सूर्योदय' के वर्णन के सम्बन्ध में। 'सूर्योदय' के वर्णन के सम्बन्ध में अमर ने अरुणाई, सूर्यकान्त मणि, कमल, पथिक तथा नेत्रों को सुख तथा तारे, चन्द्र, दीपक, औषधि, घूक, अन्धकार, चोर, कुमुद तथा कुलटाओं के दुख के वर्णन की शिक्षा दी है।[7]

---

१. 'विरहेतापनिश्वासचिन्हामौनंकृशांगता।
अब्जशय्या निशादैर्घ्यं जागरः शिशिरोष्मता'॥'
का० क० वृत्ति, श्लोक ८७, पृ० सं० २६।

२. 'विरहे तापनिश्वासचिन्तामौनंकृशांगता।
अब्जशय्या निशादैर्घ्यं जागरः शिशिरोष्मता'॥
अलंकार-शेखर, पृ० सं० ६०।

३. कविप्रिया, सातवां प्रभाव, छं० सं० ३४, पृ० सं० १७१।

४. 'स्वयंवरे शचीरक्षा मंच मचमराडपसज्जता।
राजपुत्रीनृपाकारान्वयचेष्टाप्रकाशनम्' ॥ ८८ ॥
का० क० वृत्ति, पृ० सं० २६।

५. 'स्वयंवरे शचीरक्षा मंच मराडप सज्जना।
राजपुत्री नृपाकारान्वयचेष्टाप्रकाशनम्' ॥
अलंकार-शेखर, पृ० सं० ५६।

६. 'शची स्वयंवर रक्षिणी मंडल मंच बनाव।
रूप, पराक्रम, वंश गुण वरणिय राजा राव' ॥ ४४ ॥
कविप्रिया, पृ० सं० १७८।

७. 'सूर्ये अरुणता रविमणिचक्राम्बुजपथिकलोचनप्रीतिः।
तारेन्दुदीपकौषधिघूकतमश्चौरकुमुदकुलटार्तिः' ॥ ८४ ॥
का० क० वृत्ति, पृ० सं० २६।

'अलंकार-शेखर' में दिया श्लोक अमर के श्लोक से अक्षरशः मिलता है। केशव ने अरुणता, कोक और कोकनद को प्रीति तथा कुवलय, कुलटाओं, तारा, औषधि, दीप, शशि, घूक, चोरों और अन्धकार को दुख आदि अधिकांश बातों का वर्णन 'अलंकार-शेखर' तथा 'काव्यकल्पलता-वृत्ति' के ही अनुसार किया है। जल की स्वच्छता, मुनियों के शङ्ख और वेद-ध्वनि करने आदि का उल्लेख करने का नियम अपनी ओर से बतलाया है।[1]

कुछ स्थलों पर केशव ने इन ग्रन्थों से बहुत कम लिया है जैसे 'हेमन्त' के वर्णन के सम्बन्ध में। अमर ने 'हेमन्त' में दिन का छोटा होना, शीत, मरुबक, यव आदि को वृद्धि के वर्णन करने की शिक्षा दी है।[2] 'अलंकार-शेखर' में भी इन्हीं बातों का उल्लेख है।[3] किन्तु केशव ने तेल, तूल, तांबूल, स्त्री, ताप, रात्रि बड़ी होना, दिन छोटा होना तथा शीत आदि के वर्णन की शिक्षा दी है।[4] स्पष्ट ही यहाँ केवल रात का दीर्घ होना और शीत यही दो बातें केशव ने इन ग्रन्थों से ली हैं।

दो-एक लक्षण ऐसे भी हैं जहाँ केशव ने इन ग्रंथों से तनिक भी सहायता नहीं ली है, जैसे 'शिशिर' के वर्णन के सम्बन्ध में। इस सम्बन्ध में अमर ने 'शिशिर' ऋतु में शिरीष, कुन्द, कमल आदि पुष्पों का दग्ध होना तथा 'शिखिर' के उत्कर्ष का वर्णन करने की शिक्षा दी है। 'अलंकार-शेखर' में भी इन्हीं बातों का उल्लेख है।[6] किन्तु केशवदास ने शिशिर में राजा-रंक सभी के हृदय की प्रफुल्लता और सरसता तथा रात और दिन के नाच-गाने, हंसने-खेलने में बिताने का वर्णन करने की शिक्षा दी है।[7] यह लक्षण केशव का निजी है।

१. 'सूर उदय ते अरुनता पय पावनता होय।
शंखवेद ध्वनि मुनि करैं, पंथ लगै सब कोय॥
कोक कोकनद शोक हत, दुख कुबलय कुलटानि।
तारा औषधि दीप शशि, घूक चोर तम हानि' ॥ १६ ॥
कविप्रिया, पृ० सं० १३४।

२. 'हेमन्ते दिनलघुता शीतयवस्तम्बमरुबकहिमानि'।
का० क० वृत्ति पृ० सं० २६।

३. 'हेमन्ते दिनलघुता मरुबकयववृद्धिशीतसम्पत्तिः।
अलंकार-शेखर, पृ० सं० ५१।

४. 'तेल, तूल, तांबूल तिय, ताप, तपन रतिवंत।
दीह रयनि, लघु दिवस सुनि सीत सहित हेमंत' ॥ ३१ ॥
कविप्रिया, पृ० सं० १४१।

५. 'शिशिरेशिरषीधूमाहिकुन्दाम्बुजदाहशिखिरोत्कर्षः'।
का० क० वृत्ति पृ० सं० २६।

६. 'शिशिरे कुन्दसमृद्धिः कमलहतिर्वागुडामोदः'।
अलंकारशेखर, पृ० सं० ६१।

७. 'शिशिर सरस मन वरनिये केशव राजा रंक।
नाचत गावत रैन दिन, खेलत हंसत निशङ्क॥३७॥
कविप्रिया, पृ० सं० १४७।

विशेषालंकार :

'कविप्रिया' के नवम् प्रभाव से पन्द्रहवें प्रभाव तक केशव ने विशिष्टालंकारों का वर्णन किया है जिसके अन्तर्गत शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों ही आ गये हैं, किन्तु उन्होंने अलंकारों का इस प्रकार का कोई विभाजन नहीं किया है। केशव द्वारा वर्णित अलंकारों की सूची केशव के ही शब्दों में निम्नलिखित है :

'जानि स्वभाव, विभावना, हेतु विरोध विशेष।
उत्प्रेक्षा, आक्षेप, क्रम, गणना, आशिष लेष ॥१॥
प्रेमा, श्लेष सभेद है नियम विरोधी मान।
सूक्ष्म, लेष, निदर्शना, ऊर्जस्वा पुनि जान ॥२॥
रस अर्थान्तरन्यास है, भेद सहित व्यतिरेक।
फेरि अपन्हुति उक्ति है वक्रोकति सविवेक ॥३॥
अन्योकति, व्यधिकरन हैं, सुविशेषोकति भाषि।
फिरि सहोक्ति को कहत है, क्रम ही सों अभिलाषि ॥४॥
व्याजस्तुति निन्दा कहैं पुनि निन्दा स्तुतिवंत।
अमित सु पर्यायोक्ति पुनि, युक्त सुनो सब संत ॥५॥
ससमाहित जु सुसिद्ध पुनि औ प्रसिद्ध विपरीति।
रूपक दीपक भेद पुनि कहि प्रहेलिका मीत ॥६॥
अलंकार परवृत कहौं उपमा जमक सुचित्र।
भाषा इतने भूषणनि भूषित कीजै मित्र' ॥७॥[1]

इस प्रकार केशवदास ने स्वभाव, विभावना, हेतु, विरोध, उत्प्रेक्षा, आक्षेप, क्रम, गणना, आशिष, प्रेमा, श्लेष, सूक्ष्म, लेश, निदर्शना, ऊर्जस्व, रसवत, अर्थान्तरन्यास, व्यतिरेक, अपन्हुति, उक्ति, व्याजस्तुति, अमित, पर्यायोक्ति, युक्त, समाहित, सुसिद्ध, प्रसिद्ध, विपरीत, रूपक, दीपक, प्रहेलिका, परवृत, उपमा, यमक तथा चित्रालंकार का भेद-सहित वर्णन किया है। इस सूची में प्रत्येक अलंकार के भेदों का उल्लेख नहीं किया गया है, केवल उक्ति के भेदों वक्रोक्ति, अन्योक्ति, व्यधिकरणोक्ति, विशेषोक्ति, सहोक्ति तथा श्लेष के दो भेदों नियम और विरोधी का ही उल्लेख है।

कतिपय नवीन अलंकार :

इस सूची के सुसिद्ध, प्रसिद्ध, विपरीत तथा अन्योक्ति अलंकार का भट्टि, भामह, दण्डी, उद्भट, वामन, भोज, मम्मट, और रुय्यक आदि संस्कृत के किसी आचार्य ने उल्लेख नहीं किया है। यह नवीन हैं। अन्योक्ति को तो आधुनिक विद्वान अलंकारों के अन्तर्गत मानते हैं किन्तु सुसिद्ध, प्रसिद्ध और विपरीत को नहीं। कन्हैयालाल पोद्दार के शब्दों में यह महत्वपूर्ण नहीं हैं।[2] 'गणना' अलंकार के अन्तर्गत केशव ने एक से दस तक की संख्यावाली वस्तुयें गिनाई हैं। इसका उल्लेख भी संस्कृत के किसी आचार्य ने अलंकारों के अन्तर्गत नहीं किया है। वास्तव में यह

१. कविप्रिया, पृ० सं० १८३।
२. काव्यकल्पद्रुम, भूमिका, पृ० सं० (श)।

अलंकार है भी नहीं। इसका आधार अमर का 'काव्य-कल्पलतावृत्ति' नामक ग्रंथ है। केशव मिश्र के 'अलंकार-शेखर' में भी इसका वर्णन है किन्तु बहुत ही संक्षिप्त। अमर का वर्णन अपेक्षाकृत विस्तृत है। केशवदास ने प्रत्येक संख्या के अन्तर्गत 'अलंकारशेखर' की अपेक्षा अधिक वस्तुयें दी हैं जो प्रायः सम्पूर्ण अमर की सूची से मिल जाती हैं। अतः स्पष्ट ही इस सम्बन्ध में केशव अमर के ऋणी हैं।

केशव तथा आचार्य रुय्यक

विभावना :

केशव के कुछ अलंकारों का आधार आचार्य रुय्यक का 'अलंकारसूत्र' नामक ग्रंथ प्रतीत होता है। केशव की प्रथम विभावना का लक्षण रुय्यक के विभावना के सामान्य लक्षण से मिलता है। केशव के अनुसार विभावना वहाँ होती है जहाँ बिना कारण के कार्य होता है।[1] रुय्यक ने भी विभावना का यही लक्षण बतलाया है।[2]

विरोधाभास :

केशव ने विरोधाभास अलंकार को आचार्य दण्डी के ही समान विरोध अलंकार का भेद माना है। स्पष्ट-रूप से केशव ने यह नहीं कहा है, किन्तु ऊपर दी हुई सूची से यह बात प्रकट हो जाती है, क्योंकि इसमें विरोध का तो उल्लेख है, विरोधाभास का नहीं है। किन्तु केशव के विरोधाभास का लक्षण रुय्यक के विरोध का लक्षण है। रुय्यक के अनुसार जहाँ विरोध का आभास हो वहाँ विरोधालंकार होता है।[3] केशव के विरोधाभास का भी यही लक्षण है।[4]

क्रम :

केशव का क्रम अलंकार रुय्यक का एकावली है। दोनों के उदाहरणों को देखने से ज्ञात होता है कि केशव ने रुय्यक के एकावली का ही क्रम नाम रख लिया है। रुय्यक ने एकावली का जो उदाहरण दिया है उसका भाव है कि 'वह जलाशय नहीं, जहाँ सुन्दर कमल न खिले हों। वह कमल नहीं, जिस पर भौंरे न गुंजार करते हों। वह भौंरा नहीं, जो मधुर गुंजार न करता हो और वह गुंजन नहीं, जो मन को मोहित न करे।[5] केशव का उदाहरण है :

१. 'कारज को बिनु कारणहि उदौ होत जेहि ठौर'।
कविप्रिया, पृ० सं० १८६।

२. 'कारणाभावे कार्यस्योत्पत्तिर्विभावना।
अलंकार-सूत्र, रुय्यक, पृ० सं० १२८।

३. 'विरुद्धाभासत्वं विरोधः'।
अलंकारसूत्र, रुय्यक, पृ० सं० १३४।

४. 'बरनत लगै विरोध सो अर्थ सबै अविरोध।
प्रगट विरोधाभास यह समुझत सबै सुबोध' ॥२८॥
कविप्रिया, पृ० सं० १६४।

५. 'न तज्जलं यन्न सुचारु पंकजं न पंकजं तद् यदलीनषटपदम्।
न षटपदोऽसौ न जुगुंज यःकलं न गुंजितं तन्न जहार यन्मनः' ॥
अलंकार-सूत्र, पृ० सं० १६१।

'धिक मंगन बिन गुनहि, गुण सुधिक सुनत न रीझिय।
रीझ सुधिक बिन मौज, मौज धिक देत जु खीझिय' ॥[1] आदि

विशेष :

केशव के विशेषालंकार का आधार भी रुय्यक का अलंकार-सूत्र ही प्रतीत होता है। आचार्य दण्डी ने इसका उल्लेख नहीं किया है। रुय्यक के अनुसार विशेषालंकार का लक्षण है, 'बिना आधार के आधेय का उपनिबन्ध, परिमित गोचर वस्तु का अनेक गोचरत्व वर्णन तथा किसी कार्य के आरम्भ करने से किसी अन्य असम्भव वस्तु की उत्पत्ति का वर्णन'।[2] इस प्रकार रुय्यक ने विशेषालंकार के तीन भेद माने हैं। समुद्रबन्ध ने वृत्ति की टीका करते हुये कहा है कि असम्भव से सम्भावित निबन्ध विशेषालंकार है।[3] यद्यपि केशव का लक्षण रुय्यक के लक्षण से भिन्न है किन्तु उदाहरण का समुद्रबन्ध के शब्दों से पूर्ण सामंजस्य है। केशव का उदाहरण है :

'बाजी नहीं गजराज नहीं रथपत्ति नहीं बल गात विहीनो।
केशवदास कठोर न तीक्षण, भूलि हू हाथ हथ्यार न लीनो।
जोग न जानत, मंत्र न जंत्र, न तंत्र न पाठ पढ्यो परवीनो।
रक्षक लोकन के सुगंवारिनि एक विलोकनि ही वश कीनो ॥'[4]

केशव तथा आचार्य दराडी

केशव के शेष अलंकारों का आधार प्रायः आचार्य दराडीकृत-'काव्यादर्श' है। दोनों के अधिकांश लक्षणों का भाव एक ही है। केशव के कुछ अलंकारों और उनके भेदों का दराडी से केवल नाम-साम्य है। उनका लक्षण भिन्न है। कुछ स्थल ऐसे भी हैं, यद्यपि बहुत कम, जहाँ केशव के लक्षण तथा उदाहरण दराडी की अपेक्षा अधिक विशिष्टता रखते हैं। उदाहरण दो ही चार ऐसे हैं जो दराडी के उदाहरणों का भावानुवाद अथवा छायानुवाद हैं, अन्यथा प्रायः सब ही केशव के अपने हैं। यह बातें केशव के विभिन्न अलङ्कारों के विवेचन से स्पष्ट हो जायेंगी।

स्वभावोक्तिः

दराडी के अनुसार स्वभावोक्ति वहाँ होती है जहाँ नाना अवस्थाओं में वस्तुओं के

---

१. कविप्रिया, पृ० सं० २२६।

२. 'अनाधारमाधेयमेकमनेकगोचरशक्यवस्तु अन्तःकरणं च विशेषः'।
अलंकार-सूत्र, पृ० सं० १५३।

३. 'असम्भविना सम्भवित्वेन निबन्धो विशेषः'। इति सामान्यलक्षणं।
अलङ्कार-सूत्र, पृ० सं० १५३।

४. कविप्रिया, नवां प्रभाव, छं० सं० २७, पृ० सं० १६७।

साक्षात-रूप का वर्णन होता है।[1] केशव के लक्षण का भी यही भाव है।[2]

विभावना :

दण्डी के अनुसार विभावनालङ्कार वहाँ होता है जहाँ प्रसिद्ध हेतु से इतर किसी कारण से कार्य की उत्पत्ति होती है।[3] केशव की द्वितीय विभावना का भी यही लक्षण है।[4] दण्डी ने विभावना के दो भेद माने हैं, स्वाभाविक विभावना तथा कारणान्तर विभावना। केशव ने दो भेद प्रथम और द्वितीय विभावना माने हैं किन्तु उदाहरणों के देखने से ज्ञात होता है कि केशव ने आचार्य दण्डी द्वारा दिये भेदों का ही नाम क्रमशः प्रथम और द्वितीय विभावना रख लिया है। केशव का प्रथम विभावना का उदाहरण तो दण्डी के स्वाभाविक विभावना के उदाहरण का भावानुवाद ही है। स्वाभाविक विभावना का उदाहरण देते हुये दण्डी ने लिखा है कि, 'हे सुन्दरि ! तुम्हारी श्वेत, पृथ्वी की ओर झुकी, एकटक देखती हुई, बिना आँजी आँखें तथा बिना रंगे हुये अधर अरुण हैं'।[5] यही भाव केशव की निम्नलिखित पंक्तियों का है :

'भृकुटी कुटिल जैसी तैसी न करेहू होहिं,
आँजी ऐसी आँखें केशोराय हेरि हारे हैं।
काहे के सिंगार कै बिगारति है मेरी आली,
तेरे अंग बिना ही सिंगार के सिंगारे हैं' ॥[6]

'प्रसिद्धार्थानुयायि' होने के कारण दण्डी ने हेतु का लक्षण न बतला कर भेदों के उल्लेख से ही आरम्भ किया है। केशव ने भी दण्डी का ही अनुसरण किया है। दण्डी ने इसके दो भेद बतलाये हैं, कारक हेतु और दीपक हेतु। कारक हेतु के भी दो भेद किये हैं, भाव-साधन में कारक हेतु और अभाव-साधन में कारक हेतु। फिर इनके भी उपभेद किये हैं।

१. 'नानावस्थां पदार्थानां रूपं साक्षाद्विवृण्वती।
स्वभावोक्तिश्च जातिश्चेत्याद्या सालंकृतिर्यथा' ॥८॥
काव्यादर्श, पृ० सं० ११५।

२. 'जाको जैसो रूप गुण कहिये ताही साज'।
कविप्रिया, पृ० सं० १८४।

३. 'प्रसिद्धहेतुव्यावृत्या यत्किंचित कारणान्तरम्।
यत्र स्वाभाविकत्वं वा विभाव्यं सा विभावना' ॥१९९॥
काव्यादर्श, पृ० सं० २०७।

४. 'कारण कौनहु आन ते कारज होय जु सिद्ध'।
कविप्रिया, पृ० सं० १८७।

५. 'अञ्जितासिताद्दष्टिर्भ्रूरनावर्जितानता।
अरञ्जितोरुणारचयमधरस्तवसुन्दरि' ॥
काव्यादर्श, पृ० सं० २०९।

६. कविप्रिया, पृ० सं० १८७।

केशव के हेतु के भेदों, सभाव हेतु और अभाव हेतु का आधार दण्डी के कारक हेतु के भेद ही हैं। दीपक हेतु का केशव ने उल्लेख नहीं किया है, और न वे प्रभेदों में ही गये हैं। किन्तु केशव ने दण्डी के लक्षण से भिन्न लक्षण दिये हैं। दण्डी के अभाव-साधन में कारक हेतु और केशव के सभाव हेतु के उदाहरणों को देखने से ज्ञात होता है कि केशव का सभाव हेतु का उदाहरण दण्डी के अनुसार अभाव-साधन में कारक हेतु का उदाहरण है। दण्डी ने अभाव-साधन में कारक हेतु का उदाहरण देते हुये जो श्लोक दिया है उसका भाव है, 'मलय-गिरि के चन्दनवृक्षों और निर्झरों का स्पर्श करके बहती हुई वायु पथिकों के विनाश के लिये उपस्थित है'।[1] केशव के सभाव हेतु के उदाहरण का भी यही भाव है :

'केशव चंदन वृन्द घने अरविन्दन के मकरंद शरीरो।
मालती, बेल, गुलाब, सुकेसरि, केतकि, चंपक को वन पीरो।
रंभन के परिरंभन संभ्रम गर्व घनो घनसार को सीरो।
शीतल मंद सुगन्ध समीर हरयो इनसों मिल धीरज धीरो'॥[2]

विरोध :

दण्डी और केशव दोनों के विरोधालंकार के लक्षण का भाव एक ही है। दण्डी के अनुसार विशेषता प्रदर्शित करने के लिए जहाँ विरोधी वस्तुओं का संसर्ग दिखलाया जाता है वहाँ विरोधालंकार होता है।[3] यही भाव केशव के लक्षण का भी है।[4] दण्डी ने क्रिया-विरोध, असंगति विरोध आदि छः भेदों का उल्लेख किया है किन्तु केशव ने भेद नहीं बतलाये हैं। केशवदास ने विरोधालंकार के उदाहरण-स्वरूप जो छंद दिया है उसका अन्तिम चरण है :

'एरी मेरी सखी तेरी कैसे कै प्रतीत कीजै।
कृशनानुसारी दग करणानुसारी हैं'॥[5]

यह पंक्तियाँ दण्डी के विरोधाभास के उदाहरण में दिये श्लोक का भावानुवाद हैं। दण्डी ने लिखा है कि, 'कृष्ण (भगवान कृष्ण तथा काली) तथा अर्जुन (पाण्डव तथा वृक्ष-विशेष जिसका तना तथा डालें श्वेत-वर्ण होती हैं) में अनुरक्त होते हुये भी तुम्हारे नेत्र,

१. 'चन्दनारण्यमाधूय स्पृष्ट्वा मलयनिर्झरान्।
पथिकानामभावाय पवनोयमुपस्थितः' ॥२३८॥
काव्यादर्श, पृ० सं० २३१।

२. कविप्रिया, नवां प्रभाव, छं० सं० २६, पृ० सं० १८८।

३. 'विरुद्धानां पदार्थानां यत्र संसर्गदर्शनम्।
विशेष दर्शनायेव सः विरोधः स्मृतो यथा' ॥३२३॥
काव्यादर्श, पृ० सं० २१२।

४. 'केशवदास विरोधमय रचियत बचन विचारि।
तासों कहत विरोध सब, कविकुल सुबुधि सुधारि' ॥१६॥
कविप्रिया, पृ० सं० ११०।

५. कविप्रिया, नवां प्रभाव, पृ० सं० १११।

कर्ण (कुन्तीपुत्र कर्ण तथा काम) का अवलम्बन करने वाले हैं। हे कलभाषिणी, उनका कौन विश्वास करेगा'।[1]

आक्षेप :

दण्डी के अनुसार 'प्रतिषेधोक्तिराक्षेप' है किन्तु केशव ने वास्तविक प्रतिषेध को ही आक्षेप मान लिया है।[2] दण्डी के अनुसार भविष्य तथा वर्तमान दो ही कालों में प्रतिषेध का वर्णन हो सकता है किन्तु केशव भूतकाल में भी प्रतिषेध सम्भव मानते हैं। दण्डी ने आक्षेपालंकार के चौबीस भेद बतलाये हैं किन्तु केशव ने बारह भेदों का ही उल्लेख किया है। इनमें भी भविष्य, वर्तमान, संशय, आशिष, धरम तथा उपायाक्षेप का ही आधार दण्डी का काव्यादर्श है। कुछ का केवल नाम-साम्य ही है, लक्षण भिन्न हैं। प्रेम, अधीरज, धीरज, मरण, तथा शिक्षाक्षेप आदि केशव द्वारा दिये अन्य भेदों का दण्डी ने उल्लेख नहीं किया है। दण्डी ने धर्माक्षेप के अन्तर्गत जो श्लोक दिया है उसका भाव है, 'हे तन्वंगि! तुम्हारे अंग मिथ्या ही कोमल कहे गये हैं। यदि वास्तव में वह मृदु हैं तो व्यर्थ ही मुझे पीड़ा क्यों पहुँचाते हैं'।[3] इस श्लोक से स्पष्ट है कि दराडी ने धरम शब्द से गुण का भाव लिया है। किन्तु केशव के धर्माक्षेप के लक्षण से प्रकट होता है कि केशव ने धरम से कर्तव्य का भाव लिया है।[4] आशिष और उपायाक्षेप के दण्डी और केशव के उदाहरणों को देखने से ज्ञात होता है कि दोनों ने इनका लक्षण समान ही माना है। उपायाक्षेप के अन्तर्गत दिये गये केशव के उदाहरण पर तो दराडी के उदाहरण की स्पष्ट छाप ही है। दराडी के उदाहरण का भाव है, 'हे नाथ! आपके विरह को मैं सहन कर लूंगी किन्तु मुझे अदृश्य अजंन दे दीजिये, जिससे कामदेव मुझे देखकर मोहित न कर सके'।[5] केशव की नायिका भी दूसरे शब्दों में यही कहती है।[6]

१. 'कृष्णार्जुनुरक्तापि दृष्टिः कर्णावलम्बिनी।
याति विश्वसनीयत्वं कस्य ते कलभाषिणी' ॥३३६॥
काव्यादर्श, पृ० सं० २६७।

२. 'कारज के आरम्भ ही, जहं कीजत प्रतिषेध।
आक्षेपक तासों कहत, बहु विधि वरनि सुमेध' ॥१॥
कविप्रिया, दसवां प्रभाव, पृ० सं० २०४।

३. 'तव तन्वंगि मिथ्यैव रूढमंगेषु मार्दवम्।
यदि सत्यं मृदून्येव किमकाराडे रुजन्ति माम्' ॥१३७॥
काव्यादर्श, पृ० सं० १७५।

४. 'राखत अपने धर्म को, जहाँ काज रहि जाय'।
कविप्रिया, पृ० सं० २१२।

५. 'सहिष्ये विरहं नाथदेह्यदृश्याञ्जनं माम्।
यदक्तनेत्रां कन्दर्पः प्रहर्तुः मां न पश्यति' ॥१५१॥
काव्यादर्श, पृ० सं० १८५।

६. 'मूरति मेरी अदीठ कै ईठ चलौ, कै रहौ जो कछू मन मानै'।
कविप्रिया, पृ० सं० २१४।

आशिषालंकार :

दराडी के आधार पर केशव ने आशिषालंकार भी माना है किन्तु यहाँ वह दराडी से एक पग आगे बढ़ गये हैं। दराडी के अनुसार आशिषालंकार वहाँ होता है जहाँ अभिलषित वस्तु की प्राप्ति की इच्छा अथवा अभिलाषा का प्रकटीकरण हो,[1] किन्तु केशव ने माता, पिता, गुरू, देव तथा मुनियों द्वारा दिये आशीर्वाद को ही आशिषालंकार मान लिया है।[2]

प्रेमालंकार :

आचार्य दराडी ने प्रेमालंकार वहाँ माना है जहाँ प्रियतर आख्यान हो।[3] केशव का लक्षण स्पष्ट नहीं है किन्तु उदाहरण में प्रेम भाव का ही वर्णन है।[4]

श्लेष :

केशव ने श्लेष के सात भेदों का उल्लेख किया है। भिन्न-पद, अभिन्न-पद, अभिन्न-क्रिया, भिन्न-क्रिया, विरुद्ध-कर्मा, नियम तथा विरोधी। भिन्न-क्रिया और विरुद्ध-कर्मा केशव के अपने नाम हैं। शेष का आधार दराडी का काव्यादर्श है। भिन्न-क्रिया नाम केशव ने कदाचित् दराडी के विरुद्ध-क्रिया के आधार पर दिया हो। दण्डी के द्वारा दिये अन्य भेदों का केशव ने उल्लेख नहीं किया है। लक्षण केशव ने केवल भिन्न-पद श्लेष का ही दिया है, शेष का दराडी के ही अनुकरण पर नहीं दिया। दोनों आचार्यों के उदाहरणों को देखने से ज्ञात होता है कि दोनों लक्षण भिन्न समझते हैं।

सूक्ष्मालंकार :

केशव के सूक्ष्मालंकार का आधार दराडी का काव्यादर्श ही है। रुय्यक ने लक्षण में इंगित और आकार का उल्लेख न कर दो भिन्न उदाहरणों में इंगित और आकार द्वारा भाव-प्रकाशन दिखलाया है किन्तु केशव ने दराडी के ही अनुकरण पर लक्षण में भी इन दोनों बातों का उल्लेख किया है। केशव के इंगित-लक्ष्य सूक्ष्म का उदाहरण दराडी के उदाहरण का भावानुवाद ही है। दराडी की नायिका लोगों के सामने कान्त से स्पष्ट न कह

१. 'आशी नामभिलषिते वस्तुन्याशंसनं'।
काव्यादर्श, पृ० सं० ३२३।

२. 'मातु, पिता, गुरू, देव, मुनि कहत जु कछु सुख पाय।
ताही सो सब कहत हैं, आशिष कवि कविराय' ॥२८॥
कविप्रिया, ११वां प्रभाव, पृ० सं० २३६।

३. 'प्रेय प्रियतराख्यानं'
काव्यादर्श, पृ० सं० २९८।

४. 'कछु बात सुनै सपनेहु वियोग की होन चहै दुइ टूक हियो।
मिलि खेलिय जा संग बालक तें, कहि तासों अबोलो क्यों जात कियो ॥
कहिये कह केशव नैननि सों बिन काजहिं पावक पुंज पियो।
सखि तू बरजै अरु लोग हसैं सब, काहे को प्रेम को नेम लियो' ॥
कविप्रिया, ११वां प्रभाव, पृ० सं० २४०-२४१।

सकती हुई, लीला-कमल को बन्द कर रात्रि में मिलने का संकेत करती है'।[1] केशव के कृष्ण भी ऐसी ही परिस्थिति में यही करते हैं।[2]

लेशालंकार[3] :

दंडी के अनुसार लेशालंकार वहाँ होता है जहाँ किसी प्रकट बात को छिपाया जाता है।[4] केशव के लक्षण का भाव भी यही है।[5] उदाहरण में छिपाने का यह काम केशव ने क्रिया द्वारा दिखलाया है और दंडी ने कथन द्वारा। केशव का उदाहरण 'अपन्हुति' अलंकार से पृथकता दिखलाने के लिए दंडी की अपेक्षा अधिक अच्छा है। दंडी के उदाहरण का भाव है, 'कन्या को देख कर मेरे नेत्रों में आनन्दाश्रु आ रहे थे, उसी समय मेरे नेत्र वायु के झोंके में आये हुए पुष्प-पराग द्वारा क्यों दूषित किये गये'।[6] केशव का उदाहरण है :

'खेलत हे हरि बागे बने जहं बैठी प्रिया रति ते अति लोनी।
केशव कैसहुँ पीठि में दीठि परी कुच कुंकुम की रुचि रौनी।
मातु समीप दुराई भले तिहि सात्विक भावन की गति होनी।
धूरि कपूर की पूरि विलोचन सूंघि सरोरुह ओढ़ि ओढ़ौनी' ॥[7]

---

१. 'कदा नौ संगमो भावीत्याकीर्णे वक्तुमक्षमम्।
अवेक्ष्य कान्तमबला लीलापद्मं न्यमीलयत्' ॥२६१॥
काव्यादर्श, पृ० सं० २५१।

२. 'सखि सोहत गोपसभा महं गोविंद बैठे हुते दुति को धरि कै।
जनु केशव पूरन चंद लसै चित चारु चकोरन को हरि कै॥
तिनको उलटो करि आनि दियो कहुँ नीरज नीर नयो भरि कै।
कहु काहे ते नेकु निहारि मनोहर फेरि दियो कलिका करिकै' ॥४६॥
कविप्रिया, ११वां प्रभाव, पृ० सं० २६६।

३. केशव तथा दंडी का लेश रुय्यक के अनुसार व्याजोक्ति है।
'उभिन्नवस्तुनिगूहनं व्याजोक्तिः'। ७६।
अलंकारसूत्र, पृ० सं० १६५।

४. 'लेशो लेशेन निर्भिन्नवस्तुरूपनिगूहनम्'।
काव्यादर्श, पृ० सं० २५१।

५. 'चतुराई के लेश ते चतुर न समझै लेश।
बरनत कवि कोविद सबै ताको केशव लेश' ॥४७॥
कविप्रिया, ११वां प्रभाव, पृ० सं० २७०।

६. 'आनन्दाश्रुप्रवृत्तं मे कथं दृष्ट्वैव कन्यकाम्।
अक्षि मे पुष्परजसा वातोद्धूतेन दूषितम्' ॥२६७॥
काव्यादर्श, पृ० सं० २५४।

७. कविप्रिया, ११वां प्रभाव, छंद सं० ४८, पृ० सं० २७०।

निदर्शनाः

केशव के निदर्शना का लक्षण भी दराडी के ही लक्षण के आधार पर लिखा गया है, यद्यपि उतना स्पष्ट नहीं है। दराडी के अनुसार निदर्शना अलंकार वहाँ होता है जहाँ किसी दूसरे कार्य के लिये प्रवृत्त होने पर उसके अनुकूल किसी सत् अथवा असत् फल की प्राप्ति दिखलाई जाती है।[1] केशव का लक्षण है :

> 'कौनहु एक प्रकार ते, सत अरु असत समान।
> करिये प्रगट निदर्शना, समुझत सकल सुजान'॥[2]

ऊर्जालंकारः

दराडी के अनुसार उर्जालंकार वहाँ होता है जहाँ अहंकार का प्रदर्शन हो।[3] केशव ने इसका लक्षण यों दिया है, 'तजै न निज हंकार को यद्यपि घटै सहाय'।[4] 'यद्यपि घटै सहाय' कह कर केशव ने अपने लक्षण में दराडी की अपेक्षा अधिक विशिष्टता उत्पन्न कर दी है।

रसवतः

जहाँ कोई रस किसी अन्य रस अथवा भाव का अंग होकर उसका पोषण करता है, वहाँ उस पोषणकारी रस के वर्णन में रसवत अलंकार होता है।[5] किन्तु दराडी ने रसमय वर्णन में ही रसवत अलंकार मान लिया है।[6] दराडी का ही अनुसरण करते हुये केशव ने भी रसवर्णन को ही रसवत अलंकार मान लिया है। केशव के लक्षण के 'रसमय होय' शब्द इस बात की स्पष्ट घोषणा कर रहे हैं।[7] शृंगार रसवत का उदाहरण तो रसवत अलंकार का उदाहरण है। अन्य उदाहरण भिन्न-भिन्न रसों के ही उदाहरण होकर रह गये हैं। केशव का शृंगार रसवत का उदाहरण हैः

> 'आन तिहारी न आन कहौं, तन में कछु आनन आन ही कैसो।
> केशव स्याम सुजान सुरूप न जाय कहो मन जानत जैसो॥

१. 'अर्थान्तरप्रवृत्तेन किंचित् तत्सदृशं फलम्।
सदसद्वा निदर्श्येत यदि तत स्यान्निदर्शनम्' ॥३४८॥
काव्यादर्श, पृ० स० ३०२।

२. कविप्रिया, ११ वां प्रभाव, छंद सं० ४६, पृ० स० २७१।

३. 'ऊर्जस्विरूढाहंकारम्'।
काव्यादर्श, पृ० स० २९८।

४. कविप्रिया, ११ वां प्रभाव, पृ० स० २७२।

५. अलंकारपीयूष, उत्तरार्ध, पृ० सं० ३५५।

६. 'रसवद्रसपेशलम्'।
काव्यादर्श, पृ० स० २९८।

७. 'रसमय होय सु जानिये, रसवत केशवदास।
नव रस को संक्षेप ही, समुझौ करत प्रकाश' ॥५३॥
कविप्रिया, १३ वां प्रभाव, पृ० स० २७३।

लोचन शोभहिं पीवत जात समात सिहात अघात न तैसो।
ज्यों न रहात विहात तुम्हैं बलि जात सुबात कहौं टुक वैसो' ॥[1]

इस उदाहरण में मुख्यता वियोग की है, संयोग गौण है। इस संयोग की वार्ता से नायिका की विरह-प्रबलता स्पष्ट होती है। अतः यहाँ गौण 'संयोग' के 'वियोग शृंगार' का पोषक होने के कारण 'रसवत' अलंकार है। इतनी सूक्ष्म दृष्टि से न देखने पर यह उदाहरण भी 'शृंगार रस' का ही उदाहरण है।

अर्थान्तरन्यासः

दण्डी ने अर्थान्तरन्यास के आठ भेदों का उल्लेख किया है, विश्व-व्यापी, विशेपस्थ, श्लेषाविद्ध, विरोध, अयुक्तकारी, युक्तात्मा, युक्तायुक्त और विपर्यय। केशव ने युक्त, अयुक्त, अयुक्तायुक्त तथा युक्त-अयुक्त चार ही भेद बतलाये हैं। अयुक्तायुक्त केशव तथा दण्डी दोनों ही ने माना है। युक्त और अयुक्त नाम केशव ने दण्डी के युक्तात्मा और अयुक्तकारी से लिये हैं। युक्त-अयुक्त केशव का निजी नाम है। परिभाषा केशव दण्डी से भिन्न समझते हैं। यह दोनों के उदाहरणों की तुलना करने से स्पष्ट हो जाता है। केशव के युक्त अर्थान्तारन्यास में आधुनिक आचार्यों के अनुकूल 'काव्यलिंग' है।

व्यतिरेक :

केशव के व्यतिरेक का सामान्य लक्षण दण्डी के अनुकूल है। दण्डी के अनुसार व्यतिरेक अलंकार वहाँ होता है जहाँ दो सदृश वस्तुओं में कुछ भेद दिखलाया जाता है।[2] यही भाव केशव के लक्षण का भी है।[3] दण्डी ने व्यतिरेक के दस भेदों का उल्लेख किया है किन्तु केशव ने दो ही भेद, सहज व्यतिरेक और युक्त व्यतिरेक बतलाये हैं। दोनों के उदाहरणों को देखने से ज्ञात होता है कि दण्डी के श्लेष व्यतिरेक को ही केशव ने युक्त व्यतिरेक माना है। केशव के सहज व्यतिरेक का उदाहरण दण्डी के व्यतिरेक के सामान्य लक्षण के अनुकूल है। दण्डी द्वारा श्लेष व्यतिरेक के अन्तर्गत दिये उदाहरण का भाव है, 'आप और समुद्र दोनों का पार पाना कठिन है, दोनों महत्वशाली तथा तेजवान हैं। आप दोनों में भेद इतना है कि समुद्र जड़ है और आप पटु हैं'।[4] इसी प्रकार केशव का उदाहरण है :

१. कविप्रिया, ११ वां प्रभाव, छं० सं० २४, पृ० स० २७४।

२. 'शब्दोपात्ते प्रतीते वा सादृश्ये वस्तुनोर्द्वयो:।
तत्र यद्भेदकथनं व्यतिरेक स कथ्यते' ॥१८०॥
काव्यादर्श, पृ० सं० १९७।

३. 'तामें आनै भेद कछु होय जु वस्तु समान।
व्यतिरेक सुभाति द्वै, युक्ति सहज परमान' ॥७८॥
कविप्रिया, ११ वां प्रभाव, पृ० सं० २९२।

४. 'त्वं समुद्रश्च दुर्व्वारौ महासत्वौ सतेजसौ।
अयन्तु युवयोर्भेदः सजडात्मा पटुर्भवान' ॥१८५॥
काव्यादर्श, पृ० सं० २००।

'सुन्दर सुखद अति अमल सकल विधि
सदल सफल बहु सरस संगीत सों।
विविध सुबास युक्त केशवदास आस पास,
राजै द्विजराज तनु परम पुनीत सों।
फूले ही रहत दोऊ दीबे हेत प्रतिपल,
देत कामनानि सब मीत हू अमीत सों।
लोचन बचन गति बिन, इतनोई भेद,
इन्दु तरुवर अरु इन्द्र इन्द्रजीत सों' ॥[1]

अपन्हुतिः

केशव के अपन्हुति का लक्षण भी दण्डी से मिलता है। दण्डी के अनुसार अपन्हुति अलंकार वहाँ होता है जहाँ कोई बात छिपा कर कोई दूसरी बात कह दी जाती है।[2] केशव का लक्षण भी यही है।[3] दण्डी ने अपन्हुति के भेद भी बतलाये हैं, केशव भेदों में नहीं गये। केशव के उदाहरणों के विषय में कृष्णशंकर शुक्ल ने 'केशव की काव्यकला' नामक ग्रंथ में लिखा है कि इस अलंकार के लिये जिस प्रकार की गोपनक्रिया आवश्यक है वैसी उदाहरण में न आ सकी। केशव का उदाहरण 'मुकरी' है, अपन्हुति नहीं।[4] किन्तु शुक्ल जी यह बात भूल गये कि 'मुकरी' में भी 'अपन्हुति' अलंकार ही होता है।

विशेषोक्ति :

केशव के विशेषोक्ति का दण्डी से केवल नाम-साम्य है। लक्षण दोनों ने भिन्न समझा है, यह दोनों के उदाहरणों को देखने से ज्ञात होता है।

सहोक्ति :

सहोक्ति अलंकार का दण्डी तथा केशव दोनों का लक्षण एक ही है। दण्डी के अनुसार सहोक्ति अलंकार वहाँ होता है जहाँ एक साथ गुण अथवा कर्मों का वर्णन किया जाता है।[5] केशव के लक्षण का भी यही भाव है।[6]

१. कविप्रिया, ११ वां प्रभाव, छंद सं० ७६, पृ० सं० २६३।

२. "अपन्हुति अपन्हुत्य किंचिदन्यथंदर्शनम्।'
काव्यादर्श, पृ० सं० २७८।

३. 'मन की बात दुराय मुख औरै कहिये बात'।
कविप्रिया, ग्यारहवाँ प्रभाव, पृ० सं० २६५।

४. केशव की काव्यकला, कृष्णशंकर, पृ० सं० १९८।

५. 'सहोक्तिः सहभावेन कथनं गुणकर्मणाम्।'
काव्यादर्श, पृ० सं० ३११।

६. 'हानि वृद्धि शुभ अशुभ कछु कहिये गूढ़ प्रकास।
होय सहोक्ति सु साथ ही बरणत केशवदास' ॥२०॥
कविप्रिया, १२ वां प्रभाव, पृ० सं० ३१०।

व्याजस्तुति :

केशव के व्याजस्तुति के लक्षण का आधार भी दण्डी का ही लक्षण है। दण्डी के अनुसार व्याजस्तुति वहाँ होती है जहाँ प्रकट में निन्दा किन्तु वास्तव में स्तुति हो।[1] केशव का लक्षण दण्डी की अपेक्षा अधिक व्यापक है। केशव के अनुसार व्याजस्तुति अलंकार वहाँ होता है जहाँ निंदा के बहाने स्तुति अथवा स्तुति के बहाने निंदा की जाय।[2] केशव का पहला उदाहरण भी दण्डी की अपेक्षा अधिक उत्कृष्ट है। यह व्याजस्तुति और व्याजनिन्दा दोनों ही का एक साथ उदाहरण उपस्थित करता है, यथा:

'शीतल हू हीतल तुम्हारे न बसति वह,
तुम न तजत तिल ताको उर ताप गेहु।
आपनो ज्यों हरि सों पराये हाथ ब्रजनाथ,
दै कै तो अकाथ साथ मैन ऐसो मन ले।
एते पर केशवदास तुम्हें परवाह नाहिं,
वाहै जक लागी भागी भूख सुख भूल्यो गेहु।
मांडो मुख छोड़ो सुख छिन छल छबीले लाल,
ऐसी तो गंवारिन सों तुमही निबाहौ नेहु'॥[3]

समाहित :

दण्डी तथा केशव के समाहित के लक्षणों में थोड़ा सा अन्तर है। दण्डी के अनुसार समाहित अलंकार वहाँ होता है जहाँ आरम्भ किये हुए कार्य की सिद्धि दैविक सहायता से सरलता से हो जाती है।[4] किन्तु केशव समाहित अलंकार वहाँ मानते हैं जहाँ कोई कार्य, जो किसी प्रकार न हो रहा हो, दैविक सहायता से समापन्न हो जाये।[5] केशव का उदाहरण दण्डी के ही उदाहरण का भावानुवाद है। दण्डी के उदाहरण का भाव है :

१. 'यदि निन्दन्निव स्तौति व्याजस्तुतिरसौ स्मृता'।
काव्यादर्श, पृ० सं० ३४३।
२. 'स्तुति निन्दा मिस होत जहँ, स्तुति मिस निन्दा जान।
व्याज स्तुति निन्दा वहै, केशवदास बखान' ॥ २२ ॥
कविप्रिया, १२वां प्रभाव, पृ० सं० ३११।
३. कविप्रिया, १२ वां प्रभाव, छं० सं० २३, पृ० सं० ३१२।
४. 'किंचिदारभमाणस्य कार्य्यं दैववशात पुनः।
तत्साधनसमापत्तिर्या तदाहुः समाहितम्' ॥ २९८ ॥
काव्यादर्श, पृ० सं० २८१।
५. 'होत न क्योंहू काज जहं दैवयोग ते काज।
ताहि समाहित नाम कहि बरणत कवि सिरताज' ॥ १ ॥
कविप्रिया, १३वां प्रभाव, पृ० सं० ३२१।

'उसके मान को दूर करने के लिये जिस समय मैं उसके चरणों पर गिर रहा था उसी समय दैवेच्छा से बादलों की गरज ने मेरा उपकार किया'।[1] केशव के उदाहरण का भी यही भाव है:

'छवि सौं छबीली वृषभान की कुँवरि आजु,
रही हुती रूप मद मान मद छकि कै।
मारहु ते सुकुमार नंद के कुमार ताहि,
आये री मनावन सयान सब तकि कै।
हंसि हंसि, सौंहै करि करि पांय परि परि,
केशोराय की सौं जब रहे जिय जकि कै।
ताही समै उठे घन घोर घोरि, दामिनी सी,
लागी लौटि श्यामघन उरसों लपकि कै' ॥[2]

रूपक:

दण्डी ने रूपक के अनेक भेदों का उल्लेख किया है किन्तु केशव ने तीन ही भेद, अद्‌भुत रूपक, विरुद्धरूपक, रूपक-रूपक बतलाये हैं। केशव के विरुद्ध रूपक तथा रूपक-रूपक का दण्डी से नाम-साम्य है किन्तु लक्षण दोनों के भिन्न हैं। केशव के विरुद्ध रूपक का उदाहरण तो आधुनिक आचार्यों के अनुकूल 'रूपकातिशयोक्ति' ही है।[3] रूपक-रूपक के उदाहरण पर दण्डी के उदाहरण की छाया है किन्तु दण्डी का भाव न समझने के कारण केशव का उदा- हरण साधारण रूपक का ही उदाहरण रह गया है। दण्डी के रूपक-रूपक के अन्तर्गत दिये उदाहरण का भाव है, 'तुम्हारे मुख-रूपी कमल के रंगमंच पर तुम्हारी भ्रूरूपी लता-नर्तकी लीलानृत्य कर रही' है। केशव का रूपक-रूपक का उदाहरण है:

'काछे सितासित काछनी केशन पातुरी ज्यों पुतरीनि विचारो।
कोटि कटाक्ष चलै गति भेद नचावत नायक नेह निनारो।
बाजत हैं मृदु हास मृदंग सुदीपति दीपन को उजियारो।
देखत हौ हरि देखि तुम्हैं यहि होत है आंखिन ही में अखारो' ॥[5]

१. 'मानमस्या निराकर्तुं पादयोर्मे पतिष्यतः।
उपकाराय दिष्ट्येतदुदीर्णं घनगर्जितम्' ॥ २९९ ॥
काव्यादर्श, पृ० सं० २८२।

२. कविप्रिया, १२ वां प्रभाव, छं० सं० २३, पृ० सं० ३१२।

३. 'रूपकातिशयोक्ति' वहाँ होती है जहाँ उपमेय का निगरण करके उपमान के साथ उसके अभेद का निश्चय-रूप से कथन किया जाता है।
अलंकारपीयूष, प्रथमार्ध, पृ० सं० ३१३।

४. 'मुखपंकजरंगेऽस्मिन् भ्रूलतानर्त्तकी तव।
लीलानृत्यं करोतीत रम्यं रूपकरूपकम्' ॥ ९३ ॥
काव्यादर्श, पृ० सं० १५५।

५. कविप्रिया, १३ वां प्रभाव, छं० सं० २०, पृ० सं० ३३०।

अद्भुत-रूपक का दण्डी ने उल्लेख नहीं किया है किन्तु केशव के अद्भुत-रूपक के उदाहरण पर दण्डी के श्लिष्ट-रूपक के अन्तर्गत दिये उदाहरण की स्पष्ट छाप है। दण्डी के उदाहरण का भाव है, 'हे सखि तुम्हारा मुख-कमल राजहंसों के उपभोग-योग्य है तथा भौंरे उसके सौरभ के लोभ में निकट मंडराया करते हैं।[1] केशव का उदाहरण है :

'शोभा सरवर माँहि फूल्योई रहत सखि,
राजै राजहंसिनी समीप सुखदानिये।
केशोदास आसपास सौरभ के लोभ घनी,
प्राननि की देखि भौंरि भ्रमत बखानिये।
होति जोति दिन दूनी निशि में सहसगुनी,
सूरज सुहृद चारु चंद मन मानिये।
रति को सदन छुइ सकै न मदन ऐसो,
कमल बदन जग जानकी को जानिये' ॥[2]

दीपक :

दीपक अलंकार का केशव का लक्षण दण्डी के ही समान है। दण्डी के अनुसार दीपक अलङ्कार वहाँ होता है जहाँ जाति, क्रिया, गुण, द्रव्य तथा वाच्य का एक साथ वर्णन, समस्त वाक्य का उत्कर्षसाधन करता है।[3] केशव के लक्षण का भी अक्षरशः यही भाव है।[4]

दण्डी ने दीपक के अनेक भेद बतलाये हैं। केशव ने मणि और माला दीपक, दो ही का वर्णन किया है, यद्यपि यह कहा है कि दीपक अनेक प्रकार के होते हैं।[5] केशव का माला दीपक तो दण्डी के इसी नाम के भेद से मिल जाता है किन्तु मणि दीपक का दण्डी ने उल्लेख नहीं किया है। केशव ने यह भी बतलाया है कि मणिदीपक की शोभा किन-किन वस्तुओं के

१. 'राजहंसोपभोगार्हं भ्रमरप्रार्थ्यसौरभम्।
सखि वक्त्राम्बुजमिदं तवेति श्लिष्टरूपकम्' ॥८७॥
काव्यादर्श, पृ० सं० १९३।

२. कविप्रिया, १३ वां प्रभाव, छं० सं० १६, पृ० सं ३२८।

३. 'जतिक्रियागुणद्रव्यवाचिनैकत्रवर्तिना ।
सर्ववाक्योपकारश्चेत तमाहुर्दीपकं यथा' ॥९७॥
काव्यादर्श, पृ० सं० २९६।

४. 'वाच्य क्रिया गुण द्रव्य को बरनहु करि इक ठौर।
दीपक दीपति कहत हैं, केशव कवि सिरमौर' ॥२१॥
कविप्रिया, १३ वां प्रभाव, पृ० सं० ३३८।

५. 'दीपक रूप अनेक हैं, मैं बरनौं द्वै रूप।
मणि माला तिनसों कहैं, केशव सब कवि भूप' ॥ २२ ॥
कविप्रिया, १२ वां प्रभाव, पृ० सं० ३३१

वर्णन में विशेष होती है।[1] केशव के मणिदीपक का दूसरा उदाहरण दण्डी के जाति-दीपक के उदाहरण के भाव पर लिखा गया है। दण्डी के उदाहरण का भाव है, 'दक्षिण-पवन जो वृक्षों के पुराने पत्तों को गिराता है, वही सुन्दरियों के मान-भंग कराने का भी कारण होता है।[2] केशव ने इसी भाव को यों लिखा है :

> 'दक्षिण पवन दक्षि यक्षिणी रमण लगि,
> लोलन करन लौंग लवली लता को फरु।
> केशोदास केसर कुसुम कोश रसकण,
> तनु तनु तिनहू को सहत सकल भरु।
> क्यों हूँ कहूँ होत हठि साहस बिलाश बश,
> चंपक चमेली मिलि मालती सुवास हरु।
> शीतल सुगंध मंद गति नंदनंद की सौं,
> पावत कहाँ से तेज तोरिबे को मानतरु' ॥[3]

प्रहेलिका :

दण्डी और केशव दोनों ही ने प्रहेलिका अलंकार माना है किन्तु वास्तव में यह अलंकार नहीं है क्योंकि रस के उत्कर्ष में सहायक नहीं है।

परिवृत्त :

परिवृत्त अलंकार दण्डी तथा केशव दोनों ही ने माना है किन्तु केशव का न तो लक्षण ही स्पष्ट है और न उनके उदाहरण से ही ज्ञात होता है कि वह इसका लक्षण क्या समझते हैं।

उपमा :

उपमा का सामान्य लक्षण दण्डी की अपेक्षा केशव का अधिक पूर्ण है। दण्डी के अनुसार उपमा अलंकार वहाँ होता है जहाँ वस्तुओं में किसी प्रकार का सादृश्य दिखलाया जाता है।[4] दण्डी ने अपने लक्षण में रूप, गुण, शील आदि का उल्लेख नहीं किया है यद्यपि 'यथा कथंचित' शब्दों के अन्तर्गत इन वस्तुओं का वर्णन आ जाता है। केशव ने अपने लक्षण में इनका स्पष्ट उल्लेख किया है। केशव का लक्षण है :

१. 'बरषा, शरद, बसंत, ससि, शुभता, शोभ, सुगंधु।
प्रेम, पवन, भूषण, भवन, दीपक दीपक बंधु' ॥ २३ ॥
कविप्रिया, १३ वां प्रभाव, पृ० सं० ३३२।

२. 'पवनो दक्षिण पर्णं जीर्णं हरति वीरुधाम्।
स एवावनतांगीनां मानभंगाय कल्पते' ॥ ६८ ॥
काव्यादर्श, पृ० सं० १६०।

३. कविप्रिया, १३ वां प्रभाव, छं० सं० २६, पृ० सं० ३३४।

४. 'यथा कथंचित् सादृश्यंयत्रोद्भूतं प्रतीयते।
उपमा नाम सो तस्याः प्रपञ्चोयं दिदर्शते' ॥१४॥
काव्यादर्श, पृ० सं० १०१।

'रूप शील गुण होय सम जो क्योंहू अनुसार।
तासों उपमा कहत कवि केशव बहुत प्रकार'।[1]

दण्डी और केशव दोनों ही ने उपमालंकार का बहुत ही सांगोपांग विवेचन किया है। केशव ने बाईस भेद ही गिना कर संतोष कर लिया है किन्तु दण्डी ने बत्तीस भेदों का उल्लेख किया है। धर्मोपमा, नियमोपमा, अतिशयोपमा, अद्भुतोपमा, मोहोपमा, संशयोपमा, निर्णयोपमा, श्लेषोपमा, विरोधोपमा, अभूतोपमा, असम्भावितोपमा, विक्रियोपमा, मालोपमा, उत्प्रेक्षितोपमा तथा हेतूपमा का दण्डी तथा केशव दोनों ने वर्णन किया है। शेष भेदों में केशव की दूषणोपमा, भूषणोपमा, गुणाधिकोपमा, लाक्षणिकोपमा और परस्परोपमा क्रमशः दण्डी की निन्दोपमा, प्रशंसोपमा, प्रतिषेधोपमा, चटूपमा और अनन्योपमा हैं। केशव के अन्य दो भेदों संकीर्णोपमा तथा विपरीतोपमा के उदाहरण दण्डी के किसी भेद के अन्तर्गत नहीं आते। वास्तव में इनमें उपमा अलंकार का अस्तित्व ही नहीं है। इस सम्बंध में ला० भगवान दीन जी 'दीन' की टिप्पणी द्रष्टव्य है। संकीर्णोपमा के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है कि 'ठीक समता तो नहीं पर समता का सा भाव अवश्य भाषित होता है'।[2] इसी प्रकार विपरीतोपमा के सम्बन्ध में दीन जी ने लिखा है, 'इसमें उपमालंकार जान नहीं पड़ता, समझ में नहीं आता कि केशव ने कैसे इसे उपमा के अन्तर्गत माना है'।[3] अन्य भेदों के अन्तर्गत दिये दोनों के उदाहरणों की तुलना से ज्ञात होता है कि अधिकांश का लक्षण दण्डी तथा केशव दोनों ने एक ही माना है किन्तु केशव के कुछ भेदों का दण्डी से केवल नाम-साम्य है, अन्यथा लक्षण तो अस्पष्ट है ही, उदाहरण से भी लक्षण का पता नहीं लगता। उदाहरण-स्वरूप केशव की धर्मोपमा तथा अतिशयोपमा के लक्षण और उदाहरण उपस्थित किये जा सकते हैं। विक्रयोपमा, मालोपमा और हेतूपमा आदि के लक्षण भी स्पष्ट नहीं हैं किन्तु उदाहरणों से उनके रूप का पूर्ण ज्ञान हो जाता है। दो-एक उदाहरण भी केशव ने दण्डी के ही आधार पर लिखे हैं। दण्डी के असम्भावितोपमा के उदाहरण का भाव है, 'मुख से कठोर वाणी निकलना वैसे ही है जैसे चन्द्रमा से विष निकलना तथा चन्दन से अग्नि का प्रकट होना।[4] केशव ने इसी भाव को विस्तार-पूर्वक यों लिखा है :

'जैसे अलि शीतल सुवास मलयज माहिं,
अमल अनल बुद्धिबल पहिचानिये।
जैसे कौनो कालवश कोमल कमल माहिं,
केशरै ई केशवदास कंटक से जानिये।

१. कविप्रिया, १४वां प्रभाव, छं० सं० १, पृ० सं० ३४४।
२. कविप्रिया, १४ वां प्रभाव, पादटिप्पणी, पृ० सं० ३६३।
३. कविप्रिया, १४ वां प्रभाव, पादटिप्पणी, पृ० सं० ३७१।
४. 'चन्द्रबिम्बादिव विषं चन्दनादिव पावकः।
परुषा वागितो वक्त्रादित्यसम्भावितोपमा' ॥३९॥
काव्यादर्श, पृ० सं० १२७

जैसे विधु सधर मधुर मधुमय माहिं,
मोहै मोहरुख विष विषम बखानिये।
सुन्दरि, सुलोचनि, सुबचनि, सुदंति तैसे,
तेरे मुख आखर परुपरुख मानिये'॥[1]

यमक :

यमक का सम्पूर्ण प्रकरण केशव ने दण्डी के ही आधार पर लिखा है। यद्यपि केशव उतने भेदों-प्रभेदों में नहीं गये हैं फिर भी उन्होंने दण्डी के बतलाये हुये प्रायः सभी मुख्य भेदों का उल्लेख किया है। दण्डी ने मुख्य दो भेद बतलाये हैं, अव्यपेत तथा व्यपेत और फिर स्थान के विचार से आदि, मध्य, अन्त, एक, द्वि, त्रि, चतुष्पाद आदि उपभेदों का उल्लेख किया है। सुगमता और कठिनता की दृष्टि से भी दण्डी-ने दो भेद सुकर और दुष्कर बतलाये हैं। केशव ने भी प्रायः इन सब भेदों का उल्लेख किया है, किन्तु दण्डी के 'अव्यपेत' तथा 'व्यपेत' कविप्रिया में 'अव्ययेत' तथा 'सव्ययेत' हो गये हैं। सम्भव है यह त्रुटि ला० भगवान दीन जी की हो अथवा उन प्रतिलिपिकारों की जिनको लाला जी ने आधार-स्वरूप माना हो और जिन्होने 'अव्यपेत' तथा 'व्यपेत' का अर्थ न समझकर 'य' और 'प' के लिपि-भ्रम के कारण इन भेदों को अव्ययेत तथा सव्ययेत लिख दिया हो। कुछ आधुनिक रीतिग्रंथ-प्रणेताओं ने भी इन लोगों का ही अन्धानुसरण किया है।[2]

मौलिकता तथा सफलता :

अलंकार-विवेचन के क्षेत्र में सामान्य और विशिष्ट वर्गों में अलंकार का विभाजन केशव की निजी कल्पना है। सामान्य अलंकार को फिर केशव ने चार वर्गों में विभाजित किया है, वर्णालंकार, वर्ण्यालंकार, भूमिश्री-वर्णन तथा राज्यश्री-वर्णन। विशिष्ट अलंकारों के अन्तर्गत शब्द-अर्थ से सम्बन्ध रखने वाले दोनों प्रकार के प्रमुख अलंकारों का विवेचन किया गया है। इस प्रकार का विभाजन संस्कृत के किसी आचार्य ने नहीं किया है। सामान्य अलंकारों का विवेचन प्रमुख-रूप से 'अलंकार-शेखर' तथा 'काव्यकल्पलतावृत्ति' ग्रंथों के आधार पर किया गया है, किन्तु स्थल-स्थल पर केशव ने अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। विशिष्ट अलंकारों का वर्णन आचार्य दण्डी के 'काव्यादर्श' तथा रुय्यक के 'अलंकार-सूत्र' के आधार पर किया गया है किन्तु कुछ अलंकारों और उनके भेदों का लक्षण केशव का निजी है। अलंकारों के कुछ भेद भी केशव के अपने हैं। विशिष्ट अलंकारो के अन्तर्गत केशव ने कतिपय नवीन अलंकारों का भी सृजन किया है। केशव मिश्र के आधार पर 'गणना' तथा उद्भट और भामह के आधार पर 'आशिष' अलंकार का वर्णन हिन्दी-साहित्य के लिये नवीन है। प्रेम, सुसिद्ध, प्रसिद्ध तथा प्रहेलिका अलंकार तो नितान्त ही नवीन हैं। इनका वर्णन संस्कृत के किसी आचार्य के ग्रंथ में नही मिलता।

१. कविप्रिया, १४ वाँ प्रभाव, छं० सं० ४०, पृ० सं० ३६६।
२. अलंकारपीयूष, रसाल, पृ० सं० २२७।

केशवदास जी ने यद्यपि अलंकारों का बहुत ही सूक्ष्म विवेचन किया है किन्तु उन्हें पूर्ण सफलता नहीं मिल सकी है। इस सम्बन्ध में पहली बात यह है कि केशवदास जी द्वारा दिये हुये बहुत से अलंकारों के लक्षण स्पष्ट नहीं हैं, जैसे क्रमालंकार, प्रेमालंकार तथा निदर्शना आदि के लक्षण। इन अलंकारों के लक्षण देखने से अलंकार-विशेष का रूप स्पष्ट नहीं होता। उदाहरण के लिये केशव ने क्रमालंकार का लक्षण दिया है :

'आदि अंत भरि बरणिये, सो क्रम केशवदास'।[1]

किन्तु ऐसे स्थलों पर अधिकांश उदाहरणों से लक्षण का भाव स्पष्ट हो जाता है। उन स्थलों पर केशव की अस्पष्टता अवश्य खटकती है जहाँ केशव के दो भिन्न अलंकारों के लक्षण समान दिखलाई देते हैं, जैसे केशव के 'स्वभावोक्ति' अलंकार का लक्षण है :

'जाको जैसो रूप गुण, कहिये ताही साज।
तासों जानि स्वभाव सब, कहि बरणत कविराज'॥[2]

यही भाव केशव के 'उक्त' अलंकार का भी है :

'जाको जैसो रूप बल, कहिये ताही रूप।
ताको कवि कुल युक्त कहि, बरणत विविध स्वरूप'॥[3]

इसी प्रकार केशव के 'पर्यायोक्ति' तथा 'समाहित' के लक्षण भी समान हैं। केशव का 'पर्यायोक्ति' का लक्षण है :

'कौनहु एक अदृष्ट ते, अनही किये जु होय।
सिद्धि आपने इष्ट की, पर्यायोकति सोय'॥[4]

'समाहित' का भी प्रायः यही लक्षण है :

'होत न क्योंहू होय जहँ, दैवयोग ते काज।
ताहि समाहित नाम कहि, बरणत कवि सिरताज'॥[5]

किन्तु अन्य स्थलों पर यह त्रुटि नहीं हुई है। इस सम्बन्ध में सबसे अधिक खटकने वाली बात यह है कि केशव के कुछ अलंकारों के लक्षणों और उनके उदाहरणों में समन्वय नहीं है। यह त्रुटि थोड़ी सी सावधानी से बचाई जा सकती थी। जैसे केशव के अभाव-हेतु का उदाहरण है :

'जान्यो न मैं मद यौवन को उतर्‌यो कब काम को काम गयोई।
छोड़न चाहत जीव कलेवर जोर कलेवर छांडि दयोई।
आवत जात जरा दिन लीलत रूप जरा सब लीलि लियोई।
केशव राम ररौं न ररौ अनसाधे ही साधन सिद्ध भयोई'॥[6]

१. कविप्रिया, ग्यारहवां प्रभाव, पृ० सं० २२६।
२. कविप्रिया, नवाँ प्रभाव, छं० सं० ८, पृ० सं० १८४।
३ कविप्रिया, बारहवाँ प्रभाव, छं० सं० ३०, पृ० सं० ३१६।
४ कविप्रिया, बारहवाँ प्रभाव, छं० सं० २१, पृ० सं० ३१८।
५ कविप्रिया, तेरहवाँ प्रभाव, छं० सं० १, पृ० सं० ३२१।
६ कविप्रिया, नवाँ प्रभाव, छं० सं० १७, पृ० सं० १८६।

यहाँ राम-नाम के स्मरण-रूप कारण के बिना ही कार्य की सिद्धि कही गई है जैसा कि 'अनसाधे ही साधन सिद्ध भयो' शब्दों से स्पष्ट है; किन्तु बिना साधन के कार्य की सिद्धि, केशव के ही अनुसार, विभावना का क्षेत्र है।[1] इसी प्रकार केशव द्वारा विरोधालंकार के अंतर्गत दिया दूसरा उदाहरण भी प्रथम विभावना का उदाहरण हो गया है, यथा :

'आयु सितासित रूप चितै चित श्याम शरीर रंगे रंगराते।
केशव कानन हीन सुनै सु कहैं रस की रसना बिन बातें।
नैन किधौं कोउ अन्तरयामी री, जानति नाहिन बूझति तातें।
दूर लौं दौरत हैं बिन पायन दूर दुरी दरसै मति जातें'॥[2]

ला० भगवानदीन ने इस उदाहरण में विरोधालंकार सिद्ध करने का प्रयास किया है किन्तु अन्त में उन्होंने टिप्पणी में लिखा है कि 'हमारा अनुमान है कि यह छंद प्रथम विभावना का उदाहरण है। लेखकों की असावधानी से यह छन्द यहां लिख गया है,।[3] यदि दो-एक स्थलों पर ही इस प्रकार की त्रुटि होती तो यह लेखकों की असावधानी कही जा सकती थी, किन्तु वास्तविकता यह नहीं है। उपमा अलंकार के भेदों के अन्तर्गत कई स्थलों पर लक्षणों और उदाहरणों में समन्वय नहीं दिखलाई देता। केशव की 'भूषणोपमा' का उदाहरण उन्हीं की 'श्लेषोपमा' का बोध कराता है। 'अतिशयोपमा' का उदाहरण 'अनन्योपमा' का उदाहरण हो गया है। इसी प्रकार 'अभूतोपमा' के लक्षण तथा उदाहरण में भी समन्वय नहीं है। 'विपरीतोपमा' के उदाहरण में तो उपमालंकार का अस्तित्व ही नहीं है, यथा :

'भूषित देह विभूति दिगंबर नाहिन अंबर अंग नवीनो।
दूरि कै सुन्दरि सुन्दरी केशव दौरि दरीन में आसन कीनो।
देखिय मंडित दंडन सों भुजदंड दोऊ असि दंड विहीनो।
राजनि श्री रघुनाथ के राज कुमंडल छाँड़ि कमंडल लीनो'॥[4]

विशेषालंकारों के अन्तर्गत दिये लक्षणों और उदाहरणों में ही यह असाम्य नहीं है, सामान्यालंकारों के विवेचन में भी दो-एक स्थलों पर यही त्रुटि दिखलाई देती है। केशव-द्वारा 'अबल' वर्णन के अंतर्गत दिये उदाहरण में अनाथों की 'अबलता' का वर्णन न होकर वास्तव में उनकी 'सबलता' का ही वर्णन दिखलाई देता है, यथा :

'खात न अघात सब जगत खवावत है,
द्रौपदी के सागपात खात ही अघाने हौ।
केशवदास नृपति सुता के सतभाय भये,
चोर से चतुर्भुज चहूँचक जाने हौ।

1. **'कारज को बिनु कारणहि उदो होत जेहि ठौर।**
तासों कहत विभावना केशव कवि सिरमौर'॥११॥
कविप्रिया, नवाँ प्रभाव, पृ० सं० १८६।
2. **कविप्रिया, नवाँ प्रभाव, छं० सं० २१, पृ० सं० १९२।**
3. **कविप्रिया, नोट, पृ० सं० १९३।**
4. **कविप्रिया, चौदहवाँ प्रभाव, छं० सं० २४, पृ० सं० ३६२।**

मांगनेऊ द्वारपाल, दास, दूत, सूत सुनो,
काठ माहि कौन पाठ वेदन बखाने हो।
और हैं अनाथन के नाथ कोऊ रघुनाथ,
तुम तो अनाथन के हाथ ही बिकाने हो' ॥[1]

इसी प्रकार 'सुवृत्त' वर्णन के अंतर्गत दिये उदाहरण में कामिनी के कुचों की प्रशंसा है, उनकी 'सुवृत्तता' का कोई उल्लेख नहीं है, यथा :

'परम प्रवीन अति कोमल कृपालु तेरे,
उरते उदित नित चित हितकारी हैं।
केशोराय की सों अति सुन्दर उदार शुभ,
सलज सुशील विधि सूरति सुवारी है।
काहू सों न जानें हँसि बोलि न बिलोकि जानें,
कंचुकी सहित साधु सूधी बैसवारी है।
ऐसे दकुचनि सकुचति न सकति बूझि,
हरि हिय हरनि प्रकृति किन पारी हैं' ॥[2]

रस-विवेचन तथा नायक-नायिका-भेद-वर्णन :

केशवदास जी के आचार्यत्व का प्रतिष्ठापक दूसरा ग्रंथ 'रसिकप्रिया' है। इसमें मुख्य-रूप से शृङ्गार रस के विभिन्न अंगों, वृत्ति तथा काव्य-दोषों का वर्णन है। ग्रन्थ में सोलह प्रकाश हैं। प्रथम प्रकाश में मंगलाचरण आदि के बाद संयोग और वियोग शृङ्गार का वर्णन है। दूसरे प्रकाश में नायक के भेद बतलाये गये हैं। तीसरे प्रकाश में जाति, कर्म, अवस्था, तथा मान के अनुसार नायिकाओं के भेद किये गये हैं। चौथे प्रकाश में चार प्रकार के दर्शन का उल्लेख है। पाँचवे प्रकाश में नायक-नायिका की चेष्टायें तथा स्वयंदूतत्व का वर्णन है, साथ ही यह भी बतलाया गया है कि नायक-नायिका किन-किन स्थलों और अवसरों पर किस प्रकार मिलते हैं। छठे प्रकाश में भाव, विभाव, अनुभाव, स्थायी, सात्विक, और व्यभिचारी भाव तथा हावों का वर्णन किया गया है। सातवें प्रकाश में काल और गुण के अनुसार नायिकाओं के भेद बतलाये गये हैं। आठवें प्रकाश में वियोग शृङ्गार के प्रथम भेद पूर्वानुराग और प्रिय से मिलन न हो सकने के कारण उत्पन्न दशाओं का वर्णन किया गया है। नवें प्रकाश में मान के भेद बतलाये गये हैं और दसवें प्रकाश में मानमोचन के उपायों का उल्लेख है। ग्यारहवें प्रकाश में पूर्वानुराग से इतर वियोग शृङ्गार के भेदों का वर्णन है। बारहवें प्रकाश में सखियों के भेद बतलाये गये हैं और तेहरवें प्रकाश में सखीजन-कर्म वर्णित है। यहाँ तक शृंगार रस के विभिन्न तत्वों का वर्णन करने के पश्चात् चौदहवें प्रकाश में शृंगार से इतर अन्य आठ रसों का वर्णन किया गया है। इसके बाद पन्द्रहवें प्रकाश में 'वृत्तियों का वर्णन किया गया है, तथा अन्तिम सोलहवें प्रकाश में कुछ काव्य-दोषों का उल्लेख है।

---

1. कविप्रिया, छठा प्रभाव, छं० सं० ५१, पृ० सं० १०८।
2. कविप्रिया, छठा प्रभाव, छं० सं० १४, पृ० सं० ८७।

केशव के रस-विवेचन के आधार-भूत ग्रंथ :

केशव के 'रसिकप्रिया' लिखने के पूर्व 'रसिकप्रिया' में वर्णित विषयों पर संस्कृत में अनेक ग्रन्थ लिखे जा चुके थे, जिनमें भरतमुनि का 'नाट्य-शास्त्र', भानुभट्ट की 'रसमंजरी', भोजदेव का 'सरस्वती-कुल-कंठाभरण' तथा 'शृङ्गार-प्रकाश', भूपाल का 'रसार्णव-सुधाकर' तथा विश्वनाथ का 'साहित्य-दर्पण' मुख्य हैं। किन्तु आचार्य केशव ने 'रसिकप्रिया' के लक्षण किस ग्रन्थ के आधार पर लिखे हैं, इस प्रश्न का निर्णय करना कठिन है। इसका प्रमुख कारण यह है कि जिस प्रकार केशव ने 'कविप्रिया' के पूर्वार्ध के लक्षण लिखने में अमर के 'काव्यकल्पलतावृत्ति' अथवा केशव मिश्र के 'अलंकार-शेखर' को तथा उत्तरार्ध अर्थात् विशेषालंकारों के लक्षण लिखने में मुख्य रूप से दण्डी के 'काव्यादर्श' को आधार माना है, उसी प्रकार 'रसिकप्रिया, के लक्षण लिखने में उन्होंने किसी एक ग्रंथ से सहायता नहीं ली है। दूसरे, 'रसिकप्रिया' में वर्णित विषयों पर विभिन्न संस्कृत ग्रन्थों में दिये लक्षणों में बहुधा साम्य है, अतएव यह नहीं कहा जा सकता है कि केशव ने उन स्थलों पर संस्कृत के किस ग्रन्थ-विशेष से सहायता ली है। विश्वनाथ प्रसाद जी मिश्र ने 'केशव की काव्यकला' नामक ग्रन्थ में 'उपक्रम' लिखते हुये कहा है कि 'रसिकप्रिया' के आधारभूत ग्रंथ 'रसमंजरी', 'नाट्य-शास्त्र', 'कामसूत्र' आदि जान पड़ते हैं।[1] 'रसिकप्रिया' लिखने के पूर्व 'नाट्य-शास्त्र' सा प्रसिद्ध ग्रंथ केशव ने अवश्य ही देखा होगा। 'रसिकप्रिया' में कुछ ऐसी बातों का भी वर्णन है जो काम-शास्त्र की हैं और 'कामसूत्र', 'अनंग-रंग' आदि से इतर ग्रन्थों में उनका कोई उल्लेख नहीं है। 'रसमंजरी' में केवल उदाहरण दिये गये हैं, लक्षण व्यंग्य हैं। अन्य ग्रंथों में लक्षण भी दिये हैं। ऐसी दशा में उन ग्रंथों से सहायता न लेकर 'रसमंजरी' से 'रसिकप्रिया' के लक्षण लिखने के लिये सहायता लिये जाने का अनुमान समीचीन नहीं प्रतीत होता। 'रसमंजरी' को छोड़ देने पर 'कामसूत्र' से इतर पाँच संस्कृत के ग्रंथ रह जाते हैं, जिनसे सहायता लेकर 'रसिकप्रिया' लिखी जाने की सम्भावना होती है, यथा भरत मुनि का 'नाट्य-शास्त्र', भोजदेव का 'सरस्वती-कुल-कंठाभरण' तथा 'शृङ्गार-प्रकाश', भूपाल का 'रसार्णव-सुधाकर' तथा विश्वनाथ मिश्र का 'साहित्य-दर्पण'। इन ग्रंथों में दिये लक्षणों से 'रसिकप्रिया' के लक्षणों की तुलना से अनुमान लगाया जा सकता है कि केशव ने 'रसिकप्रिया' लिखने में इनमें से किस अथवा किन-किन ग्रंथों से सहायता ली है।

रसभेद-वर्णन :

'रसिकप्रिया' के प्रथम प्रकाश में गणेश-वन्दना के बाद, ओड़छा-नगर-वर्णन, 'रसिकप्रिया' लिखने का कारण, ग्रंथ-प्रणयन-काल आदि देने के पश्चात् नवरसों के वर्णन के साथ मुख्य विषय का आरम्भ किया गया है। नवरसों का वर्णन करते हुये केशव ने क्रमशः शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत तथा शान्त रसों का उल्लेख किया है।[2]

---

१. केशव की काव्यकला, उपक्रम, पृ० सं० ३।

२. 'प्रथम शृंगार सुहास्यरस, करुणा रुद्र सुवीर।
भय वीभत्स बखानिये, अद्भुत शान्त सुधीर'॥
रसिकप्रिया, छं० सं० १५, पृ० सं० १२।

भरत मुनि के 'नाट्य-शास्त्र' में भी नवरसों का उल्लेख इसी क्रम से किया गया है।[1] इसके बाद केशव ने शृंगार रस का लक्षण दिया है जो अस्पष्ट है और संस्कृत आचार्यों द्वारा दिये लक्षण से नहीं मिलता। शृंगार रस के भेदों संयोग और वियोग का उल्लेख-मात्र है, लक्षण नहीं दिया गया है। संयोग और वियोग के भी दो-दो उपभेद 'प्रच्छन्न' और 'प्रकाश' किये गये हैं। इसी प्रकार विभिन्न नायकों, स्वयंदूतत्व, दर्शन के भेदों, अवस्थानुसार अष्टनायिकाओं के वर्णन, वियोग की दश दशाओं, संचारी भावों तथा मान आदि के वर्णन में भी प्रत्येक के 'प्रच्छन्न' और 'प्रकाश' दो भेद किये गये हैं। इन उपभेदों का उल्लेख संस्कृत के किसी आचार्य के ग्रन्थ में इस सम्बन्ध में नहीं मिलता। केवल भोजदेव ने 'शृंगार-प्रकाश' नामक ग्रन्थ में 'अनुराग' के चौसठ भेदों के अन्तर्गत दो भेद 'प्रकाश अनुराग' और 'प्रच्छन्न अनुराग' बतलाये हैं।[2] सम्भव है केशव को 'प्रच्छन्न' और 'प्रकाश' भेदों की उद्भावना के लिये इसी ग्रन्थ से प्रेरणा मिली हो। किन्तु इस सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। विश्वनाथ प्रसाद जी मिश्र के अनुसार यह भेद तात्विक दृष्टि से कोई मूल्य नहीं रखते।[3]

नायक के भेद :

नायक का सामान्य लक्षण देकर केशव ने 'रसिकप्रिया' के दूसरे प्रकाश में नायकों के चार भेद बतलाये हैं, अनुकूल, दक्षिण, शठ तथा धृष्ट। केशव के अनुसार अभिमानी, त्यागी, तरुण, कोक-कलाओं में प्रवीण, भव्य, क्षमी, सुन्दर, धनी, शुचिरुचि तथा कुलीन पुरुष नायक होता है।[4] साहित्यदर्पणकार के अनुसार नायक को दाता, कृतज्ञ, पण्डित, कुलीन, क्षमावान, लोगों के अनुकरण का पात्र, रूप, यौवन और उत्साह से युक्त, तेजस्वी, चतुर और सुशील होना चाहिये।[5] भूपाल के अनुसार शालीनता, उदारता, स्थिरता, दक्षता, औज्वल्य, धार्मिकता, कुलीनता, वाग्मिता, कृतज्ञता, नयज्ञता, शुचिता, मानशीलता, तेजस्विता, कलाविज्ञता, प्रजा-रंजकता आदि नायकों के साधारण गुण हैं।[6] भोज ने कुलीनता, उदारता, भाग्यशालीनता,

१. 'शृंगारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः।
वीभत्सोऽद्भुत इत्यष्टौ रसाः शान्तस्तथा मतः' ॥ १८२॥
नाट्यशास्त्र, भरत, पृ० सं० १३६

२. शृंगार-प्रकाश, प्रकाश २२, पृ० सं० १३।

३. केशव की काव्यकला, उपक्रम, पृ० सं० ३।

४. 'अभिमानी त्यागी तरुण, कोककलान प्रवीन।
भव्य क्षमी सुन्दर धनी, शुचिरुचि सदा कुलीन' ॥१॥
रसिकप्रिया, प्रकाश २, पृ० सं० २०।

५. 'त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको रूपयौवनोत्साही।
दक्षोऽनुरक्तलोकस्तेजो वैदग्ध्यशीलवान्नेता' ॥३०॥
साहित्यदर्पण, पृ० सं० ८४।

६. 'आलम्बनं मतं तत्र नायको गुणवान् पुमान्।
तद्गुणास्तु महाभाग्यमौदार्यं स्थैर्यदक्षते ॥६१॥

कृतज्ञता, रूप, यौवन, विदग्धता, शील, गर्व, सम्मान, उदारवाणी, दरिद्रानुरागिता आदि नायकों के गुण बतलाये हैं।[1] संस्कृत आचार्यों द्वारा दिये गये लक्षणों से केशव के लक्षण की तुलना करने पर ज्ञात होता है कि केशव ने किसी एक ग्रन्थ के आधार पर अपना लक्षण नहीं लिखा है। केशव के लक्षण की अधिकांश बातें साहित्यदर्पणकार के अनुसार हैं यथा, नायक का त्यागी, तरुण, सुन्दर, धनी, शुचिरुचि अर्थात् सुशील और कुलीन होना। कोक-कलाओं में प्रवीणता का उल्लेख साहित्य-दर्पणकार ने नहीं किया है। कदाचित् भूपाल के 'कला-विज्ञता' के स्थान पर केशव ने इसे लिखा हो; और अभिमान का उल्लेख उन्होंने भोज के लक्षण के आधार पर किया है।

अनुकूल नायक :

केशव के अनुसार अनुकूल नायक वह है जो मन, वाणी और कर्म से अपनी स्त्री में ही अनुरक्त और दूसरी स्त्रियों में अनासक्त हो।[2] साहित्य-दर्पणकार विश्वनाथ तथा भूपाल दोनों आचार्यों के लक्षण का भी यही भाव है।[3] केशव का लक्षण इन दोनों आचार्यों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट है। भोज ने प्रवृत्ति के अनुसार नायकों के चार भेद, शठ, धृष्ट, अनुकूल और दक्षिण बतलाये हैं किन्तु लक्षण नहीं दिये हैं।

दक्षिण नायक :

केशव ने दक्षिण नायक उसे कहा है जो पहिली नायिका से डर के कारण प्रेम करता हुआ मर्यादा का पालन करता है और हृदय विचलित होने पर भी उसे चंचल नहीं होने

औज्ज्वल्यं धार्मिकत्वं च कुलीनत्वं च वाग्मिता।
कृतज्ञत्वं नयज्ञत्वं शुचिता मानशालिता ॥ ६२ ॥
तेजस्विता कलावत्वं, प्रजारञ्जकतादयः।
एते साधारणाः प्रोक्ता नायकस्य गुणाःबुधैः' ॥ ६३ ॥
रसार्णव-सुधाकर, पृ० सं० ६।

1. 'महाकुलीनतौदार्यमहाभाग्यं कृतज्ञता। २२॥
रूपयौवनवैदग्ध्यशीलसौभाग्यसम्पदः।
मानितोदारवाक्यत्वम् दरिद्रानुरागिता ॥ २३ ॥
द्वादशेति गुणानाहुर्नायकेष्वाभिगामिकान्'।
स० कु०कराठाभरण, पृ० सं० ६३।

2. 'प्रीति करै निज नारि सों, परनारी प्रतिकूल।
केशव मन वच कर्म करि, सो कहिये अनुकूल' ॥
रसिकप्रिया पृ० सं० २१।

3. 'एकस्यामेव नायिकायामासक्तोऽनुकूल नायकः'।
साहित्य-दर्पण पृ० सं० ८७।
'अनुकूलत्वेकजानिः'।
रसार्णव-सुधारक, पृ० सं० १६।

देता ।[1] केशव के इस लक्षण का भाव विश्वनाथ तथा भूपाल दोनों से नहीं मिलता। विश्वनाथ के अनुसार अनेक महिलाओं में समान रूप से अनुरक्त नायक दक्षिण कहलाता है।[2] यही भाव भूपाल के लक्षण का भी है।[3]

शठ नायक :

केशव के अनुसार शठ नायक वह है, जो हृदय में कपट रखे, मुख से मीठी बातें करें और जिसे अपराध का डर न हो।[4] केशव का यह लक्षण विश्वनाथ तथा भूपाल के लक्षणों का समन्वय सा प्रतीत होता है। विश्वनाथ के अनुसार शठ वह नायक है जो अनुरक्त तो किसी अन्य में हो परन्तु प्रकृत नायिका में भी बाह्यानुराग दिखलाए और प्रच्छन्न रूप से उसका अप्रिय करे।[5] भूपाल के अनुसार गूढ़, अपराध करने वाला नायक शठ कहलाता है।[6]

धृष्ट नायक :

केशव के धृष्ट नायक का लक्षण विश्वनाथ के लक्षण से मिलता है। केशव के अनुसार धृष्ट नायक वह है जिसने त्रास को तिलांजलि दे दी है और गाली अथवा मार किसी बात की उसे चिन्ता नहीं है तथा जो अपने दोष के प्रकट हो जाने पर भी अपनी त्रुटि नहीं मानता।[7] विश्वनाथ के लक्षण का भी यही भाव है।[8]

१. 'पहिली सों हिय हेतु डर, सहज बड़ाई कानि।
चित्त चलै हू ना चलै, दक्षिण लक्षण जानि' ॥७॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० २३।

२. 'एषुत्वनेक महिलासमरागी दक्षिणः कथितः' ॥३५॥
साहित्य-दर्पण, पृ० सं० ८६।

३. 'नायिकास्वप्यनेकासु तुल्यो दक्षिण उच्यते'।
रसार्णव-सुधाकर, पृ० सं० १८।

४. 'मुख मीठी बातै कहै निपट कपट जिय जान।
जाहि न डर अपराध को शठ कर ताहि बखान ॥११॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० २५।

५. 'दर्शितबहिरनुरागो विप्रियमन्यत्र गूढ़माचरति' ॥३७२॥
साहित्य-दर्पण, पृ० सं० ८८।

६. 'शठो गूढ़ापराधकृत'। ॥८१॥
रसार्णव-सुधाकर, पृ० सं० ८८।

७. 'लाज न गारी मार की छोड़ि दई सब त्रास।
देख्यो दोष न मानही धृष्ट सु केशवदास' ॥१४॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० २७।

८. 'कृतागा अपि निःशंकस्तर्जितोपि न लज्जितः।
दृष्टदोषोऽपि मिथ्यावाक्कथितो धृष्टनायकः' ॥३३॥
साहित्य-दर्पण, पृ० सं० ८७।

जाति के अनुसार नायिका-भेद-वर्णन :

पद्मिनी नायिका :

'रसिकप्रिया' के तीसरे प्रकाश में नायिकाओं के भेद बतलाये गए हैं। सबसे पहले केशव ने जाति के अनुसार नायिकाओं के चार भेद किये हैं। पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी तथा हस्तिनी। इन भेदों का उल्लेख संस्कृत भाषा के किसी आचार्य के ग्रंथ में नहीं मिलता। कामशास्त्र-सम्बन्धी ग्रंथों में अवश्य इन भेदों का वर्णन मिलता है। अतएव स्पष्ट ही यह भेद केशव ने उन्हीं ग्रंथों से लिये होंगे। केशव के अनुसार पद्मिनी नायिका स्वरूपवती, उसका शरीर सहज-सुगन्धित तथा वर्ण सोने के समान होता है। पद्मिनी का प्रेम सुखदाई तथा पुन्यस्वरूप होता है। वह लज्जाशील, बुद्धिमती, उदार तथा कोमल हृदय वाली होती है। पद्मिनी नायिका हँसमुख होती तथा अपने शरीर और वस्त्रों को स्वच्छ रखती है। वह अल्प भोजन करती है और निद्रा, मान, रोष तथा रति की मात्रा भी उसमें अल्प रहती है।[1] केशव के लक्षण की कुछ बातें 'अनंगरंग' ग्रंथ के अनुकूल हैं, यथा पद्मिनी का स्वरूपवती होना, उसका वर्ण सोने के समान होना, लज्जावती होना, अल्प भोजन एवं अल्प निद्रा की वांछा तथा स्वच्छ, स्वेत वस्त्रों को धारण करने की रुचि आदि।[2]

चित्रिणी नायिका :

केशव के अनुसार चित्रिणी नायिका को नृत्य, गीत, कविता आदि रुचती है। उसका हृदय स्थिर तथा दृष्टि चंचल होती है। बहिर रति में उसे अनुराग होता है, मुख से सुगन्धि आती है, उसके शरीर पर रोम अधिक नहीं होते तथा वह चित्रों से प्रेम करती है।[3] केशव

---

१. 'सहज सुगंध स्वरूप शुभ, पुराय प्रेम सुखदान।
तनु तनु भोजन रोस रति, निद्रामान बखान ॥२॥
सलज सुबुद्धि उदार मृदु, हास वास शुचि अंग।
अमल अलोम अनंग भुव, पद्मिनि हाटक रंग' ॥३॥
रसिकप्रिया, पृ० सं ३०।

२. 'प्रान्तारक्तकुरंगशावनयना पूर्णेन्दुतुल्यानना।
पीनोत्तुंगकुचा शिरीषमृदुला स्वल्पाशना दक्षिणा।
फुल्लाम्भोजसुगंधिकामसलिला लज्जावती मानिनी।
श्यामा कापि सुवर्णचम्पकनिभा देवादिपूजारता ॥११॥
उन्निद्राम्बुजकोशतुल्यमदनच्छत्रा मरालस्वना।
तन्वी हंसवधूगतिः सुललितं वेषं सदा बिभ्रती॥
मध्यं चापि वलित्रयांकितमसौ शुक्लाम्बराकांक्षिणी।
सुग्रीवा शुभनासिकेति गदिता नार्युत्तमा पद्मिनी'॥१२॥
अनंगरंग, पृ० सं० ३।

३. 'नृत्य गीत कविता रुचै, अचल चित चल दृष्टि।
बहिरतिरत अति सुरत जल, मुख सुगंध की सृष्टि॥५॥
विरल लोम तन मदन गृह, भावत सकल सुवास।
मित्र चित्रप्रिय चित्रिणी, जानहु केशवदास' ॥६॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० ३१।

के लक्षण में चित्रिणी नायिका की दृष्टि का चंचल होना, मुख की सुगन्ध, शरीर पर रोमों की न्यूनता आदि बातें 'अनंगरंग' नामक ग्रंथ के अनुकूल हैं।[1]

शंखिनी नायिका :

केशव के अनुसार शंखिनी नायिका कोपशीला, चतुर, कपटी, तथा सजल एवं सलोम शरीरवाली होती है। लाल रंग के वस्त्र उसको अच्छे लगते हैं। नखदान में उसे रुचि होती है तथा वह निर्लज्ज, निडर एवं अधीर होती है।[2] केशव द्वारा बतलाये हुये शंखिनी नायिका के अधिकांश गुण यथा, उसका कोपशीला, कपटी, अधीरा होना, शरीर का तचना, तथा लाल वस्त्रों से प्रेम होना आदि बातें 'अनंगरंग' में दिये लक्षणों में भी बतलाई गई हैं।[3]

हस्तिनी नायिका :

केशव के अनुसार हस्तिनी नायिका की अंगुलियाँ, चरण, मुख, अधर तथा भृकुटी स्थूल होती है। उसका बोल कटु, चित्त चंचल तथा गति मंद होती है। उसके बाल

१. 'तन्वंगी गजगामिनी चपलदृक्संगीतशिल्पान्विता।
नो ह्रस्वा न बृहत्तराथ सुकृशा मध्ये मयूरस्वना।
पीनश्रोणीपयोधरा सुललिते जंघे वहन्ती कृशे।
कामाम्भोमधुगन्ध्यथौष्ठमपि सा तुच्छोन्नतं वत्सला ॥१३॥
कामागारमसान्द्रलोमसहितं मध्ये मृदुः प्रायशो।
विभ्रत्युल्लसितं च वर्तुलमथो रत्याम्बुनाढ्यं सदा।
भृंगी श्यामलकुन्तलाथ जलजग्रीवोपभागेरता।
चित्रा शक्तिमतीरतेऽल्परुचिका ज्ञेयांगना चित्रिणी' ॥१४॥
अनंगरंग, पृ० सं० ४।

२. 'कोपशील कोविद कपट, सजल सलोम शरीर।
अरुण बसन नखदान रुचि, निलज निशंक अधीर ॥८॥
खार गंधयुत मार जल, तप्त भूर भग होइ।
सुरतारति अति संखिनी वरणत कवि जन लोइ' ॥६॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० ३२।

३. 'दीर्घं बाह्यशिरं कृशं पृथुमथो देहं वहन्ती तथा।
पादौ दीर्घतरौ कटिं च बृहतीं स्वल्पस्तनी कोपिनी।
गुह्यं क्षारविगन्धिना स्मरजलेनल्पेन सान्द्रैः कचै—
रानिम्नं, कुटिलेक्षणा द्रुतगतिः सन्तप्तगात्रा भृशम् ॥१५॥
सम्भोगे वरजक्षतानि बहुशो यच्छत्यनंगाकुला।
न स्तोकं न च भूरि भक्षति सदा प्रायो भवेत पित्तला।
रक्ताम्बरायरुणानि वाञ्छति दयाहीना च पैशून्यभृत्-
पिशा दुष्टमनाश्च घर्घरमहारुक्षस्वरा शंखिनी' ॥१६॥
अनंगरंग, पृ० सं० ४।

भूरे होते हैं और उसके स्वेद में हाथी के मद के समान गंध आती है। उसके शरीर पर तीक्ष्ण तथा अधिक रोम होते हैं।[1] केशव द्वारा दिये हुये कुछ लक्षण, यथा हस्तिनी का मुख स्थूल होना, कटुवाणी, शिर के केश भूरे होना, मंद गति, स्वेद में हाथी के मद के समान गंध आदि बातें 'अनंगरंग' के अनुकूल हैं।[2]

स्वकीया :

इसके बाद केशव ने नायिकाओं का विभाजन स्वकीया, परकीया तथा सामान्या के अन्तर्गत किया है। केशव के अनुसार स्वकीया नायिका वह है जो सम्पत्ति में, विपत्ति में, तथा मरण में, नायक के प्रति मन, वचन तथा कर्म से समान व्यवहार करती है।[3] केशव का यह लक्षण भूपाल के 'रसार्णव-सुधाकर' नामक ग्रंथ के लक्षण से साम्य रखता है।[4]

स्वकीयान्तर्गत मुग्धा के भेद :

केशव ने स्वकीया के तीन भेद बतलाये हैं, मुग्धा, मध्या तथा प्रौढ़ा। नायिका-भेद पर लिखने वाले सभी आचार्यों ने यह भेद किये हैं। केशव ने इनका लक्षण नहीं दिया है। इसके बाद 'मुग्धा' के चार उपभेद किये गये हैं,'मुग्धा' नववधू, नवयौवनाभूषिता मुग्धा, मुग्धा नवल-अनंगा, तथा लज्जाप्राइरति मुग्धा। इन उपभेदों के पृथक-पृथक लक्षण भी दिये गये हैं। केशव के अनुसार 'नववधू मुग्धा' वह है जिसके शरीर का सौन्दर्य दिन-दिन बढ़ता है; 'नवयौवना-भूषिता मुग्धा' वह है जिसने बाल्यावस्था को पार कर यौवनावस्था में पदार्पण किया हो; 'नवल-अनंगा मुग्धा' वह है जो बालकों के समान खेलती, बोलती तथा विलासपूर्वक हँसती और भय-

---

१. 'थूल अंगुली चरण मुख, अधरभृकुटि कटु बोल।
मदन सदन रदकंधरा, मंद चाल चित लोल ॥११॥
स्वेद मदन जल द्विरदमद, गंधित भूरे केश।
अति तीक्षण बहुलोमतन, भनि हस्तिनि इहि वेश' ॥१२॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० ३३।

२. 'स्थूलापिंगलकुन्तला च बहुभुक्क्रूरा त्रपावर्जिता।
गौरांगी कुटिलांगुलीचरणाह्रस्वानमत्कन्धरा।
विभ्रत्येभमदाम्बुगन्धिरतिजं तोयं भृशं मन्दगा।
दुः साध्या सुरतेति गद्गदरवा स्थूलौष्ठिका हस्तिनी' ॥१७॥
अनंगरंग, पृ० सं० ४।

३. 'सम्पति विपति जो मरण हूँ, सदा एक अनुहार।
ताको स्वकीया जानिये, मन, क्रम वचन विचार' ॥१५॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० ३४।

४. 'सम्पत्काले विपत्काले या न मुञ्चति वल्लभम्।
शीलार्जवगुणोपेता सा स्वीया कथिता बुधैः' ॥६५॥
रसार्णव-सुधाकर, पृ० सं० २१।

प्रदर्शित करती है, तथा 'लज्जाप्राइरति मुग्धा' वह है जो लजाती हुई सुरति में प्रवृत्त होती है।[1] इन उपभेदों के अतिरिक्त केशव ने मुग्धा की 'सुरति' तथा 'मान' का भी लक्षण तथा उदाहरण दिया है। केशव ने लिखा है कि मुग्धा स्वप्न में भी प्रसन्नता से सुरति में प्रवृत्त नहीं होती तथा वह या तो मान करती ही नहीं और यदि करे भी तो उसका मान एक बालक के समान ही उसे डरा कर छुड़ाया जा सकता है।[2]

विश्वनाथ ने मुग्धा के पांच भेद बतलाये हैं, प्रथमावतीर्णयौवना, प्रथमावतीर्णमदनविकारा, रतिवामा, मानमृदु, तथा समधिक लज्जावती।[3] विश्वनाथ ने इन भेदों के लक्षण नहीं दिये हैं किन्तु लक्षण नामों से ही प्रकट हैं। विश्वनाथ की प्रथमावतीर्णयौवना तथा केशव की नवयौवनाभूपिता एक ही है। केशव के लक्षण तथा विश्वनाथ के उदाहरण में पूर्ण साम्य है। केशव की नवलअनंगा और विश्वनाथ की प्रथमावतीर्णमदनविकारा में नाम-साम्य है किन्तु विश्वनाथ के उदाहरण से ज्ञात होता है कि दोनों लक्षण भिन्न समझते हैं। केशव की लज्जाप्राइरति तथा विश्वनाथ की समधिक लज्जावती प्रायः एक ही हैं। केशव ने विश्वनाथ के रतिवामा और मानमृदु भेदों का उल्लेख नहीं किया है किन्तु, जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है, उन्होंने मुग्धा की सुरति तथा मान का प्रथक वर्णन किया है और उनके लक्षण विश्वनाथ के भेदों 'रतिवामा' तथा 'मानमृदु' नामों के अनुकूल हैं। केशव की नववधू का उल्लेख विश्वनाथ ने नहीं किया है।

भूपाल ने मुग्धा के छः भेद बतलाये हैं, नववयमा, नवकामा, रतौवामा, मृदुकोपा,

1. 'जासों मुग्धा नववधू कहत सयाने लोइ।
दिन दिन द्युति दूनी बढ़ै वरणि कहै कवि सोइ॥१८॥
सो नवयौवनभूपिता, मुग्धा को यह वेश।
बाल दशा निकसै जहां, यौवन को परवेश॥२०॥
नवल अनंगा होइ सो मुग्धा केशवदास।
खेलै बोलै बाल विधि हँसै त्रसै सविलास॥२२॥
मुग्धा लज्जाप्राइरति वर्णत हैं इहि रीति।
करै जु रति अति लाज सों अतिहि बढ़ावै प्रीति'॥२४॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० ३५-३८।

2. 'मुग्धा सुरति करै नहीं सपनेहूँ सुखमान।
छलबल कीने होत है सुख शोभा की हान॥
मुग्धा मान करै नहीं करै तो सुनौ सुजान।
त्यों डरपाइ छुड़ाइये ज्यों डरपै अज्ञान'॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० ३६. ४०।

3. 'प्रथमावतीर्णयौवनमदनविकारा रतौ वामा।
कथिता मृदुश्च माने समधिकलज्जावती मुग्धा'॥ ७१॥
साहित्य-दर्पण, चतुर्थ संस्करण, पृ० सं० १०७।

सव्रीड़सुरतप्रयत्ना तथा क्रोधादभाषण रुदती ।[1] केशव के भेदों नवलवधू, नवलअनंगा तथा लज्जाप्राइरति का भूपाल के भेदों नववयसा, नवकामा तथा सव्रीड़सुरतप्रयत्ना से क्रमशः नाम-साम्य है। केशव के मुग्धा के सुरति तथा मान के लक्षण भूपाल के भेदों रतौवामा तथा मृदुकोपा के अनुकूल हैं।

मध्या के भेद :

केशव ने 'मध्या' नायिका चार प्रकार की बतलाई है, मध्यारूढ़यौवना, प्रगल्भवचना, प्रादुर्भूतमनोभवा तथा विचित्र-सुरता। केशव के अनुसार पूर्ण युवावस्था को प्राप्त, भाग्य, सौभाग्य से पूर्ण, नायक को प्रिय नायिका 'मध्यारूढ़यौवना' है। 'प्रगल्भवचना' नायिका वह है जो वचनों के द्वारा उलाहना देती तथा त्रास का भाव प्रदर्शित करती है। 'प्रादुर्भूतमनोभवा' वह है जिसका शरीर और मन काम-कलाओं से पूर्ण हो तथा 'विचित्रसुरता' वह है जो सुरति में विचित्र चेष्टायें करें।[2]

विश्वनाथ ने 'मध्या' नायिका के पांच भेद बतलाये हैं। विचित्र-सुरता, प्ररूढ़स्मरा, प्ररूढ़यौवना, ईषत्प्रगल्भवचना तथा मध्यमव्रीड़िता।[3] केशव तथा विश्वनाथ की 'सुरतिविचित्रा' एक ही है। दोनों के उदाहरणों में भाव-साम्य है। विश्वनाथ के उदाहरण का भाव है, 'सुरति के समय प्रबुद्धकामा मृगनयिनी ने इस प्रकार की अपूर्व चतुरता दिखलाई कि अनेक बार उसके रतिकूजित का अनुकरण करते हुये घर के कबूतर उसके शिष्य से प्रतीत होते थे'।[4]

१. 'मुग्धा नववयःकामा रतौवामा मृदुः क्रुधि ॥ ६१ ॥
यतते रतचेष्टायांगूढ़ं लज्जा मनोहरम् ।
कृतापराधे दयिते वीक्षते रुदती सती ॥ ६७ ॥
अप्रियं वा प्रियं वापि न किञ्चिदपि भाषते'।
रसार्णव-सुधाकर, पृ० सं० २२ ।

२. 'मध्यारूढ़यौवना, पूरण यौवनवंत ।
भाग सोहाग भरी सदा, भावत है मन कंत ॥३३॥
प्रगल्भवचना जान तिहि, वर्णैं केशवदास ।
वचनन माँह उराहनो, देइ दिखावै त्रास ॥३५॥
प्रादुर्भूतमनोभवा, मध्या कहैं बखान ।
तनमन भूषित सोभिये, केशव काम कलान ॥३७॥
अति विचित्रसुरता सुतौ, जाकी सुरत विचित्र ।
बरणत कवि कुल को कठिन, सुनत सुहावै मित्र' ॥३९॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० ४१-४५ ।

३. 'मध्या विचित्र सुरता प्ररूढस्मरयौवना ।
ईषत्प्रगल्भवचना मध्यमव्रीडिता ॥६१॥
साहित्य-दर्पण, पृ० सं० ६६ ।

४. 'कान्ते तथा कथमपि प्रथितं मृगाक्ष्या ।
चातुर्यमुद्धतमनोभवया रतेषु ।

केशव के उदाहरण के अंतिम चरण का भी यही भाव है। केशव का उदाहरण है :

'केशवदास सविलास मन्दहासयुत,
अविलोकन अलापन को आनन्द अपार है।
बहिरत सात अरु अन्तरित सात सुन,
रति विपरीतनि को विविध प्रकार है।
छूटि जात लाज तहाँ भूषण सुदेश केश,
टूटि जात हार सब मिटत शृङ्गार है।
कूजि कूजि उठै रति कूजतिन सुनि खग,
सोई तो सुरति सखि और व्यवहार है' ॥४०॥[1]

केशव की आरूढ़-यौवना, विश्वनाथ की प्ररुढ़यौवना है। इसी प्रकार केशव के अन्य दो भेद प्रगल्भवचना तथा प्रादुर्भूतमनोभवा क्रमशः विश्वनाथ द्वारा बतलाये भेदों ईषत्प्रगल्भवचना तथा प्ररूढ़स्मरा के अनुकूल हैं। विश्वनाथ की मध्यमव्रीड़िता का केशव ने उल्लेख नहीं किया है। भूपाल ने मध्या के तीन ही उपभेद बतलाये हैं, समान लज्जामदना, प्रोद्यत्तारुण्यशालिनी तथा मोहान्तसुरतक्षमा।[2] अतएव स्पष्ट ही केशव के उपभेदों का आधार विश्वनाथ का 'साहित्य-दर्पण' प्रतीत होता है।

मध्या के अन्य भेद :

धैर्य गुण के आधार पर मध्या नायिका के तीन भेद धीरा, अधीरा तथा धीरा-धीरा भी किये गये हैं। केशव के अनुसार धीरा नायिका, नायक के प्रति वक्रोक्ति का प्रयोग करती है, अधीरा कटु वचन बोलती है तथा धीरा-धीरा अपने प्रिय को उराहना देती है।[3] केशव की धीरा तथा अधीरा के लक्षण विश्वनाथ के लक्षणों के अनुकूल हैं।[4] किन्तु धीराधीरा का केशव का लक्षण विश्वनाथ अथवा भूपाल किसी से नहीं मिलता।

तत्कूजितान्यनुवदद्भिरनेकवारं।
शिष्यायितं गृहकपोतशतैर्यथास्याः, ॥
साहित्य-दर्पण, पृ० सं० ६७।

१. रसिकप्रिया, प्रकाश ३, पृ० सं० ४५।

२. 'समान लज्जामदना प्रोद्यत्तारुण्यशालिनी ॥६८॥
मध्याकामयते कान्तं मोहान्तरसुरतक्षमा'।
रसार्णव-सुधाकर पृ० सं० २३।

३. 'धीरा बोलै वक्र विधि, बाणी विषम अधीर।
पिय को देहि उराहनो, सो धीरा न अधीर ॥४७॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० ४८।

४. 'प्रियं सोत्प्रासवक्रोक्त्या मध्याधीरा दहेद्रुषा ॥७५॥
धीराधीरा तु रुदितैरधीरा परुषोक्तिभिः, ।
साहित्यदर्पण, चतुर्थ संस्करण, पृ० सं० ११५।

प्रगल्भा के भेद :

केशवदास जी ने प्रगल्भा नायिका के चार भेद बतलाये हैं, समस्तरसकोविदा, विचित्र-विभ्रमा, अक्रामति नायिका, तथा लब्धापति। केशव की 'समस्तरसकोविदा' का लक्षण स्पष्ट नहीं है। उदाहरण से भी लक्षण स्पष्ट नहीं होता। 'विचित्र-विभ्रमा' वह है जिसके शरीर की द्युति-रूपी दूती उससे उसके प्रिय का मिलाप करा दे। 'अक्रामतिनायिका' वह है जिसने मन, वचन तथा कार्यों से प्रिय को वश में कर रखा है, और 'लब्धापति नायिका' वह है जो स्वामी के समान ही कुल के अन्य सब बड़ों की कानि करती है। भूपाल ने प्रौढ़ा के केवल दो ही भेद बतलाये हैं, सम्पूर्णयौवनोन्मत्ता तथा रूढ़ मन्मथा। भूपाल के अनुसार 'सम्पूर्णयौवनोन्मत्ता' वह है जो रति-केलि में पिय के शरीर में समा सी जाने की चेष्टा करती है तथा 'रूढ़-मन्मथा' वह है जो रति के प्रारम्भ में ही आनन्दमूर्छना को प्राप्त हो जाती है।[2] विश्वनाथ ने प्रगल्भा के छः भेद किये हैं, स्मरान्धा, गाढ़तारुण्या, समस्तरतकोविदा, 'भावोन्नता', दरव्रीड़ा तथा आक्रांतनायका।[3] विश्वनाथ ने लक्षण नहीं दिये हैं। केशव की समस्तरसकोविदा तथा अक्रामति नायिका का विश्वनाथ के भेदों क्रमशः समस्तरतकोविदा तथा आक्रांतनायका से नाम-साम्य है। केशव की विचित्रविभ्रमा तथा विश्वनाथ की भावोन्नता के उदाहरण का प्रायः एक ही भाव है। विश्वनाथ के उदाहरण का भावार्थ है, 'वह (नायिका) मधुर वचनों, भ्रूभङ्गों, अंगुली से तर्जन करती हुई, रतिकेलि के समय के अंगन्यासों तथा बार-बार की तिरछी चितवनों से तीनो लोकों को जीतने में कामदेव की सहायता करती

१. 'सो समस्त रस कोविदा, कोविद कहत बखान।
जो रस भावै प्रीति में, ताही रस की खान ॥५२॥
अति विचित्र विभ्रम सदा, प्रौढ़ा प्रकट बखान।
जाकी दीपति दूतिका, पियहि मिलावै आन ॥५४॥
सो अक्रामतिनायिका, प्रौढ़ा करिबे चित्त।
मनसावाचा कर्मणा, वश कीन्हे जेहि मित्त ॥५६॥
सो लब्धापति जानिये, केशव प्रकट प्रमान।
कानि करै पति कुल सबै, प्रभुता प्रभुहि समान' ॥५८॥

रसिकप्रिया, पृ० सं० ५१-५३।

२. 'सम्पूर्णयौवनोन्मत्ता प्रगल्भा रूढ़मन्मथा।
दयितांगे विलीनेव यतते रतिकेलिषु ॥१०१॥
रतिप्रारम्भमात्रेऽपि गच्छत्यानन्दमूर्छनाम्'।

रसार्णवसुधाकर, पृ० सं० २५।

३. 'स्मरान्धा गाढ़तारुण्या समस्तरतकोविदा।
भावोन्नता दरव्रीडा प्रगल्भा क्रान्तनायका ॥६०॥

साहित्यदर्पण, पृ० सं० ९०।

है' ।[1] केशव का उदाहरण है :

'है गति मन्द मनोहर केशव आनन्दकन्द हिये उमहे हैं।
भौंह बिलासन कोमल हासनि अंग सुवासनि गाढ़े गहे हैं ।।
बंहे बिलोकनि कौं अवलोकि सुमारु ह्यो नंदकुमारु रहे हैं ।
एक तो काम के बाण कहावत फूलनि की विधि भूलि गये हैं' ।।[2]

केशव की लब्धापति नायिका का विश्वनाथ के किसी भेद से साम्य नहीं है।

प्रगल्भा के अन्य भेद :

साहित्याचार्यों ने प्रगल्भा के तीन भेद धीरा, अधीरा तथा धीराधीरा भी किये हैं। विश्वनाथ के अनुसार धीरा क्रोध का आकार छिपा कर बाहरी बातों में आदर-सत्कार प्रदर्शित करती है किन्तु सुरति में उदासीन रहती है; धीराधीरा प्रिय के प्रति व्यंगयुक्त वाणी का प्रयोग करती है; तथा अधीरा तर्जन-ताड़न आदि से काम लेती है।[3] केशव तथा विश्वनाथ के धीरा तथा धीराधीरा के लक्षणों में साम्य है। केशव के अनुसार धीरा नायिका रोषाकृति को छिपा कर प्रकट-रूप से हित प्रदर्शित करती हुई आदर में ही अनादर प्रकट करती है। 'धीराधीरा' हृदय में प्रेम होते हुये भी मुख से कठोर बातें करती है तथा 'अधीरा' प्रिय को अपराधी समझते हुये उसका हित नहीं करती।[4]

१. 'मधुरवचनैः सभ्रूभंगैः कृतांगुलितर्जनै
रभसरचितैरंगन्यासैर्महोत्सव बन्धुभिः ।
असकृदसकृतफारस्फारैरपांगविलोकितै ।
त्रिभुवनजये सा पंचेषोः करोति सहायताम्' ।।
साहित्यदर्पण, पृ० सं० ६८ ।

२. रसिकप्रिया, तृतीय प्रकाश, छं० सं० ४५, पृ० सं० ५२ ।

३. 'प्रगल्भा यदि धीरा स्याच्छन्नकोपाकृतिस्तदा ।।६२।।
उदास्ते सुरते तत्र दर्शयत्यादरान्बहिः ।
धीराधीरातु सोल्लुण्ठभाषितैः खेदयत्यमुम् ।।६३।।
तर्जयेत्ताडयेदन्या' ।।
साहित्य-दर्पण, पृ० सं० १००, १०१ ।

४. 'आदर मांझ अनादरे प्रकट करै हित होइ ।
आकृति आप दुरावई प्रौढ़ा धीरा सोइ ।।६०।।
मुख रुखी बातें कहै, जिय में पी की भूख ।
धीर अधीरा जानिये, जैसी मीठी ऊख ।।६४।।
पति को अति अपराध गनि हित न करै हित मानि ।
कहत अधीरा प्रौढ़ तिय केशवदास बखानि' ।।६२।।
रसिकप्रिया, पृ० सं० ५४, ५५ ।

परकीया के भेद :

यहाँ तक स्वकीया नायिका के भेदों तथा उपभेदों का वर्णन किया गया है। इसके बाद परकीया के दो भेद ऊढ़ा (विवाहिता) और अनूढ़ा (अविवाहिता) किये गये हैं। संस्कृत के सभी साहित्याचार्यों ने इन भेदों का वर्णन किया है। केशव ने सामान्या अथवा कुलटा का वर्णन नहीं किया है।

चतुर्दर्शन :

'रसिकप्रिया' के चौथे प्रकाश में चार प्रकार के 'दर्शन' का वर्णन किया गया है। साहित्याचार्यों ने विप्रलम्भ शृंगार के चार भेद बतलाये हैं, पूर्वराग, मान, प्रवास तथा करुण। सौन्दर्यादि गुणों के श्रवण अथवा दर्शन से परस्पर अनुरक्त नायक तथा नायिका की समागम से पूर्व की अवस्था 'पूर्वराग' कही गई है।[1] विश्वनाथ ने 'साहित्य-दर्पण' में लिखा है कि 'श्रवण' दूत, बन्दी, अथवा सखी के मुख से हो सकता है और 'दर्शन' इन्द्रजाल के द्वारा, साक्षात्, चित्र अथवा स्वप्न में।[2] भूपाल ने 'रसार्णव-सुधाकर' नामक ग्रंथ में 'पूर्वानुराग' का वर्णन करते हुये श्रवण, प्रत्यक्ष दर्शन, चित्र तथा स्वप्न-दर्शन का उल्लेख किया है।[3] केशव ने भूपाल का ही अनुसरण करते हुए इन्हीं चार का उल्लेख किया है, इन्द्रजाल सम्बन्धी दर्शन का वर्णन नहीं किया है। वह महत्वपूर्ण भी नहीं है। केशव ने 'श्रवण' को भी 'दर्शन' के ही अन्तर्गत माना है, जो उचित नहीं प्रतीत होता।[4]

दम्पति-चेष्टावर्णन :

'रसिकप्रिया' का पाँचवा प्रकाश दम्पति-चेष्टा-वर्णन से आरम्भ होता है। नायिका, नायक के प्रति अपना प्रेम अनेक प्रकार से प्रकट करती है। केशव ने लिखा है कि जब नायक किसी दूसरी ओर देखता है, उस समय वह निशङ्क भाव से देखती है। जब वह उसकी ओर देखता होता है, उस समय वह अपनी सखी का आलिंगन करती है। इसी प्रकार कभी वह कान खुजलाती है, कभी आलस्य से अंगड़ाई लेती है और कभी बार-बार जमुहाई लेती है। सखी से

१. 'श्रवणाद्दर्शनाद्वापि मिथः संरूढरागयोः।
दशाविशेषो योऽप्राप्तौ पूर्वरागः स उच्यते' ॥१८८॥
साहित्यदर्पण, पृ० सं० १४०।

२. 'श्रवणं तु भवेत्तत्र दूतबन्दी सखी मुखात्।
इन्द्रजालेच चित्रे च साक्षात्स्वप्ने च दर्शनम्' ॥१८९॥
साहित्यदर्पण, पृ० सं० १४०।

३. रसार्णव-सुधाकर, भूपाल, पृ० सं० १७६।

४. 'एक जु नीके देखिये, दूजो दर्शन चित्र।
तीजो सपनो जानिये, चौथो श्रवण सुमित्र' ॥२॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० ६०।

बातें करते हुये वह बार-बार हंसती और बहाने से नायक को अपने अंग दिखलाती है।[1] नायिका की प्रेमप्रकाशन की चेष्टाओं का वर्णन साहित्यदर्पण, कामसूत्र, तथा अनंगरंग नामक ग्रन्थों में किया गया है। केशव द्वारा बतलाई हुई सब चेष्टायें इन ग्रन्थों में मिल जाती हैं। किन्तु विश्वनाथ, वात्स्यायन तथा कल्याणमल्ल ने केशव की अपेक्षा अधिक चेष्टाओं का उल्लेख किया है।

नायक और नायिका का स्वयंदूतत्व :

चेष्टावर्णन के पश्चात् केशव ने नायक-नायिका के 'स्वयंदूतत्व' का वर्णन किया है। रसार्णवसुधाकर, शृंगारप्रकाश आदि ग्रन्थों में 'स्वयंदूतत्व' का कोई उल्लेख नहीं है। विश्वनाथ ने अवश्य अपने 'सहित्यदर्पण' में दूतियों का वर्णन करते हुये स्वयंदूतत्व का भी उदाहरण दिया है।[2] केशव के स्वयंदूतत्व के वर्णन का आधार कदाचित् 'साहित्यदर्पण' ग्रंथ ही हो।

प्रथम-मिलन-स्थान :

केशव ने इसी प्रकाश में नायक-नायिका के 'प्रथम-मिलन-स्थानों' का भी वर्णन किया है। केशव ने दासी, सखी तथा धाय का घर, कोई अन्य सूना घर, भय, उत्सव अथवा व्याधि के बहाने, तथा निमंत्रण के अवसर पर अथवा बनविहार में नायक-नायिका के मिलन का उल्लेख 'प्रथम-मिलन-स्थान' के अन्तर्गत किया है।[3] स्पष्ट ही भय, उत्सव अथवा व्याधि के बहाने तथा निमंत्रण में, नायक-नायिका का समागम विभिन्न अवसरों का समागम है और मिलन-स्थानों के अन्तर्गत नहीं आता। भूपाल तथा भोजदेव ने मिलन-स्थानों का वर्णन नहीं किया है। विश्वनाथ ने अभिसारिका नायिका का वर्णन करते हुये 'अभिसरण' (मिलन) स्थानों का वर्णन किया है। उन्होंने खेत, बावली, श्मशान, देवालय, दूतीगृह, बन, नदी आदि

१. 'जब चितवै पिय अनत हूँ, तब चितवै निरशंक।
जान विलोकत आपु सों, अलिहि लगावै अंक ॥ ५ ॥
कबहूँ श्रुतिकंडुन करै, आरस सों ऐंड़ाय।
केशवदास विलास सों बार बार जमुहाय ॥ ६ ॥
झूठेऊ हंसि हंसि उठै कहै सखी सों बात।
ऐसे मिस ही मिस पिया पियहि दिखावै गात' ॥ ७ ॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० ७३।

२. साहित्य-दर्पण, चतुर्थ संस्करण, पृ० सं० १४८।

३. 'जनी सहेली धाइ घर सूनैघरनि संचार।
अतिभय उत्सव व्याधि मिस न्योतो सुवनविहार ॥ २५ ॥
इनहीं ठौरन होत है, प्रथम मिलन संसार।
केशव राजा रङ्क को रचि राख्यो करतार' ॥ २६ ॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० ८२।

का तट तथा मार्ग से दूर आश्रम आदि[1] स्थान बतलाये हैं किन्तु केशव के बतलाये अधिकांश स्थान विश्वनाथ द्वारा बतलाये स्थानों से भिन्न हैं।

रस के अंग–भाव तथा विभाव :

'रसिकप्रिया' के छठे प्रकाश में भाव, विभाव, अनुभाव, तथा हावों का वर्णन किया गया है। केशव के अनुसार मन की बात, जिसका प्रकटीकरण मुख नेत्रों तथा वाणी से होता है, भाव है।[2] केशव का यह लक्षण किसी साहित्याचार्य के लक्षण से नहीं मिलता। केशव ने पांच प्रकार के भाव बतलाये हैं, स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव, सात्विक तथा व्यभिचारी भाव। भरतादि साहित्याचार्यों ने सात्विक को 'अनुभाव' के ही अन्तर्गत माना है। केशव के अनुसार जिनके सहारे विभिन्न रसों का प्रकटीकरण होता है वह 'विभाव' हैं। विभाव दो प्रकार के होते हैं, एक आलम्बन और दूसरे उद्दीपन। जिनके बिना रसोद्भव अतन अथवा अस्तित्वहीन है, वह 'आलम्बन' विभाव है तथा जिनके द्वारा रस उद्दीप्त होते हैं, वह 'उद्दीपन' विभाव हैं।[3] भरत मुनि के विभाव, आलम्बन तथा उद्दीपन के लक्षणों का भी यही भाव है।[4]

केशवदासजी ने आलंबनों का वर्णन करते हुये नायक-नायिका के यौवन, रूप, जाति, लक्षण, बसन्त ऋतु, फूल, फल, दल, उपवन, जलधारा से युक्त जलाशय, कमल, चातक,

१. 'क्षेत्रं वाटी भग्नदेवालयो दूतीगृहं वनम्।
मालापंचश्मशानं च नद्यादीनां तटी तथा ॥ ८० ॥
एवं कृताभिसाराणां पुंश्चलीनां विनोदने।
स्थानान्यष्टौ तथा ध्वान्तछन्ने कुत्रचिदाश्रमे' ॥ ८१ ॥
साहित्य-दर्पण, पृ० सं० १०५।

२. 'आनन लोचन वचन मग, प्रकटत मन की बात।
ताही सों सब कहत हैं, भाव कविन के तात' ॥१॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० ८६।

३. 'जिनते जगत अनेक रस प्रकट होत अनयास।
तिनसों विमति विभाव कहि वर्णत केशवदास ॥२॥
सो विभाव द्वै भांति के, केशवदास बखान।
आलंबन इक दूसरो, उद्दीपन मन आन ॥४॥
जिन्हैं अतन अवलंबई, ते आलंबन जान।
जिनते दीपति होत है, ते उद्दीप बखान' ॥५॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० ८६-६०।

४. 'रत्याद्युद्बोधका लोकेविभावाः काव्यनाट्योः'।
नाट्यशास्त्र, पृ० सं० ८४।
'आलम्बन उद्दीपनाख्यौ तस्यभेदावुभौस्मृतौ ॥२६॥
आलम्बनो नायिकादिस्तमालम्ब्य रसोद्गमात्।
उद्दीपनविभावास्ते रसमुद्दीपयन्ति ये' ॥१३१॥
नाट्यशास्त्र, पृ० सं० १२१।

मोर, कोकिला की कूक, भौंरों का गुंजार, श्वेत सेज, दीप, सुगंधित गृह, पावक, वस्त्र तथा नाना नृत्य, वीणावादन आदि को आलम्बन के अन्तर्गत गिनाया है।[1] वास्तव में यह सब वस्तुयें उद्दीपन हैं, आलम्बन नहीं। भूपाल ने 'रसार्णव-सुधाकर' नामक ग्रंथ में चार प्रकार के उद्दीपन बतलाये हैं, नायक-नायिका के गुण, चेष्टा, अलंकृति तथा तटस्थ उद्दीपन।[2] गुणों के अन्तर्गत भूपाल ने यौवन, रूपलावण्य, मार्दव तथा सौकुमार्य आदि का उल्लेख किया है; अलंकृति चार प्रकार की बतलाई है, बसन, आभूषण, पुष्पहार तथा चन्दनादि का लेप; और तटस्थ के अन्तर्गत, चन्द्रिका, धरागृह, चन्द्रोदय, कोकिल का आलाप, आम्र, मन्दसमीर, भौंरे, लतामण्डप, भूगेह, कमल, मेघों का गर्जन, संगीत, क्रीड़ा तथा सरित-सरोवर आदि वस्तुयें बतलाई हैं।[3] केशव द्वारा आलम्बन के अन्तर्गत गिनाई हुई अधिकांश वस्तुयें भूपाल के भेदों गुण, अलंकृति तथा तटस्थ उद्दीपन के अन्तर्गत बतलाई वस्तुओं के अनुकूल हैं। केशव ने उद्दीपन के अन्तर्गत केवल नायक-नायिका का एक दूसरे की ओर देखना, आलाप, आलिंगन, नखदान, रददान, चुंबन, मर्दन तथा स्पर्श का उल्लेख किया है।[4] यह वस्तुयें भूपाल के उद्दीपन के भेद चेष्टा के अन्तर्गत आयेंगी। भरत मुनि, भोज, विश्वनाथ आदि आचार्यों ने इन वस्तुओं का वर्णन नहीं किया है।

---

१. 'दंपति जोबन रूप जाति लच्छण युत सखि जन।
कोकिल कलित बसंत फूलि फल दलि अलि उपवन॥
जल युत जलचर अमल कमल कमला कमलाकर।
चातक मोर सुशब्द तड़ित घन अंबुद अंबर॥
शुभ सेज दीप सौगंध गृह पान खान परिधान भनि।
नव नृत्य भेद वीणादि सब आलंबन केशव बरनि'।६॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० ६१।

२. 'उद्दीपनं चतुर्धा स्यादालम्बनसमाश्रयम्।
गुणचेष्टालंकृतियस्तटस्थाश्चेति भेदतः'॥१६२॥
रसार्णवसुधाकर, पृ० सं० ३८।

३. 'यौवनरूपलावण्ये सौन्दर्यमभिरूपता।
मार्दवं सौकुमार्यं चेत्यालम्बनगतागुणाः॥१६३॥
चतुर्थालंकृतिर्वासो भूषामाल्यानुलेपनैः।
तटस्थाश्चन्द्रिका धारागृहचन्द्रोदयावपि॥१८७॥
कोकिलालापमाकन्दमन्दमारुतषटपदाः।
लतामण्डपभूगेहदीर्घिकाजलदारवाः॥१८८॥
प्रासादगर्भसंगीतक्रीड़ाद्रिसरिदादयः।
एवमूह्या यथाकालमुपभोगोपयोगिनः'॥१८९॥
रसार्णवसुधाकर, पृ० सं० ३८।

४. अविलोकन आलाप परि, रंभन नखरद दान।
चुंबनादि उद्दीपये, मर्द्दन परस प्रवान॥७॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० ६१।

अनुभाव, स्थायी तथा सात्विक भाव :

केशव का 'अनुभाव' का लक्षण स्पष्ट नहीं है। भरत मुनि ने 'नाट्यशास्त्र' में आठ स्थायी भावों का उल्लेख किया है, रति, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, निंदा तथा विस्मय।[1] भोजदेव ने भी अपने 'सरस्वतीकुल-कंठाभरण' नामक ग्रंथ में इन्हीं आठ स्थायी भावों का वर्णन किया है। 'सरस्वतीकुलकंठाभरण' में किंचित् पाठभेद के साथ वही श्लोक मिलता है जो नाट्यशास्त्र में है।[2] केशव ने इन्हीं आचार्यों का अनुगमन करते हुये यही आठ स्थायी भाव बतलाये हैं।[3] केशव ने आठ सात्विक भाव भी बतलाये हैं, स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, सुरभङ्ग, कंप, वैवर्ण, अश्रु, तथा प्रलाप।[4] भरतमुनि, भोजदेव, विश्वनाथ तथा भूपाल सभी आचार्यों ने इन्हीं आठ सात्विक भावों का वर्णन किया है, केवल केशव के 'प्रलाप' के स्थान पर सभी ने 'प्रलय' लिखा है। सम्भव है यह छापे की भूल हो। भरत, भूपाल तथा विश्वनाथ के श्लोक भी किंचित् पाठभेद के साथ एक ही हैं और तीनों के ग्रंथों में एक ही क्रम से सात्विक भावों का उल्लेख किया गया है। भोजदेव का क्रम भिन्न है।[5] केशव ने भरत, भूपाल तथा विश्वनाथ के ही क्रम का अनुसरण किया है।

१. 'रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा।
जुगुप्साविस्मयश्चेति स्थायिभावाः प्रकीर्तिताः' ॥१८॥
नाट्यशास्त्र, पृ० सं० २६१।

२. 'रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयन्तथा।
जुगुप्साविस्मयश्चाऽष्टौ स्थायिभावाः प्रकीर्तिताः' ॥१४॥
सरस्वती-कुलकंठाभरण, पृ० सं० ८५।

३. 'रतिहासी अरु शोक पुनि, क्रोध उछाह सुजान।
भयनिंदा विस्मय सदा, थाई भाव प्रमान ॥६॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० ६२।

४. 'स्तंभ स्वेद रोमांच सुर, भंग कंप वैवर्ण।
अश्रु प्रलाप बखानिये, आठो नाम सुवर्ण' ॥१०॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० ६३।

५. 'स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमाञ्चः स्वरभेदोऽथ वेपथुः।
वैवर्ण्यमश्रुप्रलय इत्यष्टौ सात्विका मताः' ॥१४८॥
नाट्यशास्त्र, पृ० सं० ३८१।

'ते स्तम्भस्वेदरोमाञ्चाः स्वरभेदश्चवेपथुः ॥३०१॥
वैवर्ण्यमश्रु स्वेदोऽथ प्रलयावित्यष्टौ परिकीर्तिताः।'
रसार्णवसुधाकर, पृ० सं० ८१।

'स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमांच : स्वरभङ्गोऽथ वेपथुः ॥१३५॥
वैवर्ण्यमश्रु प्रलय इत्यष्टौ सात्विकास्मृताः'।
साहित्यदर्पण, पृ० सं १२५।

संचारी भाव :

केशव का व्यभिचारी अथवा संचारी भाव का लक्षण भरत, भूपाल, भोजदेव तथा विश्वनाथ किसी आचार्य से नहीं मिलता। सभी आचार्यों ने तैंतीस व्यभिचारी भावों का वर्णन किया है यथा, निर्वेद, ग्लानि, शंका, असूया, मद, श्रम, आलस्य, दैन्य, चिन्ता, मोह, स्मृति, धृति, व्रीड़ा, चपलता, हर्ष, आवेग, जड़ता, गर्व, विषाद, औत्सुक्य, निद्रा, अपस्मार, सुप्ति, विबोध, अमर्ष, अवहित्था, उग्रता, मति, व्याधि, उन्माद, मरण, त्रास तथा वितर्क।[1] केशव ने भी इन्हीं ३३ संचारियों का उल्लेख किया है। उन्होंने उपरोक्त आचार्यों द्वारा दिये अमर्ष, अवहित्था, असूया, सुप्ति, वितर्क तथा त्रास आदि शब्दों के स्थान पर क्रमशः कोह, निंदा, विवाद, स्वप्न, आशतर्क तथा भय शब्दों का प्रयोग किया है।[2]

हाव :

केशव के हाव का लक्षण स्पष्ट नहीं है। केशव ने हाव के तेरह भेद बतलाये हैं, हेला, लीला, ललित, मद, विभ्रम, विहित, विलास, किलकिंचित, विच्छित्ति, बिब्बोक, मोट्टाइत, कुट्टमित तथा बोध। साथ ही केशव ने कहा है कि इनसे इतर 'हाव' भी माने गये हैं।[3]

'स्तम्भास्तनूरुहोद्भेदो गद्गदः स्वेदवेपथू।
वैवर्न्यमश्रुप्रलयावित्यष्टौ सात्विकभावाः' ॥१४॥

सरस्वतीकुल-कंठाभरण, पृ० सं० २५।

१. 'निर्वेदग्लानिशंकाख्यास्तथासूयामदश्रमः।
आलस्यं चैव दैन्यं च चिन्तामोहः स्मृतिर्धृतिः ॥१६॥
व्रीडा चपलता हर्ष आवेगो जड़ता तथा।
गर्वोविषाद औत्सुक्यं निद्रापस्मार एव च ॥२०॥
सुप्तं विबोधोऽमर्षश्चाप्यवहित्थमथोग्रता।
मतिर्व्याधिस्तथोन्मादस्तथा मरणमेव च ॥२१॥
त्रासश्चैव वितर्कश्च विज्ञेया व्यभिचारिणः।
त्रयस्त्रिंशदमी भावाः समाख्यातास्तु नामतः' ॥२२॥

नाट्यशास्त्र, अध्याय ६, पृ० सं० २७०।

२. 'निर्वेद ग्लानि शंका तथा, आलस दैन्यरुमोह।
स्मृति धृति व्रीडा चपलता श्रम मद चिंता कोह ॥१२॥
गर्व हर्ष आवेग पुनि, निंदा नींद विवाद।
जड़ता उत्कंठा सहित, स्वप्न प्रबोध विषाद ॥१३॥
अपस्मार मति उग्रता, आशतर्क अति व्याध।
उन्माद मरण भय आदि दै, व्यभिचारी युत आध' ॥१४॥

रसिकप्रिया, पृ० सं० ६४।

३. 'हेला लीला ललित मद, विभ्रम विहित विलास।
किलकिंचित विच्छित्ति अरु, कहि बिब्बोक प्रकाश' ॥१६॥

भूपाल के 'रसार्णव-सुधाकर' नामक ग्रंथ में सत्वज अलंकारों के अन्तर्गत हाव, हेला, लीला, विलास, विच्छित्ति, विभ्रम, किलकिञ्चित, मोट्टायित, कुट्टमित, विब्बोक, ललित तथा विहृत का वर्णन किया गया है।[1] केशव के 'मद' का भूपाल ने उल्लेख नहीं किया है। भोज-देव के 'सरस्वती-कुल-कंठा-भरण' में स्त्रियों के स्वभावज अलंकारों के अन्तर्गत लीला, विलास, विच्छित्ति, विभ्रम, किलकिञ्चित, मोट्टायित, कुट्टमित विब्बोक, ललित, विहृत, क्रीड़ित तथा केलि का उल्लेख किया है।[2] इनमें से 'क्रीड़ित' तथा 'केलि' 'रसिकप्रिया' में नहीं मिलते। भोज ने केशव के हाव, हेला तथा मद को स्वभावज अलंकारों में नहीं गिनाया है। विश्वनाथ ने नायिकाओं के तीन अंगज, सात अयत्नज तथा अट्ठारह सात्विक अलंकार बतलाये हैं। विश्वनाथ के अनुसार भाव, हाव, तथा हेला अंगज हैं; शोभा, कान्ति, दीप्ति, माधुर्य, प्रगल्भता, औदार्य तथा धैर्य अयत्नज हैं, तथा लीला, विलास, विच्छित्ति, विब्बोक, किलकिञ्चित, मोट्टायित, कुट्टमित, विभ्रम, ललित, मद, विहृत, तपन, मुग्धता, विक्षेप, कुतूहल, हसित, चकित तथा केलि सात्विक अलंकार हैं।[3] केशव ने सात्विक अलंकारों तथा हेला को हाव का ही भेद माना है तथा अयत्नज अलंकारों का कोई उल्लेख नहीं किया है। विश्वनाथ द्वारा बतलाये हुये सात्विक अलंकारों में से तपन, मुग्धता, विक्षेप, कुतूहल, हसित, चकित तथा केलि का केशव ने वर्णन नहीं किया है। केशव के 'मद' का उल्लेख विश्वनाथ की सूची में देख कर अनुमान होता है कि केशव के हाव के भेदों का आधार 'साहित्य-दर्पण' ही है। केशव के 'बोध' का विश्वनाथ ने उल्लेख नहीं किया है। इसे केशव ने किस ग्रंथ के आधार पर लिखा है, नहीं कहा जा सकता।

मोट्टाइत सुन कुट्टमित, बोधादिक बहु हाव।
अपनी अपनी बुद्धि बल, वर्णत कवि कविराव' ॥१७॥

रसिकप्रिया, पृ० सं० ६५।

१. रसार्णव-सुधाकर, छं० सं० १६४ तथा २००, पृ० सं० ४६ तथा ५३—५६।

२. 'लीला विलासो विच्छित्तिर्विभ्रमः किलकिञ्चितम्।
मोट्टायितं कुट्टमितं विब्बोकोललितन्तथा ॥४६॥
विहृतंक्रीडितंकेलिरिति स्त्रीणां स्वभावजाः'।

सरस्वतीकुलकंठाभरण, पृ० सं० ८७।

३. 'यौवनेसत्वजास्तासामष्टविंशतिसंख्यकाः।
अलंकारास्तत्र भावहावहेलास्त्रयो अंगजाः ॥८६॥
शोभाकान्तिश्च दीप्तिश्च माधुर्यं च प्रगल्भता।
औदार्यं धैर्यमित्येते सप्तैवस्युरयत्नजाः ॥६०॥
लीलाविलासो विच्छित्तिर्विब्बोकः किलकिञ्चितम्।
मोट्टायितं कुट्टमितं विभ्रमो ललितं मदः ॥६१॥
विहृतं तपनं मौग्ध्यं विक्षेपश्च कुतूहलम्।
हसितं चकितं केलिरित्यष्टादशसंख्यकाः' ॥६२॥

साहित्यदर्पण, पृ० सं० १०८–१०६।

केशव ने विभिन्न हावों के लक्षण भी दिये हैं। इनके 'विलास' तथा 'कुट्टमित' का लक्षण स्पष्ट नहीं है। 'हेला' का लक्षण विश्वनाथ तथा भूपाल आदि किसी आचार्य से नहीं मिलता; केशव के शेष लक्षणों का प्रायः वही भाव है जो विश्वनाथ द्वारा दिये लक्षणों का है। विश्वनाथ के अनुसार अंग-संचालन, वेष, अलंकार तथा प्रेमालाप के द्वारा प्रिया की अनुकृति 'लीला' है।[1] केशव ने भी प्रियतम के द्वारा प्रिया का तथा प्रिया के द्वारा प्रियतम का रूप धारण कर लीलायें करने को 'लीला' हाव कहा है।[2] विश्वनाथ के 'ललित' का लक्षण है, 'सुकुमारता के साथ अँगों का संचालन'।[3] केशव के अनुसार जहाँ मनोहरता के साथ बोलना, हँसना, देखना, चलना आदि क्रियाओं का वर्णन किया गया हो, वहाँ 'ललित' हाव होता है।[4] विश्वनाथ के अनुसार सौभाग्य, यौवन आदि के गर्व से नायिका में उत्पन्न विकार 'मद' हाव है।[5] केशव ने भी लिखा है कि प्रेम अथवा तारुण्य के गर्व से उत्पन्न विकार 'मद' है।[6] इस प्रकार दोनों लक्षण प्रायः एक ही हैं। विश्वनाथ के अनुसार 'विभ्रम' हाव वहाँ होता है जहाँ प्रिय के आगमन के कारण हर्ष अथवा प्रेमाधिक्य-वश नायिका जल्दी में अलंकारादि, जो जिस अंग में पहनना चाहिये उससे भिन्न अंग में पहन लेती है।[7] प्रायः यही भाव केशव के लक्षण का भी है। केशव ने लिखा है कि जब नायिका प्रेम-वश प्रिय के दर्शन की

१. 'अंगैर्वेषैरलंकारैः प्रेमाभिवचनैरपि ॥१८॥
प्रीतिप्रयोजितैर्लीला प्रियस्यानुकृतिं विदुः'।
साहित्यदर्पण, पृ० सं० ११२।

२. 'करत जहाँ लीलान को, प्रियतम प्रिया बनाय।
उपजत लीला हाव तहँ, वर्णत केशवराय' ॥२१॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० ६७।

३. 'सुकुमारतया अंगानां विन्यासो ललितं भवेत'।
साहित्यदर्पण, पृ० सं० ११५।

४. 'बोलनि हँसनि विलोकिबो, चलनि मनोहर रूप।
जैसे तैसे बरणिये, ललित हाव अनुरूप' ॥२४॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० १००।

५. 'मदो विकारः सौभाग्ययौवनाद्यवलेपजः' ॥१०५॥
साहित्यदर्पण, पृ० सं० ११५।

६. 'पूरण प्रेम प्रभाव से, गर्व बढ़ै बहुभाव।
तिनके तरुण विकार से, उपजत है मद हाव' ॥२७॥
रसिकप्रिया, वे० प्रे०, पृ० सं० ७५।

७. 'त्वरया हर्षरागादेर्दयितागमनादिषु।
अस्थाने विभ्रमामादीनां विन्यासो विभ्रमो मतः' ॥१०४॥
साहित्यदर्पण, पृ० सं० ११४।

उत्कंठा तथा उतावलेपन में विपरीत अंगोंमें आभूषण पहनती हैं वहाँ 'विभ्रम' हाव होता है।[1]

विश्वनाथ ने बात करने के समय भी लज्जा के कारण न बोल सकने को 'विहृत' कहा है।[2] केशव के 'विहित' का भी प्रायः यही लक्षण है।[3] इसी प्रकार केशव तथा विश्वनाथ दोनों के 'किलकिंचित' का भी लक्षण समान है। विश्वनाथ के अनुसार अत्यन्त प्रिय वस्तु के मिलने आदि के कारण उत्पन्न हुये हर्ष से, कुछ मुस्कराहट, कुछ रोदनाभास, कुछ हास, कुछ त्रास, कुछ क्रोध, कुछ श्रम आदि का विचित्र सम्मिश्रण 'किलकिंचित' हाव हैं।[4] केशव ने कहा है कि जहाँ श्रम, अभिलाषा, गर्व, विस्मय, क्रोध, हर्ष तथा भय आदि एक ही साथ उत्पन्न होते हैं वहाँ 'किलकिंचित' हाव होता है।[5] केशव तथा विश्वनाथ के 'विब्बोक' के लक्षण भी समान हैं। केशव के अनुसार जहाँ रूप अथवा प्रेम के गर्व से नायिका कपट-अनादर प्रदर्शित करती है वहाँ 'विब्बोक' होता है।[6] विश्वनाथ ने कहा है कि जहाँ अति गर्व के कारण इष्ट वस्तु के प्रति भी अनादर दिखलाया जाता है वहाँ 'विब्बोक' होता है।[7] केशव के अनुसार जहाँ आभूषण पहिनने के प्रति नायिका अनादर प्रकट करती है वहाँ 'विच्छित्ति' होता है।[8] विश्वनाथ ने लिखा है कि जहाँ शरीर के सौन्दर्य की वर्धक किंचित वेष- रचना भी

१. 'बांक विभूषण प्रेम ते, जहाँ होहि विपरीति।
दर्शन रसतनमनरसत, गनि विभ्रम के गीत' ॥३०॥
रसिकप्रिया, वे० प्रे०, पृ० सं० ७६

२. 'वक्तव्यकालेऽप्यवचो व्रीडयाविहृतं मतम्'।
साहित्यदर्पण, पृ० सं० ११५।

३. 'बोलनि के समये विषे, बोलनि देइ न लाज।
विहित हाव तासों कहै, केशव कवि कविराज' ॥३३॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० १०१।

४. 'स्मितशुष्करुदितहसितत्रासक्रोधश्रमादीनाम्।
सांकर्यं किलकिंचितमभीष्टतमसंगमादिजाद्धर्षात्' ॥१०१॥
साहित्यदर्पण, पृ० सं० ११२।

५. 'श्रम अभिलाष गर्वस्मित, क्रोध हर्ष भय भाव।
उपजत एकहि बार जहं तहं किलकिंचित हाव' ॥३६॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० ११२।

६. 'रूप प्रेम के गर्व ते, कपट अनादर होय।
तहँ उपजत विब्बोक रस, यह जानै सब कोय' ॥४२॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० १०६।

७. 'विब्बोकस्त्वतिगर्वेण वस्तुनीष्टेऽप्यनादरः' ॥४२॥
साहित्यदर्पण, पृ० सं० ११३।

८. 'भूषण भूषब को जहाँ, होहि अनादर आन।
सो विच्छित्ति विचारिये, केशवदास सुजान' ॥४५॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० ११०।

दूर रखी जाती है वह 'विच्छित्ति' है ।[1] 'मोट्टाइत' के विषय में विश्वनाथ ने लिखा है कि प्रियतम की कथा आदि के प्रसंग में अनुराग से चित्त व्याप्त होने पर कामिनी की कान खुजाने आदि की चेष्टा मोट्टाइत कही जाती है ।[2] केशव ने लिखा है कि हेला, लीला आदि के द्वारा प्रकट होने वाले सात्विक भावों को जब नायिका बुद्धि-बल से रोकती तथा प्रकट नहीं होने देती वहाँ 'मोट्टाइत' हाव होता है ।[3] विश्वनाथ तथा केशव के लक्षणों में केवल इतना ही अंतर है कि विश्वनाथ ने प्रेम-भाव के प्रकाशन को प्रदर्शित न होने देने के लिये स्पष्ट-रूप से कान खुजाने आदि चेष्टा का उल्लेख कर दिया है किन्तु केशव ने प्रेम-भाव प्रदर्शित न होने देने के लिये बुद्धिबल से रोकना लिख कर इस कार्य को केवल चेष्टाओं में ही नहीं रहने दिया, यद्यपि इस प्रकार की चेष्टायें भी केशव के लक्षण के अन्तर्गत आ जाती हैं ।

अवस्था के अनुसार नायिकायें:

संस्कृत के साहित्याचार्यों ने अवस्था के अनुसार नायिकाओं के आठ भेद बतलाये हैं। स्वाधीनपतिका, विरहोत्कंठिता वासकसज्जा, कलहान्तरिता, खंडिता, प्रोषितपतिका, विप्रलब्धा तथा अभिसारिका । भोजदेव, भूपाल तथा विश्वनाथ आदि सभी आचार्यों ने इन्हीं भेदों का उल्लेख किया है । इन सब आचार्यों के द्वारा दिये गये प्रत्येक भेद के लक्षण भी प्रायः समान हैं । केशव ने 'रसिकप्रिया' के सातवें प्रकाश में इनका वर्णन किया है; किन्तु संस्कृत आचार्यों द्वारा दिये लक्षणों की समानता के कारण निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि केशव ने किस आचार्य के ग्रंथ के आधार पर अपने लक्षण दिये हैं । केशव ने 'अभिसारिका' का वर्णन करते हुए स्वकीया, परकीया तथा सामान्या के अभिसार का लक्षण पृथक-पृथक दिया है । भोज देव तथा भूपाल ने 'अभिसारिका' का इस प्रकार का कोई विभाजन नहीं किया है । विश्वनाथ ने अवश्य अपने 'साहित्यदर्पण' नामक ग्रंथ में लिखा है कि कुलजा, वेश्या तथा दासी किस प्रकार अभिसार के लिए जाती हैं । अतएव संभव है केशव के अष्टनायिका-वर्णन का आधार मुख्यतः 'साहित्यदर्पण' ही हो ।

केशव के अनुसार 'स्वाधीनपतिका' वह है जिसका पति उसके गुणों में आसक्तिवश सदा उसके साथ रहे ।[4] विश्वनाथ के लक्षण का भी यही भाव है । विश्वनाथ के अनुसार

---

१. 'स्तोकाप्याकल्परचनाविच्छित्तिः कान्तिपोषकृत' ।
साहित्यदर्पण, पृ० सं० ११३ ।

२. 'तद्भाव भाविते चित्ते वल्लभस्य कथादिषु ।
मोट्टायितमिति प्राहुःकर्णकराडूयनादिकम्' ॥१०२॥
साहित्यदर्पण, पृ० सं० ११४ ।

३. 'हेला लीला करि जहाँ, प्रकटत सात्विक भाव ।
बुद्धि बल रोकत सोहिये, सो मोट्टाइत हाव' ॥४८॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० ११२ ।

४. 'केशव जाके गुण बँध्यो, सदा रहै पति संग ।
स्वाधिनपतिका तासु को, वर्णत प्रेम प्रसंग' ॥४॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० ११६ ।

'स्वाधीनपतिका' का पति उसके प्रेम आदि गुणों से आकृष्ट होकर सदा उसके पास ही रहता है।[१] भोज तथा भूपाल के लक्षणों की अपेक्षा केशव के लक्षण का विश्वनाथ से अधिक साम्य है।

केशव की 'उत्का' भोज, भूपाल तथा विश्वनाथ आदि आचार्यों की 'विरहोत्कंठिता' है। केशव के अनुसार 'उत्का' वह नायिका है जिसका प्रियतम किसी कारण वश उसके धाम नहीं आ पाता और इस प्रकार वह अपने प्रियतम के सोच में निमग्न होती है।[२] विश्वनाथ के अनुसार विरहोत्कंठिता' वह नायिका है जिसका प्रियतम आने का निश्चय होने पर भी दैववश नहीं आ पाता और जो नायक के न आने पर दुख को प्राप्त होती है। केशव के लक्षण का अन्य आचार्यों की अपेक्षा विश्वनाथ के लक्षण से अधिक साम्य है।[३]

केशव के अनुसार 'वासकशय्या' वह नायिका है जो प्रिय के आने की आशा से गृह-द्वार की ओर देखती रहती है।[४] केशव का यह लक्षण विश्वनाथ के लक्षण से भिन्न है। विश्वनाथ ने लिखा है कि 'वासकशय्या' वह है जो सजे हुये महल में आभूषणादि से अपने शरीर का मंडन करती है, और जिसके प्रिय का आगमन निश्चित होता है।[५] भूपाल ने 'वासकसज्जिका' की चेष्टाओं का उल्लेख करते हुये उसका प्रिय के आगमन-मार्ग की ओर देखना भी लिखा है।[६] कदाचित् केशव के लक्षण का आधार भूपाल का 'रसार्णवसुधाकर' नामक ग्रंथ हो।

---

१. 'कान्तो रतिगुणाकृष्टा न जहाति यदन्तिकम्।
विचित्रविभ्रमासक्ता सा स्यातस्वाधीनभर्तृका' ॥७४॥
साहित्यदर्पण, पृ० सं० १०४।

२. 'कौनहुँ हेत न आइयो, प्रीतम जाके धाम।
ताको शोचति शोच हिय, केशव उत्का बाम' ॥७॥
रसिकप्रिया पृ० सं० १२१।

३. 'आगन्तुं कृतचित्तोपि दैवन्नायातिचेत्प्रियः।
तदनागमदुःखार्ता विरहोत्कण्ठिता तु सा' ॥८६॥
साहित्यदर्पण, पृ० सं० १००।

४. 'वासकशय्या होइ सो, कहि केशव सविलास।
चितै रहै गृह द्वार त्यों, पिय आवन की आस' ॥१०॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० ११२।

५. 'कुरुते मराडनं यस्याः सज्जिते वासवेश्मनि।
सातु वासकसज्जा स्याद्विदितप्रियसंगमा' ॥८१॥
साहित्यदर्पण, पृ० सं० १०७।

६. 'अस्यास्तु चेष्टाः सम्पर्कमनोरथविचिन्तनम्।
सखी विनोदो हृल्लेखोमुहुर्दूती निरीक्षणम् ॥१२७॥
प्रियाऽभिगमनमार्गाभिवीक्षाप्रभृतयोमताः'।
रसार्णवसुधारकर, पृ० सं० ३१।

केशव की 'अभिसंधिता' विश्वनाथ, भोजदेव तथा भूपाल आदि आचार्यों की 'कलहान्तरिता' है। केशव की 'अभिसंधिता' तथा इन आचार्यों की 'कलहान्तरिता' का लक्षण प्रायः एक ही है। केशव का लक्षण अन्य आचार्यों की अपेक्षा विश्वनाथ के लक्षण से अधिक साम्य रखता है। केशव के अनुसार 'अभिसंधिता' नायिका प्रिय के मनाने पर तो उसका निरादर करती है किन्तु बाद में उसके बिना दूनी दुखी होती है।[1] विश्वनाथ ने लिखा है कि 'कलहान्तरिता' नायिका रोषवश मनाते हुये नायक को ठुकरा कर बाद में पश्चाताप को प्राप्त होती है।[2]

केशव के अनुसार 'खण्डिता' वह नायिका है जिसका प्रिय आने को कह कर नियत समय पर न आये तथा प्रातःकाल उसके घर आकर अनेक प्रकार की बातें बनाये।[3] केशव का यह लक्षण भूपाल के लक्षण से अधिक साम्य रखता है। भूपाल के अनुसार 'खंडिता' वह नायिका है जिसका प्रिय समय का उल्लंघन करके अर्थात् नियत समय पर न आकर दूसरी स्त्री के संभोग-चिन्हों से युक्त प्रातःकाल आये।[4] केशव ने अपने लक्षण में प्रिय के अन्य स्त्री के संभोग-चिन्हों से युक्त होने का उल्लेख नहीं किया है।

केशव के अनुसार 'प्रोषितपतिका' वह नायिका है, जिसका प्रियतम अवधि बता कर किसी कार्यवश जाये।[5] विश्वनाथ के अनुसार 'प्रोषितपतिका' वह नायिका है जिसका पति अनेक कार्यों से दूर देश गया हो और नायिका काम से पीड़ित हो रही हो।[6] नायक का

१. 'मान मनावत हू करै, मानद को अपमान।
दूनो दुख ता बिन लहै, अभिसंधिता बखान'॥१३॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० १२३।

२. 'चाटुकारमपि प्राणनाथं रोषादपास्य या।
पश्चातापमवाप्नोति कलहान्तरिता तु सा'॥८२॥
साहित्यदर्पण, पृ० सं० १०५।

३. 'आवनि कहि आवै नहीं, आवै प्रीतम प्रात।
ताके घर सो खंडिता, कहै सु बहु विधि बात'॥१६॥
रसिकपिया, पृ० सं० १२४।

४. 'उल्लंघ्य समयं यस्याः प्रेमानन्दोपभोगवान्॥ १२०॥
भोगलक्ष्मांकितप्रातरागच्छेत स हि खण्डिता'।
रसार्णवसुधाकर' पृ० सं० ३२।

५. 'जाको प्रियतम दै अवधि, गयो कौनहूँ काज।
ताको प्रोषितप्रेयसी, कहि वर्णत कविराज॥ १६॥
रसिकपिया, पृ० सं० १२७।

६. 'नानाकार्यवशाद्यस्या दूरदेशंगतः पतिः।
सा मनोभवदुःखार्ता भवेत्प्रोषितभर्तृका'॥ ८४॥
साहित्यदर्पण, पृ० सं० १०६।

दूर देश जाना, भूपाल तथा भोजदेव ने लिखा है किन्तु केशव ने नहीं लिखा है। कार्यवश जाने का स्पष्ट उल्लेख केवल विश्वनाथ ही ने किया है जो केशव ने भी किया है।

केशव के अनुसार 'विप्रलब्धा' नायिका वह है जिसका प्रिय दूती से संकेतस्थल बतला कर उसको नायिका को बुलाने के लिये भेजे किन्तु आप न आये। नायिका उसे वहाँ न पा कर दुखी हो।[1] विश्वनाथ के अनुसार 'विप्रलब्धा' वह है जिसका प्रिय संकेतस्थल बता कर उसके पास नहीं आता और इस प्रकार वह नितान्त अपमानित होती है।[2] भूपाल ने लिखा है कि 'विप्रलब्धा' वह है जिसका प्रिय संकेत बताकर वहाँ नहीं पहुँचता तथा नायिका दुख को प्राप्त होती है।[3] भोजदेव ने कहा है कि 'विप्रलब्धा' वह है जिसका प्रिय दूती को संकेतस्थल बताकर तथा नायिका को बुलाने भेजकर भी उससे नहीं मिलता।[4] स्पष्ट ही केशव ने तीनों आचार्यों के लक्षण से यत्किंचित लेकर अपना लक्षण लिखा है। केशव के अनुसार 'अभिसारिका' वह है जो प्रेम-वश, गर्व से अथवा कामवश प्रिय से आकर मिलती है।[5] भोजदेव, भूपाल तथा विश्वनाथ ने काम-वश ही अभिसरण के लिये जाने वाली नायिका को 'अभिसारिका' कहा है। विश्वनाथ तथा भूपाल के अनुसार अभिसारिका स्वयं जाती अथवा नायक को बुलाती है।[6] भोजदेव ने अभिसारिका के स्वयं जाने का ही उल्लेख किया है, नायक को बुलाने का नहीं।[7] केशव ने भोज का ही अनुसरण किया है। केशव ने सामान्य लक्षण देने के बाद

---

१. 'दूती सो संकेत बदि, लेन पठाई आप।
लब्धविप्र सो जानिये, अनआये संताप' ॥ २२ ॥
रसिकपिया, पृ० सं० १२६।

२. 'प्रियः कृत्वापि संकेतं यस्यानायाति संनिधिम्।
विप्रलब्धा तु सा ज्ञेया नितान्तमवमानिता' ॥ ८३ ॥
साहित्यदर्पण, पृ० सं० १०६।

३. 'कृत्वासंकेतमप्राप्ते दयिते व्यथिता तु या ॥ १४८ ॥
विप्रलब्धेति सा प्रोक्ता बुधैरस्यास्तुविक्रिया'।
रसार्णवसुधाकर, पृ० सं० ३५।

४. 'दूतीमहरहः प्रेष्य कृत्वा संकेतकं क्वचित ॥ १६ ॥
यस्या न मिलितः प्रेयान्विप्रलब्धेति तां विदुः'।
सरस्वती-कुलकंठाभरण, पृ० सं० ६२।

५. 'हित तै कै मद मदन तै, पिय सों मिलै जु जाइ।
सो कहिये अभिसारिका, बरणी विविध बनाइ' ॥२५॥
रसिकप्रिया, पृ० सं १३३।

६. 'अभिसरयते कान्तं या मन्मथवशंवदा।
स्वयं वाभिसरत्येषा धीरैरुक्ताभिसारिका' ॥७६॥
साहित्यदर्पण, पृ० सं० १०४।

७. 'प्रियश्चित्ररतक्रीडासुखास्वादनलोलुपा।
पुष्पेषु पीड़िताकान्तं याति या साभिसारिका' ॥१६॥
सरस्वतीकुलकंठाभरण, पृ० सं० ६२।

स्वकीया, परकीया तथा सामान्या अथवा वेश्या के अभिसार का प्रथक लक्षण दिया है। केशव के अनुसार स्वकीया अभिसारिका आभूषण आदि से सुसज्जित, बंधुओं के साथ, बहुत अधिक लजाती हुई, मार्ग में डगमग पग रखती हुई चलती है; परकीया अभिसारिका, जनी, सहेली अथवा विश्वस्त बंधुओं के साथ लज्जा सहित, मार्ग में बचाकर पैर रखती हुई जाती है; तथा सामान्या अभिसारिका नीलवस्त्र धारण कर, चकित तथा साहस-पूर्ण हृदय-सहित, संध्या अथवा आधीरात के समय, अभिसार के लिये जाती है। सामान्या चारों ओर देखती हुई, अर्थात निशंक भाव से, हँसती, लोगों के मन मोहती हुई, अंगराग तथा आभूषण आदि से सुसज्जित जाती है। वह हाथ में फूल लिये, सखी सहेली आदि से युक्त, जारपति के साथ मन्द गति से चलती है।[1] भोज तथा भूपाल ने स्वकीया, परकीया अथवा सामान्या के अभिसार का पृथक वर्णन नहीं किया है। विश्वनाथ ने अवश्य लिखा है कि कुलजा, वेश्या तथा दासी किस प्रकार अभिसार के लिये जाती है। कुलजा के अन्तर्गत, स्वकीया तथा परकीया दोनों ही आ जाती हैं। अतएव स्वकीया तथा परकीया के अभिसार का पृथक-पृथक वर्णन विश्वनाथ ने नहीं किया है। विश्वनाथ के अनुसार कुलवधू अपने शरीर में समाई सी जाती हुई, घूँघट काढ़े, तथा इस प्रकार से चलती हुई, कि आभूषणों की झंकार न होने पाये, अभिसार के लिये जाती है तथा सामान्या विचित्र उज्ज्वल वस्त्रों को धारण कर, चलने में आभूषणों की झंकार उत्पन्न करती हुई, प्रफुल्ल तथा मुस्कराती हुई अभिसार के लिये जाती है।[2] सम्भव है केशव के स्वकीया, परकीया तथा सामान्या के अभिसार के वर्णन का आधार विश्वनाथ का 'साहित्य-दर्पण' ही हो किन्तु लक्षण केशव के निजी हैं, उनका विश्वनाथ द्वारा दिये हुये लक्षणों से साम्य नहीं है।

१. 'अति लज्जा पग डग धरै, चलत बधुन के संग।
स्वकिया को अभिसार यह, भूषण भूषित अंग' ॥ २६ ॥
जनी सहेली शोभहीं, बंधु वधू संग चार।
मग में देइ बराइ डग, लज्जा को अभिसार ॥२७॥
चकित चित्त साहस सहित, नील वसन युत गात।
कुलटा संध्या अभिसरै, उत्सव तम अधिरात ॥२८॥
चहुँ ओर चितवै हंसै, चित चोरै सुविलास।
अंगराग रंजित नितहि, भूषण भूषित भास ॥२६॥
कुसुम कंदुकर मंद गति, सखी संग मग जार।
सखी सहेली साथ वह, वरणि नारि अभिसार' ॥३०॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० १३३-१३४।

२. 'संलीना स्वेषु गात्रेषु मूकीकृतविभूषणा।
अवगुण्ठनसंवीना कुलजाभिसरेद्यदि ॥७७॥
विचित्रोज्ज्वलवेषा तु रणन्नूपुरकंकणा।
प्रमोदस्मेरवदना स्याद्वेश्याभिसरेद्यदि' ॥७८॥
साहित्यदर्पण, पृ० सं० १०५।

नायिकाओं के तीन अन्य भेद :

केशव ने नायिकाओं के तीन अन्य भेद, उत्तमा, मध्यमा तथा अधमा भी बतलाये हैं। केशव के अनुसार 'उत्तमा' अपमानित होने पर मान करती तथा सम्मान प्रदर्शित किये जाने पर मान त्याग देती है और प्रिय को देखकर प्रसन्न होती है। 'मध्यमा' नायक के छोटे से दोष पर ही मान करती और बहुत अनुनय-विनय के पश्चात मान त्यागती है; तथा 'अधमा' बार-बार मान करती किन्तु बहुत शीघ्र ही संतुष्ट हो जाती है।[1] भोज तथा विश्वनाथने उत्तमा, मध्यमा तथा अधमा नायिकाओं का उल्लेख-मात्र किया है, लक्षण नहीं दिये हैं। भूपाल ने इनके लक्षण भी दिये हैं। भूपाल ने 'उत्तमा' के लक्षण के अन्तर्गत उसका सकारण क्रोध करना तथा अनुनय-विनय करने पर प्रसन्न हो जाना लिखा है।[2] केशव के 'उत्तमा' के लक्षण का भूपाल के 'उत्तमा' के लक्षण के उपरोक्त अंश से पूर्ण साम्य है। केशव की मध्यमा तथा अधमा के लक्षण भूपाल के लक्षणों से नहीं मिलते।

अगम्या-वर्णन :

'रसिकप्रिया' के सप्तम् प्रकाश के अन्त में केशव ने अगम्या स्त्रियों का वर्णन किया है, अर्थात वह स्त्रियाँ जिनसे संभोग नहीं करना चाहिये। केशव ने लिखा है कि सम्बन्धी की स्त्री, मित्र अथवा किसी ब्राह्मण की स्त्री तथा जिसे दुख में सहायता दी हो अथवा भूखी होने पर भोजन से सहायता पहुँचाई हो, ऐसी स्त्रियों से दूर रहना चाहिये। इसी प्रकार जो अपने से उच्च वर्ण की स्त्री हो, जिसका अंग-भंग हो, अथवा शूद्र की स्त्री हो, कोई विधवा या पूजनीय स्त्री हो, ऐसी स्त्रियों से रमण नहीं करना चाहिये।[3] 'अगम्या' का वर्णन संस्कृत के किसी आचार्य ने नहीं किया है। केशव के 'अगम्या-वर्णन' का आधार काम-शास्त्र-सम्बन्धी ग्रंथ हैं। वात्स्यायन ने 'कामसूत्र' में अगम्या के अन्तर्गत कुष्ठिनी, उन्मत्ता, पतिता, सबसे रहस्य प्रकट

१. 'मान करै अपमान तैं, तजै मान तैं मान।
पिय देखे सुख पावई, ताहि उत्तमा जान ॥३६॥
मान करै लघु दोष तैं, छोड़ै बहुत प्रणाम।
केशवदास बखानिये, ताहि मध्यमा बाम ॥४१॥
रूठै बारहि बार जो, तूठै बैठेहि काज।
ताही को अधमा बरण, कहैं महाकविराज' ॥४२॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० १३६-४२।

२. 'गृह्णातिऽकारणे कोपमनुनीता प्रसीदति'।
रसार्णवसुधाकर, पृ० सं० ३६।

३. 'तजि तरुणी संबंध की, जानि मित्र द्विजराज।
राखि लेइ दुख भूख ते, ताकी तिय तैं भाज ॥४६॥
अधिक वरण अरु अंग घटि, अंत्यजनन की नारि।
तजि विधवा अरु पूजिता, रमियहु रसिक विचारि' ॥४७॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० १४४।

करनेवाली, वृद्धा, अति श्वेतवर्ण अथवा शिष्य की स्त्री, तथा मित्र-भार्या आदि का उल्लेख किया है।[1] कल्याणमल्ल ने भी अपने ग्रंथ 'अनंगरंग' में अगम्या का वर्णन करते हुये कन्या, सन्यासिनी, सती, शत्रुवधू, मित्रभार्या, रोगिणी, शिष्या, ब्राह्मण की स्त्री, पतिता, उन्मत्त स्त्री, सम्बन्धिनी, वृद्धा, आचार्य-वधू, गर्भिणी, महापापिनी, पिंग तथा अत्यंत काली स्त्रियों को 'अगम्या' के अन्तर्गत लिखा है।[2]

विप्रलम्भ शृङ्गार

पूर्वानुराग तथा दश काम दशायें :

'रसिकप्रिया' के आठवें प्रकाश में विप्रलंभ शृङ्गार का सामान्य लक्षण देने के बाद विप्रलम्भ शृङ्गार के चार भेद पूर्वानुराग, करुण, मान तथा प्रवास बतलाये गये हैं। तत्पश्चात् पूर्वानुराग का लक्षण तथा दश काम दशाओं का वर्णन किया गया है। केशव द्वारा दिया विप्रलम्भ शृंगार का सामान्य लक्षण संस्कृत के किसी आचार्य से नहीं मिलता। केशव के अनुसार पूर्वानुराग वहाँ होता है जहाँ नायक-नायिका के हृदय में एक दूसरे के रूप को देखकर ही अनुराग उत्पन्न हो जाता है और फिर दर्शन न मिलने पर दुःख होता है।[3] भूपाल के अनुसार पूर्वानुराग वह अवस्था है जहाँ प्रेम-संगम से पूर्व नायक-नायिका के हृदय में नायक अथवा नायिका के दर्शन अथवा गुण-श्रवण के द्वारा अनुराग उत्पन्न हो जाता है।[4] केशव ने गुण-श्रवण को भी दर्शन के अन्तर्गत माना है।[5] अतएव गुण-श्रवण का पृथक उल्लेख नहीं

---

१. 'अगम्यास्त्वेवैताः कुष्ठिन्युन्मत्ता पतिता भिन्नरहस्याप्रकाश—
प्रार्थिनीगतप्रायर्यौवना अतिश्वेतातिकृष्णा दुर्गन्धा संबन्धिनी
सखीप्रव्रजिता संबन्धिसखिश्रोत्रियराजदाराश्च' ॥४३॥
कामसूत्र, पृ० सं० ६७।

२. 'कन्या प्रव्रजिता सती रिपुवधू मित्रांगना रोगिणी।
शिष्या ब्राह्मणवल्लभा च पतितोन्मत्ता च सम्बन्धिनी।
वृद्धाचार्यवधूश्च गर्भसहिता ज्ञाता महापापिनी।
पिंगा कृष्णतमा सदा बुधजनैस्त्याज्या इमा योषितः' ॥१६॥
अनंगरंग, पृ० सं० ४४।

३. 'देखति हीं द्युति दम्पतिहि, उपज परत अनुराग।
बिन देखे दुख देखिये, सो पूरब अनुराग' ॥३॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० १४५।

४. 'यत्प्रेमसंगमात पूर्वं दर्शनश्रवणोद्भवम् ॥१७२॥
पूर्वानुरागः स ज्ञेयः श्रवणं तद्गुणश्रुतिः'।
रसार्णवसुधाकर, पृ० सं० १७६।

५. 'एक जु नीके देखिये, दूजो दर्शन चित्र।
तीजो सपनो जानिये, चौथो श्रवण सुमित्र' ॥२॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० १०।

किया है। इस बात को ध्यान में रखते हुये भूपाल तथा केशव के लक्षणों में साम्य है। यही भाव विश्वनाथ द्वारा दिये पूर्वराग के लक्षण का भी है।[1] केशव ने लिखा है कि देखने से अथवा बातचीत सुन कर नायक-नायिका एक दूसरे से मिलने के लिए व्याकुल होते हैं और न मिल सकने पर दश दशाओं को प्राप्त होते हैं। वह दश दशायें अभिलाषा, चिन्ता, गुणकथन, स्मृति, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता तथा मरण हैं।[2] केशव ने इन दशाओं का पृथक्-पृथक लक्षण दिया है। भोजदेव द्वारा बताई हुई अधिकांश दशायें केशव से भिन्न हैं। भूपाल तथा विश्वनाथ ने इन्हीं दश दशाओं का वर्णन किया है। भूपाल ने सब दशाओं के लक्षण दिये हैं तथा विश्वनाथ ने गुणकथन, स्मृति तथा उद्वेग को छोड़कर अन्य दशाओं के लक्षण दिये हैं। 'अभिलाषा' का लक्षण केशव का निजी है, और भूपाल अथवा विश्वनाथ के लक्षण से नहीं मिलता। केशव के अनुसार नायक से किस प्रकार मिला जाय, मिलने पर उसे किस प्रकार वश में रखा जाय आदि बातों की चिन्ता 'चिन्ता' है।[3] केशव के लक्षण का प्रथमांश तथा विश्वनाथ का लक्षण एक ही है। विश्वनाथ के अनुसार प्राप्ति के उपाय आदि का चिन्तन 'चिन्ता' है।[4] केशव का 'स्मृति' का लक्षण वास्तव में 'स्मृति' का लक्षण न होकर 'अभिलाष' का लक्षण प्रतीत होता है।[5] केशव के 'गुण-कथन' का लक्षण भूपाल के लक्षण से मिलता है। केशव के अनुसार जहाँ शरीर के सौन्दर्य, आभूषणों तथा गुणों आदि का वर्णन किया जाय वह 'गुण-कथन' है।[6] भूपाल के 'गुणकीर्तन' का भी यही लक्षण है।[7]

---

१. 'श्रवणाद्दर्शनाद्वापि मिथः संरूढरागयोः ।
दशाविशेषो योऽप्राप्तौ पूर्वरागः स उच्यते' ॥१८८॥
साहित्यदर्पण, पृ० सं० १४० ।

२. 'अविलोकन आलाप ते, मिलिबे को अकुलाहि ।
होत दशा दश दिन मिले, केशव क्यों कहि जाहि ॥८॥
अभिलाष सुचिन्ता गुणकथन, स्मृति उद्वेग प्रलाप ।
उन्माद व्याधि जड़ता भये, होत मरण पुनि आप' ॥९॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० १४८ ।

३. 'कैसे मिलिये मिले हरि, कैसे धौं वश होइ ।
यह चिन्ता चित चेत कै, वर्णत हैं सब कोइ' ॥१६॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० १५२ ।

४. 'चिन्ता प्राप्त्युपायादि चिन्तनम्'
साहित्यदर्पण, पृ० सं० १४० ।

५. 'और कछू न सुहाय जहँ, भूलि जाहि सब काम ।
मन मिलबे की कामना, ताहि स्मृति है नाम' ॥२५॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० १५८ ।

६. 'जहँ गुण गण मणि देहि द्युति, वर्णत बचन विशेष ।
ताकहँ जानहु गुण कथन, मनमथमथन सुलेष' ।
रसिकप्रिया, पृ० सं० १५६ ।

७. 'सौन्दर्यादि गुणश्लाघा गुणकीर्तनमत्रतु' ।
रसार्णवसुधाकर, पृ० सं० १२१ ।

विश्वनाथ ने 'उद्वेग' का लक्षण नहीं दिया है। भूपाल ने लक्षण दिया है, किन्तु केशव का लक्षण भूपाल के लक्षण से भिन्न है। केशव के 'प्रलाप' तथा 'उन्माद' का लक्षण उनका अपना है, और भूपाल अथवा विश्वनाथ से नहीं मिलता। केशव के 'व्याधि' का लक्षण विश्वनाथ के लक्षण से बहुत कुछ साम्य रखता है। विश्वनाथ के अनुसार दीर्घ निश्वास, शरीर का पीलापन तथा दुर्बलता आदि 'व्याधि' के लक्षण हैं।[1] केशव ने भी 'व्याधि' के लक्षण में दीर्घनिश्वास तथा शरीर के विवरण हो जाने का उल्लेख किया है।[2] विश्वनाथ के अनुसार शरीर तथा मन का चेष्टारहित हो जाना 'जड़ता' है।[3] केशव के लक्षण का भी यही भाव है।[4] विश्वनाथ ने रसविच्छेद के कारण 'मरण' का वर्णन न करने की विधि बतलाई है। भूपाल ने 'मरण' का भी लक्षण दिया है। भूपाल के अनुसार जब नाना उपाय करने पर भी नायक-नायिका का समागम नहीं होता तो कामाग्नि से पीड़ित होकर वह 'मरण' का उद्योग करते हैं।[5] केशव के लक्षण का भी यही भाव है।[6]

मान-विरह :

'रसिकप्रिया' के नवें प्रकाश में मान-विरह तथा उसके भेदों का वर्णन किया गया है। केशव के मान का सामान्य लक्षण संस्कृत के किसी आचार्य से नहीं मिलता। विश्वनाथ के अनुसार 'मान' के दो भेद हैं, प्रणय से उत्पन्न मान तथा ईर्ष्या से उत्पन्न मान। ईर्ष्या से उत्पन्न मान तीन प्रकार से होता है।[7] (१) उत्स्वप्नायित, स्वप्न में नायक के अन्य नायिका-संबन्धी बातों

१. 'व्याधिस्तु दीर्घनिः श्वासपाण्डुताकृशतादयः'।
साहित्यदर्पण, पृ० सं० १४०।

२. 'अंग वरणि विवरण जहां, अति ऊँची उश्वास।
नैन नीर परताप बहु, व्याधि सु केशवदास' ॥४५॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० १६७।

३. 'भूलि जाय सुधि बुधि जहां, सुख दुख होय समान।
तासो जड़ता कहत हैं, केशवदास सुजान' ॥४८॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० १६८।

४. 'जड़ता हीनचेष्टत्वमंगानांमनसतथा'।
साहित्यदर्पण, पृ० सं० १४१।

५. 'तैस्तै कृतैः प्रतीकारैर्यदि न स्यात समागमः ॥१६६॥
ततः स्यान्मरणोद्योगः कामग्नेस्तत्रविक्रियाः'।
रसार्णव-सुधाकर, पृ० सं० १८०।

६. 'बने न केहूँ मिलन जहं, छल बल केशवदास।
पूरण प्रेम प्रताप ते मरण होहि अनयास, ॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० १७०।

७. 'मानः कोपः स तु द्वेधा प्रणयेर्ष्यासमुद्भवः।
पत्युरन्यप्रियासंगे दृष्टेऽथानुमितेश्रुते, ॥१६६॥

बड़बड़ाने से (२) भोगांक-सम्भव, नायक में अन्य नायिका-संबंधी संभोग-चिह्न देख कर तथा (३) गोत्रस्खलन-संभव, अचानक नायक के मुख से अन्य नायिका का नाम सुनकर। भूपाल ने मान के दो भेद बतलाये हैं, सहेतु तथा निर्हेतु और लिखा है कि 'सहेतु' मान ईर्ष्या से उत्पन्न होता है। ईर्ष्या चार प्रकार से होती है, दर्शन, भोगांक-जनित, गोत्रस्खलन तथा श्रुति-जनित।[1] केशव ने 'मान' के तीन भेद बतलाये हैं, गुरु, लघु तथा मध्यम।[2] केशव के इन भेदों का उल्लेख भूपाल अथवा विश्वनाथ ने नहीं किया है। केशव के अनुसार दूसरी नायिका के संयोग चिन्हों को नायक में देख कर अथवा उसके द्वारा अन्य नायिका का नाम सुनने से प्रकृत नायिका में गुरु मान होता है।[3] केशव के इस लक्षण में भूपाल तथा विश्वनाथ के ईर्ष्यामान के भेदों गोत्रस्खलनजनित, तथा भोगांक-सम्भव का सम्मिश्रण है। केशव के अनुसार लघु मान प्रकृत नायिका उस समय करती है जब वह नायक को स्वयं किसी अन्य नायिका की ओर देखते हुये देखती है अथवा उसे सखी से अन्य नायिका में नायक की आसक्ति ज्ञात होती है।[4] केशव का यह लक्षण भूपाल के दर्शन-ईर्ष्या तथा श्रुति-जनित का सम्मिश्रण है। केशव के अनुसार मध्यम मान उस समय होता है जब नायिका नायक को किसी अन्य नायिका से बातें करते देखती है।[5] केशव का मध्यम मान भूपाल के दर्शन-ईर्ष्या के अन्तर्गत आ जाता है।

ईर्ष्यामानो भवेत्स्त्रीणां तत्र त्वनुमितिस्त्रिधा।
उत्स्वप्नायितभोगांकगोत्रस्खलनसंभवः' ॥२००॥
साहित्यदर्पण, पृ० सं० १४४-१४५।

1. 'सोऽयं सहेतुनिर्हेतुभेदाद् द्विधात्र हेतुजः।
ईर्ष्यया सम्भवेदीर्ष्या त्वन्या संगिनि वल्लभे ॥२०३॥
असहिष्णुत्वमेव स्याद् दृष्टेनुमितेः श्रुतेः'
रसार्णवसुधाकर, पृ० सं० १५१।

2. 'मान भेद प्रकटहि प्रिया, गुरु लघु मध्यम मान।
प्रकटहि प्रीय प्रियान प्रति, केशवदास सुजान' ॥२॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० १७१।

3. 'आनि नारि के चिन्ह लखि, कै सुनि श्रवणनि नाउ।
उपजत है गुरु मान तहं, केशवदास सुभाउ' ॥३॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० १७१।

4. 'देखत काहू नारि त्यों, देखै अपने नैन।
तहं उपजै लघु मान कै, सुनै सखी के बैन' ॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० १७४।

5. 'बात कहत तिय और सों, देखै केशवदास।
उपजत मध्यम मान तहं, मानिनि के सविलास' ॥१५॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० १७६।

मानमोचन :

'रसिकप्रिया' के दशवें प्रकाश में मानमोचन के उपाय बतलाये गये हैं। केशव ने इस सम्बन्ध में छः उपायों का उल्लेख किया है, साम, दाम, भेद, प्रणति, उपेक्षा तथा प्रसंग-विध्वंस।[१] भूपाल तथा विश्वनाथ ने भी मानमोचन के प्रसंग में इन्हीं छः उपायों का उल्लेख किया है। इन आचार्यों ने केशव के 'प्रणति' तथा 'प्रसंगविध्वंस' के स्थान पर क्रमशः 'नति' तथा 'रसान्तर' शब्दों का प्रयोग किया है।[२] केशव के अनुसार किसी प्रकार मन को मोह कर मान छुड़ाने को 'साम' कहते हैं।[३] भूपाल तथा विश्वनाथ ने प्रिय वचनों के प्रयोग करने को 'साम' कहा है।[४] केशव का लक्षण अधिक व्यापक है जिसके अन्तर्गत प्रिय वचनों का प्रयोग भी आजाता है। केशव ने किसो बहाने से कुछ देकर मान छुड़ाने को 'दान' उपाय बतलाया है।[५] भूपाल तथा विश्वनाथ ने व्याज से भूषण आदि देने को 'दान' कहा है।[६] स्पष्ट ही केशव का लक्षण अधिक व्यापक है। उन्होंने यह भी कहा है कि यदि नायिका किसी लोभ अथवा

१. 'सामदाम अरु भेद पुनि, प्रणति उपेक्षा मानि।
अरु प्रसंगविध्वंस पुनि, दंड होहि रसहानि' ॥२॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० १०० ।

२. 'हेतुजस्तु शमं याति यथायोग्यं प्रकल्पितैः।
साम्ना भेदेनदानेन नत्युपेक्षारसान्तरैः' ॥२०८॥
रसार्णवसुधाकर, पृ० सं० १७४ ।

'साम भेदोऽथ दानं च नत्युपेक्षे रसान्तरम्।
तन्नंगाय पतिः कुर्यात्षड् उपायानिति क्रमात् ॥२०१॥
साहित्यदर्पण, पृ० सं० २४६ ।

३. 'ज्यों केहू मन मोहिये, छूटि जाय जहं मान।
सोई साम उपाय कहि केशवदास बखान' ॥३॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० १८० ।

४. 'प्रियोक्ति कथनं यत्तु तत् साम गीयते'।
रसार्णवसुधाकर, पृ० सं० १८४ ।

'प्रियवचः साम'।
साहित्यदर्पण, पृ० सं० १४६ ।

५. 'केशव कौनिहुं व्याज कछु, दै जु छुड़ावै मान।
वचन रचन मोहै मनहि, ताको कहिये दान' ॥६॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० २८१ ।

६. 'व्याजेन भूषणादीनां प्रदानं दानमुच्यते'।
रसार्णवसुधाकर, पृ० सं० १८५ ।

'दानं व्याजेन भूषादेः'।
साहित्यदर्पण, पृ० सं० १४३ ।

दान से मान त्यागती है तो वह वारवधू की कोटि प्राप्त करती है।[१] संस्कृत के किसी आचार्य ने इस बात का उल्लेख नहीं किया है। केशव के अनुसार नायिका की सखियों को अपनी ओर तोड़ लेना और उसके द्वारा मान छुड़ाना 'भेद' है।[२] विश्वनाथ के 'भेद' के लक्षण का भी यही भाव है।[३] केशव ने अतिहित, कामवश अथवा अपराध समझ कर पैरों पड़ने को 'प्रणति' कहा है।[४] भूपाल तथा विश्वनाथ ने भी चरणों में गिरने को 'नति' लिखा है।[५] केशव के अनुसार जब मान छुड़ाने की बातों को छोड़ कर दूसरे ही प्रसंग की बातें करने से मान का त्याग होता है, उसे 'उपेक्षा' कहते हैं।[६] भूपाल ने चुप रहने को 'उपेक्षा' कहा है; तथा विश्वनाथ ने कहा है कि साम तथा दान आदि उपाय निष्फल होने पर उपेक्षा का भाव प्रदर्शित किया जाता है।[७] केशव का लक्षण इन आचार्यों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट है। केशव तथा विश्वनाथ के क्रमशः 'प्रसंग-विध्वंस' तथा 'रसान्तर' का प्रायः एक ही लक्षण है। केशव ने लिखा है कि हृदय में भय आदि के उत्पन्न हो जाने से मान का छूट जाना 'प्रसंगविध्वंस' है।[८]

१. 'जहां लोभ ते दान ते, छाँड़ै मानिनि मान।
वारवधू के लक्षणहि, पावै तबहि प्रमान' ॥७॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० १८२।

२. सुख दै कै सब सखिन कहं, आप लेइ अपनाइ।
तब सु छुड़ावै मान को, बरणो भेद बनाइ' ॥११॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० १८४।

३. 'भेदस्तत्सख्युपार्जनम्'।
साहित्यदर्पण, पृ० सं० १४६।

४. 'अतिहित ते अति काम ते, अति अपराधहि जान।
पांय परै प्रीतम प्रिया, ताको प्रणति बखान' ॥१४॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० १८५।

५. 'नतिः पादप्रणामः स्यात्'।
रसार्णव-सुधाकर, पृ० सं० १२५।
'पादयोः पतनं नतिः'
साहित्य-दर्पण, पृ० सं० १४६।

६. 'मान मुचावन बात तजि, कहिये और प्रसंग।
छूटि जाइ जहं मान तहं, कहत उपेक्षा अंग' ॥२०॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० १८८।

७. 'तूष्णीं स्थितिरुपेक्षणम्'।
रसार्णव-सुधाकर, पृ० सं० १८६।
'सामादौ तु परिक्षीणे स्यादुपेक्षावधीरणम्'।
साहित्यदर्पण, पृ० सं० १४६।

८. 'उपज परै भय चित्त भ्रम, छूट जाय जहं मान।
सो प्रसंग विध्वंस कवि, केशवदास बखान' ॥२३॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० १४६।

विश्वनाथ के 'रसांतर' के लक्षण का भी यही भाव है ।[1] मानमोचन के उपरोक्त उपायों के अतिरिक्त केशव ने यह भी लिखा है कि कभी-कभी देशकाल, मधुर संगीत, सौन्दर्यपूर्ण वस्तुओं के अवलोकन तथा सौगन्ध आदि से सहज ही मान का त्याग हो जाता है ।[2]

करुण विप्रलम्भ :

'रसिकप्रिया' के ग्यारहवें प्रकाश में करुण तथा प्रवास विप्रलम्भ का वर्णन किया गया है । संस्कृत के आचार्यों ने 'करुण विप्रलम्भ' नायक अथवा नायिका में से एक के मर जाने पर दूसरे की दुःख की उस अवस्था को कहा है, जब परलोक-गत से इसी जन्म में इसी शरीर से मिलने की आशा रहती है ।[3] केशव के अनुसार करुणविरह वहाँ होता है जहाँ सुख के सब उपाय छूट जाते हैं ।[4] केशव का लक्षण अस्पष्ट है और करुण विरह का लक्षण नहीं रह गया है ।

प्रवास विरह :

केशव तथा विश्वनाथ के 'प्रवास विरह' का लक्षण प्रायः एक ही है । केशव की अपेक्षा विश्वनाथ का लक्षण अधिक स्पष्ट है । विश्वनाथ ने लिखा है कि नायक के किसी कार्यवश, शाप से अथवा भय के कारण किसी दूसरे देश में जाने को 'प्रवास' कहते हैं ।[5] केशव के अनुसार किसी कारण से प्रिय का परदेश-गमन 'प्रवास' कहा जाता है ।[6]

१. 'रभस त्रासहर्षादेः कोपभ्रंशो रसान्तरम्' ।१०३।
साहित्य-दर्पण, पृ० सं० १४६

२. 'देशकाल बुधि वचन ते, कल ध्वनि कोमल गान ।
शोभा शुभ सौगंध ते, सुख ही छूटत मान' ।।१६।।
रसिकप्रिया, पृ० सं० १६१ ।

३. 'यूनोरेकतरस्मिन्गतवति लोकान्तरं पुनर्लभ्ये ।
विमनायते यदैकस्तदा भवेत्करुणविप्रलम्भाख्यः' ।।२०९।।
साहित्य-दर्पण, पृ० सं० १४९ ।
'द्वयोरेकस्य मरणेपुनर्जीवनावधौ ।।२१८।।
विरहः करुणोऽन्यस्य संगमाशानिवर्तनः' ।
रसार्णव-सुधाकर, पृ० सं० १८९

४. 'छूटि जात केशव जहाँ, सुख के सबै उपाय ।
करुणा रस उपजत तहाँ, आपुन ते अकुलाय' ।।२।।
रसिकप्रिया, पृ० सं० १६२ ।

५. 'प्रवासो भिन्नदेशित्वं कार्याच्छापाच्च संभ्रमात्'
साहित्यदर्पण, पृ० सं० १४६ ।

६. 'केशव कौनहु काज से, प्रिय परदेशहि जाय ।
तासों कहत प्रवास सब, कवि कोविद समुझाय' ।।७।।
रसिकप्रिया, पृ० सं० १६७ ।

सखीवर्णन :

केशव ने 'रसिकप्रिया' के बारहवें प्रकाश में सखियों का वर्णन किया है, और सखी के अन्तर्गत धाय, जनी, नाइन, नटी, परोसिन, मालिन, वरइन, शिल्पिनि, चुरिहारी, सुनारिन, रामजनी, सन्यासिनी, तथा पटुवे की स्त्री का उल्लेख किया है।[१] इनका वर्णन संस्कृत के साहित्याचार्यों में से विश्वनाथ के 'साहित्य-दर्पण' में तथा कामशास्त्र-सम्बन्धी ग्रन्थों में 'दूती' के प्रसंग में मिलता है। विश्वनाथ ने सखी, नटी, दासी, धाय, पड़ोसिन, बाला, सन्यासिनी, धोबिन तथा शिल्पिनि आदि को दूती के अन्तर्गत माना है।[२] वात्स्यायन के 'कामसूत्र' में विधवा, दासी, भिखारिन तथा शिल्पिनि को ही दूती के अन्तर्गत माना गया है।[3] कल्याण-मल्ल ने 'अंनगरंग' नामक ग्रंथ में मालिन, सखी, विधवा, धाय, नटी, शिल्पिनि, सैरन्ध्री पड़ोसिन, रंगरेजिन, दासी, सम्बन्धिनी, बाला, सन्यासिनी, भिखारिन, ग्वालिन, तथा धोबिन का उल्लेख दूती के अन्तर्गत किया है।[४]

सखीजन-कर्म-वर्णन :

'रसिकप्रिया' के तेरहवें प्रकाश में सखीजन-कर्म-वर्णन किया गया है। केशव ने सखी-जन-कर्म के अन्तर्गत शिक्षा देना, विनय करना, मनाना, समागम कराना, शृंगार करना, झुकाना अर्थात् विनम्र करना, तथा उलाहना देना लिखा है।[५] संस्कृत के साहित्याचार्यों ने

१. 'धाय जनी नायन नटी, प्रकट परोसिन नारि।
मालिन बरइन शिल्पिनी, चुरिहारिनी सुनारि ॥१॥
रामजनी संन्यासिनी पटु पटुवा की बाल।
केशव नायक नायिका, सखी करहिं सब काल' ॥२॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० २०६।

२. 'दूत्यः सखी नटी दासी धात्रेयी प्रतिवेशिनी।
बाला प्रव्रजिता कारूः शिल्पिन्याद्याः स्वयं तथा' ॥२८॥
साहित्यदर्पण, पृ० सं० १२०।

३. 'विधवेक्षणिका दासी भिक्षुकी शिल्पकारिका।
प्रविशत्याशु विश्वासं दूती कार्यं च विन्दति' ॥६२॥
कामसूत्र, पृ० सं० २८०।

४. 'मालाकारवधूः सखी च विधवा धात्री नटी शिल्पिनी।
सैरन्ध्री प्रतिगेहिकाथ रजकी दासी च सम्बन्धिनी।
बाला प्रव्रजिता च भिक्षुवनिता तक्रस्य विक्रेतिका।
मान्या कारुवधू विदग्धपुरुषैः प्रेष्या इमा दूतिकाः' ॥
अनंगरंग, पृ० सं० ४३।

५. 'शिक्षा विनय मनाइबो, मिलवै करहि शृंगार।
झुकि अरु देइ उराहनो, यह तिन को व्यवहार' ॥१॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० २२०।

सखी अथवा दूती-कर्म-वर्णन नहीं किया है। भोजदेव ने 'शृंगार-प्रकाश' नामक ग्रंथ के अट्ठाइसवें प्रकाश में दूत-दूतियों के कार्यों का वर्णन किया है किन्तु उपलब्ध ग्रंथ खंडित है, अतएव नहीं कहा जा सकता कि भोज ने किन कार्यों का उल्लेख किया है। कामशास्त्र-सम्बन्धी ग्रंथों में से वात्स्यायन के 'कामसूत्र' नामक ग्रंथ में अवश्य दूतीकर्म का वर्णन मिलता है। वात्स्यायन ने दूती-कर्म के अन्तर्गत प्रकृत पति से विद्वेष कराना, नायिका के सम्मुख सुन्दर वस्तुओं का वर्णन करना, चित्रों तथा दूसरों के सुरत सम्भोग को दिखलाना, नायक के अनुराग, रतिकौशल तथा प्रार्थना आदि का नायिका से कहना लिखा है।[1] केशव ने भिन्न कर्मों का उल्लेख किया है। कदाचित् यह वर्णन केशव का निजी हो।

हास्यरस के भेद :

'रसिकप्रिया' के चौदहवें प्रकाश में हास्यरस का सामान्य लक्षण देने के बाद केशव ने हास्यरस के चार भेदों मंदहास, कलहास, अतिहास तथा परिहास का वर्णन किया है।[2] केशव का हास्यरस का लक्षण संस्कृत के किसी आचार्य के लक्षण से नहीं मिलता। भरत, भूपाल तथा विश्वनाथ ने हास्य के छः भेद बतलाये हैं। स्मित, हसित, विहसित, अपहसित तथा अतिहसित का तीनों आचार्यों ने उल्लेख किया है किन्तु भरत के अनुसार छठा भेद 'उपहसित' है तथा भूपाल और विश्वनाथ के अनुसार 'अवहसित'।[3] भोज ने केवल तीन ही भेदों स्मित, हसित तथा विहसित का वर्णन किया है, किन्तु 'आदि' शब्द लिख कर उन्होंने

---

१. 'विद्वेषं ग्राहयेत्पत्यौ रमणीयानि वर्णयेत्।
चित्रान्सुरतसम्भोगानन्यासामपि दर्शयेत ॥६३॥
नायकस्यानुरागं च पुनश्च रतिकौशलम्।
प्रार्थनां चाधिक स्त्रीभिरवष्टम्भं च वर्णयेत' ॥६४॥
कामसूत्र, पृ० सं० २८०।

२. 'मन्द हास कलहास पुनि, कहि केशव अतिहास।
कोविद कवि वर्णत सबै, अरु चौथो परिहास' ॥२॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० २३१।

३. 'षड्भेदाश्चास्य विज्ञेयास्ताश्च वक्ष्याम्यहं पुनः ॥६०॥
स्मितमथ हसितं विहसितमुपहसितं चापहसितमतिहसितम्'।
नाट्यशास्त्र, पृ० सं० ३१९।

'स्मितं चालक्ष्यदशनदक्कपोलविकासकृत ॥२३०॥
तदेव लक्ष्यदशनशिखरं हसितं भवेत्।
तदेव कुंचितापांगगगडं मधुरनिस्वनम् ॥२३१॥
कालोचितं सानुरागमुक्तं विहसितं भवेत्।
फुल्लनासापुटं यत् स्यान्निकुंचितशिरोंसकम् ॥२३२॥
जिह्मावलोकिनयनं तच्चावहसितं मतम्।
कम्पितांगं साश्रुनेत्रं तच्चापहसितं भवेत् ॥२३२॥

इस बात को स्वीकार किया है कि इनसे इतर भेद भी होते हैं।[1] स्पष्ट ही केशव द्वारा बतलाये हुये भेद किसी अन्य आचार्य के भेदों से नहीं मिलते। केशव के अनुसार जहाँ नेत्र, कपोल, दशन तथा ओंठ कुछ-कुछ विकसित होते हैं वहाँ 'मंदहास' होता है।[2] केशव के 'मंदहास' का लक्षण भूपाल तथा विश्वनाथ के 'स्मित' के लक्षणों का सम्मिश्रण है। भूपाल के अनुसार दशन, नेत्र तथा कपोल को कुछ-कुछ विकसित करने वाला हास 'स्मित' है।[3] विश्वनाथ ने लिखा है कि 'स्मित' में नयन कुछ-कुछ विकसित होते तथा अधरों में स्पन्दन होता है।[4] केशव का 'कलहास' विश्वनाथ का 'विहसित' है। विश्वनाथ के अनुसार जहाँ हंसने में मधुर ध्वनि हो वह 'विहसित' है।[5] केशव के 'कलहास' का भी यही लक्षण है।[6] केशव के 'अतिहास' का भरत, भूपाल तथा विश्वनाथ आदि आचार्यों के 'अतिहसित' से केवल नाम-साम्य है, लक्षण नहीं मिलता। केशव द्वारा वर्णित 'परिहास' का उपरोक्त आचार्यों में से किसी ने उल्लेख नहीं किया है।

रसों के वर्ण तथा शृंगार एवं हास्य से इतर रस:

विश्वनाथ ने 'शृंगार' तथा 'हास्य' से इतर रसों के लक्षण के अन्तर्गत रसविशेष के स्थायीभाव, वर्ण तथा देवता का उल्लेख किया है। भरत मुनि ने लक्षण के अन्तर्गत इन बातों

करोपगूढ़पार्श्वं यदुद्धतायतनिस्वनम्।
वाष्पाकुलाक्षयुगलं तच्चातिहसितं भवेत्' ॥२३४॥

रसार्णव-सुधाकर, पृ० सं० १६४, १६५।

'ईषद्विकासिनयनं स्मितं स्यात्स्पन्दिताधरम्।
किंचिल्लक्ष्यद्विजं तत्र हसितं कथितं बुधैः ॥२१८॥
मधुरस्वरं विहसितं सांसशिरः कम्पनमवहसितम्।
अपहसितं सास्राक्षं विक्षिप्तांगं भवत्यतिहसितम्' ॥२१६॥

साहित्यदर्पण, पृ० सं० १५२।

१. 'स्मितहसितविहसितादयः'

सरस्वतीकुलकंठाभरण, पृ० सं० १२२।

२. 'विकसहिं नयन कपोल कछु, दशन दशन के वास।
मन्दहास तासों कहैं, कोविद केशवदास' ॥३॥

रसिकप्रिया, पृ० सं० २३१।

३. 'स्मितं चालक्ष्यदशनदृक्कपोलविकासकृत' ॥२३०॥

रसार्णवसुधाकर, पृ० सं० १६४।

४. 'ईषद्विकासिनयनं स्मितं स्यात्स्पन्दिताधरम्'।

साहित्यदर्पण, पृ० सं० १५२।

५. 'मधुरस्वरं विहसितं'।

साहित्यदर्पण, पृ० सं० १५२।

६. 'जहं सुनिये कल ध्वनि कछू, कोमल विमल विलास।
केशव तनमन मोहिये, वर्णहु कवि कलहास' ॥८॥

रसिकप्रिया, पृ० सं० २३४।

को न लिख कर रसों के वर्ण का पृथक वर्णन किया है। केशव ने विश्वनाथ का अनुकरण करते हुए अपने लक्षणों में रसविशेष के वर्ण का भी वर्णन किया है किन्तु उन्होंने इस सम्बन्ध में भरत मुनि के 'नाट्यशास्त्र' को ही आधार माना है। विश्वनाथ ने वीर-रस का वर्ण 'हेम' लिखा है,[1] किन्तु केशव के अनुसार वीर-रस का वर्ण गौर है।[2] भरत मुनि ने भी वीर-रस का वर्ण गौर ही माना है। भरत के अनुसार शृंगार, हास्य, करुण रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स तथा अद्भुत रस का वर्ण क्रमशः श्याम, श्वेत, कपोत, रक्त, गौर, कृष्ण, नील तथा पीत होता है।[3] केशव ने भी विभिन्न रसों का यही वर्ण बतलाया है। लक्षणों के संबंध में भी भरत मुनि का 'नाट्यशास्त्र' ही केशव का आधारभूत ग्रंथ प्रतीत होता है। केशव के अनुसार प्रियके विप्रियकरण से करुण रस की उत्पत्ति होती है।[4] भरत मुनि का लक्षण केशव की अपेक्षा अधिक व्यापक है। भरत मुनि ने लिखा है कि 'इष्टवध अथवा विप्रिय वचनों के श्रवण से करुण रस का उद्रेक होता है।[5] केशव तथा भरत मुनि दोनों ने ही 'विप्रिय' शब्द का प्रयोग किया है। भरत मुनि के अनुसार संग्राम में युद्ध, प्रहार, घात, विकृतच्छेदन, विदारण आदि के द्वारा रौद्र रस पोषित होता है।[6] केशव ने अपने लक्षण में भरत के समान युद्ध की विभिन्न क्रियाओं को पृथक न गिनाकर केवल 'विग्रह' अर्थात् युद्ध का उल्लेख कर दिया है। भरत ने रौद्र रस के स्थायी भाव का नाम नहीं दिया है। केशव ने विश्वनाथ का अनुसरण करते हुए अपने लक्षण

१. 'उत्तमप्रकृतिवीरः उत्साहस्थायिभाव :।
महेन्द्रदेवतो हेमवर्णोऽयं समुदाहृतः' ॥२३३॥
साहित्य-दर्पण, पृ० ६० १५५

२. 'होहि वीर उत्साहमय, गौर बरण द्युति अंग।
अति उदार गम्भीर कहि, केशव पाय प्रसंग' ॥२४॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० २४०।

३. 'श्यामो भवति शृंगारः सितो हास्य प्रकीर्तितः।
कपोतः करुणश्चैव रक्तो रौद्रः प्रकीर्तितः ॥४७॥
गौरो वीरस्तु विज्ञेयः कृष्णश्चैव भयानकः।
नीलवर्णस्तु वीभत्सः पीतश्चैवाद्भुतः स्मृतः' ॥४८॥
नाट्यशास्त्र, पृ० सं० ३००।

४. 'प्रिय के विप्रियकरण ते, आन करुण रस होत।
ऐसो बरण बखानिये, जैसे तरुण कपोत' ॥१८॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० २३७।

५. 'इष्टवधदर्शनाद्वा विप्रियवचनस्य संश्रवाद्वापि।
एभिर्भावविशेषैः करुणरसोनाम संभवति' ॥७६॥
नाट्यशास्त्र, पृ० सं० ३१६।

६. 'युद्ध प्रहारघातनविकृतच्छेदनविदारणैश्चैव।
संग्रामसम्भ्रमाद्यैरेभिः संजायते रौद्रः' ॥७९॥
नाट्यशास्त्र, पृ० सं० ३२४।

में रौद्र रस के स्थायी भाव 'क्रोध' का भी उल्लेख कर दिया है। केशव के अनुसार रौद्र रस क्रोधमय होता है; विग्रह-रूपी उसका उग्र शरीर है तथा उसका रंग अरुण माना गया है।[1]

वीर रस केशव के अनुसार उत्साहमय, गौर वर्ण तथा उदार और गम्भीर होता है।[2] भरतमुनि ने लिखा है कि उत्साह, अध्यवसाय, अविषाद, अविस्मय तथा अमोह आदि के द्वारा वीर रस की उत्पत्ति होती है।[3] केशव तथा भरतमुनि दोनों ही ने 'उत्साह' का उल्लेख किया है। भरत मुनि की बतलाई हुई अन्य बातें केशव के 'उदारता' तथा 'गम्भीरता' शब्दों के अन्तर्गत आ जाती हैं। केशव के अनुसार भयानक रस श्याम वर्ण होता है तथा इसकी उत्पत्ति किसी भयप्रद वस्तु को देखने अथवा उसके विषय में सुनने से होती है।[4] केशव की अपेक्षा भरत का लक्षण अधिक व्यापक है। भरत मुनि के अनुसार भयानक रस की उत्पत्ति विकृत अर्थात् भयानक शब्द करने वाले जीव को देखने, संग्रामस्थल, जंगल, शून्य गृह आदि में जाने तथा गुरू, नृपति आदि का अपराध करने के फलस्वरूप उत्पन्न भय के कारण होती है।[5] केशव के अनुसार, जहाँ किसी वस्तु को देखने अथवा सुनने से आश्चर्य होता है वहाँ अद्भुत रस की उत्पत्ति होती है तथा अद्भुत रस का वर्ण पीला माना गया है।[6] भरत-मुनि के लक्षण का भी यही भाव है, यद्यपि वह केशव की अपेक्षा अधिक व्यापक है। भरतमुनि के अनुसार, आश्चर्यप्रद शब्द, शिल्प अथवा कार्य आदि अद्भुत रस के विभाव-रूप होते हैं।[7]

१. 'होहि रौद्र रस क्रोध में, विग्रह उग्र शरीर।
अरुण वरण बरणत सबै, कहि केशव मति धीर' ॥२१॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० २३९।

२. 'होहि वीर उत्साहमय, गौर बरण द्युति अंग।
अति उदार गम्भीर कहि, केशव पाय प्रसंग' ॥२४॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० २४०।

३. 'उत्साहाध्यवसायादविषादित्वादविस्मयामोहात्।
विविधार्थविशेषाद्वीररसो नाम सम्भवति' ॥८३॥
नाट्यशास्त्र, पृ० सं० २४१।

४. 'होहि भयानक रस सदा, केशव श्याम शरीर।
जाको देखत सुनत ही, उपजि परे भय भीर' ॥२६॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० २४१।

५. 'विकृतरवसत्वदर्शनसंग्रामारण्यशून्यगृहगमनात्।
गुरुनृपयोरपराधात्कृतकश्च भयानको ज्ञेयः'।
नाट्यशास्त्र, पृ० सं० ३२८।

६. 'होहि अचंभो देखि सुनि, सो अद्भुत रस जान।
केशवदास विलास विधि, पीत वरण वपुमान' ॥३२॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० २४४।

७. 'यत्त्वतिशयार्थयुक्तं वाक्यं शिल्पं च कर्मरूपं वा।
तत्सर्वमद्भुतरसे विभावरूपं हि विज्ञेयं' ॥१५॥
नाट्यशास्त्र, पृ० सं० ३३१।

केशव ने लिखा है कि वीभत्स रस निंदामय है, उसका वर्ण नील माना गया है। इसकी उत्पत्ति वहाँ होती है जहाँ किसी वस्तु के देखने अथवा सुनने से शरीर तथा मन में उसकी ओर से उदासीनता तथा घृणा हो जाती है।[1] भरत मुनि का लक्षण केशव की अपेक्षा अधिक व्यापक है। भरत के अनुसार किसी अनिच्छित वस्तु के देखने, उसकी गंध, स्वाद, स्पर्श अथवा शब्द-दोष से तथा अन्य अनेक उद्वेगकारी वस्तुओं से वीभत्स रस की उत्पत्ति होती है।[2] केशव के अनुसार सम अथवा शान्त रस वहाँ होता है जहाँ मनुष्य का मन सब ओर से विमुख होकर एक ही स्थल पर केंद्रित हो जाता है।[3] केशव के शब्दों 'बसै एक ही ठौर' का अर्थ अस्पष्ट है। यदि इन शब्दों का अर्थ 'आत्मसत्ता में लीन होना लगाया जाय' तभी केशव का लक्षण ठीक ठहरता है। भरत का लक्षण बिल्कुल स्पष्ट तथा केशव की अपेक्षा अधिक व्यापक है। भरत ने स्पष्ट कहा है कि बुद्धीन्द्रिय, तथा कर्मेन्द्रियों के अवरोध के द्वारा आत्मसंस्थित तथा सब प्राणियों के सुख तथा हित का चिन्तन करने वाली स्थिति में शान्त रस होता है।[4]

वृत्तिवर्णन :

'रसिकप्रिया' के पन्द्रहवें प्रकाश में केशवदास जी ने वृत्तियों का वर्णन किया है। केशव के अनुसार 'कौशिकी' वृत्ति में करुण, हास्य तथा शृंगार रस का वर्णन किया जाता है। शब्दावली सरल तथा भाव सुन्दर होते हैं। 'भारती' वृत्ति में वीर, अद्भुत तथा हास्य रस का वर्णन होता है तथा भारती शुभ अर्थ का प्रकाशन करती है। 'आरभटी' वृत्ति में पद-पद पर यमकालंकार का प्रयोग होता है और उसमें रौद्र, भयानक तथा वीभत्स रसों का वर्णन होता है; तथा 'सात्विकी' वृत्ति वह है जिसका अर्थ सुनते ही समझ में आजाये। सात्विकी वृत्ति में अद्भुत, वीर, शृंगार तथा समरस का वर्णन किया जाता है।[5] वास्तव में केशव के विभिन्न वृत्तियो के

---

१. 'निंदामय वीभत्स रस, नील वरण बपु तास।
केशव देखत सुनत ही, तन मन होइ उदास, ॥३०॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० २४३।

२. 'अनभिमतदर्शनेन च गन्धरसस्पर्शशब्ददोषैश्च।
उद्वेजनैश्च बहुभिर्वीभत्सरसः समुद्भवति' ॥६२॥
नाट्यशास्त्र, पृ० सं० ३३०।

३. 'सबते होइ उदास मन, बसै एक ही ठौर।
ताही सों सम रस कहैं, केशव कवि सिरमौर' ॥३८॥
रसिकप्रिया, पृ० सं० २४६।

४. 'बुद्धीन्द्रियकर्मेन्द्रियसंरोधाध्यात्मसंस्थितोपेतः।
सर्वप्राणिसुखहितः शान्तरसो नाम विज्ञेयः, ॥१०५॥
नाट्यशास्त्र, पृ० सं० ३३५।

५. 'कहिये केशवदास जहं, करुणाहासशृंगार।
सरल वरण शुभ भाव जहं,सो कौशिकी विचार' ॥२॥

लक्षण अधिकांश वृत्तियों के लक्षण नहीं हैं। उन्होंने अपने लक्षणों में प्रायः यही बतलाया है कि किन-किन रसों के वर्णन में कौन सी वृत्ति का प्रयोग होता है। संस्कृत साहित्याचार्यों में से विश्वनाथ ने वृत्तियों का वर्णन नहीं किया है। भोज ने वृत्तियों का वर्णन तो किया है किन्तु यह नहीं लिखा कि किस रस के लिये कौन सी वृत्ति का प्रयोग उपयुक्त है। भरतमुनि तथा भूपाल ने इसका वर्णन किया है। भरत के अनुसार शृंगार तथा हास्य के लिये कैशिकी वृत्ति; रौद्र, वीर तथा अद्भुत रसों के लिये सात्वती वृत्ति; भयानक, वीभत्स तथा रौद्र रसों के लिये आरभटी वृत्ति तथा करुण और अद्भुत रसों के लिये भारती वृत्ति का प्रयोग किया जाता है।[1] भूपाल के अनुसार शृंगार रस के लिये कैशिकी वृत्ति, वीररस के लिये सात्वती वृत्ति, रौद्र तथा वीभत्स रसों के लिये आरभटी वृत्ति तथा भारती वृत्ति शृंगार आदि सभी रसों के वर्णन के लिये उपयुक्त है।[2] केशव ने संस्कृत के उपरोक्त आचार्यों के कैशिकी के स्थान पर 'कौशिकी, तथा सात्वती के स्थान पर 'सात्विकी' शब्दों का प्रयोग किया है। केशव की वृत्तियों के वर्णन का आधार भरतमुनि का 'नाट्यशास्त्र' ही प्रतीत होता है। केशव ने कैशिकी वृत्ति में करुण, सात्वती में शृंगार, आरभटी में सम अथवा शान्तरस, तथा भारती वृत्ति में हास्यरस का वर्णन करना भरतमुनि से अधिक लिखा है, अन्यथा दोनों का वर्णन समान है।

केशव का आचार्यत्व तथा मौलिकता :

इस प्रकार रस तथा नायिका-भेद के विवेचन के लिये केशव ने संस्कृत-साहित्य के ग्रंथों भरतमुनि के 'नाटयशास्त्र', भूपाल के 'रसार्णव-सुधाकर' तथा विश्वनाथ के 'साहित्य-दर्पण' आदि को आधार-स्वरूप माना है। नायिका-भेद के अन्तर्गत मध्या, प्रौढ़ा आदि नायिकाओं के

वरणे जामे वीररस, अरु अद्भुतरस हास।
कहि केशव शुभ अर्थ जहं, सो भारती प्रकास ॥४॥
केशव जामे रुद्र रस, भय वीभत्सक जान।
आरभटी आरम्भ यह, पद पद जमक बखान ॥६॥
अद्भुत वीर शृंगाररस, समरस वरणि समान।
सुनतहि समुझत भाव जिहिं, सो सात्विकी सुजान, ॥८॥

रसिकप्रिया, पृ० सं० २४६-२५१।

१. 'शृंगारंचैव हास्यं च वृत्तिः स्यात कौशिकी मता।
सात्त्वती नाम विज्ञेया रौद्रवीराद्भुताश्रया।
भयानके च वीभत्से रौद्रे चारभटी भवेत्।
भारती चापि विज्ञेया करुणाअद्भुतसंश्रया' ॥

नाट्यशास्त्र, भरत।

२. 'कैशिकी स्यात्तु शृंगारे रसे वीरे तु सात्त्वती।
रौद्रवीभत्सयोवृत्तिर्नियतारभटीपुनः
शृंगारादिषु सर्वेषु रसेष्विष्टैव भारती' ॥२६०॥

रसार्णव-सुधाकर, पृ० सं० ८७।

उपभेद कुछ तो विश्वनाथ के 'साहित्यदर्पण' के ही समा और कुछ के नाम मौलिकता के लिये भिन्न दिये गये हैं। रस के विभिन्न अवयवों तथा नायिकाओं के लक्षण देते समय भी केशवदास जी ने मौलिकता का ध्यान रखा है। केशव के लक्षण अधिकांश संस्कृत के आचार्यों के लक्षणों के भावानुवाद मात्र नहीं हैं। उन्होंने अपने अनुभव से भी काम लिया है। शठ नायक, मध्या धीराधीरा नायिका, प्रौढ़ा अधीरा नायिका, भाव, हेला हाव, वियोग श्रंगार तथा उत्तमा, मध्यमा एवं अधमा आदि नायिकाओं के केशव के लक्षण उपर्युक्त संस्कृत के किसी आचार्य के लक्षणों से नहीं मिलते। यह लक्षण केशव के अपने हैं। केशव ने नायिकाओं की संख्या में भी वृद्धि की है। केशव ने कामशास्त्र-सम्बन्धी ग्रंथों 'कामसूत्र', 'अनंगरंग' आदि के आधार पर जाति के अनुसार नायिकाओं का विभाजन किया है। 'अगम्या' नायिकाओं का वर्णन भी इन्हीं ग्रंथों के आधार पर किया गया है। संस्कृत के आचार्यों ने नायिका-भेद के अन्तर्गत जाति के अनुसार नायिकाओं का विभाजन अथवा अगम्या-वर्णन नहीं किया है। केशव ने नायक-नायिका के जिन मिलन-स्थानों अथवा अवसरों का वर्णन किया है, उनका वर्णन भी उपर्युक्त संस्कृत के किसी आचार्य ने नहीं किया है। इसी प्रकार सखीजन-कर्म-वर्णन के अन्तर्गत सखी द्वारा नायक-नायिका को शिक्षा देना, विनय करना, मनाना, मिलाना, श्रृंगार करना, झुकाना तथा उराहना देना आदि कर्मों का वर्णन भी मौलिक है। हावों में भी केशव के 'बोध' हाव का वर्णन उपर्युक्त संस्कृत ग्रंथों में नहीं मिलता।

रसविवेचन के क्षेत्र में केशव अलंकार-क्षेत्र की अपेक्षा अधिक सफल हुये हैं, किन्तु फिर भी वह पूर्ण रूप से सफल नहीं कहे जा सकते। इस सम्बन्ध में प्रथम दोष यह है कि केशव के कुछ लक्षणों का भाव अस्पष्ट है, जैसे अनुभाव, हाव का सामान्य लक्षण तथा कुट्ट-मित, विलास आदि हावों का लक्षण, एवं करुण विप्रलंभ का लक्षण आदि। लक्षणों की अस्पष्टता का प्रमुख कारण यह है कि लक्षण देने के लिये दोहे के समान छोटा छंद चुना गया है। उसकी सीमा के अन्दर व्यापक परिभाषा के लिये अवसर न था। कुछ लक्षण भ्रामक भी हैं, किन्तु ऐसे लक्षण दो ही चार हैं, जैसे केशव का 'स्मृति' का निम्नलिखित लक्षण 'अभिलाष' का लक्षण प्रतीत होता है :

'और कछू न सुहाय जहं, भूलि जाहि सब काम।
मन मिलिबे की कामना, ताहि स्मृति है नाम' ॥[1]

इसी प्रकार 'करुण विरह' का लक्षण भी भ्रामक है, यथाः

'छूटि जात केशव जहाँ, सुख के सबै उपाय।
करुणा रस उपजत तहां, आपुन से अकुलाय' ॥[2]

कुछ स्थलों पर लक्षणों और उदाहरणों में भी समन्वय नहीं है। केशव के अनुसार 'प्रौढ़ा लब्धापति' नायिका वह है जो पति तथा कुल के अन्य सब मनुष्यों की 'कानि' करती है,[3]

१. रसिकप्रिया, छं० सं० २१, पृ० सं० १२८।
२. रसिकप्रिया, छं० सं० १, पृ० सं० ११३।
३. रसिकप्रिया, छं० सं० ४८, पृ० सं० ५३।

किन्तु केशव के उदाहरण में नायिका की 'कानि' का कोई वर्णन नहीं है। केशव का उदाहरण है :

'आजु विराजति है कहि केशव श्रीवृषभानुकुमारि कन्हाई।
बानी विरंचि वहीक्रम काम रची जो बरी सो वधू न बनाई।
अंग विलोकि त्रिलोक में ऐसी जो नारि निहारि न नार बनाई।
मूरतिवन्त श्रृंगार समीप श्रृंगार किये जानो सुन्दरताई'॥[1]

केशव तथा हिन्दी के अन्य रीतिकार

हिन्दी भाषा के प्रमुख कवि-आचार्य :

विभिन्न भाषा-साहित्य के इतिहासों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि लक्ष्य-ग्रंथों की रचना के बाद लक्षण-ग्रंथों की रचना का समय आता है। तुलसी तथा सूर के समय तक हिन्दी-काव्य-कला अपने चरम उत्कर्ष को प्राप्त कर चुकी थी। उसके बाद के काल में कवियों का ध्यान लक्षण-ग्रंथों की ओर जाना स्वाभाविक ही था। प्रस्तुत प्रकरण के आरम्भ में कहा जा चुका है कि हिन्दी में लक्षण ग्रंथों का सूत्रपात केशव के पूर्व हो चुका था। केशव ने काव्य के विभिन्न अंगों का शास्त्रीय ढंग से विस्तृत विवेचन कर इस क्षेत्र में पथप्रदर्शन किया। इसके बाद इनके दिखलाये हुये मार्ग पर चलने वाले अनेक कवि-आचार्य हुये जिन्होंने काव्य-शास्त्र के विविध अंगों का विवेचन किया। इनमें चिन्तामणि, भूषण, मतिराम, जसवन्त सिंह, कुलपति मिश्र, देव, श्रीपति, भिखारीदास, दूलह, पद्माकर, ग्वाल, बेनी प्रवीन तथा प्रतापसाहि हिन्दी भाषा के प्रमुख आचार्य हैं। इन आचार्यों में से कुछ ने प्रमुख-रूप से भाव, रस तथा नायिका-भेद का विवेचन किया है। उनका अलंकार-निरूपण अपेक्षाकृत कम है। इतर आचार्यों ने प्रमुख-रूप से अलंकारों का ही वर्णन किया है। मतिराम, कुलपति, देव, श्रीपति, पद्माकर, ग्वाल तथा प्रतापसाहि प्रथम श्रेणी के आचार्यों के अन्तर्गत हैं और भूषण, जसवंत सिंह, भिखारीदास तथा दूलह द्वितीय कोटि के अन्तर्गत।

अलंकार-ग्रंथों की रचना की मुख्य शैलियाँ :

अलंकार-ग्रंथों की रचना की मुख्य चार शैलियाँ हैं। कुछ आचार्यों ने दोहों में ही लक्षण तथा उदाहरण लिखे हैं। कुछ ने बड़े छंदों में दोनों लिखे हैं। कुछ ने लक्षण दोहों तथा उदाहरण बड़े छंदों में लिखे हैं तथा कुछ ने लक्षण अपने और उदाहरण दूसरों के दिये हैं। जसवंतसिंह का 'भाषाभूषण' प्रथम शैली का ग्रंथ है। दूलह का 'कविकुल-कंठाभरण, दूसरी शैली पर लिखा गया है। केशव के 'कविप्रिया' तथा 'रसिकप्रिया' तीसरी शैली के ग्रंथ हैं तथा श्रीपति का 'काव्यसरोज' चौथी शैली पर लिखा गया है।

तुलनात्मक अध्ययन :

आगे के पृष्ठों में दोनों श्रेणियों के प्रमुख तीन-तीन आचार्यों से केशवदास जी की तुलना करने का प्रयास किया गया है। अलंकार-निरूपण के क्षेत्र में भूषण, जसवंतसिंह तथा

१. रसिकप्रिया, छं० सं० ४१, पृ० स० ४३।

भिखारीदास से केशवदास जी की तुलना की गई है तथा भाव, रसनिरूपण और नायिका-भेद-वर्णन के क्षेत्र में मतिराम, देव तथा पद्माकर से।

अलंकार-विवेचन

भूषण तथा केशव :

भूषण का वास्तविक नाम अज्ञात है। 'भूषण' इनकी उपाधि थी जो इन्हें चित्रकूट के सोलंकी राजा रुद्र द्वारा प्रदान की गई थी। इनका जन्मकाल सं० १६७० तथा मृत्युकाल १७७२ वि० माना गया है। भूषण यद्यपि वस्तुतः कवि ही थे किन्तु यह उस समय का प्रभाव था कि इन्होंने अपने आश्रयदाता प्रसिद्ध छत्रपति शिवा जी की प्रशंसा में लिखे हुये 'शिवराज-भूषण' ग्रंथ को एक अलंकार-ग्रंथ के रूप में लिखा। 'शिवाबावनी' तथा 'छत्रसाल-दशक' इनके अन्य छोटे-छोटे ग्रंथ हैं, जो शुद्ध काव्य-ग्रंथ हैं। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त इनके तीन ग्रन्थ और कहे जाते हैं, 'भूषण-उल्लास', 'दूषण-उल्लास' तथा 'भूषण-हजारा' जो इस समय अप्राप्य हैं, अतएव इनके विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

भूषण ने अलंकार-शास्त्र से इतर काव्य-शास्त्र के किसी अन्य अंग पर कुछ नहीं लिखा है। इससे ज्ञात होता है कि यह कदाचित् अलंकार-सिद्धान्त के ही अनुयायी थे। इन्होंने शब्दालंकार तथा अर्थालंकार दोनों का वर्णन किया है। स्वयं भूषण के अनुसार 'शिवराज-भूषण' नामक ग्रन्थ में इन्होंने १०५ अलङ्कारों का वर्णन किया है।[1] ग्रंथ के अन्त में भूषण ने स्ववर्णित अलंकारों की सूची भी दी है।[2] इस सूची के अनुसार भूषण ने निम्नलिखित अलंकारों का वर्णन किया है :

१. उपमा २. अनन्वय ३. प्रतीप ४. उपमेयोपमा ५. मालोपमा ६. ललितोपमा ७. रूपक ८. परिणाम ९. उल्लेख १०. स्मृति ११. भ्रम १२. सन्देह १३. शुद्धापन्हुति १४. हेतु अपन्हुति १५. पर्यस्तापन्हुति १६. भ्रान्तापन्हुति १७. छेकापन्हुति १८. कैतवापन्हुति १९. उत्प्रेक्षा २०. रुपकातिशयोक्ति २१. भेदकातिशयोक्ति २२. अक्रमातिशयोक्ति २३. चंचलातिशयोक्ति २४. अत्यन्तातिशयोक्ति २५. सामान्यविशेष २६. तुल्ययोगिता २७. दीपक २८. दीपकावृत्ति २९. प्रतिवस्तूपमा ३०. दृष्टान्त ३१. निदर्शन ३२. व्यतिरेक ३३. सहोक्ति ३४ विनोक्ति ३५. समासोक्ति ३६. परिकर ३७. परिकरांकुर ३८. श्लेष ३९. अप्रस्तुतप्रशंसा ४०. पर्यायोक्ति ४१. व्याजस्तुति ४२. आक्षेप ४३ विरोध ५४. विरोधाभास ४५. विभावना, ४६. विशेषोक्ति ४७. असंभव ४८. असंगति ४९. विषम ५०. सम ५१. विचित्र ५२. प्रहर्षण ५३. विषादन ५४. अधिक ५५. अन्योन्य ५५. विशेष ५७. व्याघात ५८. गुंफ ५९. एकावली ६०. मालादीपक ६१. यथासांख्य ६२. पर्याय ६३. परिवृत्त ६४. परिसंख्या ६५. विकल्प ६६. समाधि ६७. समुच्चय ६८. प्रत्यनीक ६९. अर्थापत्ति ७०. काव्यलिंग ७१. अर्थान्तरन्यास ७२. प्रौढ़ोक्ति

१. 'जुत चित्र संकर एक सत भूषन कहे अरु पांच।
लखि चारु ग्रन्थन निज मतौ जुत सुकवि मानहु सांच' ॥३७१॥
शिवराज-भूषण, पृ० सं १२३

२. शिवराज-भूषण, छं० सं० ३७०-३७८, पृ० सं० १२१-१२३।

७३. संभावना ७४. मिथ्याध्यवसित ७५. उल्लास ७६. अवज्ञा ७७. अनुज्ञा ७८. लेश ७९. तद्गुण ८१. अतद्गुण ८२. अनुगुण ८३. मीलित ८४. उन्मीलित ८५. सामान्य ८६. विशेष ८७. पिहित ८८. प्रश्नोत्तर ८९. व्याजोक्ति ९०. लोकोक्ति ९१. छेकोक्ति ९२. वक्रोक्ति ९३. स्वभावोक्ति ९४. भाविक ९५. भाविकछवि ९६. उदात्त ९७. अत्युक्ति ९८. निरुक्ति ९९. हेतु १००. अनुमान १०१. अनुप्रास १०२. यमक १०३. पुनरुक्तिवदाभास १०४. चित्र तथा १०५. संकर। इस सूची के देखने से ज्ञात होता है कि भूषण ने उपमा, अपन्हुति तथा अतिशयोक्ति के भेदों को भी स्वतंत्र अलंकार माना है।

'शिवराज-भूषण' में वर्णित अलङ्कारों में से उपमा, रुपक, अपन्हुति, उत्प्रेक्षा, दीपक, निदर्शन, व्यतिरेक, सहोक्ति, श्लेष, पर्यायोक्ति, व्याजस्तुति, आक्षेप, विरोध, विरोधाभास, विभावना, विशेष, परिवृत्त, अर्थान्तरन्यास, लेश, वक्रोक्ति, स्वभावोक्ति तथा हेतु केशव की 'कविप्रिया' में भी वर्णित हैं। भूषण द्वारा बतलाये हुये शेष अलङ्कारों को केशव ने छोड़ दिया है। शब्दालंकारों में भूषण ने चार अलङ्कार छेकानुप्रास, लाटानुप्रास, यमक तथा पुनरुक्तिवदाभास गिनाये हैं। इनमें से केशव ने केवल यमक का ही वर्णन किया है। अनुप्रास को केशव अलङ्कार मानते ही न थे। 'पुनरुक्तिवदाभास' को उन्होंने छोड़ दिया है। चित्रालङ्कार के अन्तर्गत केशव ने विस्तृत विवेचन किया है किन्तु भूषण ने केवल यही कहा है कि 'कामधेनु' आदि अनेक चित्रालङ्कार होते हैं, और कामधेनु का ही उदाहरण देकर दिग्दर्शन[1] मात्र करा दिया है। केशव ने अलंकार-संकर का वर्णन नहीं किया है। भूषण ने अलंकार-संकर का वर्णन करते हुये लिखा है कि जहाँ एक छंद में कई अलंकार प्रयुक्त हों वहाँ अलंकार-संकर होता है।[2] केशव के क्रम, गणना, आशिष, प्रेम, सूक्ष्म, ऊर्जस, रसवत, अन्योक्ति, व्यधिकरणोक्ति, विशेषोक्ति, सहोक्ति, अमित, युक्त, प्रसिद्ध, सुसिद्ध, विपरीत, तथा प्रहेलिका आदि अलङ्कारों का 'शिवराज-भूषण' में कोई उल्लेख नहीं है।

'कविप्रिया' तथा 'शिवराज-भूषण' नामक ग्रंथों में जिन अलङ्कारों का समान रूप से वर्णन है, उनमें दोनों आचार्यों द्वारा दिये कुछ अलङ्कारों के लक्षण का भाव एक ही है और कुछ लक्षणों में अन्तर है। भूषण ने उपमा के दो ही भेद पूर्णोपमा तथा लुप्तोपमा का वर्णन किया है, केशव ने उपमा के २१ भेद बतलाये हैं। मालोपमा तथा ललितोपमा आदि उपमा के भेदों को भूषण ने पृथक अलङ्कार माना है। केशव की 'परस्परोपमा' तथा भूषण की 'उपमेयोपमा' के लक्षणों का एक ही भाव है। भूषण की 'ललितोपमा' केशव के उपमा के किसी भेद से नहीं मिलती। 'मालोपमा' का दोनों आचार्यों ने वर्णन किया है, किन्तु दोनों के लक्षण भिन्न हैं :

१. 'लिखे सुने अचरज बढ़ै, रचना होय विचित्र।
कामधेनु आदिक घने, भूषन बरनत चित्र' ॥३६६॥
शिवराजभूषण, पृ० सं० १२०

२. 'भूषन एक कवित्त में भूषन होत अनेक।
संकर ताको कहत हैं जिन्हें कवित की टेक' ॥३६८॥
शिवराजभूषण, पृ० सं० १२०।

केशव के अनुसार 'मालोपमा' का लक्षण है :

'जो जो उपमा दीजिये, सो सो पुनि उपमेय।
सो कहिये मालोपमा, केशव कविकुल गेय' ॥[१]

तथा भूषण की 'मालोपमा' का लक्षण है :

'जहाँ एक उपमेय के होत बहुत उपमान।
ताहि कहत मालोपमा भूषन सुकवि सुजान' ॥[२]

भूषण के भ्रम और सन्देह अलंकार क्रमशः केशव की 'मोहोपमा' तथा 'संशयोपमा' हैं। दोनों आचार्यों के लक्षणों का भाव प्रायः समान है। इसी प्रकार केशव की 'संकीर्णोपमा' भूषण की 'ललितोपमा' है। रूपक, अपन्हुति, उत्प्रेक्षा, श्लेष, व्यतिरेक आदि अलंकारों के दोनों आचार्यों के सामान्य लक्षणों का भाव एक है। भूषण ने 'रूपक' के न्यून तथा अधिक भेद किये हैं, केशव ने अद्भुत, विरुद्ध तथा रूपकरूपक। केशव ने 'अपन्हुति' के भेद नहीं दिये, भूषण ने छः भेद बतलाये हैं। इसी प्रकार 'उत्प्रेक्षा' के भी भेद केशव ने नहीं दिये हैं। भूषण ने वस्तूत्प्रेक्षा, फलोत्प्रेक्षा, हेतूत्प्रेक्षा तथा गम्यगुप्तोत्प्रेक्षा, यह चार भेद बतलाये हैं। भूषण ने 'श्लेष' के भेदों का उल्लेख नहीं किया है। केशव ने इसके विभिन्न भेद तथा रूप देते हुये इस अलंकार का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। व्यतिरेक अलंकार का भी भूषण ने उल्लेख नहीं किया है। केशव ने इसके दो भेद सहज और युक्ति व्यतिरेक बतलाये हैं। अर्थान्तरन्यास अलंकार के दोनों आचार्यों द्वारा दिये सामान्य लक्षण में सूक्ष्म अन्तर है किन्तु प्रतीत होता है कि भूषण को केशव का ही मत मान्य है। केशव का लक्षण है :

'और आनिये अर्थ जहं औरै वस्तु बखानि।
अर्थान्तर को न्यास यह चार प्रकार सुजान' ॥[3]

भूषण का लक्षण है :

'कह्यो अरथ जहं ही लियो, और अरथ उल्लेख।
सो अर्थान्तरन्यास है, कहि सामान्य विसेख' ॥[४]

भूषण ने 'अर्थान्तरन्यास' के दो भेद सामान्य तथा विशेष बतलाये हैं किन्तु केशव ने चार भेदों युक्त, अयुक्त, अयुक्तायुक्त तथा युक्त-अयुक्त का वर्णन किया है। 'यमक' को भूषण ने अनुप्रास माना है, केशव ने ऐसा नहीं किया है। दोनों के लक्षणों का भाव समान है। केशव ने इस अलंकार का वर्णन बहुत विस्तार से किया है।

व्याजोक्ति, विरोधाभास, विशेषोक्ति तथा वक्रोक्ति अलंकारों के भूषण तथा केशव दोनों आचार्यों के लक्षणों का भाव एक है। केशव के आक्षेप अलंकार के सामान्य लक्षण तथा भूषण के प्रथम 'आक्षेप' के लक्षण में भाव-साम्य है। भूषण ने 'आक्षेप' के दो भेद

१. कविप्रिया, छं० सं० ४३, पृ० सं० ३६८।
२. शिवराजभूषण, छं० सं० ५५, पृ० सं० १७।
३. कविप्रिया, छं० सं० ६५, पृ० सं० २८४।
४. शिवराज-भूषण, छं० सं० २६३, पृ० सं० ८५।

प्रथम तथा द्वितीय बतलाये हैं किन्तु केशव ने 'आक्षेप' के अनेक भेद किये हैं, और इस अलंकार का बहुत विस्तार से वर्णन किया है। केशव ने विभावना अलंकार के दो भेद प्रथम और द्वितीय बतलाये हैं। भूषण ने चार भेदों का वर्णन किया है। केशव की 'विभावना' का सामान्य लक्षण तथा भूषण की प्रथम विभावना और केशव की द्वितीय विभावना तथा भूषण की अहेतु अथवा तीसरी विभावना के लक्षणों में साम्य है। भूषण की दूसरी 'विभावना' का लक्षण केशव के 'विशेष' के लक्षण से मिलता है। भूषण की दूसरी विभावना का लक्षण है:

'जहाँ हेतु पूरन नहीं उपजत है पर काज'॥[1]

यही भाव केशव के 'विशेष' अलंकार के लक्षण का भी है:

'साधक कारण विकल जहं, होय साध्य की सिद्धि।
केशवदास बखानिये, सो विशेष परसिद्ध'॥[2]

'परिवृत्त' अलंकार का दोनों आचार्यों का लक्षण भिन्न है। भूषण के 'विषादन' अलंकार का लक्षण केशव के 'परिवृत्त' के लक्षण से मिलता है। भूषण के 'विषादन' का लक्षण है:

'जहं चित चाहे काज ते, उपजत काज विरुद्ध।
ताहि विषादन कहत हैं, भूषन बुद्धि विसुद्ध'॥[3]

केशव के 'परिवृत्त' का भी प्रायः यही लक्षण है:

'जहाँ करत कछु और ही, उपजि परत कछु और।
तासों परिवृत जानिये, केशव कवि सिरमौर'॥[4]

दीपक, सहोक्ति, निदर्शन (निदर्शना), पर्यायोक्ति, विरोध, मालादीपक, लेश तथा स्वभावोक्ति आदि अलंकारों के दोनों आचार्यों के लक्षण भिन्न हैं।

जसवंतसिंह तथा केशव:

जसवंतसिंह मारवाड़ के महाराज गजसिंह के द्वितीय पुत्र थे और सं० १६६५ वि० में अपने पिता की मृत्यु के बाद सिंहासनासीन हुये थे। इनका जन्म सं० १६८२ वि० के लगभग माना जाता है। मुगल सम्राट औरंगजेब के समय यह गुजरात के सूबेदार नियुक्त किये गये थे। सम्राट ने इन्हें अफगानों को सर करने के लिये काबुल भेजा था, जहा सं० १७३८ वि० में आपकी मृत्यु हुई।

जसवंतसिंह जी ने यद्यपि काव्यशास्त्र-संबन्धी केवल एक ही ग्रंथ 'भाषा-भूषण' लिखा है, किन्तु फिर भी आप हिन्दी के प्रधान आचार्यों में गिने जाते हैं। हिन्दी के अधिकांश आचार्य प्रमुख रूप से कवि थे, किन्तु आपने यह ग्रंथ आचार्य-रूप में लिखा है, यह आपकी

१. शिवराज-भूषण, छं० सं० १८७, पृ० सं० ६१।
२. कविप्रिया, छं० सं० २४, पृ० सं० १६२।
३. शिवराज-भूषण, छं० सं० २१९, पृ० सं० ७०।
४. कविप्रिया, छं० सं० २१, पृ० सं० ३१८।

विशेषता है। यह ग्रंथ अलंकारों पर लिखा गया है। इसके अतिरिक्त उनके अन्य ग्रंथ अपरोक्ष-सिद्धान्त, अनुभव-प्रकाश, आनन्दविलास, सिद्धान्त-बोध, सिद्धान्तसार तथा प्रबोधचन्द्रोदय (नाटक) आदि तत्वज्ञान-सम्बन्धी ग्रंथ हैं।

जसवन्तसिंह ने अपने ग्रंथ 'भाषाभूषण' में यद्यपि प्रारम्भ में नायक-नायिका-भेद, सात्विक भाव, हाव, विरह की दस दशायें, नवरस, स्थायीभाव, उद्दीपन, आलम्बन विभाव, अनुभाव तथा संचारी भावों का संक्षेप में वर्णन किया है किन्तु फिर भी मुख्यतया यह अलंकार ग्रंथ ही है। इस ग्रंथ में १०८ अलंकारों का वर्णन किया गया है। अधिकांश अर्थालंकारों का ही वर्णन है। शब्दालंकारों में केवल छः प्रकार के अनुप्रास का वर्णन है। उपमा, रूपक, अपन्हुति, उत्प्रेक्षा, दीपक, निदर्शना, व्यतिरेक, सहोक्ति, पर्यायोक्ति, व्याजस्तुति, व्याजनिंदा, आक्षेप, विरोधाभास, विभावना, विशेषोक्ति, विशेष, परिवृत्ति, अर्थान्तरन्यास, चित्र, सूक्ष्म, वक्रोक्ति, स्वभावोक्ति तथा हेतु अलंकारों का वर्णन 'कविप्रिया' तथा 'भाषाभूषण' दोनों ग्रंथों में मिलता है ,किन्तु विभिन्न अलंकारों के भेद तथा लक्षण प्रायः भिन्न हैं। केशव ने 'उपमा' के बाइस भेद बतलाये हैं। जसवंतसिंह ने केवल दो भेदों पूर्णोपमा तथा लुप्तोपमा का वर्णन किया है। इसी प्रकार केशव के बतलाये हुये हेतु, श्लेष, रूपक, दीपक, व्यतिरेक, आक्षेप तथा अर्थान्तरन्यास अलंकारों के भेदों का भी 'भाषाभूषण' में कोई वर्णन नहीं है। इनके अतिरिक्त केशव के विरोध, क्रम, गणना, आशिष, प्रेम, लेश, ऊर्जस, रसवत, अन्योक्ति, व्यधिकरणोक्ति अमित, युक्त, समाहित, सुसिद्ध, प्रसिद्ध, विपरीत तथा प्रहेलिका आदि अलंकारों का जसवतसिंह ने वर्णन नहीं किया है। 'यमक' को जसवंतसिंह ने अनुप्रास के ही अन्तर्गत माना है और उसे यमकानुप्रास कहा है। केशव अनुप्रास अलंकार नहीं मानते तथा यमक को उन्होंने स्वतंत्र अलंकार माना है।

प्रतीप, रूपक, अपन्हुति, उत्प्रेक्षा, पर्यायोक्ति, विभावना तथा विशेष आदि अलंकारों का 'भाषा-भूषण' में 'कविप्रिया' की अपेक्षा अधिक सांगोपांग वर्णन है। जसवंतसिंह ने इन अलंकारों के भेदों का भी वर्णन किया है, जो केशव ने नहीं किया है। इनके अतिरिक्त अनन्वय, उपमानोपमेय, परिणाम, उल्लेख, स्मरण, भ्रम, संदेह, अतिशयोक्ति, तुल्ययोगिता, दीपकवृत्ति, प्रतिवस्तूपमा, दृष्टान्त, प्रस्तुतांकुर, विनोक्ति, समासोक्ति, परिकर, परिकरांकुर, अप्रस्तुत, असम्भव, असंगति, विषम, सम, विचित्र, अधिक, अल्प, अन्योन्य, व्याघात, कारणमाला, एकावली, मालादीपक, सार, यथासंख्य, पर्याय, परिसंख्या, विकल्प, समुच्चय, कारकदीपक, समाधि, प्रत्यनीक, काव्यर्थापत्ति, काव्यलिंग, विकस्वर, प्रौढ़ोक्ति, संभावना, मिथ्याध्यवसित, ललित, उल्लास, अवज्ञा, अनुज्ञा, लेख, मुद्रा, रत्नावली, तद्गुण, पूर्वरूप, अतद्गुण, अनुगुण, मीलित, सामान्य, उन्मीलित, विशेषक, गूढ़ोत्तर, पिहित, व्याजोक्ति, गूढोक्ति, विवृतोक्ति, युक्ति, लोकोक्ति, छेकोक्ति, भाविक, उदात्त, अत्युक्ति, निरुक्ति, प्रतिषेध तथा विधि अलंकारों का 'भाषा-भूषण' में 'कविप्रिया' की अपेक्षा अधिक वर्णन है। लक्षणों से ज्ञात होता है कि केशव के पर्यायोक्ति तथा परिवृत्त अलंकार जसवंतसिंह के क्रमशः प्रथम प्रहर्षण और विषाद अलंकार हैं। केशव की 'पर्यायोक्ति' का लक्षण है :

'कौनहु एक अदृष्ट ते, अनही किये जु होय ।
सिद्धि आपने इष्ट की, पर्यायोकति सोय' ॥[१]

जसवंतसिंह के प्रथम 'प्रहर्षण' के लक्षण का भी यही भाव है :

'जतन बिनु बांछित फल जो होइ' ।[२]

इसी प्रकार केशव के 'परिवृत्त' का लक्षण है :

'जहाँ करत कछु और ही, उपजि परत कछु और ।
तासों परिवृत्त जानिये, केशव कवि सिरमौर' ॥[३]

जसवंतसिंह के 'विषाद' अलंकार के लक्षण का भी यही भाव है :

'सो विषाद चित चाह ते, उलटो कछु ह्वै जाइ' ।[४]

इसी प्रकार केशव की परस्परोपमा, संशयोपमा तथा मोहोपमा क्रमशः जसवंतसिंह के उपमानोपमेय, संदेह तथा भ्रम अलंकार हैं ।

जिन अलंकारों का 'भाषा-भूषण' तथा 'कविप्रिया' दोनों ग्रंथों में वर्णन है, उनमें से जिन अलंकारों का जसवंतसिंह ने भेदों-सहित वर्णन किया है, उनमें अधिकांश के सामान्य लक्षण उन्होंने नहीं दिये हैं, जैसे रूपक, अपन्हुति, उत्प्रेक्षा, निदर्शना, तथा आक्षेप अलंकार। व्यतिरेक, श्लेष, व्याजस्तुति, विरोधाभास, सूक्ष्म, वक्रोक्ति तथा स्वभावोक्ति आदि अलंकारों के दोनों आचार्यों के लक्षणों का भाव एक ही है । केशव ने हेतु अलंकार का सामान्य लक्षण न देकर केवल भेदों का दिया है । जसवंतसिंह के अनुसार हेतु अलंकार का लक्षण है :

'हेतु अलंकृत होइ जब, कारन कारज संग ।
कारन कारज ये सबै, बसत एक ही अंग' ॥[५]

इसी प्रकार चित्रालंकार का भी सामान्य लक्षण केशव ने नहीं दिया है । जसवंतसिंह के अनुसार चित्रालंकार वहाँ होता है, जहाँ एक ही वचन में प्रश्न तथा उत्तर दोनों हों ।[६] केशव ने प्रश्नोत्तर अलंकार को चित्रालंकार का एक भेद माना है । अर्थान्तरन्यास अलंकार का दोनों आचार्यों का लक्षण भिन्न है। जसवंतसिंह के अनुसार अर्थान्तरन्यास का लक्षण है:

'विशेष ते सामान्य दृढ़ तब अर्थान्तरन्यास' ।[७]

किन्तु केशव का लक्षण है :

'और अनिये अर्थ जहं, औरे वस्तु बखानि ।
अर्थान्तर को न्यास यह, चार प्रकार सुजान' ॥[८]

---

१. कविप्रिया, छं० सं० ६६, पृ० सं० ३१८ ।
२. भाषा-भूषण, छं० सं० १६०, पृ० सं० ३२ ।
३. कविप्रिया, छं० सं० ६३, पृ० सं० ३४१ ।
४. भाषा-भूषण, छं० सं० १६३, पृ० सं० ३२ ।
५. भाषा-भूषण, छं० सं० १६७, पृ० सं० ३६ ।
६. 'चित्र प्रश्न उत्तर दुहूँ, एक वचन में सोइ' । भाषाभूषण, पृ० सं० ३४ ।
७. भाषा-भूषण, पृ० सं० ३१ ।
८. कविप्रिया, छं० सं० ६५, पृ० सं० २८४ ।

भिखारीदास तथा केशव :

भिखारीदास जी प्रतापगढ़ (अवध) के निकटवर्ती ट्योंगा ग्राम-निवासी श्रीवास्तव कायस्थ थे। आपने अपना वंश-परिचय देते हुये अपने पिता का नाम कृपालदास दिया है। दास जी के रससारांश, छंदोर्णव-पिंगल, काव्यनिर्णय, श्रृंगारनिर्णय, नाम-प्रकाश (कोष), विष्णुपुराण भाषा, छंद-प्रकाश, शतरंज-शतिका तथा अमर-प्रकाश (संस्कृत अमर-कोष-भाषा पद्य में) आदि ग्रंथ उपलब्ध हैं। इनमें 'काव्य-निर्णय' सबसे अधिक प्रसिद्ध है। आचार्य रामचन्द्र जी शुक्ल ने अपने 'हिन्दी-साहित्य के इतिहास' में इनका कविताकाल सं० १७८५ से १८०७ वि० तक माना है।[1]

काव्यांगों के निरूपण में दास जी को सर्वप्रधान स्थान दिया जाता है क्योंकि इन्होंने छंद, रस, अलंकार, रीति, गुण, दोष, शब्दशक्ति आदि सब विषयों का प्रतिपादन किया है। इनके 'काव्यनिर्णय' नामक ग्रंथ में लक्षणा, व्यंजना, रस, भाव, अनुभाव, अपरांग, ध्वनि, गुणीभूतव्यंग, अलंकार, चित्रकाव्य तथा गुणदोषादि कविता के प्रायः सभी अंगों का वर्णन है। आचार्य ने रस और उसके अंगों का वर्णन बहुत संक्षेप में किया है। इस विषय का वर्णन इनके अन्य ग्रंथों 'रससारांश' तथा 'श्रृंगारनिर्णय' आदि में हुआ है। 'काव्यनिर्णय' प्रमुख रूप से अलंकार-ग्रंथ है और विभिन्न अलंकारों का वर्णन इस ग्रंथ में बहुत सांगोपांग और विस्तार से किया गया है।

भिखारीदास जी ने प्रधान अलंकार के नाम से एक वर्ग बना कर उससे सम्बन्ध रखने वाले अलंकारों को उस वर्ग में रखा है। पूर्णोपमा, लुप्तोपमा, अनन्वय, उपमेयोपमा, प्रतीप, श्रोतीउपमा, दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास, विकस्वर, निदर्शना, तुल्ययोगिता तथा प्रतिवस्तूपमा यह बारह अलंकार उपमानउपमेय के ही विभिन्न विकार हैं। अतएव इनको दास जी ने 'उपमा' वर्ग के अन्तर्गत माना है। इन्होंने यद्यपि 'मालोपमा' का भी इस वर्ग के अन्तर्गत विवेचन किया है, किन्तु उसे पृथक अलंकार नहीं माना है। लुप्तोपमा के भेदों में धर्म-लुप्तोपमा, उपमान-लुप्तोपमा, वाचकलुप्तोपमा, उपमेय-लुप्तोपमा, वाचक-धर्मलुप्तोपमा, उपमेय-धर्म-लुप्तोपमा तथा उपमेय-धर्म-वाचक-लुप्तोपमा का विवेचन किया गया है। दास जी ने 'प्रतीप' के प्रथम, द्वितीय आदि पाँच भेद बतलाये हैं। इसी प्रकार दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास, निदर्शना तथा तुल्ययोगिता अलंकारों का भी सांगोपांग सूक्ष्म वर्णन किया गया है।

उत्प्रेक्षा, अपन्हुति, स्मरण, भ्रम तथा सन्देह अलंकार एक वर्ग में रखे गये हैं। 'उत्प्रेक्षा' के चार भेद बतलाये गये हैं, वस्तूत्प्रेक्षा, हेतूत्प्रेक्षा, फलोत्प्रेक्षा, तथा लुप्तोत्प्रेक्षा। वस्तूत्प्रेक्षा के फिर दो उपभेद उक्त विषया और अनुक्त-विषया; तथा फलोत्प्रेक्षा के भी यही दो उपभेद बतलाये गये हैं। दास जी ने 'अपन्हुति' के छः भेदों शुद्धापन्हुति, हेत्वापन्हुति, पर्यस्तापन्हुति, छेकापन्हुति तथा कैतवापन्हुति का उल्लेख किया है।

तीसरा वर्ग व्यतिरेक, रूपक तथा उल्लेख अलंकारों का है। परिणाम अलंकार का वर्णन भी इसी वर्ग के अन्तर्गत किया गया है। व्यतिरेक अलंकार में कभी उपमेय का पोषण तथा उपमान का दूषण होता है, कभी केवल पोषण अथवा दूषण और कभी दोनों में से एक

---

1. हिन्दी-साहित्य का इतिहास, शुक्ल, पृ० सं० २४६।

भी नहीं। इस प्रकार पाँच भेद बतलाये गये हैं अर्थात् अधिक तद्रूप, हीन तद्रूप, सम तद्रूप अधिक अभेद तथा हीन अभेद। इनके अतिरिक्त तीन अन्य भेदों निरंग, परंपरित तथा समस्त-विषयक का भी वर्णन है। दास जी ने उपमा आदि से रूपक का सम्बन्ध जोड़ कर उपमावाचक, उत्प्रेक्षावाचक, परिणामवाचक, रूपक-रूपक तथा अपन्हुति-वाचक, ये रूप और दिये हैं और इस प्रकार मिश्रालंकारों की सृष्टि की है। उल्लेख अलंकार के दो भेदों का वर्णन किया गया है, जब एक ही वस्तु में भिन्न-भिन्न बातों का बोध हो तथा जहाँ एक ही वस्तु में अनेक गुणों का वर्णन किया गया हो।

अतिशयोक्ति, उदात्त, अधिक, अल्प तथा विशेष इन पाँच अलंकारों को एक वर्ग में रखा गया है। दास जी ने 'अतिशयोक्ति' के पांच भेद भेदकातिशयोक्ति, सम्बन्धातिशयोक्ति, चपलातिशयोक्ति, अक्रमातिशयोक्ति, तथा अत्यन्तातिशयोक्ति बतलाये हैं। 'अत्युक्ति' का भी अतिशयोक्ति के अन्तर्गत ही वर्णन किया गया है। अतिशयोक्ति के अन्य भेदों में सम्भावना अतिशयोक्ति, उपमा अतिशयोक्ति, सापन्ह्वातिशयोक्ति, रूपकातिशयोक्ति तथा उत्प्रेक्षा-तिशयोक्ति का वर्णन किया गया है। दास जी ने उदात्त, अधिक तथा विशेषालंकार के भेदों का भी वर्णन किया है।

अन्योक्तयादि वर्ग के अन्तर्गत दास जी ने अप्रस्तुत-प्रशंसा, प्रस्तुतांकुर, समासोक्ति, व्याजस्तुति, आक्षेप, पर्यायोक्ति, तथा अन्योक्ति को रखा है। 'अप्रस्तुतप्रशंसा' के पाँच भेद बतलाये गये हैं (१) कारज मिस कारन कथन (२) कारण मिस कारन कथन (३) सामान्य मिस विशेष कथन (४) विशेष मिस सामान्य कथन तथा (५) तुल्यप्रस्ताव कथन। दास जी ने 'आक्षेप' के तीन भेदों का उल्लेख किया है, उक्ताक्षेप, निषेधाक्षेप तथा व्यक्ताक्षेप। 'समासोक्ति' तथा 'पर्यायोक्ति' के भी सूक्ष्म भेद किये गये हैं।

विरुद्ध, विभावना, व्याघात, विशेषोक्ति, असंगति तथा विषम अलंकारों का एक वर्ग माना गया है। विरुद्धालंकार के ६ सूक्ष्म भेदों का वर्णन किया गया है (१) जाति से जाति का विरोध (२) जाति से क्रिया का विरोध (३) जाति से द्रव्य-विरोध (४) गुण से गुण-विरोध (५) क्रिया से क्रिया-विरोध (६) गुण से क्रिया-विरोध (७) गुण से द्रव्य-विरोध (८) क्रिया से द्रव्य-विरोध तथा (६) द्रव्य से द्रव्य-विरोध। दास जी ने 'विभावना' के प्रथम, द्वितीय आदि छः भेदों का वर्णन किया है। 'व्याघात' के भी प्रथम और द्वितीय दो भेद बतलाये गये हैं। 'असंगति' के तीन भेदों प्रथम, द्वितीय, तृतीय का वर्णन है। 'विषम' के भी दो भेदों प्रथम और द्वितीय का वर्णन किया गया है।

उल्लास, अवज्ञा, लेश, विचित्र, तद्गुण, पूर्वरूप, अनुगुण, मीलित, सामान्य, उन्मीलित तथा विशेषक आदि अलंकारों का एक वर्ग माना गया है। उल्लेख तथा अवज्ञा अलंकारों के प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ चार-चार भेद बतलाये गये हैं। 'लेश' के अन्तर्गत दोष को गुण और गुण को दोष मानना, इस प्रकार दो भेदों का कथन है।

सम, समाधि, परिवृत, भाविक, प्रहर्षण, विषादन, असम्भव, सम्भावना, समुच्चय, अन्योन्य, विकल्प, सहोक्ति, विनोक्ति, प्रतिषेध, विधि तथा काव्यर्थापत्ति इन सोलह अलंकारों का पृथक वर्ग माना गया है। 'सम' अलंकार के दो भेद प्रथम और द्वितीय किये गये हैं।

'भाविक' के दो भेद भूत तथा भविष्य भाविक बतलाये गये हैं। 'प्रहर्षण' के प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय तीन भेद किये गये हैं। 'समुच्चय' के दो भेदों प्रथम और द्वितीय का वर्णन है।

सूक्ष्म, पिहित, युक्ति, गूढ़ोत्तर, गूढ़ोक्ति, मिथ्याधिवसित, ललित, विवृतोक्ति, व्याजोक्ति परिकर, तथा परिकरांकुर अलंकारों को दास जी ने एक वर्ग में रखा है।

स्वभावोक्ति, हेतु, प्रमाण, काव्यलिंग, निरुक्ति, लोकोक्ति, छेकोक्ति, प्रत्यनीक, परिसंख्या तथा प्रश्नोत्तर अलङ्कारों का दास जी ने एक वर्ग माना है। प्रमाण अलङ्कार के प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, श्रुतिपुराणोक्ति, लोकोक्ति, आत्मतुष्टि, अनुपलब्धि, संभव, अर्थापत्ति तथा बचन आदि भेद बतलाये गये हैं। 'प्रत्यनोक' के दो भेदों शत्रुपक्षीय तथा मित्रपक्षीय का वर्णन किया गया है।

अन्तिम वर्ग में यथासंख्य, एकावली, कारनमाला, उत्तरोत्तर, रसनोपमा, रत्नावली, पर्याय तथा दीपक आदि अलङ्कारों का वर्णन है। दास जी ने 'पर्याय' के दो भेद संकोच तथा विकाशपर्याय बतलाये हैं। अर्थावृत्ति, पदार्थावृत्ति, देहरी दीपक तथा कारक दीपक आदि 'दीपक' के भेद बतलाये गये हैं।

'काव्यनिर्णय' ग्रंथ के उन्नीसवें उल्लास में 'गुण-निर्णय-वर्णन' के अन्तर्गत 'अनुप्रास' का वर्णन है। दास जी ने 'अनुप्रास' के छेकानुप्रास, वृत्यानुप्रास, तथा लाटानुप्रास भेदों का वर्णन किया है। इसी प्रकरण के अन्तर्गत पुनरुक्ति-प्रकाश, यमक, वीप्सा तथा सिंहावलोकन आदि शब्दालङ्कारों का भी वर्णन किया गया है। बीसवें उल्लास में दास जी ने श्लेष अलङ्कार को विरोधाभास, मुद्रा, वक्रोक्ति तथा पुनरुक्तवदाभास के साथ लेकर शब्दालङ्कार माना है और यह भी कहा है कि इसे कोई भी अर्थालङ्कार नहीं कहता।[1] 'अलङ्कार-पीयूष' ग्रन्थ के लेखक डा० रसाल इन सब शब्द से होने वाले अलङ्कारों को अर्थालङ्कारों में ही विशेष रूप से मानना ठीक समझते हैं।[2]

भिखारीदास जी ने 'काव्य-निर्णय' के इक्कीसवें उल्लास में चित्रालङ्कारों का वर्णन किया है और चित्रालङ्कारों में प्रश्नोत्तर चित्र, गुप्तोत्तर, व्यस्तसमस्तोत्तर, एकानेकोत्तर, नागपासोत्तर, क्रमव्यस्तसमस्त, कमलबद्धोत्तर, श्रृंखलोत्तर, चित्रोत्तर (१) अन्तरलापिका (२) बहिरलापिका; पाठान्तरचित्र (१) पाठान्तर चित्रलुप्त वर्णन (२) मध्यवर्ण लुप्त (३) परिवर्तित वर्ण, निरोष्ठमत्तचित्रोत्तर, अमत्तचित्रोत्तर, निरोष्ठमत्तचित्र, अजिह्व, नियमित वर्ण (एक वर्ण नियमित से सप्तवर्ण नियमित तक) लेखनीचित्र, खंगबन्ध, कमलबन्ध, कंकनबन्ध, डमरुबंध, चन्द्रबंध, चक्रबन्ध, धनुषबन्ध, हरिबन्ध, मुरुजबन्ध, पर्वतबंध, छत्रबंध, वृक्षबंध, कपाटबंध, अधर्गतागत त्रिपदी, मंत्रगति, अश्वगति, समुखबद्ध, सर्वतोमुख, कामधेनु, चरणगुप्त आदि का उल्लेख

१. 'श्लेष विरोधाभास है, शब्दालंकृत दास।
मुद्रा अरु वक्रोक्ति पुनि, पुनरुक्तवदाभास ॥१॥
इन पांचहु को अर्थ सों, भूषन कहैं न कोइ।
जदपि अर्थ भूषन सकल, सब्द सक्ति में होइ' ॥२॥
काव्यनिर्णय, पृ० सं० २०९

२. अलङ्कार-पीयूष, पूर्वार्ध, पृ० सं० २४१।

किया है। इनमें से कुछ के लक्षण और उदाहरण दोनों दिये हैं और कुछ के केवल उदाहरण।

भिखारीदास तथा केशवदास जी ने जिन अलङ्कारों का समान-रूप से वर्णन किया है वे हैं, उपमा, अर्थान्तरन्यास, निदर्शना, उत्प्रेक्षा, अपन्हुति, व्यतिरेक, रूपक, व्याजस्तुति, आक्षेप, विभावना, विशेषोक्ति, लेश, सहोक्ति, स्वभावोक्ति तथा मालदीपक। 'काव्यनिर्णय' में वर्णित अन्य अलङ्कारों का, जिनका उल्लेख पूर्वपृष्ठों में किया जा चुका है, केशव ने वर्णन नहीं किया है। दोनों आचार्यों के 'उपमा' के सामान्य लक्षण का भाव एक ही है किन्तु केशव का लक्षण अपेक्षाकृत अधिक पूर्ण है। दास जी के अनुसार 'उपमा' का लक्षण है :

'कहु काहू सम बरनिये उपमा सोई मानु'।[1]

केशव की 'उपमा' का लक्षण है :

'रूप शील गुण होय सम, जो क्योंहू अनुसार।
तासों उपमा कहत कवि, केशव बहुत प्रकार'॥[2]

दोनों आचार्यों के उपमा के भेद भिन्न हैं। केवल 'मालोपमा' का दोनों ने समान-रूप से वर्णन किया है किंतु दोनों के लक्षण भिन्न हैं। केशव की 'मालोपमा' का लक्षण है:

'जो जो उपमा दीजिये, सो सो पुनि उपमेय।
सो कहिये मालोपमा, केशव कवि कुल गेय'॥[3]

दास जी ने 'मालोपमा' के कई रूप दिये हैं :

'कहुँ अनेक की एक है, कहूँ है एक अनेक।
कहूँ अनेक अनेक की, मालोपमा विवेक'॥[4]

(१) भिन्न धर्मों से एक उपमेय के अनेक उपमान।
(२) एक धर्म से एक उपमेय के अनेक उपमान।
(३) अनेक उपमेयों के अनेक उपमान।
(४) अनेक उपमेय के एक उपमान।

केशव की 'अतिशयोपमा' तथा दास जी के 'अनन्वय' के उदाहरण देखने से ज्ञात होता है कि दास जी का 'अनन्वय' अलंकार केशव की 'अतिशयोपमा' है। इसी प्रकार केशव के 'संशयोपमा' तथा 'मोहोपमा' अलंकार क्रमशः दास जी के 'सन्देह' तथा 'भ्रम' अलङ्कारों से बहुत कुछ साम्य रखते हैं। केशव के अनुसार 'दूषणोपमा' वहाँ होती है जहाँ उपमानों के दोष बतला कर उपमेय की प्रशंसा की जाय।[5] दास जी के अनुसार उपमेय से उपमानों का अनादर अथवा हीनता प्रकट करना 'प्रतीप' अलङ्कार है।[6] इस प्रकार केशव की 'दूषणोपमा'

१. काव्यनिर्णय, पृ० सं० २३।
२. कविप्रिया, छं० सं० १, पृ० सं० ३४४।
३. कविप्रिया, छं० सं० ४३, पृ० सं० ३६८।
४. काव्यनिर्णय, छं० सं० १४, पृ० सं० ७१।
५. कविप्रिया, छं० सं० १४, पृ० सं० ३५०।
६. काव्यनिर्णय, छं० सं० ३४, पृ० सं० ७५।

दास जी के 'प्रतीप' से बहुत कुछ मिलती है। केशवदास जी द्वारा बतलाये हुये 'उपमा' के शेष भेद दास जी के उपमा के किसी भेद अथवा अन्य अलंकार से नहीं मिलते।

'अर्थान्तरन्यास' की सामान्य परिभाषा और उसके विभिन्न रूप दोनों आचार्यों के भिन्न हैं। दास जी ने आचार्य मम्मट के 'काव्यप्रकाश' ग्रंथ के आधार पर[1] इसका लक्षण और रूप यों दिये हैं :

'साधारण कहिये वचन, कछु अवलोकि सुभाय।
ताको पुनि दृढ़ कीजिये, प्रकट विशेषहि लाय॥
कै विशेष ही दृढ़ करै, साधारन कहि दास।
साधर्महि वैधर्म करि, यह अर्थान्तरन्यास'॥[2]

केशव ने इसकी परिभाषा में लिखा है :

'और आनिये अर्थ जहं, औरै वस्तु बखानि।
अर्थान्तर को न्यास यह, चारि प्रकार सुजानि'॥[3]

इस परिभाषा से ज्ञात होता है कि केशव ने इसे शब्द के अर्थ पर आधारित किया है। केशव के बतलाये हुये भेद भी दास जी से भिन्न हैं। निदर्शनालंकार की परिभाषा केशव के अनुसार निम्नलिखित है :

'कौनहु एक प्रकार से, सत अरु असत समान।
करिये प्रगट निदर्शना समुझत सकल सुजान'॥[4]

भिखारीदास जी ने सतसत भाव के साथ ही एक ही क्रिया से दूसरी क्रिया का दिखलाना भी 'निदर्शना' अलङ्कार माना है। केशव ने इसके भेद नहीं दिये हैं। दास जी ने इसका लक्षण और विभिन्न रूप इस प्रकार दिये हैं :

'एक क्रिया ते देत जहं, दूजी क्रिया लखाय।
सत असतहु से कहत हैं, निदर्शना कविराय॥
सम अनेक वाक्यार्थ को एक कहै धरि टेक।
एकै पद के अर्थ को थापै यह वह एक'॥[5]

दास जी के अनुसार 'उत्प्रेक्षा' वहाँ होती है 'जहाँ कछू कछु सो लगै समुझत देखत उक्त'।[6] केशव का लक्षण है :

'केशव औरै वस्तु में और कीजिये तर्क'।[7]

---

१. 'सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते।
यत्र सोऽर्थान्तरन्यास साधर्म्येणेतरेण वा'॥२३॥
काव्यप्रकाश, पृ० सं० २७३।

२. काव्यनिर्णय, छं० सं० ६०, ६१, पृ० सं० ८०।

३. कविप्रिया, छं० सं० ६१, पृ० सं० २८४।

४. कविप्रिया, छं० सं० ४६, पृ० सं० २७१।

५. काव्यनिर्णय, छं० सं० ७१, ७२, पृ० सं० ८२।

६. काव्यनिर्णय, छं० सं० १०, पृ० सं० २४।

७. कविप्रिया, छं० सं० ३०, पृ० सं० २००।

दोनों लक्षणों का भाव समान है यद्यपि दास जी का लक्षण अधिक व्यापक है। केशव ने 'उत्प्रेक्षा' के भेदों का उल्लेख नहीं किया है, दास जी ने किया है। दोनों आचार्यों के 'अपन्हुति' अलङ्कार के लक्षण का भी प्रायः एक ही भाव है। दास जी ने 'अपन्हुति' के भेद भी बयलाये हैं। केशव ने भेदों का वर्णन नहीं किया है। 'व्यतिरेक' अलङ्कार का लक्षण दोनों आचार्यों का भिन्न है और दोनों ने भिन्न भेदों का उल्लेख किया है। दोनों आचार्यों के 'रूपक' के सामान्य लक्षण का भाव समान है, यद्यपि दास जो का लक्षण अधिक स्पष्ट है। 'रूपक-रूपक' का दोनों ने वर्णन किया है, शेष भेद दोनों ने पृथक बतलाये हैं। 'व्याजस्तुति' अलङ्कार का दोनों आचार्यों का लक्षण एक ही है तथा दोनों ने ही जसवंतसिंह के समान व्याजस्तुति तथा व्याजनिंदा पृथक अलङ्कार न मान कर दोनों का वर्णन व्याजस्तुति नाम से किया है। 'आक्षेप' अलङ्कार की सामान्य परिभाषा और भेद दोनों आचार्यों के भिन्न हैं। केशव ने आक्षेप को कार्य-कारण तथा समय से सम्बद्ध मान कर प्रचलित लक्षण से भिन्न लक्षण दिया है, निषेध का भाव स्पष्ट-रूप से नहीं दिखलाया है। दास जी ने इसके तीन ही भेद बतलाये हैं। केशव ने नव भेद देकर इस अलङ्कार का अच्छा विकास किया है।

भिखारीदास जी का 'विरुद्ध' अलङ्कार केशव का 'विरोध' अलङ्कार है, किन्तु दोनों आचार्यों के लक्षण में अन्तर है। केशव ने भेदों का वर्णन नहीं किया है। दास जी ने मम्मट के अनुसार द्रव्य, जाति, गुण, क्रिया आदि के आधार पर इसके विभिन्न भेदों का वर्णन किया है। केशव के 'विरोधाभास' का दास जी ने उल्लेख नहीं किया है। केशवदास जी ने 'विभावना' अलङ्कार की दो परिभाषायें दी हैं, (१) कारण के बिना कार्य का उदय होना तथा (२) प्रसिद्ध से इतर कारण द्वारा कार्य का होना। इससे ज्ञात होता है कि इन्होंने इस अलङ्कार के दो भेद माने हैं। दास जी ने विभावना के छः भेद माने हैं। बिना कारण के कार्य की उत्पत्ति दास जी के अनुसार प्रथम विभावना है। केशव की दूसरी विभावना, दास जी की चतुर्थ विभावना है। दास जी द्वारा दिये शेष रूपों का केशव ने कोई वर्णन नहीं किया है। केशव के 'विशेषोक्ति' के लक्षण में कारण के पूर्णत्व का भाव विशेष है अन्यथा दोनों के लक्षणों का भाव प्रायः एक ही है। केशव का लक्षण है :

'विद्यमान कारण सकल, कारज होइ न सिद्ध।
सोई उक्ति विशेषमय, केशव परम प्रसिद्ध' ॥[1]

दास जी का लक्षण है :

'हेतु घनेहू काज नहिं, विशेषोक्ति न संदेह'।[2]

लेशालङ्कार का वर्णन दोनों आचार्यों ने किया है किन्तु लक्षण भिन्न हैं। इसी प्रकार दोनों आचार्यों के 'सहोक्ति' अलंकार के लक्षणों में भी अन्तर है। दास जी की अपेक्षा केशव की परिभाषा अधिक स्पष्ट है। दोनों आचार्यों का 'स्वभावोक्ति' का लक्षण प्रायः एक ही है। केशव का लक्षण है :

१. कविप्रिया, छं० सं० १४, पृ० सं० ३०७।
२. काव्यनिर्णय, छं० सं० ३४, पृ० सं० १३५।

'जाको जैसो रूप गुण, कहिये ताही साज।
तासों जानि स्वभाव सब, कहि बरणत कविराज' ॥[1]

यही लक्षण दास जी ने भी दिया है :

'जाको जैसो रूप गुन, बरनत ताही साज।
तासों जाति स्वभाव कहि, बरनत सब कविराज' ॥[2]

'हेतु' अलंकार दोनों आचार्यों ने माना है किन्तु केशव ने सामान्य परिभाषा न देकर इसके तीन भेदों का वर्णन किया है। दास जी ने भेदों का उल्लेख नहीं किया है। 'दीपक' का सामान्य लक्षण दोनों आचार्यों का भिन्न है। केशव के अनुसार उपमेय-उपमान के वाचक, क्रिया, गुण, द्रव्यादि को एक स्थान पर कहना दीपक है।[3] दास जी के अनुसार जहाँ एक शब्द (धर्म) बहुतों में घटित हो सके वहाँ दीपक अलंकार होता है।[4] केशव ने 'दीपक' के दो भेदों मणि तथा माला का ही वर्णन किया है किन्तु यह स्वीकार किया है कि दीपक के अनेक रूप हो सकते हैं।[5] दास जी ने 'मणिदीपक' का कोई उल्लेख नहीं किया है। 'माला-दीपक' की दोनों आचार्यों की परिभाषा भिन्न है। केशव के 'क्रम' अलंकार की परिभाषा स्पष्ट नहीं है किन्तु उदाहरण दास जी के 'एकावली' अलंकार के लक्षण पर ठीक उतरता है। इस प्रकार कदाचित् जिसे केशव ने 'क्रम' अलंकार कहा है वह दास जी का 'एकावली' है। दास जी के 'एकावली' की परिभाषा है :

'किये जंजीरा जोर पद, एकावली प्रमान'।[6]

शब्दालंकारों में यमक, श्लेष तथा वक्रोक्ति का दोनों आचार्यों ने वर्णन किया है। दास जी के बतलाये हुये अन्य अलंकारों वीप्सा, मुद्रा, सिंहावलोकन तथा पुनरुक्तिवदाभास को केशव ने छोड़ दिया है। श्लेष के विभिन्न भेदों तथा रूपों का उल्लेख करते हुये केशव ने इसका बहुत विस्तार से वर्णन किया है, जो दास जी ने नहीं किया है। केशव के 'यमक' के सव्ययेत तथा अव्ययेत आदि भेदों का भी दास जी ने कोई उल्लेख नहीं किया है। केशव ने 'यमक' का भी बहुत विस्तार से वर्णन किया है।

चित्रालंकारों में प्रश्नोत्तर, व्यस्तसमस्तोत्तर, एकोनेकोत्तर, अन्तरलापिका, निरोष्ठ, नियमित वर्ण, कमलबंध, डमरूबंध, चक्रबन्ध, धनुषबंध, हरिबंध, पर्वतबंध, कपाटबंध, त्रिपदी, मंत्रगति, अश्वगति, सर्वतोमुख, कामधेनु तथा चरणगुप्त का दोनों आचार्यों ने वर्णन किया है। दास जी के बतलाये हुये शेष चित्रालंकारों तथा कुछ भेदों को केशव ने छोड़ दिया है।

रसालंकारों में प्रेय, रसवत, ऊर्जस्वि तथा समाहित का दोनों आचार्यों ने वर्णन

१. कविप्रिया, छं० सं० ८, पृ० सं० १८४।
२. काव्यनिर्णय, छं० स० ४, पृ० स० १७१।
३. कविप्रिया, छं० सं० २१, पृ० सं० ३३१।
४. काव्यनिर्णय, छं० सं० २८, पृ० सं० १८८
५. कविप्रिया, छं० सं २२, पृ० सं० ३३१।
६. काव्यनिर्णय, छं० सं० ६, पृ० सं० १८३।

किया है किन्तु दोनों के लक्षण भिन्न हैं। वास्तव में केशव के यह अलंकार रसालंकार कोटि में आते ही नहीं हैं।

कतिपय मिश्रालंकारों का वर्णन भी दोनों ही आचार्यों ने किया है तथा दोनों ने ही इन्हें पृथक वर्ग में न रख कर उन अलंकारों के उपभेदों में रखा है जिनकी प्रधानता विशेष-रूप से इनमें है। केशव के रूपक-रूपक, संशयोपमा, अतिशयोपमा, उत्प्रेक्षोपमा आदि अलंकार मिश्रालंकार हैं। इसी प्रकार दास जी के रूपक-रूपक, सापन्हवातिशयोक्ति, उपमावाचक रूपक, उत्प्रेक्षावाचक रूपक आदि मिश्रालंकारों के ही उदाहरण हैं।

भिखारीदास जी के भावोदय, भावसंधि, भावसबल आदि भावालंकारों तथा ध्वनि और व्यंग्य-सम्बन्धी अलंकारों का केशव ने वर्णन नहीं किया है।

केशव का स्थान :

तुलनात्मक दृष्टि से आचार्यत्व के क्षेत्र में भूषण तथा जसवंतसिंह का स्थान केशव से नीचा है। केशव की 'कविप्रिया' में जिस मौलिकता का परिचय मिलता है वह 'शिवराजभूषण, अथवा 'भाषा-भूषण' में नहीं मिलती। भूषण ने 'शिवराजभूषण' में अलंकारों का वर्गीकरण शब्द और अर्थ के आधार पर किया है। इन्होंने मुख्य शब्दालंकारों तथा प्रायः सभी अर्थालंकारों का वर्णन किया है किन्तु भेदों-उपभेदों का विस्तार के साथ विवेचन नहीं किया है। मौलिकता लाने के लिये इन्होंने आचार्य रुद्रट के समान ही कुछ अलंकारों का नाम अवश्य बदल दिया है; अन्यथा शेष बातें संस्कृत-ग्रंथों पर ही आधारित हैं और ग्रंथ में कोई प्रमुख विशेषता नहीं है।

'भाषा-भूषण' ग्रन्थ में 'कुवलयानन्द' अथवा 'चन्द्रालोक' आदि संस्कृत भाषा के अलङ्कार-सम्बन्धी ग्रंथों के समान ही लक्षण तथा उदाहरण सरल भाषा में दिये गये हैं। जसवन्तसिंह ने इस ग्रंथ में भूषण के समान ही शब्द और अर्थ के आधार पर अलङ्कारों का विभाजन किया है। अलंकारों की संख्या में इन्होंने कोई विशेष वृद्धि नहीं की है। रस, भाव आदि से सम्बन्ध रखने वाले अलंकारों का इन्होंने विवेचन नहीं किया है। वास्तव में, जैसा कि डा० रसाल जी ने कहा है, इनके 'भाषा-भूषण' ग्रंथ में कोई विशेष मौलिकता नहीं है।

केशव का सामान्य और विशेष वर्गों में अलङ्कारों का विभाजन तो साहित्य-संसार के लिये नवीन है ही, इन्होंने कुछ नवीन अलङ्कारों का भी सृजन किया है, जिनका वर्णन अलंकार-क्षेत्र में केशव की मौलिकता के प्रसंग में किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त केशव ने चित्रालंकारों का भी पर्याप्त विवेचन किया है जो उपर्युक्त आचार्यों ने नहीं किया है। उपमा, यमक, श्लेष, आक्षेप आदि अलंकारों का जितना सूक्ष्म भेदोपभेदों सहित विवेचन केशव ने किया है, वह भूषण अथवा जसवन्तसिंह के ग्रंथों में नहीं मिलता है।

आचार्य भिखारीदास का स्थान अवश्य केशव से ऊँचा है। इनमें आचार्यत्व की सच्ची मौलिकता परिलक्षित होती है। इन्होंने, जैसा कि आरम्भ में कहा जा चुका है, आचार्य उद्भट के समान प्रधान अलंकार के नाम से एक वर्ग बना कर उससे सम्बन्ध रखने वाले अलङ्कारों को उस वर्ग में रखा है और इस प्रकार हिंदी-साहित्य के क्षेत्र में अलङ्कारों का नवीन ढङ्ग से वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। अलंकारों की संख्या में भी इन्होंने पर्याप्त वृद्धि की है। इन्होंने शब्दालङ्कार तथा अर्थालङ्कारों के अतिरिक्त रस, भाव, ध्वनि तथा व्यंग्य-सम्बन्धी

अलंकारों का भी विवेचन किया है। केशव ने भाव, ध्वनि तथा व्यंग संबन्धी अलङ्कारों का कोई उल्लेख नहीं किया है। दास जी के अलंकारों के नाम केशव की 'कविप्रिया' में भी मिलते हैं, किंतु उनके लक्षण भ्रामक हैं और उन्हें रसालंकार नहीं सिद्ध करते। शब्दालंकारों के क्षेत्र में भी दास जी ने पुनरुक्तिप्रकाश, वीप्सा, सिंहावलोकन तथा तुक आदि नये भेदों का सृजन किया है। यह प्रथम आचार्य हैं जिन्होंने 'तुक' का वैज्ञानिक तथा सुव्यवस्थित विवेचन किया है। इनका अर्थालंकारों का विवेचन भी अधिकांश केशव की अपेक्षा सूक्ष्म है। उपमा, आक्षेप, यमक तथा श्लेष आदि अलंकारों का वर्णन अवश्य केशवदास ने दास जी की अपेक्षा अधिक विस्तार के साथ किया है, फिर भी काव्य के विभिन्न अंगों का विस्तृत विवेचन हमें केशव में न मिलकर दास जी के ग्रंथों में ही मिलता है।

रस तथा नायिका-भेद-वर्णन

मतिराम तथा केशव :

मतिराम परम्परा से भूषण तथा चिन्तामणि के भाई प्रसिद्ध हैं। इनका जन्म सं० १६७४ वि० के लगभग माना गया है। ये बूंदी के महाराज भाऊसिंह (राज्यकाल सं० १७१६-१७३८ वि०) के आश्रित थे। इन्होंने अपना प्रसिद्ध ग्रंथ 'ललित-ललाम' विशेषतः इन्हीं के लिये लिखा था। रसराज, साहित्यसार, लक्षण शृंगार, छंदसार, तथा मतिराम-सतसई आपकी अन्य रचनाये हैं। 'ललितललाम' अलंकार-सम्बन्धी ग्रंथ है। 'रसराज' में नायिका-भेद तथा भाव आदि का वर्णन है। मतिराम के आचार्यत्व के प्रतिष्ठापक प्रमुख रूप से यही दोनों ग्रंथ हैं। मिश्रबन्धुओं के अनुसार देव के ग्रंथों के अतिरिक्त 'रसराज' से अच्छा भाव-भेद किसी ग्रंथ में नहीं वर्णित है।[1] हिन्दी के आचार्यों में मतिराम का प्रमुख स्थान है।

मतिराम ने अपने 'रसराज' ग्रंथ में शृंगार रस तथा उसके विभिन्न अंगों का वर्णन किया है। नायक-नायिका शृंगार रस के आलम्बन हैं, अतएव 'रसराज' में विस्तार से नायक-नायिका-भेद भी वर्णित है। इस ग्रंथ में शृंगार से इतर रसों का वर्णन नहीं किया गया है। नायक-नायिका-भेद के अन्तर्गत व्यापक-रूप से आचार्यों ने नायिकाओं को तीन वर्गों में बाँटा है, स्वकीया, परकीया तथा गणिका अथवा सामान्या। मतिराम ने इन तीनों का वर्णन किया है। केशव ने 'गणिका' का वर्णन करना उचित नहीं समझा अतएव उल्लेख-मात्र कर दिया है। स्वकीया के भेद मुग्धा, मध्या तथा प्रौढ़ा दोनों आचार्यों को मान्य हैं किन्तु दोनों आचार्यों के अवान्तर भेदों में अन्तर है। मतिराम ने यौवन के ज्ञान तथा विवाह-काल के आधार पर क्रमशः मुग्धा के ज्ञातयौवना तथा अज्ञातयौवना और नवोढ़ा तथा विश्रब्धनवोढ़ा भेद किये हैं। इन्होंने मध्या तथा प्रौढ़ा के भेद नहीं दिये हैं। केशव ने मुग्धा, मध्या तथा प्रौढ़ा तीनों प्रकार की नायिकाओं के चार-चार उपभेद बतलाये हैं। केशव के अनुसार मुग्धा के भेद हैं: नववधू, नवयौवनोभूषिता, नवलवधूअनंगा तथा लज्जाप्राइरति। केशव ने मुग्धा की सुरति तथा मान का पृथक वर्णन किया है। केशव की मध्या के भेद हैं : आरुढ़यौवना, प्रगल्भवचना,

---

1. नवरत्न, मिश्रबन्धु, पृ० सं० ४१२।

प्रादुर्भूतमनोभवा तथा सुरतिविचित्रा। इसी प्रकार प्रौढ़ा भी चार प्रकार की है : समस्तरसकोविदा, विचित्रविभ्रमा, अक्रामति प्रौढ़ा तथा लब्धापति। मध्या तथा प्रौढ़ा के धीरा, अधीरा और धीराधीरा भेदों का वर्णन दोनों आचार्यों ने किया है। मतिराम ने 'स्वकीया' के ज्येष्ठा तथा कनिष्ठा भेद भी बतलाये हैं, केशव ने इन भेदों का वर्णन नहीं किया है।

'परकीया' नायिका के ऊढ़ा, अनूढ़ा भेदों का वर्णन दोनों आचार्यों ने किया है। मतिराम ने 'परकीया' के अन्य भेद गुप्ता, विदग्धा, लक्षिता, मुदिता, कुलटा तथा अनुशयना बतलाये हैं तथा विदग्धा और अनुशयना के क्रमशः बचनबिदग्धा और क्रिया-विदग्धा तथा पहली, दूसरी और तीसरी अनुशयना, उपभेदों का वर्णन किया है। केशव ने इन भेदों और अवान्तर भेदों का वर्णन नहीं किया है।

आचार्यों ने स्थिति के अनुसार भी नायिकाओं का विभाजन किया है। मतिराम ने दश भेद बतलाये हैं, प्रोषितपतिका, खंडिता, कलहांतरिता, विप्रलब्धा, उत्कंठिता, वासकसज्जा, स्वाधीनपतिका, अभिसारिका, प्रवत्स्यतप्रेयसी तथा आगतपतिका। केशव ने प्रथम आठ भेद ही माने हैं और प्रवत्स्यतप्रेयसी तथा आगत-पतिका का वर्णन नहीं किया है। मतिराम ने दशों प्रकार की नायिकाओं के मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा तथा परकीया और गणिका आदि भेदों के अन्तर्गत पृथक उदाहरण दिये हैं। केशव ने इतना अधिक विस्तार नहीं किया है। परकीया के अन्तर्गत मतिराम ने कृष्णाभिसारिका, चंद्राभिसारिका, दिवाभिसारिका के उदाहरण भी प्रस्तुत किये हैं। केशव ने इस प्रकार का कोई विभाजन नहीं किया है। केशव ने अभिसारिका के अन्तर्गत स्वकीया, परकीया तथा सामान्या अभिसारिका के लक्षण दिये हैं और प्रेमाभिसारिका, गर्वाभिसारिका तथा कामाभिसारिका के उदाहरण दिये हैं, लक्षण नहीं दिये हैं।

नायिकाओं के उत्तमा, मध्यमा और अधमा आदि भेद भी किये गये हैं। मतिराम तथा केशव दोनों ही आचार्यों ने इन भेदों का वर्णन किया है। मतिराम द्वारा दिये गये अन्यसंभोगदुःखिता, प्रेमगर्विता, रूपगर्विता तथा मानवती भेदों का केशव ने कोई उल्लेख नहीं किया है। केशव के बतलाये हुये पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी, हस्तिनी आदि नायिका के भेदों तथा नायक-नायिका के प्रथम-मिलन-स्थानों का 'रसराज' में कोई उल्लेख नहीं है।

आचार्य मतिराम ने नायक के तीन भेद पति, उपपति तथा बैसिक माने हैं, और फिर पति के चार भेद बतलाये हैं अनुकूल, दक्षिण, शठ तथा धृष्ट। इन्होंने नायक के अन्य भेद मानी, वचन-चतुर तथा क्रियाचतुर तथा प्रोषित का भी वर्णन किया है। केशव ने अनुकूल, दक्षिण, शठ तथा धृष्ट का ही वर्णन किया है और इन्हें नायक के ही भेद माना है, पति के नहीं। अन्य भेदों का इन्होंने वर्णन नहीं किया है। चार प्रकार के दर्शनों श्रवण, स्वप्न, चित्र तथा प्रत्यक्ष का वर्णन दोनों आचार्यों ने किया है।

सखी, दूती आदि का वर्णन उद्दीपन-विभाव के अन्तर्गत आता है। केशव ने लिखा है कि नायक-नायिका धाय, जनी, नायन, नटी, परोसिन, मालिन, बरइन, शिल्पिनी, चुरिहारी, रामजनी, सन्यासिनी, पटुवा की स्त्री आदि को सखी बनाते हैं।[1] मतिराम ने इनका कोई

---

1. 'धाइ जनी नायन नटी, प्रकट परोसिन नारि।
मालिन बरइन शिल्पिनी चुरिहेरनी सुनारि।

उल्लेख नहीं किया है। इन्होंने सखी के चार कार्य बतलाये हैं मंडन, शिक्षा, उपालंभ तथा परिहास। केशव ने सखियों के छः कर्मों का वर्णन किया है, शिक्षा, विनय, मनाना, सम्मिलन कराना, शृंगार करना, झुकाना तथा उराहना देना। केशव ने परिहास को सखी के कामों में नहीं गिनाया है। मतिराम ने दूती के तीन भेद उत्तम, मध्यम और अधम बतलाये हैं। केशव ने दूती तथा उसके भेदों का वर्णन नहीं किया है। केशव की बतलाई हुई सखियों के अन्तर्गत दूती भी आ जाती हैं।

मतिराम ने सात्विक भावों के अन्तर्गत स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, कंप, वैवर्ण्य, अश्रु, प्रलय तथा जृंभा का लक्षण-उदाहरण सहित वर्णन किया है। केशव ने 'जृंभा' का कोई उल्लेख नहीं किया है और मतिराम के 'प्रलय' के स्थान पर 'प्रलाप' आठवां सात्विक भाव माना है। केशव ने लक्षण तथा उदाहरण नहीं दिये हैं, अतएव यह नहीं कहा जा सकता है कि उन्होने 'प्रलाप' का शाब्दिक अर्थ ही लिया है अथवा अन्य। मतिराम ने लीला, विलास, विच्छित्ति, विभ्रम, किलकिंचित, मोट्टाइत, कुट्टमित, विब्बोक, ललित तथा विहित आदि दस हावों का वर्णन किया है। केशव ने इनके अतिरिक्त हेला, मद, तथा बोध तीन अन्य हाव बतलाये हैं। संचारी भावों का उल्लेख केशव ने किया है, मतिराम ने नहीं किया है।

मतिराम ने वियोग शृङ्गार के तीन भेदों पूर्वानुराग, मान तथा प्रवास का वर्णन किया है। केशव ने इनके अतिरिक्त चौथा भेद 'करुण' माना है। मान के भेदों लघु, मध्यम तथा गुरु का दोनों ही आचार्यों ने वर्णन किया है। केशव ने मान-मोचन के उपायों का भी वर्णन किया है। मतिराम ने अभिलाष, चिंता, स्मृति, गुणवर्णन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि तथा जड़ता आदि वियोग की नव दशाओं का वर्णन किया है। केशव ने इनके अतिरिक्त दसवी दशा 'मरण' मानी है।

दोनों आचार्यों के अधिकांश लक्षणों में यद्यपि किंचित् अन्तर है फिर भी प्रायः भाव एक ही है। मतिराम द्वारा दिये लक्षण अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट हैं। केशव के शृङ्गार रस, भाव, विभाव तथा हावादि के लक्षण अस्पष्ट हैं। केशव ने सात्विक तथा संचारी भावों आदि का उल्लेख-मात्र कर दिया है, लक्षण नहीं दिये हैं। मतिराम ने इनके भी पृथक-पृथक लक्षण दिये हैं। इस प्रकार रस के विभिन्न अवयवों के लक्षण के ज्ञान तथा नायक-नायिका-भेद-वर्णन के लिये मतिराम का 'रसराज' केशव की 'रसिकप्रिया' की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है; किन्तु विषय-क्षेत्र की व्यापकता और आचार्यत्व की मौलिकता के विचार से केशव का स्थान मतिराम से ऊँचा है। नायक-नायिका-भेद के अन्तर्गत नायक और नायिकाओं का सूक्ष्म भेदोपभेदों में विभाजन, नायिकाओं की चेष्टाओं का वर्णन, नायक और नायिकाओं के प्रथम-मिलन-स्थानों का वर्णन तथा 'अगम्या' आदि का वर्णन केशव की मौलिकता के परिचायक हैं।

रामजनी सन्यासिनी पटु पटवा की बाल।
केशव नायक नायिका सखी करहिं सब काल'॥

रसिकप्रिया, पृ० सं० २०६

देव तथा केशव :

देव ने 'भावविलास' ग्रंथ के अन्त में लिखा है कि इस ग्रंथ की रचना उनकी आयु के सोलहवें वर्ष सं० १७४६ वि० में हुई थी।[१] इस कथन से देव का जन्म सं० १७३० वि० सिद्ध होता है। यह इटावा निवासी 'द्योसरिहा' ब्राह्मण थे। मिश्रबन्धुओं ने इन्हें कान्यकुब्ज तथा स्व० आचार्य रामचंद्र जी शुक्ल ने सनाढ्य लिखा है। देव अनेक आश्रयदाताओं के आश्रय में रहे और इन्होंने अधिकांश रचनायें आश्रय-दाताओं के लिये ही की हैं। रीतिकाल के प्रतिनिधि कवियों में देव की ही कदाचित सबसे अधिक रचनायें हैं। स्व० आचार्य शुक्ल जी ने देव के २६ ग्रन्थों का उल्लेख किया है जो उनके अनुसार उपलब्ध हैं,[२] यथा (१) भावविलास, (२) अष्टयाम (३) भवानीविलास (४) सुजान-विनोद (५) प्रेमतरंग (६) रागरत्नाकर (७) कुशलविलास (८) देव-चरित्र (६) प्रेमचंद्रिका (१०) जाति-विलास (११) रस-विलास (१२) काव्य अथवा शब्द-रसायन (१३) सुखसागर-तरंग (१४) देवमाया-प्रपंच-नाटक (१५) वृक्ष-विलास (१६) पावस-विलास (१७) ब्रह्मदर्शन-पचीसी (१८) तत्वदर्शन-पचीसी (१६) आत्मदर्शन-पचीसी (२०) जगद्दर्शन-पचीसी (२१) रसानंद-लहरी २२) प्रेम-दीपिका (२) सुमिल-विनोद (२४) राधिका-विलास (२५) नीतिशतक तथा (२६) नखशिख-प्रेम-दर्शन।

मिश्रबन्धुओं ने देव के केवल १४ ग्रन्थों का उल्लेख किया है जो उन्होंने देखे हैं। मिश्रबन्धुओं के अनुसार देव के ग्रन्थ हैं : (१) भावविलास (२) अष्टयाम (३) भवानी-विलास (४) सुन्दरी-सिन्दूर (५) सुजान-विनोद (६) प्रेम-तरंग (७) राग-रत्नाकर (८) कुशल-विलास (६) देव-चरित्र (१०) प्रेमचंद्रिका (११) जातिविलास (१२) रसविलास (१३) काव्य-रसायन तथा (१४) सुखसागर-तरंग। देव जी के भाव-विलास, भवानी-विलास, प्रेमतरंग, कुशल-विलास, प्रेमचंद्रिका तथा रसविलास आदि ग्रंथों में भाव, रस, नायिका-भेद आदि का सूक्ष्म वर्णन किया गया है तथा 'काव्य-रसायन' ग्रंथ में रस, शब्दशक्ति, अलङ्कार तथा छंद आदि विषयों का वर्णन है। इस ग्रंथ में देव ने विशेष-रूप से अपना आचार्यत्व प्रदर्शित किया है। यहाँ 'भावविलास' तथा 'भवानीविलास' ग्रंथों के आधार पर आचार्य केशव से देव की तुलना की गई है।

'भावविलास' नामक ग्रन्थ में देव जी ने सब रसों का सार[१] शृङ्गार रस और उसके विभिन्न अवयवों का सांगोपांग वर्णन किया है। शृंगार से इतर रसों का केवल उल्लेख-मात्र कर दिया गया है। नायिका-भेद के अन्तर्गत नायिकाओं के तीन सामान्य भेद स्वकीया, परकीया तथा सामान्या अथवा वेश्या, देव तथा केशव दोनों ही आचार्यों को मान्य हैं। 'स्वकीया' के भेद मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा का भी दोनों आचार्यों ने समान रूप से वर्णन किया है और इन तीनों भेदों

११. 'सकल सार सिंगार है सुरस माधुरी धाम।
स्यामहि के बर्नन बरन दुःखहरन अभिराम।
ताही ते सिंगार रस बरनि कह्यो करि देव।
जाको है हरि देवता सकल देव अधिदेव'॥
भावविलास, पृ० सं० ४४।

के अवान्तर भेद भी अधिकांश दोनों आचार्यों के समान हैं। देव ने 'मुग्धा' के पांच उपभेद बतलाये हैं, वयःसन्धि, नववधू, नवयौवना, नवल-अनंगा तथा सलज्जरति। केशव ने वयः-सन्धि मुग्धा का वर्णन नहीं किया है। शेष चार भेद केशव को भी मान्य हैं, यद्यपि केशव के नामों में किंचित अन्तर है। केशव के अनुसार 'मध्या' के भेद हैं, नववधू, नवयौवनाभूषिता, नवलवधूअनंगा तथा लज्जाप्राइरति। मुग्धा नायिका की सुरति तथा मान का उदाहरण केशव तथा देव दोनों ही ने दिया है। देव ने 'मुग्धा' के सुरतान्त का उदाहरण भी दिया है। 'मध्या' के चार उपभेद दोनों ही आचार्यों ने बतलाये हैं। केशव के भेद हैं, आरूढ़यौवना, प्रगल्भ-वचना, प्रादुर्भूतमनोभवा तथा सुरति-विचित्रा। देव ने भी 'मध्या' के इन्हीं भेदों का उल्लेख किया है, रूढ़यौवना, प्रादुर्भूतमनोभवा, प्रगल्भ-वचना तथा विचित्ररति। देव ने 'मध्या' की सुरति तथा सुरतान्त का वर्णन केशव से अधिक किया है। 'प्रौढ़ा' के भेद भी दोनों आचार्यों के समान हैं। केशव के अनुसार 'प्रौढ़ा' के भेद हैं, समस्तरसकोविदा, विचित्र-विभ्रमा, अक्रामति-प्रौढ़ा तथा लब्धापति। यही भेद देव ने भी बतलाये हैं, यथा लब्धापति, रतिकोविदा, आक्रान्त-नायका तथा सविभ्रमा। देव ने मध्या के समान ही प्रौढ़ा की सुरति तथा सुरतान्त का वर्णन भी केशव से अधिक किया है। मध्या तथा प्रौढ़ा नायिकाओं के ज्येष्ठा तथा कनिष्ठा भेदों का वर्णन देव ने ही किया है, केशव ने नहीं किया। मान करने की दशा में 'मध्या' तथा 'प्रौढ़ा' के तीन भेद केशव ने धीरा, अधीरा तथा धीराधीरा बतलाये हैं। प्रथम दो भेदों का उल्लेख देव ने भी किया है किन्तु केशव के तीसरे भेद धीराधीरा के स्थान पर इन्होंने तीसरा भेद 'मध्यमा' बतलाया है।

परकीया नायिका के दो भेद केशव के अनुसार ऊढ़ा तथा अनूढ़ा हैं तथा देव के अनुसार परोढ़ा तथा कन्यका। स्पष्ट ही दोनों के नामों में अन्तर है, अन्यथा भेद समान हैं। देव ने परकीया के गुप्ता, विदग्धा, लक्षिता, कुलटा, मुदिता तथा अनुसयना आदि भेद भी बतलाये हैं। केशव ने इन भेदों का वर्णन नहीं किया है।

अवस्था के अनुसार नायिकाओं के आठ भेद दोनों आचार्यों ने बतलाये हैं, केवल नामों में किंचित अंतर है। केशव के अनुसार अष्टनायिकायें स्वाधीनपतिका, उत्का, वासक-शय्या, अभिसंधिता, खंडिता, प्रोषितपतिका, विप्रलब्धा तथा अभिसारिका हैं। देव के बतलाये हुये भेदों के नाम स्वाधीना, उत्कंठिता, प्रोषितप्रेयसी, वासकसज्जा, कलहान्तरिता, खंडिता, विप्रलब्धा तथा अभिसारिका हैं। केशव की उत्का तथा अभिसंधिता के स्थान पर देव ने क्रमशः उत्कंठिता तथा कलहान्तरिता नाम दिये हैं। शेष भेद दोनों के समान हैं। 'भवानीविलास' ग्रंथ में देव ने 'प्रोषितपतिका', नायिका के चार भेद बतलाये हैं यथा (१) जिसका पति विदेश जाने वाला हो किन्तु गया न हो; (२) अवधि देकर चला गया हो; (३) लौट कर आने वाला हो; तथा (४) पति जाये किन्तु नायिका का वियोग न सहन कर सके और लौट आये।[1] केशव ने इन अवान्तर भेदों का वर्णन नहीं किया है।

आचार्यों द्वारा वर्णित नायिकाओं के अन्य भेद उत्तमा, मध्यमा तथा अधमा का वर्णन केशव तथा देव दोनों ही ने किया है। देव ने 'भावविलास' ग्रंथ में स्वकीया आदि

---

१. भवानीविलास, छं० सं० २२, पृ० सं० ७८।

नायिकाओं के चार अन्य भेदों परस्तिदुखिता, प्रेमगर्विता तथा मानवती का भी उल्लेख किया है; केशव ने इन भेदों का वर्णन नहीं किया है। 'भवानीविलास' ग्रंथ में देव ने जाति और अंश के अनुसार भी नायिकाओं का विभाजन किया है। जाति के अनुसार भेद पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी तथा हस्तिनी का वर्णन केशव ने भी किया है। अंश के अनुसार नायिकाओं के भेद देवी, देवगन्धर्वी, गन्धर्वी, गन्धर्वमानुषी तथा किस अवस्था तक कौन भेद रहता है, इन बातों का विस्तृत वर्णन देव के ही ग्रंथ में मिलता है।[1] आचार्य देव का यह वर्णन हिन्दी-साहित्य के लिये नवीन है।

नायक के चार भेदों अनुकूल, दक्षिण, शठ तथा धृष्ट का वर्णन दोनों ही आचार्यों ने किया है। नायक के सहायक पीठमर्द, विट तथा विदूषक का वर्णन देव के 'भावविलास' ग्रन्थ ही में मिलता है, केशव की 'रसिकप्रिया' में नहीं मिलता। केशव ने 'दर्शन' के चार भेद चित्र, स्वप्न, प्रत्यक्ष तथा श्रवण बतलाये हैं। देव ने 'दर्शन' के प्रथम तीन ही भेद माने हैं तथा श्रवण का दर्शन से पृथक वर्णन किया है।

केशव ने नायक-नायिका की सखियों के अन्तर्गत धाय, जनी, नाइन, नटी, परोसिन, बरइन, मालिन, शिल्पिनी, चुरिहारी, रामजनी, सन्यासिनी आदि को माना है। देव ने सखियों का वर्णन नहीं किया है। देव के दूती-वर्णन को देखने से ज्ञात होता है कि केशव जिन्हें सखी कहते हैं, उनको देव ने दूती माना है। देव के अनुसार धाय, नटी, ग्वालि, शिल्पिनी, मालिन, नाइन, बालिका, विधवा, सन्यासिन, भिखारिन तथा सम्बन्धिनी दूती हो सकती हैं।[2] सखी-कर्म का दोनो आचार्यों ने वर्णन किया है तथा दोनों ने अधिकांश समान कर्मों का उल्लेख किया है। केशव के बतलाये हुये कर्म हैं, शिक्षा देना, विनय, मनाना, मिलन कराना, शृंगार करना, झुकाना तथा उराहना देना। देव के अनुसार सखियों के कर्म हैं, विनोदपूर्ण सम्भाषण द्वारा प्रसन्न करना, आभूषण पहनाना, प्रिय से मिलन कराना, उपदेश देना, सदा निकट रहना, पति को उराहना देना तथा वियोगावस्था में नायिका को आश्वासन देना। केशव ने नायक-नायिकाओं की प्रेम-प्रकाशन की चेष्टाओं तथा प्रथम मिलन-स्थानों का भी वर्णन किया है। यह प्रसंग देव ने छोड़ दिये हैं।

केशव तथा देव दोनों ही आचार्यों ने स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव, सात्विक भाव तथा संचारी भावों को 'भाव' के भेद माना है। देव ने 'हावों' को भी भाव का ही भेद माना है। केशव ने हावों का वर्णन पृथक किया है। सात्विक भाव दोनों आचार्यों के एक ही हैं। संचारी भावों में कुछ अन्तर है। 'छल' संचारी का वर्णन देव से इतर केशव, मतिराम आदि हिन्दी के किसी आचार्य ने नहीं किया है। शेष संचारी दोनों आचार्यों के समान हैं। देव ने 'त्रास' संचारी के दो रूप 'त्रास' तथा 'भय' बतलाये हैं, तथा 'वितर्क' के चार उपभेदों का वर्णन किया है यथा विप्रतिपत्ति-वितर्क, विचार-वितर्क, संशय-वितर्क तथा-अध्यवसाय वितर्क। केशव ने इन उपभेदों का उल्लेख नहीं किया है। देव ने केवल दस 'हाव' बतलाये हैं, केशव ने 'हेला, 'मद' तथा 'बोध' तीन अन्य हाव भी बतलाये हैं।

१. भवानीविलास, छं० सं० १-१२, पृ० सं० २४-२६।
२. भावविलास, छं० सं० ११४, ११५, पृ० सं० १०१

शृंगार रस के भेदों संयोग तथा वियोग के अवान्तर भेद प्रकाश संयोग तथा प्रच्छन्न संयोग एवं प्रकाश वियोग तथा प्रच्छन्न वियोग केशव के समान ही देव ने भी बतलाये हैं। कदाचित् इन उपभेदों का उल्लेख देव ने केशव के ही आधार पर किया हो क्योंकि केशव से इतर हिन्दी-साहित्य के किसी आचार्य ने इन भेदों का वर्णन नहीं किया है। वियोग शृंगार के चार भेदों, पूर्वानुराग, मान, प्रवास तथा करुण का दोनों ही आचार्यों ने वर्णन किया है। 'पूर्वानुराग' के अन्तर्गत दश दशाओं का वर्णन, 'मान' के गुरु, मध्यम तथा लघु भेद, एवं मानमोचन के उपायों का वर्णन दोनों आचार्यों का समान है। 'भवानीविलास' ग्रंथ में देव ने 'पूर्वानुराग' की दशाओं अभिलाषा, चिंता तथा गुण-कथन के क्रमशः पाँच, चार तथा तीन उपभेदों का उल्लेख किया है।[1] केशव ने इन उपभेदों का वर्णन नहीं किया है। देव को करुण वियोग के भी तीन भेद, लघु करुणात्मक, मध्यम करुणात्मक तथा दीर्घ करुणात्मक मान्य हैं। केशव ने इन उपभेदों का उल्लेख नहीं किया है।

आचार्य केशव ने 'रसिकप्रिया' ग्रन्थ के चौदहवें प्रकाश में शृंगार से इतर रसों का भी वर्णन किया है किन्तु 'भावविलास' ग्रन्थ में आचार्य देव ने, जैसा कि पूर्वपृष्ठों में कहा जा चुका है, शृंगार से इतर रसों का वर्णन नहीं किया है। देव के 'भवानीविलास' ग्रन्थ में अवश्य संक्षेप में अन्य रसों का भी वर्णन है। देव के अनुसार मुख्य तीन रस हैं, शृंगार, वीर तथा शान्त। देव के अनुसार हास्य तथा भयानक, शृंगार रस के आधीन हैं; रौद्र तथा करुण रस, वीर रस के अंगी हैं तथा अद्भुत एवं वीभत्स रस, शान्त रस के अन्तर्गत आ जाते हैं। इन रसों में सर्व प्रमुख शृंगार रस है तथा वीर और शान्त रस भी शृंगार रस के अन्तर्गत हैं।[2] केशव के विभिन्न रसों के उदाहरण देखने से ज्ञात होता है कि केशव ने अन्य रसों को शृंगार के ही अन्तर्गत प्रदर्शित किया है और वह भी शृंगार को ही रसराज मानते हैं। देव ने हास्य रस के तीन भेद बतलाये हैं, उत्तम, मध्यम तथा अधम। आचार्य केशव ने भिन्न भेदों का वर्णन किया है। केशव के अनुसार हास्य रस के भेद मंदहास, कलहास, अतिहास तथा परिहास हैं। केशव ने अन्य रसों के भेदों का उल्लेख नहीं किया है, देव ने वीर, करुण तथा शान्तरस के भेदों के उदाहरण भी प्रस्तुत किये हैं। देव ने तीन प्रकार के वीर बतलाये हैं, युद्धवीर, दानवीर तथा दयावीर। देव के अनुसार करुण रस के भी चार उपभेद हो सकते हैं, करुण, अतिकरुण, महाकरुण तथा सुख करुण। देव ने शान्त रस के भी चार रूपों का उल्लेख किया है। प्रथम रूप वह है, जहाँ शुद्ध भक्ति का वर्णन हो; दूसरा, जहाँ प्रेम-भक्ति का वर्णन हो; तीसरा, जहाँ शुद्ध प्रेम का वर्णन हो तथा चौथा, जहाँ शुद्ध शान्त रस हो।

नायिकाभेद तथा रस के अवयवों का वर्णन करते हुये कुछ भेदों तथा अवयवों के लक्षण केशव ने नहीं दिये हैं तथा कुछ के देव ने नहीं दिये हैं। मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा आदि नायिकाओं तथा सात्विक एवं संचारी भावों आदि के लक्षण केशव की 'रसिकप्रिया' में नहीं मिलते हैं। इसी प्रकार मुग्धा, मध्या तथा प्रौढ़ा नायिकाओं के उपभेदों तथा 'दर्शन' के भेदों आदि के लक्षण आचार्य देव ने नहीं दिये हैं। दोनों आचार्यों द्वारा दिये अधिकांश लक्षण भिन्न हैं। इस प्रकार के कुछ लक्षण यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं।

---

१. भवानीविलास, छं० सं० १६, १८, तथा २७, पृ० सं० क्रमशः ४०, ४२, तथा ४४।

२. भवानीविलास, छं० सं० २३, २४, पृ० सं० १०८।

केशव के अनुसार दक्षिण नायक वह है जो :

'पहिली सो हिय हेतु डर, सहज बड़ाई कानि।
चित्त चले हूं ना चले, दक्षिण लक्षण जानि' ॥[1]

देव के दक्षिण नायक का लक्षण है :

'सब नारिन अनुकूल सो, यही दच्छ की रीति।
न्यारो ह्वै सब सो मिलै, करै एक सी प्रीति' ॥[2]

केशव के अनुसार चित्रिणी नायिका का लक्षण है :

'नृत्य गीत कविता रुचै, अचल चित्त चलि दृष्टि।
बहिरतिरत अति सुरति जल, मुख सुगंध की सृष्टि।
विरल लोम तन मदन गृह, भावत सकल सुवास।
मित्र चित्र प्रिय चित्रिणी, जानहु केशवदास' ॥[3]

देव की चित्रिणी नायिका का लक्षण भिन्न है, यथा :

'मोर भेष भूषन बसन गज गति अति सुकुमारि।
चंचलनैनी चितहरनि चतुर चित्रिनी नारि' ॥[4]

केशव के अनुसार 'अनुभाव' का लक्षण है :

'आलम्बन उद्दीप के, जे अनुकरण बखान।
ते कहिये अनुभाव सब, दंपति प्रीति विधान' ॥[5]

देव के 'अनुभाव' का लक्षण है :

'जिनको निरखत परस्पर रस को अनुभव होइ।
इनहीं को अनुभाव पद कहत सयाने लोइ!
आपुहि ते उपजाय रस पहिले होहिं विभाव।
रसहि जगावै जो बहुरि तौ तेऊ अनुभाव' ॥[6]

केशव के 'बिब्बोक' हाव का लक्षण है :

'रूप प्रेम के गर्व ते, कपट अनादर होय।
तहँ उपजत बिब्बोक रस, यह जानै सब कोय' ॥[7]

देव का लक्षण है :

प्रिय अपराध धनादि मद, उपजै गर्व कि बारु।
कुटिल डीठि अवयव चलन, सो बिब्बोक विचारु' ॥[8]

१. रसिकप्रिया, छं० सं० ७, पृ० सं० २३।
२. भावविलास, छं० सं० ६, पृ० सं० ६७।
३. रसिकप्रिया, छं० सं० ५, ६, पृ० सं० ३१।
४. भवानीविलास, छं० सं० २५, पृ० सं० १७।
५. रसिकप्रिया, छं० सं० ८, पृ० सं० ६२।
६. भावविलास, छं० सं० २५, २६, पृ०सं० ८।
७. रसिकप्रिया, छं० सं० ४२, पृ० सं० १०६।
८. भावविलास, छं० सं० ३५, पृ० सं० ५१।

दोनों आचार्यों के कुछ लक्षणों में भावसाम्य है, यद्यपि ऐसे लक्षण अपेक्षाकृत कम हैं। भावसाम्य रखने वाले कुछ लक्षण भी यहाँ उपस्थित किये जाते हैं।

केशव की 'उत्का' नायिका का लक्षण है :

'कौनहु हेत न आइयो, प्रीतम जाके धाम।
ताको शोचति शोच हिय, केशव उत्का बाम'॥[1]

देव की 'उत्कंठिता' के लक्षण का भी प्रायः यही भाव है :

'पति को गृह आए बिना, सोच बढ़े जिय जाहि।
हेतु बिचारे चित्त मैं, उत्कंठा कहु ताहि'॥[2]

केशव के लीला हाव का लक्षण है :

'करत जहाँ लीलान को, प्रीतम प्रिया बनाय।
उपजत लीला हाव तहँ, वर्णत केशवराय'॥[3]

देव के लक्षण का भी यही भाव है, यथाः

'कौतुक ते पिय की करै, भूषन भेष उन्हारि।
प्रीतम सो परिहास जहं, लीला लेउ बिचारि'॥[4]

केशव के 'प्रवास' वियोग का लक्षण है :

'केशव कौनहु काज ते, पिय परदेशहि जाय।
तासो कहत प्रवास सब, कवि कोविद समुझाय'॥[5]

देव के प्रवास विरह के लक्षण का भी यही भाव है :

'प्रीतम काहू काज दै, अवधि गयो परदेस।
सो प्रवास जहं दुहुन कौ, कण्टक हैं बिबुधेस'॥[6]

सारांश में आचार्यत्व की दृष्टि से केशव की अपेक्षा देव का स्थान ऊँचा है। केशव के शृंगार रस, विभाव तथा हाव आदि के लक्षण अस्पष्ट हैं। देव के प्रायः सभी लक्षण स्पष्ट हैं, तथा लक्षणों और उदाहरणों में भी पूर्ण समन्वय है। विषय-क्षेत्र की व्यापकता तथा मौलिकता भी देव में केशव की अपेक्षा अधिक है। भेदोपभेदों का जितना सूक्ष्म विवेचन देव ने किया है, उतना सूक्ष्म वर्णन केशव ने नहीं किया है। 'अगम्या' तथा नायिकाओं की प्रेम-प्रकाशन की चेष्टाओं का वर्णन केशव की 'रसिकप्रिया' में देव की अपेक्षा अधिक है। दूसरी ओर नायक के सचिव; स्वकीया के पररतिदुःखिता, प्रेमगर्विता, रूपगर्विता तथा मानवती भेद; परकीया के गुप्ता, विदग्धा आदि छः भेद; वीर, करुण, शान्त आदि रसों के उपभेदों का वर्णन देव ने केशव से अधिक किया है। देव के द्वारा बतलाये हुये नायिकाओं के अंशानुसार भेद;

१. रसिकप्रिया, छं० सं० ७, पृ० सं० १२१।

२. भावविलास, पृ० सं० ६४।

३. रसिकप्रिया, छं० सं० २१, पृ० सं० ६७।

४. भावविलास, छं० सं० २१, पृ० सं० ४७।

५. रसिकप्रिया, छं० सं० ७, पृ० सं० १६७।

६. भावविलास, छं० सं० ७१, पृ० सं० ६२।

करुण वियोग, शृंगार, करुण तथा शान्त रस के भेद तो कदाचित् ही हिन्दी-साहित्य के किसी रसग्रन्थ में मिलें।

पद्माकर तथा केशव:

पद्माकर बांदा निवासी तैलंग ब्राह्मण मोहनलाल भट्ट के पुत्र थे। आपका जन्म सं० १८१० वि० तथा मृत्यु सं० १८९० वि० में हुई। पद्माकर विभिन्न आश्रयदाताओं के यहाँ रहे और आपकी अधिकांश रचनायें भी आश्रयदाताओं के लिये ही हुईं। अर्जुनसिंह उपनाम हिम्मत बहादुर के लिये 'हिम्मतबहादुर-विरुदावली' की रचना हुई। आपके प्रसिद्ध ग्रंथ 'जगद्विनोद' की रचना जयपुर के महाराज प्रतापसिंह के पुत्र महाराज जगतसिंह के लिये हुई थी। कदाचित् यहीं रह कर इन्होंने 'पद्माभरण' नामक अलंकार-ग्रंथ भी लिखा था। आयु के अन्तिम दिनों में आपने दो अन्य ग्रंथ 'प्रबोधपचासा' तथा 'गंगालहरी' लिखे थे। प्रथम विराग तथा भक्ति रस-पूर्ण रचना है और द्वितीय में गंगा की महिमा गाई गई है। आपका 'रामरसायन' नामक एक और ग्रंथ उपलब्ध है, जिसमें वाल्मीकि रामायण के आधार पर रामचरित का वर्णन है। इसमें इन्हें काव्य-सम्बन्धी सफलता नहीं मिली है, अतएव स्व० आचार्य रामचंद्र जी शुक्ल का विचार है कि सम्भवतः यह रचना इनकी न हो। 'जगद्विनोद' तथा 'पद्माभरण' रचनायें पद्माकर को हिन्दी के आचार्य-कोटि में लाती हैं। रीति-काल में बिहारी के बाद सबसे अधिक लोकप्रियता का श्रेय इन्हीं को है।

पद्माकर ने 'जगद्विनोद' नामक ग्रंथ में केशव की 'रसिकप्रिया' के समान ही शृंगार-रसांतर्गत नायिका-भेद तथा विभिन्न रसों का वर्णन किया है, तथा केशव के ही समान इस ग्रंथ में प्रमुख रूप से शृंगार रस का वर्णन है। अन्य रसों का वर्णन बहुत ही संक्षेप में किया गया है। नायिका-भेद के अन्तर्गत स्वकीया, परकीया तथा गणिका अथवा सामान्या का उल्लेख दोनों ही आचार्यों ने किया है किन्तु केशव ने गणिका का वर्णन नहीं किया है। 'स्वकीया' के भेदों मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा का दोनों ही आचार्यों ने वर्णन किया है किन्तु उपभेदों में अन्तर है। पद्माकर ने मुग्धा नायिका के ज्ञात और अज्ञात-यौवना तथा नवोढ़ा और विश्रब्ध-नवोढ़ा आदि भेद बतलाये हैं। मध्या के भेद पद्माकर ने नहीं दिये हैं। इनके अनुसार प्रौढ़ा के दो भेद हैं, रतिप्रीता और आनंदसंमोहिता। केशव ने मुग्धा, मध्या तथा प्रौढ़ा आदि प्रत्येक भेद के चार-चार उपभेदों का वर्णन किया है। मध्या तथा प्रौढ़ा के धीरा, अधीरा तथा धीराधीरा भेदों का वर्णन दोनों आचार्यों ने किया है। स्वकीया के ज्येष्ठा-कनिष्ठा भेदों का केशव ने उल्लेख नहीं किया है।

'परकीया' नायिका के ऊढ़ा और अनूढ़ा भेदों का वर्णन दोनों आचार्यों ने किया है। पद्माकर ने 'परकीया' के गुप्ता, विदग्धा, कुलटा, मुदिता तथा अनुशयना आदि छः भेदों का भी वर्णन किया है। पद्माकर के अनुसार 'गुप्ता' तीन प्रकार की होती है, भूतसुरतिसंगोपना, वर्तमान रतिगोपना तथा भविष्य रतिगोपना। विदग्धा के दो उपभेद हैं,- वचन-विदग्धा और क्रिया-विदग्धा, तथा अनुशयना के तीन भेद हैं प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय अनुशयना। केशव ने इन भेदों और उपभेदों का कोई उल्लेख नहीं किया है।

पद्माकर के अनुसार उपर्युक्त सब नायिकायें तीन प्रकार की हो सकती है, अन्यसुरतिदुः-

खिता, मानवती तथा वक्रोक्ति-गर्विता और फिर गर्विता के भी दो उपभेद प्रेमगर्विता और रूपगर्विता बतलाये गये हैं। केशव ने इन भेदों का वर्णन नहीं किया है। स्थिति के अनुसार पद्माकर ने मतिराम के ही समान दश प्रकार की नायिकायें मानी हैं। केशव ने इनके आठ ही भेद माने हैं और पद्माकर की 'प्रवत्स्यतप्रेयसी' तथा 'आगतपतिका' नायिकाओं का कोई उल्लेख नहीं किया है। पद्माकर ने स्वकीया, परकीया तथा गणिका के भेदों मुग्धा, मध्या एवं प्रौढ़ा के अन्तर्गत इन आठों प्रकार की नायिकाओं के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। केशव ने केवल अभिसारिका भेद के अन्तर्गत स्वकीया, परकीया तथा सामान्या नायिका के अभिसार का लक्षण दिया है और प्रेमाभिसारिका, कामाभिसारिका तथा गर्वाभिसारिका के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। पद्माकर ने इन भेदों का कोई उल्लेख नहीं किया है। उत्तमा, मध्यमा तथा अधमा नायिकाओं के भेदों का वर्णन दोनों ही आचार्यों ने किया है। केशव के कामशास्त्र-सम्बन्धी ग्रंथों के आधार पर दिये गये भेदों पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी, हस्तिनी तथा नायक-नायिका के प्रथम मिलन-स्थानों का वर्णन पद्माकर ने नहीं किया है।

केशव ने नायक के चार भेदों का ही वर्णन किया है यथा अनुकूल, दक्षिण, धृष्ट तथा शठ। पद्माकर ने इन भेदों का भी वर्णन किया है और इनके अतिरिक्त अन्य दृष्टिकोणों से भी नायकों के विभिन्न भेदों का उल्लेख किया है यथा पति, उपपति तथा वैसिक अथवा मानी, वचन-चतुर तथा क्रिया-चतुर। इन व्यापक भेदों के अतिरिक्त पद्माकर ने प्रोषित और अनभिज्ञ नायकों का भी वर्णन किया है और प्रोषितनायक के पति, उपपति तथा वैसिक के अन्तर्गत उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। नायक-नायिका के प्रत्यक्ष, चित्र, स्वप्न तथा प्रत्यक्ष दर्शनों का दोनों ही आचार्यों ने वर्णन किया है।

श्रृंगार रस के उद्दीपन-विभाव के अन्तर्गत पद्माकर ने नायक के सखा, नायक-नायिका की सखी, दूती आदि का वर्णन किया है। पद्माकर ने सखा के चार भेद माने है पीठमर्द, विट, चेट तथा विदूषक। केशव ने सखाओं का वर्णन नहीं किया है। पद्माकर ने सखी के भेदों का उल्लेख नहीं किया है। केशव ने सखी के अन्तर्गत परोसिन, मनिहारिन, शिल्पकारिन आदि का विस्तार-पूर्वक वर्णन किया है। सखी के कार्यों में पद्माकर ने मंडन, शिक्षा, उपालंभ तथा परिहास का वर्णन किया है। केशव ने 'परिहास' को छोड़ दिया है और विनय, मनाना और झुकाना, सखी के यह तीन अन्य काम बतलाये हैं। पद्माकर ने उत्तमा, मध्यमा और अधमा, तीन प्रकार की दूतियाँ बतलाई हैं और विरहनिवेदन तथा संघटन उनके कार्य बतलाये हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने नायिका के स्वयंदूतीत्व का भी वर्णन किया है। केशव ने स्वयंदूतीत्व का वर्णन तो किया है किन्तु दूती तथा उनके कार्यों का वर्णन नहीं किया है।

पद्माकर ने 'अनुभाव' के अन्तर्गत सात्विक भाव, हाव तथा संचारी भावों का वर्णन किया है। प्रसिद्ध आठ सात्विक भावों के अतिरिक्त इन्होंने 'जृंभा' नवें सात्विक का उल्लेख मतिराम तथा देव के समान केशव से अधिक किया है। पद्माकर ने इनके लक्षण और उदाहरण भी दिये हैं, किन्तु केशव ने लक्षण अथवा उदाहरण नहीं दिये। हावों के अन्तर्गत केशव ने 'मद' का उल्लेख पद्माकर से अधिक किया है अन्यथा शेष हावों का वर्णन दोनों आचार्यों के ग्रंथों, 'जगद्विनोद' तथा 'रसिकप्रिया' में समान है। संचारी भावों में केशव द्वारा उल्लिखित

'निंदा' तथा 'विवाद' के स्थान पर पद्माकर ने 'असूया' तथा 'अवहित्था' संचारी भावों का उल्लेख किया है। शेष ३१ संचारी दोनों आचार्यों के एक ही हैं।

शृंगार रस के दो भेद संयोग और वियोग दोनों ही आचार्यों को मान्य हैं। पद्माकर ने वियोग शृंगार के तीन भेदों पूर्वानुराग, मान और प्रवास का वर्णन किया है, केशव चौथा भेद 'करुण' मानते हैं। 'मान' के भेदों लघु, मध्यम और गुरु का पद्माकर तथा केशव दोनों ही आचार्यों ने वर्णन किया है किन्तु केशव के बतलाये हुये मान-मोचन के छः उपायों का पद्माकर ने वर्णन नहीं किया है। पद्माकर के बतलाये हुये 'प्रवास' के भेदों 'भविष्य' तथा 'भूत' को केशव ने छोड़ दिया है। विरह की दश दशाओं का वर्णन दोनों ही आचार्यों ने किया है। अभिलाषा, गुणकथन, उद्वेग तथा प्रलाप का पद्माकर ने प्रत्यक्ष वर्णन किया है और शेष छः के विषय में कहा है कि चिंता आदि विरह की छः दशाओं का वर्णन संचारी भावों के अन्तर्गत किया जा चुका है।[1]

विभिन्न रसों का वर्णन करते हुये केशव ने साधारणतया प्रत्येक रस का लक्षण संक्षेप में दे दिया है। पद्माकर ने प्रत्येक रस का लक्षण देते हुये उसके स्थायी भाव, आलंबन, उद्दीपन, हाव, भाव, अनुभाव, संचारी भाव तथा रस विशेष के रंग और देवता का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। केशव ने हास्य रस के चार भेद मंदहास, कलहास, अतिहास और परिहास बतलाये हैं, पद्माकर ने इन भेदों का उल्लेख नहीं किया है। दूसरी ओर पद्माकर के वीर रस के भेदों युद्धवीर, दयावीर, दानवीर तथा धर्मवीर का केशव की 'रसिकप्रिया' में कोई उल्लेख नहीं है।

पद्माकर तथा केशव दोनों आचार्यों के विभिन्न लक्षणों में यद्यपि किंचित् अंतर है किन्तु अधिकांश लक्षणों का भाव एक ही है। कुछ लक्षण अवश्य ऐसे हैं जो दोनों आचार्यों के भिन्न हैं। जिन लक्षणों का भाव प्रायः समान है, उनमें से कुछ यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं। केशव की स्वकीया नायिका का लक्षण है :

> 'सम्पति विपति जो मरण हू, सदा एक अनुहार।
> ताको स्वकीया जानिये, मन क्रम वचन विचार' ॥[2]

पद्माकर के अनुसार 'स्वकीया' वह है जो :

> 'निज पति ही के प्रेममय, जाको मन वच काय।
> कहत स्वकीया ताहि सों, लज्जासील सुभाय' ॥[3]

१. 'इक वियोग शृंगार में, इती अवस्था थाप।
अभिलाषा गुनकथन पुनि, पुनि उद्वेग प्रलाप ॥६४५॥
चिंतादिक जे षट कहीं, विरह अवस्था जानि।
संचारी भावन विषे, हौं आयहु जो बखानि' ॥६४६॥
जगद्विनोद, पृ० सं० १२१।

२. रसिकप्रिया, छं० सं० १५, पृ० सं० ३४।

३. जगद्विनोद, छं० सं० १७, पृ० सं० ४।

केशव का 'अनुकूल' नायक वह है जो

'प्रीति करै निज नारि सों, परनारी प्रतिकूल।
केशव मन वच कर्म करि, सो कहिये अनुकूल' ॥[1]

पद्माकर के 'अनुकूल' नायक का लक्षण है :

'जो पर-बनिता तें विमुख, सोऽनुकूल सुखदानि'।[2]

केशव का लक्षण पद्माकर की अपेक्षा अधिक विशिष्ट है। केशव के 'किलकिंचित' हाव का लक्षण है :

'श्रम अभिलाष सगर्व स्मित, क्रोध हर्षमय भाव।
उपजत एकहि बार जहं, तहं किलकिंचित हाव' ॥[3]

पद्माकर के लक्षण का भी यही भाव है :

'होत जहाँ इक बारही, त्रास हास रस रोष।
तासों किलकिंचित कहत, हाव सबै निर्दोष' ॥[4]

दोनों आचार्यों के कुछ लक्षण भिन्न हैं, उदाहरणस्वरूप केशव के अनुसार 'दक्षिण' नायक वह है जो :

'पहिली सो हिय हेतु डर, सहज बड़ाई कानि।
चित्त चलैहूँ ना चलै, दक्षिण लक्षण जानि' ॥[5]

पद्माकर के अनुसार 'दक्षिण' नायक वह है जो

'जु बहु तियन को सुखद सम, सो दच्छिन गुनखानि' ॥[6]

केशव के 'विच्छित्ति' हाव का लक्षण है :

'भूषण भूषब को जहाँ, होहि अनादर आनि।
सो विच्छित्त विचारिये, केशवदास सुजान' ॥[7]

पद्माकर के अनुसार 'विच्छित्ति' का लक्षण है :

'तनक सिंगारहिं में जहाँ, तरुनि महा छवि देत।
सोई विच्छिति हाव को, बरनत बुद्धि निकेत' ॥[8]

पद्माकर का प्रत्येक लक्षण स्पष्ट है किन्तु केशव के श्रृंगार रस, विभाव, हाव आदि के लक्षण अस्पष्ट हैं। केशव के द्वारा दिये लक्षण क्रमशः निम्नलिखित हैं।

---

१. रसिकप्रिया, छं० सं० ३, पृ० सं० २१।
२. जगद्विनोद, छं० सं० १८६, पृ० सं० ४६।
३. रसिकप्रिया, छं० सं० ३४, पृ० सं० १०५।
४. जगद्विनोद, छं० सं० ४४१, पृ० सं० ८४।
५. रसिकप्रिया, छं० सं० ७, पृ० सं० २३।
६. जगद्विनोद, छं० सं० २८६, पृ० सं० ५६।
७. रसिकप्रिया, छं० सं० ४५, पृ० सं० ११०।
८. जगद्विनोद, छं० सं० ४३५, पृ० सं० ८३।

शृंगार रस :

'रति मति की अति चातुरी, रतिपति मंत्र विचार।
ताही सों सब कहत हैं, कवि कोविद शृङ्गार' ॥[1]

विभाव :

'जिनते जगत अनेक रस, प्रकट होत अनयास।
तिनसों विमति विभाव कहि, वर्णत केशवदास' ॥[2]

हाव :

'प्रेम राधिका कृष्ण को, है ताते शृङ्गार।
ताके भाव प्रभाव ते, उपजत हाव विचार' ॥[3]

इस प्रकार लक्षणों के व्यवहारिक ज्ञान के लिये 'रसिकप्रिया' की अपेक्षा 'जगद्विनोद' ग्रन्थ अधिक महत्वपूर्ण है। मौलिकता की दृष्टि से केशव का स्थान पद्माकर से ऊँचा है। पद्माकर के 'जगद्विनोद' में इस विषय के संस्कृत-लक्षण-ग्रन्थों से अधिक कोई विशेषता नहीं है। केशव के शृंगार रस आदि के 'प्रच्छन्न', 'प्रकाश' भेद, जाति के अनुसार नायिकाओं का विभाजन, अगम्यावर्णन, नायिकाओं की चेष्टा, नायक-नायिका के प्रथम मिलन-स्थानों तथा सखी-भेद-वर्णन आदि केशव की मौलिकता के परिचायक हैं।

१. रसिकप्रिया, छं० सं० १७, पृ० सं० १२।
२. रसिकप्रिया, छं० सं० ३, पृ० सं० ३०।
३. रसिकप्रिया, छं० सं० १९, पृ० सं० ३५।

षष्ठम् अध्याय

विचारधारा

दार्शनिक विचार :

केशव के दार्शनिक विचारों के अध्ययन के लिये आधार-स्वरूप कवि के दो ग्रंथ हैं, 'विज्ञानगीता' तथा 'रामचंद्रिका'। 'विज्ञानगीता' की रचना प्रमुख रूप से 'योगवाशिष्ठ' तथा कृष्ण मिश्र के 'प्रबोध-चंद्रोदय' के आधार पर हुई है। इन ग्रंथों तथा 'विज्ञानगीता' का तुलनात्मक अध्ययन इस अध्याय के अन्त में दिया गया है। उपर्युक्त ग्रंथों में भारतीय अद्वैतवाद का प्रतिपादन तथा ज्ञान और भक्ति का समन्वय किया गया है। 'विज्ञानगीता' में केशव की दार्शनिक विचार-धारा इन ग्रंथों के समान ही अद्वैतवाद के मेल में बही है। 'रामचंद्रिका' में केशव के इष्टदेव राम की कथा तथा यश का वर्णन है। केशव की रामभावना पर भी रामोपासक वैष्णव अद्वैतवाद की स्पष्ट छाप है। तात्विक दृष्टि से केशव के राम परब्रह्म हैं, परन्तु उनका ब्रह्मत्व केवलाद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैत आदि विभिन्न दार्शनिक अद्वैत-वादों में से किस वाद के अनुसार है, यह बात उनके ग्रंथों में कहीं पर भी सुस्पष्ट नहीं है। हाँ, उपासना के क्षेत्र में वह रामोपासना-संबंधी रामानन्दी सम्प्रदाय से प्रभावित प्रतीत होते हैं। रामानन्दी सम्प्रदाय के समान ही केशव के इष्टदेव 'राम' हैं और मूल-मंत्र 'रामनाम'। रामानन्दी-संप्रदाय के अन्तर्गत राम-भक्ति का अधिकार प्रत्येक वर्ण को है।[1] केशव ने भी द्विजातियों के अतिरिक्त शूद्रों को राम भक्ति का अधिकारी मान कर रामानन्दी सम्प्रदाय का प्रभाव स्वीकार किया है।

ब्रह्म :

केशव का ब्रह्म आदि तथा अन्तहीन है। वह अमित है, अबाध है, अकल, अरुप और अज है। वह जरा-मरण रहित, अद्भुत और अवर्ण है। वह अच्युत और अनामय है। ब्रह्म निर्मल, अनंग तथा नाशहीन है। वह इन्द्रियों के लिये अगोचर है। त्रिमूर्ति तथा वेद उसे 'जोऽ सि सोऽ सि' आदि शब्दों से पुकारते हैं।[2] ब्रह्म ही तमोगुण, सतोगुण तथा रजोगुण है। वह सर्वशक्तिमान तथा प्रमाण-रहित है। वह नित्य-वस्तु, विचारपूर्ण तथा सर्व

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास, शुक्ल, पृ० सं० १२२।

२. 'जाको नाहीं आदि अंत अमित अबाधि युत अकल अरुप अज चित्त में अतुर है।
अमर अजर अज अद्भुत अवर्ण अंग अच्युत अनामय सुरसना ररतु है।
अमल अनंग अति अच्चर असंग अरु अस्तुत अदृष्ट देखिबे को परसतु है।
विधि हरि हर वेद कहत जोसि सोसि केशवदास ताकंह प्रणामहि वरतु है' ॥
विज्ञानगीता, छं० सं० २१, पृ० सं० १०४।

भाव से अदृष्ट है। संसार के नाना स्वरूप ब्रह्म के ही अद्भुत भाव से उत्पन्न हैं। विष्णु से लेकर परमाणु पर्यंत की उत्पत्ति उसी से है।[1] ब्रह्म ही अशेष जीवों को शरण-दाता है। वह नित्य नवीन, माया से परे, इच्छारहित तथा निर्विकारी है। वह अविकृत तथा अखंड है। वह मुक्त तथा देवाधिदेव है।[2]

जीव :

केशव के अनुसार ज्योतिस्वरूप ब्रह्म के अशेष प्रतिबिम्ब-जालों की ही जग में 'जीव' संज्ञा है।[४] जिस प्रकार से सूर्य की किरणें सूर्य से निकलती तथा संसार में आलोक फैलाकर उसी में समा जाती हैं, उसी प्रकार ब्रह्म का चित् अंश जीव रूप में चैतन्य का स्फुरण कर अंत में उसी में लीन हो जाता है।[3]

बद्ध जीव :

माया के संसर्ग से जीव अनेक रूप धारण करता है। जिस प्रकार पुष्प, रस, रूप तथा सुगन्धि से युक्त रहते हुये भी स्वयं इनके प्रभाव को नहीं जानता, उसी प्रकार चिदंश-

१. 'तम तेज सत्व अनंतु अब चाहत है जु अमेय।
सर्व शक्ति समेत अद्भुत है प्रमान अमेय।
नित्य वस्तु विचार पूरण सर्व भाव अदृष्ट।
पुंश नारि न जानिये सुनि सर्व भाव अदृष्ट'॥
विज्ञानगीता, छं० सं० ११, पृ० सं० ७७।
'ताके अद्भुत भाव ते, भए सरुप अपार।
विष्णु आनि परमानु लौं, उपजत लगी न बार'॥
विज्ञानगीता, छं० सं० १२, पृ० सं० ७७।

२. 'अजन्म है अमनु है, अशेष जंतु सर्न है।
अनादि अंतहीन है, जु नित्य ही नवीन है।
अरुप है अमेय है, अमाय है अमेय है।
निरीह निर्विकार है, सुमध्य अध्यहार है।
अकृत्त मै अखंडितै, अशेष जीव मंडितै।
समस्त शक्ति युक्त है, सुदेव देव मुक्त है'॥
विज्ञानगीता, छं० सं० ३६-४१, पृ० सं० ८०।

३. 'सब जानि बूझियत मोहि राम। सुनिये, सो कहौं जग ब्रह्म नाम॥
तिनके अशेष प्रतिबिंब जाल। तेइ जीव जानि जग में कृपाल'॥
रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, छं० सं० २, पृ० सं० ७२।

४. 'उपजत ज्यों चित रूप ते जीवन तिहि विधि जात।
रवि ते उपजत अंशु ज्यों, रवि ही मांझ समात'॥
विज्ञानगीता, छं० सं० १८, पृ० सं ७८।

जीव माया-मोह के संसर्ग से अपने वास्तविक रूप से अनभिज्ञ रहता है।[1] मोहासक्त जीव की स्थिति को केशवदास जी ने विभिन्न रूपकों द्वारा समझाने की चेष्टा की है। उन्होंने लिखा है कि मोह के संसर्ग से जीव अपने वास्तविक रूप को उसी प्रकार भूल जाता है जिस प्रकार लोहे में मिले हुये स्वर्ण के कण लोहे का ही रूप धारण कर लेते हैं। जिस प्रकार बालक काठ के घोड़े पर चढ़ कर घोड़े के गुणों को स्वयं ग्रहण करता है अर्थात् घोड़े के समान ही व्यवहार करने लगता है, अथवा जिस प्रकार लड़कियाँ गुड्डे-गुड़ियों में पुत्र-पौत्रादि की कल्पना कर उनसे खेलती हैं, उसी प्रकार मोहासक्त जीव की दशा है। वह अपने वास्तविक रूप को भूल कर संसार तथा उसके नाना व्यवहारों को सत्य मान लेता है। जिस प्रकार कोई अंधा अन्य अंधों के साथ किसी अंध-कूप में गिर कर भी हृदय में नहीं पछताता, उसी प्रकार मोह के अन्धकार में पड़कर भी जीव को पछतावा नहीं होता। वह बन्धन में डालने वालों को ही बंधु समझता तथा विषय-रूपी विष का मिष्ठान्न समझ कर भोग करता है। इस प्रकार विषय-वासनाओं का नियामक होते हुए भी जीव इनका दास बन जाता है और अपने वास्तविक रूप को भूल कर बंधन में ही सुख का अनुभव करने लगता है।[4] जिस प्रकार शब्द आकाश

१. 'ज्यों रस रूप सुगंधमय, पुष्प सदा सुखराउ।
पुष्प न जानत जानिये, ताको तनिक प्रभाउ॥
त्यों सब जीव चिदंशमय, वर्णत जीवन मुक्त।
भूलि जात प्रभुता सबै, महामोह संयुक्त'॥
विज्ञानगीता, छं० सं० २७-२८, पृ० सं ७६।

२. 'महा मोह संग जीव यों, मोहहि मांझ समात।
लोह लिप्त ज्यों कनक कण लोहाई ह्वै जात'॥
विज्ञानगीता, छं० सं० २६, पृ० सं ७६।

३. 'जैसे चढ़े बाल सब काठ के तुरंग पर,
तिनके सकल गुण आपु ही में आने हैं।
जैसे अति बालिका वै खेलति पुतरि अति,
पुत्र पौत्रादि मिलि विषय बिताने हैं।
आपुनो जो भूलि जात लाज साज कुल कर्म,
जाति कर्म कादिकन हीं सो मन माने हैं।
ऐसे जड़ जीव सब जानत हो केशवदास,
आपुनी सचाई जग सांचोई कै जाने हैं'॥
विज्ञानगीता, छं० सं० ४४, पृ० सं० ४६।

४. 'अंध ज्यों अंधनि साथ निरंध कुआं परिहूँ न हिए पछितानो।
बंधु कै मानत बंधन हारिनि दीने विषै विष खात मिठानो।
केशव आपने दासनि को फिरि दास भयो भव यद्यपि रानो।
भूलि गई प्रभुता लग्यो जीवहि बंदि परे भले बंदि अघानो'॥
विज्ञानगीता, छं० सं० ४५, पृ० सं० ४६।

का गुण है परन्तु आकाश स्वयं शब्द का प्रकाश करना नहीं जानता, जिस प्रकार काष्ठ में तेज रहते हुए भी तरुखंड उस तेज को नहीं पहचानते अथवा जिस प्रकार चित्रों में रूप रखते हुए भी चित्र उस रूप का वर्णन करना नहीं जानता, उसी प्रकार ब्रह्म का प्रभाव सब जीवों में व्याप्त होते हुए भी मूढ़ जीव उसके प्रभाव को नहीं जानता।[1]

मुक्त जीव :

केशवदास जी ने 'रामचंद्रिका' ग्रंथ के उत्तरार्ध में राम को जीवोद्धार का यत्न बतलाते हुये वशिष्ठ जी के मुख से मुक्त जीव की परिभाषा दिलायी है। वशिष्ठ जी ने बतलाया है कि मुक्त जीव वह है जिसका बाह्य और अन्तस दोनों ही अति शुद्ध हैं, जो अनासक्त-भाव से कर्म करता है और दूसरों के देखने में मूर्ख प्रतीत होता हुआ भी जिसका हृदय ज्ञानलोक से आलोकित रहता है। जो संसार के सब जीवों को आत्मवत् समझता है और जिसका अहंभाव मिट गया है, वह संसार के नाना कर्म बंधनों में रहते हुये भी मुक्त ही है।[2] 'विज्ञानगीता' ग्रन्थ में मुक्त जीव का लक्षण देते हुये केशव ने लिखा है कि जो संसार के सुखदुःखों को समान समझता तथा राग-विराग-रहित रहता है, जिसने अहंकार को तिलांजलि दे दी है, जो संसार की प्रत्येक वस्तु के वास्तविक रूप को पहचानता है, जो बालक के समान परमहंस रूप से संसार में विचरण करता है तथा स्वयं अपने को, एवं जड़ तथा जंगम सृष्टि को समदृष्टि से देखता है, वह जीवनमुक्त है।[3]

जीव की विदेहावस्था :

जीवनमुक्त अवस्था के बाद जीव की विदेहावस्था आती है। विदेहावस्था का लक्षण बतलाते हुये केशव ने लिखा है कि इस अवस्था में पहुँचने पर जीव दृश्य तथा अदृश्य, सम्पूर्ण

१. 'केशवदास अकाश में शब्द अकाशन शब्द प्रकाशुन जानतु।
तेज बसै तरु खंडनि में तरु खंडनि तेजनि को पहिचानतु।
रूप विराजत चित्रनि में परि चित्र न रूप चरित्र बखानतु।
त्यों सब जीवनि मध्य प्रभाव सुमूढ़ न जीव प्रभाव न मानतु'॥
विज्ञानगीता, छं० सं० १८, पृ० सं० १०८।

२. 'बाहर हूँ अति शुद्ध हिये हूँ। जाहि न लागत कर्म किये हूँ।
बाहर मूढ़ सु अंतस यानो। ताकहं जीवन मुक्त बखानो'॥
रामचन्द्रिका, उत्तरार्ध, छं० सं० १७, पृ० सं० ७६।
'आपन सो अवलोकियो सबही युक्त अयुक्त।
अहंभाव मिटि जाय जो कौन बद्ध को मुक्त'॥
रामचन्द्रिका, उत्तरार्ध, छं० सं० १८, पृ० सं० ७६।

३. 'लोक करै सुख दुःखनि के जिनि राग विरागनि या महं आने।
डारै उपारि समूल अहंतरु कंचन कांचन जो पहिचाने।
बालक ज्यों भवै भूतल में भव आपुन से जड़ जंगम जाने।
केशव वेद पुराण प्रमाण तिन्हैं सब जीवनमुक्त बखाने'॥
विज्ञानगीता, छं० सं० ३२, पृ० सं० १२१।

जगत को रूपक-मात्र समझने लगता है। आप स्वयं किसी प्रकार की इच्छा नहीं करता, परब्रह्म की ही इच्छा प्रबल मानता और उसी की इच्छानुसार कार्य करता है। विदेहावस्था में जीव कर्म-अकर्म में लीन नहीं होता और जल में नलिनी के समान संसार में रहते हुये भी संसार से अनासक्त रहता है। इस अवस्था में पहुँचने पर जीव एक मात्र चिदानंद में ही मस्त रहता है।[1]

जीव की कोटियाँ :[2]

केशवदास जी ने व्यवहारिक रूप से जीव की तीन अन्य कोटियां उत्तम, मध्यम तथा अधम बतलाई हैं। उत्तम जीव वे हैं जो ईश्वरेच्छा को ही सर्वोपरि मानते और उसी की प्रेरणा के अनुकूल कार्य करते हैं। यह आजीवन संसार में अनासक्त-भाव से रहते हैं। यदि कभी किसी कारण से इनसे ईश्वर की प्रेरणा के विरुद्ध कोई कार्य हो जाता है तो ये अपने को स्वयं दंडित करते हैं। उत्तम जीव अन्य जीवों को भी अपने शुभ मार्ग का अनुसरण करने के लिये प्रेरित करते हैं।

मध्यम कोटि के जीव वे हैं जो किसी सीमा तक मन के वश में हैं और ईश्वर के महत्व को भूले हुये हैं। ये जीव जब आधि-व्याधियों से पीड़ित होते हैं तब वेद-पुराणों की शरण जाते हैं और दान, व्रत, संयम, तप, त्याग तथा जप आदि के द्वारा जन्मान्तर में जीवन-मुक्त अवस्था को प्राप्त करते हैं।

१. 'देखत हूँ अनदेखत हूँ लिपि रूपक सेन सरूप को धावै।
आपु अनिच्छ चले परइच्छ की केशवदास सदापति पावै।
कर्म अकर्मनि लीन नहीं निज पायज ज्यों जल अंक लगावै।
ह्वै अति मत्त चिदानंद मध्यनि लोग संदेह विदेह कहावै'॥
विज्ञानगीता, छं० सं० ३३, पृ० सं० १२१।

२. 'उपजत माया संग ते, जीव होत बहुरूप।
उत्तम मध्यम अधम सब, सुनि लीजै भव भूप॥१६॥
उत्तम ते प्रभु शासन संमत। है जग सों न कहूँ कबहूँ रत।
कौनहूँ एक प्रसाद ते भूपति। होतु हैं शासन भंग महामति॥२०॥
आपुहि आपुन क्यों करि दंडहि। कारज साधत हैं तिह खंडहिं।
औरहु आपुने पंथ लगावैं। ते सब मध्यम जीव कहावैं॥२१॥
होत जे जीव कछू मन के वश। भूलत हैं अपने प्रभु के यश।
पीडिये आधिनि व्याधिनि के जब। बूझत वेद पुराणन को तब॥२२॥
दानन दै ब्रत संयम कै तप। संग तजे व्रत साधत हैं जप।
जन्म गए बहु ज्ञाननि पावत। ते जग जीवनमुक्त कहावत॥२३॥
जिनको न कछू अपने प्रभु की सुधि। बहु भांति बढ़ावत हैं मन की बुधि।
सुनिहूँ सुनि वेद पुराणनि के मत। होत तऊ बहु पापनि सों रत॥२४॥
ते अति अधम बखानिये, जीव अनेक प्रकार।
सदा सुयोनि कुयोनि में, भ्रमत रहे संसार'॥२५॥

अधम जीव वे हैं जो ईश्वर को बिल्कुल भूले हुये हैं और जिनमें अहं भाव प्रबल है। ऐसे जीव वेद-पुराणों के वचन सुनकर भी नाना पाप-कर्मों में लिप्त होते हैं। केशव के अनुसार इन जीवों की अनेक कोटियाँ हैं। ये जीव अपने-अपने कर्मानुसार सुयोनि अथवा कुयोनियों में भ्रमण कर अपने-अपने समय पर ईश्वर के पास जाते हैं।[1]

माया :

केशव के अनुसार माया का ही दूसरा नाम 'संसृति' है। माया, मोह की जाया अर्थात् अनुगामिनी है। संभ्रम तथा विभ्रम माया के पुत्र हैं। माया से ही इनकी उत्पत्ति होती है तथा माया की वृत्ति स्वप्न के समान है।[2] जिस प्रकार स्वप्नावस्था में मनुष्य नाना प्रकार की सृष्टि का अनुभव करता है और कुछ समय के लिये उसमें भूला रहता है, उसी प्रकार माया के प्रभाव से जीव भ्रम में पड़कर काल्पनिक संसृति को सत्य समझता है। किन्तु माया दुरन्त है और सहज ही इससे छुटकारा नहीं मिलता।[3]

सृष्टि :

केशव के अनुसार दृश्य तथा अदृश्य अखिल व्यवहारिक सृष्टि की सत्ता का आधार मन ही है।[4] इस बात को केशव ने अनेक प्रकार से विभिन्न स्थलों पर समझाया है। 'विज्ञान-गीता' के आरम्भ में केशव ने रूपक के शब्दों में बतलाया है कि सृष्टि की उत्पत्ति ईश तथा माया के संसर्ग से होती है। ईश तथा माया के संसर्ग से मन-रूपी पुत्र की उत्पत्ति होती है। मन की दो पत्नियाँ हैं, प्रवृत्ति तथा निवृत्ति। प्रवृत्ति से तीनों लोक उत्पन्न हैं। इसी से मोह, काम, क्रोध, लोभ, अहंकार, तृष्णा आदि उत्पन्न हैं। ज्ञान, सम, संतोष, विचार आदि निवृत्ति की सन्तान हैं।[5] अन्य

१. 'उत्तम मध्यम अधम अति, जीव ते केशवदास।
अपने-अपने औसरें, जैए प्रभु के पास' ॥२६॥
विज्ञानगीता, पृ० सं० ७६।

२. 'संसृति नाम कहावति माया। जानहु ताकहं मोह की जाया ॥
संभ्रम विभ्रम संतति जाकी। स्वप्न समान कथा सब ताकी' ॥२८॥
विज्ञानगीता, पृ० सं० ६३।

३. 'सबही सबको सर्वदा माया परम दुरन्त'।
विज्ञानगीता, पृ० सं० ६३।

४. 'जग को कारण एक मन'।
विज्ञानगीता, पृ० सं० १२०।

५. 'ईश माय विलोकि के उपजाइयो मनपूत।
सुन्दरी तिहि द्वै करी तिहि ते त्रिलोक अभूत।
एक नाम निवृत्ति है जग एक प्रवृत्ति सुजान।
वंश द्वै ताते भयो यह लोक मानि प्रमान।
महामोह दै आदि हम, जाए जगत प्रवृत्ति।
सुबुद्धि विवेकहि आदि दै, प्रगटत भई निवृत्ति' ॥१४॥
विज्ञानगीता, पृ० सं० ९, १०।

स्थल पर 'जीव' को ज्ञानोपदेश दिलाते हुये केशव ने 'देवी' के मुख से कहलाया है कि शुभ तथा अशुभ वासना से युक्त शरीर सम्बन्धात्मक सृष्टि का बीज है, जो भाव तथा अभाव में क्रमशः सुख-दुख का अनुभव करता है। शरीर का बीज विदेह चित्त-वृत्ति है, जो स्वप्न-दशा के समान संभ्रम-विभ्रम आदि से युक्त है। चित्त की उत्पत्ति 'प्राणस्पन्द' तथा 'भावना' से होती है। 'प्राणस्पन्द' तथा 'भावना' की उत्पत्ति 'संवेद' से होती है। 'संवेद' का बीज 'संवित' तथा संवित का बीज 'परमसत्ता' है। 'परमसत्ता' दो प्रकार की है। एक तो एक रूप तथा दूसरी नाना रूप। प्रथम को 'काल-सत्ता' कहते हैं और दूसरी को 'वस्तु-सत्ता' अथवा 'चितसत्ता'। 'चितसत्ता' ही सब वस्तुओं की उत्पत्ति का हेतु है और उसका कारण अथवा बीज अज्ञात है।[1] उसी को आराधना का उपदेश केशव ने दिया है।

संसार मिथ्या है :

केशवदास जी संसार की नाना-रूपात्मक सत्ता को सत्य नहीं मानते।[2] उन्होंने लिखा है कि संसार में जो नाना रूप दिखलाई देते हैं, वे दृश्यमात्र हैं। माया-मोह-जन्य संसार की भी

१. 'युक्त शुभाशुभ अंकुरनि, बीज सृष्टि को देहु।
भावाभाव सदानि में, सुख दुखदा इह गेहु ॥२॥
बीज देह को विदेह चित्त वृत्ति जानिए।
जाहि मध्य स्वप्न तुल्य सम्भ्रमादि मानिए।
दोइ बीज चित्त के सुचित्त ह्वै सुनो अबै।
एक प्राणस्पन्द है द्वितीय भावना सबै ॥३॥
दोइ बीज हैं चित्त के, ताके बीजनि जानि।
सो संवेद बखानिये, केशवराइ प्रमानि ॥७॥
बीजु सदा संवेद को, संविद बीज विधान।
संविज अरु संवात को छांड़त हैं मतिमान ॥८॥
संविद को वितु बीज है ताके सत्ता होइ।
केशवराइ बखानिये, सो सत्ता विधि दोइ ॥९॥
एक सु नाना रूप है, एक रूप है एक।
एक रूप संतत भजो, तजिये रूप अनेक ॥१०॥
एक काल सत्ता कहै, विमति चित्त को ताहि।
एक वस्तु सत्ता कहै, चित सत्ता चित चाहि ॥११॥
ताको बीजु न जानिये, जाकी सत्ता साधु।
हेतु जु है सब हेतु को, ताही को आराधु' ॥१२॥
विज्ञानगीता, पृ० सं० ११२, १३

२. 'झूठो है रे झूठो जग राम की दोहाई काहू।
सांचे को कियो है ताते सांचो सो लगतु' है।
कविप्रिया, पृ० सं० १०४।

वास्तविक सत्ता नहीं है। जिस प्रकार से शुक्ति में भ्रम से रजत का भान होता है, किन्तु भ्रम के नाश होने पर शुक्ति प्रगट हो जाती है, उसी प्रकार इस संसार का भ्रम भी है।[१] यहाँ के सब सम्बन्ध, सुत, मित्र, पुत्र, कलत्रादि मिथ्या हैं। विभिन्न रूपों में यह सम्बन्ध अनेक बार स्थापित होते और समाप्त होते हैं। इसी प्रकार मद, मोह, लोभ, काम, क्रोध आदि का भी कोई अस्तित्व नहीं है।[२]

संसार की अनित्यता :

संसार के सारे पदार्थ तथा सम्बन्ध अनित्य तथा क्षणिक हैं।[३] ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि से लेकर जितने दृश्य-शरीर हैं, वे नाश की ओर उसी प्रकार अग्रसर रहते हैं, जिस प्रकार सागर का जल बड़वानल की ओर।[४] हाथी, घोड़े, दास, धन, पृथ्वी आदि सब वस्तुयें नष्ट-प्राय हैं। तात, मात, मित्र, पुत्र और यहाँ तक कि स्वयं अपना शरीर अंत में अपना साथ छोड़ देता है।[५] यहाँ की किसी वस्तु को अपना समझना मूर्खता है। एक ही घर को मक्खी, मच्छर, मूसा, घूस, कीड़े तथा पक्षी आदि सब अपना समझते हैं। मनुष्य भी उसी को अपना कहता है किन्तु वास्तव में वह किसी का नहीं है। यह विडम्बना-मात्र है।[६]

१. 'भ्रम ही ते जो शुक्ति में, होति रजत की युक्ति।
केशव संभ्रम नाश ते, प्रगट शुक्ति की शुक्ति' ॥३२॥
विज्ञानगीता, पृ० सं० ११।

२. 'पुत्र मित्र कलत्र के तजि वत्स दुःसह सोग।
कौन के भट कौन की दुहिता मृषा सब लोग।
एक ब्रह्म सांचो सदा, झूठो यह संसार।
कौन लोभ मद काम को, को सुत मित्र विचार।
तुम्हें गए तजि बार बहु, तुमहुँ तजे बहु बार।
तिन लगि सोच कहा करो, रे बावरे गंवार' ॥
विज्ञानगीता, पृ० सं० ६१।

३. 'यह जग जैसे धूरिकण, दीहबाव सब होइ।
को जाने उड़ि जात कहं, मरे न मिलई कोइ' ॥१५॥
विज्ञानगीता, पृ० सं० ६१।

४. 'ब्रह्म विष्णु शिव आदि दै जितने दृश्य शरीर।
नाश हेतु धावत सबै ज्यों बड़वानल नीर' ॥२४॥
रामचंद्रिका, उत्तरार्धं, पृ० सं० ६७।

५. 'हाथी न साथी न घोरे न चेरे न गांव न ठांव को नांव बिलैहै।
तात न मात न मित्र न पुत्र न वित्त न अंग हू संग न रैहै' ॥
कविप्रिया, पृ० सं० १०८।

६. 'माछी कहै अपनो घरु माछरु मूसो कहै अपनो घरु ऐसो।
कोने घुसी कहै घूलि चिनौनी बिलारि औ ब्याल बिले महं वैसो ॥

संसार के सम्बन्ध उसी प्रकार क्षणिक हैं, जिस प्रकार कुछ काल के लिये नाव में बैठे हुये यात्रियों का साथ, आकाश में एकत्रित होनेवाले मेघखंड अथवा बवंडर में तृण समूह का क्षण भर के लिये एकत्रित होकर वियुक्त हो जाना। संसार के जीव उसी प्रकार क्षण भर के लिये एकत्र होकर अंत में वियुक्त हो जाते हैं, जिस प्रकार हाट, मार्ग अथवा बारात में कुछ समय के लिये लोगों का साथ होता और फिर बिछुड़ जाता है।[1]

संसार दुःख-पूर्ण :

भारत के प्रायः सभी दर्शन संसार को दुःखपूर्ण मानते हैं। निराशावाद बौद्धदर्शन की तो एक प्रमुख विशेषता ही है। केशव भी संसार को दुःखपूर्ण मानते हैं। इनके अनुसार संसार में सुख का लेश नहीं है, सर्वत्र दुःख ही दुःख है। मृत्यु के उपरान्त भी जीव को दुःख से छुटकारा नहीं मिलता। वह नाना जन्म ग्रहण करता और अनेक दुःख भोगता है।[2] गर्भ में आने के समय से लेकर मृत्यु-पर्यन्त बालावस्था, यौवनावस्था तथा वृद्धावस्था, प्रत्येक अवस्था में जीव को अनेक दुःख सहन करने पड़ते हैं। केशवदास जी ने 'रामचंद्रिका' तथा 'विज्ञानगीता' दोनों ही ग्रंथों में भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में होने वाले दुःखों का विस्तार-पूर्वक वर्णन किया है।[3]

कीटक स्वान सो पक्षि औ भिक्षुक भूत कहै, भ्रमजाल है जैसो।
होहूँ कहौं अपनो घरु तैसहि ता घरु कों, अपनो घरु कैसो' ॥२६॥
रामचन्द्रिका, उत्तरार्ध, पृ० सं ६८॥

१. 'भूरहुँ भूरि नदीनि के पूरनि नावनि में बहुतै बनि वैसे।
केशवराइ अकाश के मेंह बड़े बवधूरणि में तृण जैसे॥
हाटनि बाटनि जात बरातनि लोग सबै बिछुरे मिलि ऐसे।
लोभ कहा अरु मोह कहा जग योग वियोग कुटुंब के तैसे'॥
विज्ञानगीता, पृ० सं० ७१।

२. 'जग माँझ है दुख जाल। सुख है कहा यहि काल'।
रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, पृ० सं० ३१।
'सुमति महा मुनि सुनिये। जग मंह सुःख न गुनिये।
मरणहिं जीव न तजहीं। मरि मरि जन्म न भजहीं'॥१५॥
रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, पृ० सं० ५२।
'जग में न सुख है। यत्र तत्र दुःख है'।
विज्ञानगीता, पृ० सं० ७२।

बालावस्थाः

३. 'गर्भ मिलेइ रहै मल में जग आवत कोटिक कष्ट सहे जू।
को कहै पीर न बोलि परै बहु रोग निकेतन ताप रहे जू।
खेलत मात पितान डरै गुरु गेहनि में गुरु दंड वहे जू।
दीरघ लोचनि देवि सुनो अब बालदशा बिन दुःख नहेजू'॥१८॥
विज्ञानगीता, पृ० सं० ७२, ७३।

मोक्ष :

मोक्ष-प्राप्ति की साधना के मार्ग में केशव की दृष्टि में चार बातों का स्थान प्रमुख है, सत्संग, सम, संतोष तथा विचार। केशव के अनुसार उनमें से एकको भी अपनाने से 'प्रभु' के द्वार में प्रवेश उपलब्ध हो जाता है, और जो इन चारों बातों का मन और वचन से निष्कपट भाव से संग्रह करता है, वह सब प्रकार की वासनाओं से रहित होकर अपने वास्तविक रूप को प्राप्त करता है।[1]

सत्संग :

सत्संग की महिमा का वर्णन करते हुये केशव ने लिखा है कि सत्संग गंगासागर तीर्थ में स्नान से भी बढ़कर महत्वपूर्ण हैं।[2] इस सम्बन्ध में केशव ने सज्जन की परिभाषा भी दी है। केशव के अनुसार सज्जन वह है, जो इस कज्जल-कलित, अगाध तथा चक्रव्यूह के समान दुस्तर संसार में प्रविष्ट होकर भी निष्कलंक रहता है।[3]

यौवनावस्थाः

'काम प्रताप के ताप तपे तनु केशव क्रोध विरोध सनेजू।
जारे हु चारु चिताई विरक्ति में संपति गर्व न काहू गनेजू।
लोभ ते देश विदेश भ्रम्यौ भव संभ्रम विभ्रम कौन गनेजू।
मित्र अमित्र ते पुत्र कलत्र ते, योवन में दिन दुःख घनेजू' ॥२०॥
विज्ञानगीता, पृ० सं० ७३।

वृद्धावस्थाः

'कंपै उर बानि डगै वर डीठि त्वचाऽति कुचै सकुचै मति बेली।
नवै नवग्रीव थकै गति केशव बालक ते संगही संग खेली।
लिये सब आधिन व्याधिन संग जरा जब आवै ज्वरा की सहेली।
भगै सब देह दशा, जिय साथ रहै दुरि दौरि दुरास अकेली' ॥११॥
रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, पृ० सं० ५८।

१. 'मुक्तिपुरी दरबार के चारि चतुर प्रतिहार।
साधुन के शुभ संग अरु, सम संतोष विचार ॥४५॥
तिनमें जग एकहु जो अपनावै।
सुख ही प्रभु द्वार प्रवेशहि पावै ॥४६॥
जो इनको संग्रह करै मन वच छांड़नि छांड़ि।
मिलै आपने रूप को, सकल वासना खांडि' ॥४७॥
विज्ञानगीता, पृ० सं० ७६।

२. 'गंगासागर सों बड़ो साधुन को सतसंग।
पावन कर उपदेश अति अद्भुत करत अभंग' ॥४॥
रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, पृ० सं० ३७।

३. 'यह जग चक्रव्यूह किय कज्जल कलित अगाधु।
तामह पैठि जो नीकसै अकलंकित सो साधु' ॥१०॥
रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, पृ० सं० ७५

सम :

केशव के अनुसार 'सम' का तात्पर्य है, देखते, बात कहते, सुनते, भोग करते, तथा सोते-जागते आदि प्रत्येक अवस्था में क्षुब्ध न होना।[1]

संतोष :

'संतोष' वह अवस्था है जिस में हृदय में किसी वस्तु की प्राप्ति की इच्छा न हो, तथा किसी वस्तु के मिलने अथवा हाथ से निकल जाने पर दुःख न हो।[2]

विचार :

कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, कहाँ जाना है अथवा सार तत्व क्या है तथा मेरा, जननी, पिता आदि का क्या सत्य सम्बन्ध है, इन सब बातों का मनन करना 'विचार' है।[3]

प्राणायाम :

चित्त की शुद्धि तथा इन्द्रिय-निग्रह के लिये प्राणायाम का महत्व है। ब्रह्म-साक्षात्कार के लिये केशव ने प्राणायाम की उपयोगिता स्वीकार करते हुए इसे आवश्यक माना है और 'विज्ञानगीता' तथा 'रामचंद्रिका' दोनों ही ग्रंथों में उन्होंने प्राणायाम पर जोर दिया है।[4]

१. 'देखत हूँ बहु काल छिये हैं। बात कहे सुन भोग किये हैं।
सोवत जागत नेक न छोभै। सो समता सबही महं शोभै ॥११॥
रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, पृ० सं० ७६।

२. 'जो अभिलाष न काहु की आवै। आये गये सुख दुःख न पावै।
लै परमानंद सो मन लावै। सो सब माहिं संतोष कहावै' ॥१२॥
रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, पृ० सं० ७७।

३. 'आयो कहाँ अब हौ कहि को हौं। ज्यों अपनो पद पाऊं सो टोहौं।
बंधु अबंधु हिये मह जानै। ताकहं लोग विचार बखानैं' ॥१३॥
रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, पृ० सं० ७७।

४. 'क्रम क्रम साधै देहइहि, केशव प्राणायाम।
कुंभक पूरक रेचकनि, तो पूजै मन काम' ॥६॥
विज्ञानगीता, पृ० सं० ७७।

'चंद सूरहि चंद के मग सुष्मनागतदीश।
प्राण रोधन को करै जेहि हेत सर्व ऋषीश।
चित्त शोधन प्राणरोधन चित्त शुद्ध उदोत।
व्याधि आदि जरे जरायुत जन्म मरण न होत' ॥४॥
विज्ञानगीता, पृ० सं० ११२।

'जो चाहै जीवन अति अनंत। सो साधै प्राणायाम मंत।
शुभ पूरक कुंभक मान जानि। अरु रेचकादि सुख दानि मानि ॥२२॥
जो क्रम क्रम साधै साधु धीर। सो तुमहि मिलै याही शरीर।
रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, पृ० सं० ८२।

संन्यास :

केशव मोक्ष के लिये संन्यास लेकर बन जाने की आवश्यकता नहीं समझते। इनके अनुसार मन का वश में होना मुख्य है। केशव का कथन है कि यदि जीव निशिदिन वस्तु-विचार करता है, सच बोलता है, पाप-कर्म से विरत रहता है, धर्मकथाओं का श्रवण करता है, सत्संग करता है; यदि उसके हृदय में करुणा है, भोग करते हुये भी यदि वह उसमें लिप्त नहीं होता और इस प्रकार उसका मन उसके वश में है, तो उसके लिये घर और वन दोनों ही स्थान समान हैं और यदि उसमें यह बात नहीं है तो संन्यास लेकर बन जाना भी निरर्थक होगा।[1]

केशव की राम-भावना :

केशव के राम पूर्ण ब्रह्म हैं जिनको वेद 'नेति-नेति' कह कर सम्बोधन करते हैं।[2] इस बात को हम पीछे कह आए हैं। उनकी ज्योति एक ही रूप से, स्वच्छन्द, समस्त संसार में व्याप्त है।[3] शंकर जी द्वारा वह वंदित हैं। विरंचि उनके गुणों को देखा करते हैं, गिरा उनके गुणों को जोहा करती है और शेषनाग अनन्त मुखों से उनके गुणों का वर्णन करते हुये भी उनका अंत नहीं पाते हैं।[4] उनके रूप है, न रंग है, न रेख है। वेद उन्हें अनादि और अनंत कहते हैं।[5] इस प्रकार केशव के राम निर्गुण ब्रह्म हैं। किन्तु साथ ही केशव को राम की

१. 'निशि बासर वस्तु विचार करै, मुख सांच हिये करुणा धनु है।
अघनिग्रह, संग्रह धर्म कथान, परिग्रह साधुन को गनु है।
कहि केशव योग जगै हिय भीतर, बाहर भोगन स्यों तनु है।
मनु हाथ सदा जिनके, तिनको बन ही घरु है, घरु ही बनु है' ॥२६॥
रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, पृ० सं० ८६।
तथा विज्ञानगीता, छं० सं० ४३, पृ० सं० १२३। (पाठभेद से)

२. 'पूरण पुराण अरु पुरुष पुराण परिपूरण बतावैं न बतावैं और उक्ति को।
दरशन देत जिन्हे दरशन समुझैं न नेति नेति कहै वेद छाड़ि आनि उक्ति को'।
रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० ३।

३. 'जागत जाकी ज्योति जग एक रूप स्वच्छन्द'।
रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं १०।

४. 'गुनी एक रूपी सदा वेद गावै।
महादेव जाको सदा चित्त लावै ॥१४॥
विरंचि गुण देखै। गिरा गुणनि लेखै।
अनंत मुख गावै। विशेषहि न पावै' ॥१५॥
रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० ७।

५. 'रूप न रंग न रेख विशेष अनादि अनंत जु वेदन गाई।
केशव गाधि के नंद हमें वह ज्योति सो मूरतिवंत दिखाई'।
रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० ६६।

सगुण सत्ता भी स्वीकृत है। वे भक्तों के कारण अवतार ग्रहण करते हैं।[1] रजोगुणी ब्रह्मा के रूप में अवतरित होकर वह सृष्टि की रचना करते हैं, सतोगुणी विष्णु रूप से वह उसकी रक्षा करते हैं और तमोगुणी रुद्र रूप से वह सृष्टि का संहार करते हैं।[2] इस प्रकार केशव के राम का स्थान त्रिमूर्ति के ऊपर है। गीता में भगवान कृष्ण ने कहा है कि 'जब संसार में धर्म क्षीण हो जाता और अधर्म प्रबल हो जाता है, तब अधर्म का नाश करने के लिये मैं जन्म लेता हूँ'।[3] गीता के भगवान कृष्ण के समान ही केशव के राम भी जब-जब संसार में मर्यादा की हानि होती है, कच्छप, मीन आदि अनेक अवतार धारण कर धर्म और मर्यादा की स्थापना करते हैं।[4]

केशव की दृष्टि में राम-नाम का बहुत अधिक महत्त्व है। केशव का कथन है कि कलिकाल के प्रभाव से जब संसार में वेदपुराणों का प्रभाव न रहेगा, जप, तीर्थाटन आदि से लोगों की श्रद्धा उठ जायेगी, तब केवल राम नाम लेने से ही जीव का उद्धार होगा।[5] केशव के अनुसार यदि पापी भी मृत्यु के समय राम का नाम ले तो वह सहज ही सुरपुर प्राप्त कर सकता है।[6]

---

१. 'तुम अमल अनंत अनादि देव। नहि वेद बखानत सकल भेव।
सबको समान नहि बैर नेह। सब भक्तन कारन धरत देह'॥
रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० १४१।

२. 'तुम हौ गुण रूप गुणी तुम ठाये। तुम एक ते रूप अनेक बनाये।
इक है जु रजोगुण रूप तिहारो। तेहि सृष्टि रची विधि नाम बिहारो।
गुण सत्व धरे तुम रक्षत जाको। अब विष्णु कहै सिगरो जग ताको।
तुमही जग रुद्र सरूप संहारो। कहिये तेहि मध्य तमोगुण भारो'॥१८॥
रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० ४२४।

३. 'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्'॥७॥
श्रीमद्भगवद्गीता, पृ० सं० ५२।

४. 'तुमही जग हौ जग है तुमही में। तुमही विरची मरजाद दुनी में।
मरजादहि छोड़त जानत जाको। तब ही अवतार धरो तुम ताको।
तुमही धर कच्छप वेष धरो जू। तुम मीन ह्वै वेदन को उधरोजू।
यहि भाँति अनेक सरूप तिहारे। अपनी मरजाद के काज संवारे'॥
रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० ४२५।

५. 'जब सब वेद पुराण नसैहैं। जप तप तीरथ हू मिटि जैहैं।
द्विज सुरभी नहिं कोउ विचारै। तब जग केवल नाम उधारै'॥
रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, पृ० सं० ३४।
तथा विज्ञानगीता, छं० सं० ४३, पृ० सं० १२४। (पाठभेद से)

६. 'मरण काल कोऊ कहै, पापी होय पुनीत।
सुख ही हरिपुर जाइहै, सब जग गावै गीत'।१०।
रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, पृ० सं० ३४।
तथा विज्ञानगीता छं० सं० ५०, पृ० सं० १२४। (पाठभेद से)

इस अध्याय के प्रारम्भ में कहा गया है कि रामानन्दी सम्प्रदाय के अन्तर्गत रामभक्ति का अधिकार प्रत्येक वर्ण को है। केशवदास जी भी प्रत्येक वर्ण को रामनाम का अधिकारी मानते हैं। केशवदास जी का कथन है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र, किसी भी वर्ण के व्यक्ति को, वह पुरुष हो अथवा स्त्री, राम का चरित्र श्रद्धा-पूर्वक श्रवण करने से पुत्र, कलत्र, सम्पत्ति तथा अनेक यज्ञ, दान और तीर्थाटन का फल प्राप्त होता है।[1] 'राम' शब्द का ऐसा अमित प्रभाव है कि निष्कपट भाव से किसी भी वर्ण के व्यक्ति के 'रा' कहते ही उसकी अधोगति रुक जाती है और 'राम' कहने से उसे बैकुंठ-लोक की प्राप्ति होती है। इस प्रकार 'रा' तथा 'म' यह दो वर्ण मनुष्य के दोनों लोकों को सुधार देते हैं। राम-नाम का जाप मनुष्य के पापों को नाश कर, उसकी वासना को दूर करता तथा उसे स्वर्ग-लोक का अधिकारी बनाता है।[2] उपर्युक्त विचार केशव के ग्रंथों को देखने से प्रकट होते हैं किन्तु उनकी जीवन-घटनाओं पर विचार करने से ज्ञात होता है कि वे निवृत्ति-मार्ग-अनुगामी आध्यात्मिक साधक नहीं थे तथा उनकी मनोवृत्ति निवृत्ति-धर्म में नहीं थी। वे लोक-व्यवहार के धर्म को मानते थे और प्रवृत्ति-कारक साधनों में मन लगाते थे।

केशव और नारी :

ज्ञान-प्राप्ति के मार्ग में 'काम' मुख्य बाधा है। काम के वशीभूत हो मनुष्य कुल, धर्म आदि सब भूलकर पशु के समान आचरण करने लगता है। काम ही विवेकी को अविवेकी बनाता और मुक्ति की साधना में बाधक होता है।[3] काम का मुख्य अस्त्र स्त्री है अतएव प्रत्येक

---

१. 'रामचन्द्र चरित्र को जु सुने सदा चित लाय।
ताहि पुत्र कलत्र संपति देत श्री रघुराय।
यज्ञ दान अनेक तीरथ न्हान को फल होय।
नारि का नर विप्र क्षत्रिय वैश्य शूद्र जो कोय' ॥३८॥
रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, पृ० सं० ३४०।

२. 'कहै नाम आधो सो आधो नसावै। कहै नाम पूरो सो बैकुंठ पावै।
सुधारे दुहूं लोक को वर्ण दोऊ। हिये छद्म छांड़ै कहै वर्ण कोऊ ॥६॥
सुनावै सुनै साधु संगी कहावै। कहावै कहै पाप पुंजै नसावै।
जपावै जपै वासना जारि डारै। तजै छद्म को देवलोकै सिधारै' ॥७॥
रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, पृ० सं० ६४।

३. 'भूलत है कुल धर्म सबै तबही जबहीं यह आनि ग्रसै जू।
केशव वेद पुराणन को न सुनै, समुझै न, त्रसै न, हंसै जू।
देवन तें नरदेवन तें नर तें बर बानर ज्यों बिलसै जू।
यंत्र न मंत्र न भूरि गनै जगजीवन काम पिशाच बसै जू ॥६॥
ज्ञानिन के तन त्राणनि को कहि फूल के बाननि बेधत को तो।
बाय लगाय विवेकिन को, बहु साधक को कहि बाधक होतो।
और को केशव लूटतो जन्म अनेकनि के तपसान को पोतो।
तो शमलोक सबै जग जातो जु काम बड़ो बटपार न होतो' ॥१०॥
रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, पृ० सं० २६, २७।

साधक ने नारी की निंदा की है। इसी दृष्टिकोण से केशव ने भी नारी को त्याज्य बतलाया है। केशव ने लिखा है कि जहाँ स्त्री है, वहीं भोग हैं। स्त्री के बिना भोगों का अस्तित्व नहीं है। नारी-त्याग से सहज ही संसार छूट जाता है और संसार छूटने पर ही वास्तविक सुख की प्राप्ति होती है।[1] नारी के सम्बन्ध में परनारी-प्रेम की केशव ने विशेष निंदा की है। उनका कथन है कि परनारी पाप की बड़ी-बड़ी लपटों से नर को निरंतर जलाया करती है। लोक-मर्यादा के कारण उसका स्पर्श न होने पर भी केवल दृष्टिपात-मात्र से ही वह नर को मोहित कर लेती है। रूपक के शब्दों में कामिनी के हृदय की कुटिलता कँटिया है, उसके हृदय की कामेच्छा कँटिया में लगा हुआ माँस का चारा है और उसका समग्र शरीर कामरूपी मछुये के हाथ में स्थित डोर है। इस प्रकार स्त्री मनुष्य-रूपी मीनों को फंसाने के लिये बंसी के सामान है।[2]

व्यवहारिक दृष्टिकोण से केशव पत्नीरूप में नारी के महत्व को स्वीकार करते हैं। उनका कथन है कि जो पुरुष बिना पत्नी के घर में रहता है, वह अधर्म करता है। पत्नी को त्याग कर संन्यास लेने के भी केशव समर्थक नहीं हैं। उनके अनुसार जो व्यक्ति पत्नी को त्याग कर संन्यास लेता है उसका बनवास निष्फल है।[3] पत्नी के बिना पति और पति के बिना पत्नी उसी प्रकार दीन है, जिस प्रकार चन्द्र के बिना रात्रि और रात के बिना चन्द्र-ज्योत्सना फीकी है। पत्नी तो पति के बिना जलहीन मीन के ही समान है।[4]

नारी-धर्म :

हिन्दू-धर्म में नारी का स्थान पुरुष की अपेक्षा गौण है। पुरुष स्वामी और पूज्य है तथा नारी उसकी अनुगामिनी है। बाल्मीकि, तुलसी आदि महाकवियों ने नारी के जिस धर्म की स्थापना की है, उसमें सब कहीं यही भाव परिलक्षित होता है। केशव के नारी-धर्म संबंधी

१. 'जहाँ भामिनी, भोग तहँ, बिन भामिनि कँह भोग।
भामिनि छूटे जग छुटै, जग छूटे सुख योग' ॥१४॥
रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, पृ० सं० ६१।

२. 'धूम से नील निचोलनि सोहै। जाय छुई न विलोकत मोहै।
पावक पापशिखा बड़ बारी। जारति है नर को परनारी।
बंक हियेन प्रभा सरसी सी। कर्दम काम कछू परसी सी।
कामिनि काम की डोरि ग्रसी सी। मीन मनुष्यन की बनसी सी' ॥७॥
रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, पृ० सं० ५४-५५।

३. 'घरनी बिन घर जो रहै, छांड़ै धर्म अधर्म।
बनिता तजि जो जाइ बन, बन के निःफल कर्म' ॥११॥
विज्ञानगीता, पृ० सं० ७२।

४. 'पत्नी पति बिनु दीन अति, पति पत्नी बिनु मन्द।
चन्द बिना ज्यों यामिनी, ज्यों यामिनि बिनु चन्द ॥३९॥
पत्नी पति बिनु तनु तजै, पितु पुत्रादिक काइ।
केशव ज्यों जलमीन त्यों, पति बिनु पत्नी आइ' ॥४०॥
विज्ञानगीता, पृ० सं० ८६।

विचार भी परम्परापोषित हैं। केशव के अनुसार पत्नी के लिये पति मनसा, वाचा, कर्मणा पूज्य है और पति-सेवा के बिना दान, तप, देव-पूजा आदि सब निष्फल हैं।[1] पत्नी के लिये पति देवस्वरूप है। पत्नी को यदि वह दुख दे तब भी उसे सुख मान कर शिरोधार्य करना चाहिये। पत्नी को संसार को अमित्र तथा केवल पति को मित्र समझना चाहिये। तन, मन, धन से पति-सेवा करने से ही पत्नी को शुभ गति की प्राप्ति हो सकती है। स्त्री के लिये पति किसी दशा में भी त्याज्य नहीं है चाहे वह पंगु, गूँगा, बहरा, वृद्ध, बावन, रोगी, पांडु, कुरुप अथवा चोर, व्यभिचारी, जुआरी आदि ही क्यों न हो। पति की मृत्यु के बाद भी पत्नी को उसका साथ न छोड़ना चाहिये और सतीत्व ग्रहण करना चाहिये।[2]

वैधव्य-जीवन में नारी के लिये केशव आमोद-प्रमोद तथा शृंगार आदि की वस्तुएँ त्याज्य समझते हैं। केशव के अनुसार विधवा को शारीरिक सुख त्याग कर मन, वचन और शरीर से धर्माचरण करना चाहिये, उपवास द्वारा इन्द्रिय-निग्रह करना चाहिये और शेष जीवन पुत्र के अनुशासन में रहना चाहिये।[3]

१. 'मनसा वाचा कर्मणा, पत्नी के पतिदेव।
अन्न दान तप सुरन की, पति बिनु निःफल सेव' ॥४१॥
विज्ञानगीता, पृ० सं० ८६।

२. 'जिय जानिये पतिदेव। करि सर्व भाँतिन सेव॥
पति देइ जो अति दुःख। मन मानि लीजै सुक्ख॥
सब जगत जानि अमित्र। पति जानि केवल मित्र॥१२॥
नित पति पंथहि चलिये। दुख सुख को दलु दलिये॥
तन मन सेवहु पति को। तब लहिये सुभ गति को॥१३॥
जोग जाग व्रत आदि जु कीजै। न्हान, गान गुन, दान जु दीजै॥
धर्म कर्म सब निष्फल देवा। होहि एक फल कै पति सेवा॥१४॥
तात मातु जन सोदर जानो। देवर जेठ सब संगिहु मानो॥
पुत्र पुत्रसुत श्री छबि छाई। है विहीन भरता दुखदाई' ॥१५॥
'नारी तजै न आपनो सपनेहू भरतार।
पंगु गुँग बौरा बधिर अंध अनाथ अपार।
अंध अनाथ अपार वृद्ध बावन अति रोगी।
बालक पंडु कुरूप सदा कुवचन जड़ जोगी।
कलही कोढ़ी भीरु चोर ज्वारी व्यभिचारी।
अधम अभागी कुटिल कुमति पति तजै न नारी' ॥१६॥
'नारि न तजहि मरे भरतारहिं। ता संग सहहि धनंजय झारहिं' ॥
रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० ४६३-६४।

३. 'गान बिन मान बिन हास बिन जीवहीं।
तप्त नहिं खाय जल सीत नहिं पीवहीं।

केशव के राजनीति-संबंधी विचार :

केशवदास जी राजनीति के पूर्ण ज्ञाता थे। इसका कारण यह था कि वह आजीवन राजसभाओं के ही सम्पर्क में रहे। ओड़छा के मधुकरशाह, इन्द्रजीतसिंह तथा वीरसिंहदेव के शासन को इन्होंने निकट से देखा था। दिल्ली के राजसिंहासन पर अकबर और जहांगीर भी इन्हीं के समय में आसीन रहे। उन्होंने इन राजाओं तथा सम्राटों की उन्नति-अवनति भी देखी थी और उनके कारणों पर भी मनन-पूर्वक विचार किया था। इस मनन और प्राचीन ग्रंथों के अध्ययन तथा अपने अनुभव के आधार पर केशव ने राजाओं के गुण, राजधर्म तथा राजनीति का विस्तृत वर्णन किया है।

'रामचंद्रिका' ग्रंथ के उत्तरार्ध में पुत्रों तथा भतीजों में राज्य-वितरण कर रामचन्द्र जी के द्वारा केशव ने उनको राजनीति का उपदेश दिलाया है। रामचन्द्र जी ने उन्हें शिक्षा देते हुए कहा है कि कभी झूठ न बोलना; मूर्ख से मित्रता न करना; एक बार दान देकर वापस न लेना; किसी से स्नेह कर फिर उसे न तोड़ना; मंत्री और मित्र को दुःख न देना; देशदेशान्तर जाना किन्तु शत्रु का विश्वास न करना; जुआ न खेलना; वेद-वचन की रक्षा करना; शत्रु-देश में जाकर बिना जानी-समझी वस्तु का आहार न करना; मूर्ख से मंत्रणा न करना; गुप्त भेद किसी पर न प्रकट करना; हठ न करना; व्यर्थ प्रजा को पीड़ित न करना; अपराधी तथा निर-पराधी का विचार कर दंड देना; देव, स्त्री तथा बालक का धन न अपहरण करना; ब्राह्मण से वैर न करना; परधन को विष के समान और परस्त्री को माता के समान समझना; काम, क्रोध, लोभ, मोह, गर्व तथा क्षोभ से दूर रहना; यशोपार्जन करना; ज्ञानी साधुओं की संगति करना; धर्म-संगत शिक्षा देने वाले को हितैषी समझना और अधर्मी से बात न करना; कृतघ्नी, मिथ्यावादी, परस्त्रीगामी अथवा लोभी ब्राह्मण को दानाधिकारी न बनाना तथा संकल्प किये हुये दान को किसी अन्य से ब्राह्मण को न दिलवा कर स्वयं अपने ही हाथ से देना।[1]

> तेल तजि खेल तजि खाट तजि सोवहीं।
> सीत जल न्हाय नहिं उष्ण जल जोवहीं।।१८।।
>
> खाय मधुरान्न नहिं पाय पनहीं धरैं।
> काय मन वाच सब धर्म करिबो करैं।
> कृच्छ्र उपवास सब इन्द्रियन जीतहीं।
> पुत्र सिख लीन तन जौलगि अतीतहीं।।१९।।

रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, पृ० सं० १६५।

1. 'बोलिये न झूठ ईंठि मूढ़ पै न कीजिये। दीजिये जु वस्तु हाथ भूलि हू न लीजिये।
नेहु तोरिये न देहु दुःख मंत्रि मित्र को। यत्र तत्र जाहु पै पत्याहु जै अमित्र को।।२९।।
जुआ न खेलिये कहूँ जुवान वेद रक्षिये। अमित्र भूमि माहिं जैं अभक्ष भक्ष भक्षिये।
करौ न मंत्र मूढ़ सों न गूढ़ मंत्र खोलिये। सुपुत्र होंहु जैं हठी मठीन सों न बोलिये।।३०।।
वृथा न पीड़िये प्रजाहि पुत्र मान पारिये। असाधु साधु बूझि कै यथापराध मारिये।
कुदेव देव नारि को न बाल वित्त लीजिये। विरोध विप्र वंश सों सु स्वप्न हू न कीजिये।।३१।।

उपर्युक्त अधिकांश बातें राजनीति की शिक्षा न होकर सामान्य व्यवहारिक शिक्षा की ही हितकारी बातें हैं। राज्यरक्षा के लिये जो यत्न रामचन्द्र जी ने बतलाया है वह अवश्य केशव की राजनीतिक कूटनीति का परिचायक है। रामचन्द्र जी ने बतलाया है कि जो राजा अपने राज्य-सहित क्रमशः तेरह राज्यों की सुव्यवस्था कर लेता है, उसको शत्रु, मित्र अथवा उदासीन कोई हानि नहीं पहुंचा सकता है। राजा को चाहिये कि वह अपने राज्य के समीपवर्ती राज्य से शत्रुता रखे, उसके बाद वाले राज्य से मित्रता का व्यवहार करे और उससे भी परे राज्य से उदासीन भाव रखे। शत्रु-राज्य से युद्ध, मित्र-राज्य से संधि तथा उदासीन राज्य से दामनीति का व्यवहार रखे। इसी प्रकार की व्यवस्था राज्य की चारों सीमाओं पर करे। केशव के अनुसार जो राजा इस प्रकार व्यवस्था कर लेता है, वह सुखी रहता है।[1]

'वीरसिंहदेव-चरित' ग्रंथ में 'रामचन्द्रिका' की अपेक्षा राजगुण, राजधर्म तथा राजनीति का वर्णन अधिक विस्तार से हुआ है। तीसवें तथा इकतीसवें प्रकाश में राजधर्म-वर्णन किया गया है। केशवदास जी ने लिखा है कि राजा को सत्यवादी, शूर तथा धर्मात्मा होना चाहिये। यदि वह शूर होगा तो सब उससे भयभीत रहेंगे। यदि वह सत्यवादी होगा तो प्रत्येक का विश्वासपात्र रहेगा और यदि दानी भी होगा तो उसको यश की प्राप्ति होगी।[2]

राजा का कर्तव्य है कि वह मंत्री तथा मित्रों के दोषों को हृदय में न रखे। उसे मूर्ख को मंत्री, मित्र, सभासद, प्रोहित, वैद्य, ज्योतिषी, लेखक, दूत, प्रतिहार तथा धर्माधिकारी आदि न बनाना चाहिये। राजा का कर्तव्य है कि वह अपनी मंत्रणा गुप्त रखे तथा मद्य का

परद्रव्य को तो विषप्राय लेखो। परस्त्रीन को ज्यों गुरुस्त्रीन देखो।
तजौ काम क्रोधो महामोह लोभै। तजो गर्व को सर्वदा चित्त चोभै ॥३२॥
यशै संग्रहौ निग्रहौ युद्ध योधा। करौ साधु संसर्ग जी बुद्धि बोधा।
हितू होय सो देइ जो धर्मशिक्षा। अधर्मीन को देहु जैं वाकभिक्षा ॥३३॥
कृतघ्नी कुवादी परस्त्रीविहारी। करौ विप्रलोभी न धर्माधिकारी।
सदा द्रव्य संकल्प को रक्षि लीजै। द्विजातीन को आपु ही दान दीजै' ॥३४॥
रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, पृ०, सं० ३३५-३३८।

१. 'तेरह मंडल मंडित भूतल भूपति जो क्रम ही क्रम साधै।
कैसेहु ताकहू शत्रु न मित्र सु केशवदास उदास न बाधै।
शत्रु समीप परे तेहि मित्र सु तासु परे जु उदास कै जोवै।
विग्रह संधिनि, दाननि सिन्धु लौं लै चहु ओरनि तो सुख सोवै' ॥३५॥
रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, पृ० सं० ३३८।

२. 'राज चाहिये सांचौ सूर। सत्य सुसकल धर्म को मूर।
जो सूरो तौ सबै डराइ। सांचे को सब जग पतियाइ।
सांचौ सूरौ दाता होय। जग में सुजस जपै सब कोइ'।
वीरसिंहदेव-चरित, प्रकाश ३०, पृ० सं० १६४।

सदैव वहिष्कार करे। केशव के अनुसार जो राजा ऐसा नहीं करता, उसका राज्य चिरस्थायी नहीं रहता।[1]

राजा को चाहिये कि वह धन-धर्म का उपार्जन और उसकी रक्षा करे। धन का व्यय धर्म के लिये ही करना उचित है।[2] राजा का कर्तव्य है कि वह सन्तति के समान प्रजा का पालन करे और उसकी सुख तथा समृद्धि का ध्यान रखते हुये राज्य में वाटिका, जलाशय आदि का निर्माण तथा फल, फूल, औषधि और प्रजा के लिये अन्नवस्त्र की उचित व्यवस्था करे। राजा को यथायोग्य स्थानों पर अधिकारियों की नियुक्ति करनी चाहिये। अधिकारी ऐसे हों जो शूर, पवित्र आचरण करने वाले तथा राज-भक्त हों।[3]

राजा के लिये युद्ध-स्थल से भागनेवाले तथा हथियार डाल कर आधीनता स्वीकार करने वाले अवध्य हैं।[4] राजा को चाहिये कि अन्य राज्यों तथा स्थानों की विजय से प्राप्त धन ब्राह्मण, भाई, पुत्र तथा मित्र-वर्ग में वितरण करे।[5] राजा को अपने राज्य का समाचार

१. 'मंत्री मित्र दोष उर धरै। मंत्री मित्र जु मूरख करै।
मंत्री मित्र सभासद सुनौ। प्रोहित वैद जोतिसी गुनौ।
लेखक दूत स्वार प्रतिहार। सौंपि सुकृत जाहि भंडार।
इतने लोगनि मूरख करै। सो राजा चिरु राज न करै।
जाको मतो दुरयौ नहिं रहै। खल प्रिय सुरापान संग्रहै'।
वीरसिंहदेव-चरित, प्रकाश ३०, पृ० सं० १६३

२. 'उपजावै धन धर्म प्रकार। ताको रक्षा करै अपार।
धन बहु भाँति बढ़ावै राज। धन बाढ़े सबही कौ काज।
ताकौ खरचै धर्म निमित्त। प्रति दिन दीजै विप्र निमित्त'।
वीरसिंहदेव-चरित, प्रकाश ३१, पृ० सं० १६६।

३. 'सावकास जहं सौहै लोग। जहं जो जैसो पावै योग।
राज लोकरक्षा को काम। सुभ वाटिका जलासय धाम।
....
अस्त्र सस्त्र बहु जन्त्र विधान। अन्नपान रस पट तन त्रान।
कन्दमूल फल औषद जाल। सहित ज्ञान तृन बांधी ताल।
ठौर ठौर अधिकारी लोग। राखै नरपति जाके जोग।
सूरे सुचि अरु होय अनन्य। प्रभु की भक्ति गहौ मनमन्य'।
वीरसिंहदेव चरित, प्रकाश ३१, पृ० सं० १६६, १६७

४. 'भजे जात तिनको नहि हनै। डारि हथ्यारि जे हाहा भनै।
छूटे बार जे कांपत गात। पाइ पयादे तृननि चबात'।
वीरसिंहदेव-चरित, प्रकाश ३१, पृ० सं० १६८।

५. 'देस देस राजनि की जीति। हय गय धन लै आवहि कीर्ति।
कीरत्ति पठवै सागर पार। धन सन्तोषै विप्र अपार।
विप्रनि दै उबरै जो वित्त। सोदर सुत पावैं अरु मित्त'।
वीरसिंहदेव-चरित, प्रकाश ३१, पृ० सं० १६७

जानने के लिये गुप्तचरों को भेजना चाहिये और उनसे रात्रि में एकान्त में समाचार पूछना चाहिये। एक समय एक ही दूत बुलाया जाये और वह अस्त्रहीन तथा स्वयं राजा सशस्त्र हो।[1] अधिकारियों पर भी दृष्टि रखने के लिये गुप्तचर होना चाहियें। जो अधिकारी सज्जन हों उसे पदवी और दुर्जन अधिकारी को दण्ड देना चाहिये।[2]

राजा का कर्तव्य है कि वह दुस्साहसी, चोर, बटमार, अन्यायी तथा ठग आदि का निवारण करे और प्रजा में पाप की वृद्धि रोकने के लिये धर्मदण्ड प्रचारित करे।[3] धूर्त, धृष्ट, परस्त्रीगामी, परहिंसक, चोर, मिथ्यावादी तथा ठग आदि अपराध के अनुसार दण्डनीय हैं।[4] प्रत्येक कुमार्गगामी को दण्ड देना राजा का कर्तव्य है। दंड देते समय राजा को सम्बन्ध और गोत्र को न देख कर प्रिय और निकट सम्बन्धी को भी अपराध करने पर दंड देना चाहिये। ब्राह्मण, माता, पिता तथा गुरु अदंडनीय हैं। रोगी, दीन, अनाथ तथा अतिथि के अपराध करने पर उसे मृत्युदंड न देकर वृत्ति का अपहरण तथा देश निकाला देना चाहिये।[5] सेवक, भिक्षुक, ऋणी तथा थाती रखने वाला, सहोदर तथा शिष्य आदि के अप-

---

१. 'चारि दूत पठवै दस दिसा। आये दूतनि पूछै निसा'।

....

'राजा तिनकी बात सब सुनै अकेलो जाय।
आपु हथ्यारो निरहथौ एकै दूत बुलाय'।

वीरसिंहदेव-चरित, प्रकाश, ३१, पृ० सं० १६८, १६९।

२. 'अपनै अधिकारिनि कौ राज। चोरन ते समुझै सब काज।
साधु होय तौ पदवी देइ। जानि असाधु दंड को देइ'।

वीरसिंहदेव-चरित, प्रकाश ३१, पृ० सं० १७०।

३. 'साहसीनि तैं रक्षा करै। चोर चार बटपारनि हरै।
दुहूँ बात राजहि घटि परै। तातैं धर्म दंड कौ धरै'।

वीरसिंहदेव-चरित, ३१ प्रकाश, पृ० सं० १६९।

'प्रजा पाप ते राजा जाय। राज जाय तो प्रजा नसाय।
अन्याई ठग निकट निवारि। सब तैं राखहि प्रजा विचारि'।

वीरसिंहदेव-चरित, ३१ प्रकाश, पृ० सं० १७०।

४. 'धूत ढीठ सब प्रिय परदार। परहिंसा पर द्रव्यकहार।
झूठे ठग बटपार अनेक। तिनको दंड देय सब सेक'।

वीरसिंहदेव-चरित, ३१ प्रकाश, पृ० सं० १७१।

५. 'राजा सबको दंडिहि करै। जो जन पाइ कुपैडें धरै।
नाती गोती कछु नहिं गनै। प्रीतम सगौ न छोड़त बनै।

....

ब्राह्मण मात पिता परिहरै। गुरु जन को नृप दंडन धरै।
रोगी दीन अनाथ जु होय। अतिथिहि राजा हनै न कोय।
इतने जानि परै अपराध। वृत्ति हरै निकारै साधु'।

वीरसिंहदेव-चरित, ३१ प्रकाश, पृ० सं० १७२।

राध करने पर उन्हें समझाने बुझाने से यदि वह लज्जित हों और पश्चाताप प्रदर्शित करें तो इनका बध न करना चाहिये।[1]

'विज्ञानगीता' में भी केशव ने 'राजधर्म' के मुख से 'विवेकराज' को उपदेश दिलाते हुये राजा के प्रमुख गुणों का संक्षेप में वर्णन किया है। राजा के गुणों का वर्णन करते हुये केशव ने लिखा है कि दान, दया, मति, शूरता, सत्य, प्रजापालन तथा दण्डनीति राजा के प्रमुख गुण और धर्म हैं। विज्ञ, अति अज्ञ, वशवर्ती, दीन, मित्रवर्ग, ब्राह्मण तथा भय-ग्रस्त को दान देना चाहिये। दीन, गाय, स्त्री तथा ब्राह्मणों के प्रति राजा को सदैव दया का व्यवहार करना चाहिये। धरणी, धन, धर्म, सन्तान तथा अपने उद्धार आदि के लिये राजा को सदा मतिमान होना चाहिये। युद्ध में शत्रु के साथ, तथा अपनी इन्द्रियों के निग्रह के सम्बन्ध में राजा को शूर होना चाहिये। विपत्ति के समय मन, वचन तथा शरीर से उसे सत्यशील होना चाहिये। राजा का कर्तव्य है कि वह चोर, बटपार, व्यभिचारी, ठग तथा ईति से प्रजा की रक्षा करे। दंड के बिना प्रजा में धर्म का संचार नहीं हो सकता। अतएव दंड की भी उचित व्यवस्था होनी चाहिये। इस सम्बन्ध में सखा, सहोदर, पुत्र, गुरु, विप्र तथा स्त्री आदि किसी के भी अपराध करने पर उसे उचित दंड देना चाहिये।[2]

१. 'मचला दगाबाज बहुभांति। चेरे बैरी सेवक जाति।
भिक्षुक रिनियां थातीदार। अपराधी अधिकारी ज्वार।
जे सुत सोदर सिष्य अपार। प्रजा चार अरु रत परदार।
ये सिख देत भरैं जो लाज। हत्या तिनकी नाहिन राज'।

वीरसिंहदेव-चरित, प्रकाश ३१, पृ० सं० १७३।

२. 'दान दया मति शूरता, सत्य प्रजा प्रतिपाल।
दंडनीति ए धर्म हैं, राजनि के सब काज ॥२३॥

दान दीयत विज्ञ को अति अज्ञ को वश मीत।
दीन को द्विज वर्ग को बहु भूखभूषित भीत।
दीन देख दया करै अति अज्ञ को भुवपाल।
गाइ को त्रिय जाति को द्विज जाति को सब काल ॥२४॥

धरणी को धन धर्म को, सत्यशील संतान।
नृप अपने उद्धार को, सदा रहत मतिमान ॥२५॥

शूरता रण शत्रु को मन इन्द्रियादिक जानि।
सत्य काम मनो वचादिक संपदा विपदानि।
चोर ते बटपार ते व्यभिचार ते सब काल।
ईति ते ठग लोग ते जु प्रजानि को प्रतिपाल ॥२६॥

सखा सहोदर पुत्र सम, गुरुहू को अपराधु।
छमे न राजा विप्रहूँ बनिता विहरत साधु।

केशव के समय का समाज :

केशव का समय देश के सामाजिक अधःपतन का समय था। राजवर्ग ऐश्वर्य एवं विलासिता में मग्न था। प्रजावर्ग में पाखंड, दंभ, चोरी तथा व्यभिचार की वृद्धि हो रही थी। वर्ण-व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो रही थी। भिन्न-भिन्न वर्ण अपने कर्तव्य-पालन की ओर से विमुख हो रहे थे। केशवदास जी ने 'रामचंद्रिका' तथा 'विज्ञानगीता' ग्रन्थों में अनेक स्थलों पर देश की इस दशा की ओर संकेत किया है।

'रामचन्द्रिका' तथा 'वीरसिंहदेव-चरित' ग्रंथों के उत्तरार्ध में राज्यश्री की निन्दा करते हुये केशव ने तत्कालीन राजा-महाराजाओं का ही परोक्ष-रूप से चित्रांकन किया है। केशवदास जी ने लिखा है कि राज्यश्री के संसर्ग से राजाओं की प्रवृत्ति परमार्थ की ओर न जाकर संसारिक विषयों की ओर ही अधिक जाती है।[1] इसके प्रभाव से राजा धर्म, वीरता, विनय, सत्य, शील, आचार तथा वेद-पुराणों के वचनों की अवहेलना करते हैं।[2] राजलक्ष्मी से मदांध राजाओं की स्फूर्ति केवल मद्यपान में ही प्रकट होती है और परस्त्री-गमन में ही वह चातुर्य समझते हैं।[3] उनकी शूरता मृगया में ही सीमित रहती है, जिसकी प्रशंसा बंदीजन बड़े चाव से पढ़ते हैं। उनका किसी की ओर देख देना ही उसके लिये बहुत बड़ी दया है तथा किसी से बातचीत कर लेना ही उसके प्रति बहुत बड़ी ममता है।[4] राज्यश्री के मद में अंधे राजाओं के लिये किसी को दर्शन दे देना ही बहुत बड़ा दान है, हँस कर बात करना ही सम्मान की पराकाष्ठा है और किसी को अपना कह देना ही उसे असंख्य धन प्रदान करना है।[5] ऐसे

संतत भोगनि मैरस जाके। राजन सेवक पाप प्रजा के।
ताते महीपति दंड संवारे। दण्ड बिना नर धर्म न धारे' ॥२८॥
विज्ञानगीता, पृ० सं० ४२-४४।

नोट—'वीरसिंहदेव-चरित' ग्रन्थ में केशव ने गुरु तथा ब्राह्मण को अदंडनीय बतलाया है।
वीरसिंहदेव-चरित, प्रकाश २१, पृ० सं० १७२।

१. 'यद्यपि है अति उज्जल दृष्टि। तदपि सृजति रागन की सृष्टि'।
रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, पृ० सं० ४१।

२. 'धर्म वीरता विनयता, सत्य शील आचार।
राजश्री न गनै कछू, वेद पुराण विचार' ॥२२॥
रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, पृ० सं० ४३।

३. 'पान विलास उदित आतुरी। पर दारा गमनै चातुरी'।
रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, पृ० सं० ४६।

४. 'मृगया यहै सूरता बढ़ी। बन्दी मुखनि चाव सों पढ़ी।
जो केहू चितवै यह दया। बात करै तो बड़िये मया' ॥३६॥
रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, पृ० सं० ४६।

५. 'दर्शन दीबोई अति दान। हंसि बोलै तो बड़ सनमान।
जो केहू सों अपनो कहै। सपने की सी संपति लहै' ॥३७॥
रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, पृ० सं० ४६।

राजाओं के लिये हित की बात कहने वाला ही शत्रु होता है और जो चाटुकारी करता है वह मंत्री तथा मित्र का स्थान प्राप्त करता है।[1] केशव के समय के राजवर्ग की प्रायः यही दशा थी।

'विज्ञानगीता' ग्रन्थ में दिल्ली नगर का वर्णन करते हुये केशव ने लिखा है कि वहाँ ऐसे लोगों का बाहुल्य था जो निरन्तर रात्रि में काम-क्रीड़ा में प्रवत्त रह कर वारवधुओं की चाटुकारिता करते थे तथा प्रातःकाल स्नानादि से निवृत्त हो, स्वच्छ वस्त्र पहन तथा तिलक लगा कर दूसरों को उपदेश करते घूमते थे कि इस प्रकार तप करना चाहिये, इस प्रकार जाप करना चाहिये, श्रुतियों का सार यह है अथवा इस प्रकार योगसाधन तथा यज्ञ करना चाहिये।[2] दिल्ली नगर में ऐसे हो लोग अधिक थे जो गुरू के उपदेश को कभी ठीक से न सुनते थे और जिनकी धर्म, कर्म, यज्ञ आदि के विषय में जानकारी लेशमात्र भी नहीं थी। अधिकांश लोग स्नान, दान, संयम तथा योग से वंचित थे और शरीर-सेवा तथा इन्द्रिय-सुखोपभोग को ही ईश्वरोपासना समझते थे। वेदपाठी ब्राह्मण वेदों का भेद अथवा वेद-मंत्रों का अर्थ न जानते हुये तोते के समान रटे हुये वेद-मंत्रों का पाठ करते थे। उस समय मेखला, मृगचर्म तथा माला धारण करना, शिर पर जटा रखना, शरीर के अन्य अंगों को भस्म-लिप्त करना ही विरक्ति का लक्षण समझा जाता था। जगह-जगह कुतर्की मठाधीश दिखलाई देते थे। शूद्र लोग वक्षस्थल, भुजा, कर्ण तथा कटि आदि शरीर के अंगों को मुद्रित कर अपनी उच्चता का दावा करते थे। इस प्रकार केशव के अनुसार तत्कालीन समाज में चारों ओर पाखंड और दंभ का बोलबाला था।[3]

१. 'जोई अति हित की कहै, सोई परम अमित्र।
सुख वक्ताई जानिये, संतत मंत्री मित्र' ॥३८॥
रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, पृ० सं० ४०।

२. 'काम कुतूहल में विलसै निश वारवधू मन मान हरै।
प्रात अन्हाइ बनाइ दै टीकनि उज्वल अम्बर अंग धरै।
ऐसे तपो तप ऐसे जपो जप ऐसे पढ़ो श्रुति शास्त्र शरै।
ऐसे योग जयो ऐसे यज्ञ भयो बहुलोगनि को उपदेश करै' ॥
विज्ञानगीता, पृ० सं० ११।

३. 'कबहूँ न सुन्यो कहूँ गुरु को कह्यो उपदेश।
अज्ञ यज्ञ न भेद जानत धर्म कर्म न लेशु।
स्नान दान सयान संयम योग याग संयोग।
ईशता तनु गूढ़ जानत मूढ़ माथुर लोग ॥७॥

वेद भेद कछू न जानत घोष करत कराल।
अर्थ को न समर्थ पाठ पढ़ै मनो शुकबाल।
मेखला मृग चर्म संयुत अक्षत माल विशाल।
शीश दै बहु बार धारण भस्म अंगन डाल।

हिन्दुओं के धर्मगढ़ काशी में भी पाखंडियों की कमी न थी। यह लोग बड़े उत्साह-पूर्वक मार्ग में यात्रियों को लूट लेते और गाँवों में आग लगा देते थे। यही लोग कठोर शीत की उपेक्षा कर मंत्रोच्चारण के साथ प्रति-दिन माघ मास का स्नान कर अपने को पुरायात्मा और पवित्र सिद्ध करते थे। केशव ने लिखा है कि अनेक ऐसे व्यक्ति थे जो वारवधुओं के साथ बैठकर मद्यपान, चोरी तथा व्यभिचार करते हुए भी वस्तु-विचार करने का अहंकार करते थे।[1]

कलियुग का वर्णन करते हुये 'विज्ञानगीता' ग्रंथ में केशवदास जी ने लिखा है कि तत्कालीन ब्राह्मण-वर्ग कराल धर्म-कर्म करता हुआ शूद्रों का सा आचरण करता था। स्त्रियाँ पतिसेवा से विमुख हो जार-पतियों में आसक्त थीं। लोग दंभ-सहित पूजन तथा दान आदि करते थे। विष्णु-भक्ति का ह्रास हो रहा था और शक्ति की उपासना का प्रचार बढ़ रहा था। ब्राह्मण वेदों को बेंचते और म्लेच्छों की सेवा करते थे। क्षत्रियों ने प्रजा की रक्षा करना छोड़ दिया था और बिना अपराध के ही ब्राह्मणों की वृत्ति हरण करने में संकोच न करते थे। वैश्यों ने क्रय-विक्रय आदि छोड़कर क्षत्रियों के समान अस्त्र-शस्त्र धारण करना आरम्भ कर दिया था। शूद्र लोग मूर्ति के स्थान पर पत्थर रख कर उसकी पूजा करते, धन अपहरण करते और राज्य की ओर से निडर हो रहे थे।[2]

तत्कालीन मंदिरों की दशा भी शोचनीय हो रही थी। मंदिरों के पुजारियों की दशा

ठौर ठौर विराजहीं मठपाल युक्त कुतर्क।
घोष एक कहा रहो जा संग ते बहु नर्क ॥८॥

शूद्रनि सों मुद्रित करै, उर उदार भुजदंड।
शीश करै कटि पान कुश, दंभ परयो प्रचंड' ॥६॥

विज्ञानगीता, पृ० सं० ११, १२।

१. 'मारत राह उछाहनि सों पुर दाहत माह अन्हात उचारैं।
बार विलासिनि सो मिलि पीवत मद्य अनोदिक के प्रतपारैं।
चोरी करैं विभिचार करैं पुनि केशव वस्तु विचारि विचारैं।
जो निशि वासर काशी पुरी महँ मेरेई लोग अनेक विहारैं' ॥

विज्ञानगीता, पृ० सं० २२।

२. 'शूद्र ज्यों सब रहत द्विज धर्म कर्म कराल।
नारि जारनि लीन भर्तनि छाँड़ि के इहि काल।
दंभ सो नर करत पूजन न्हान दान विधान।
विष्णु छाड़त शक्ति भूषण पूजनीय प्रमान ॥१२॥
ब्राह्मण बेचत वेदनि को सुमलेच्छ महीप की सेव करैं जू।
क्षत्रिय छाड़त हैं परजा अपराध बिना द्विज वृत्ति हरैं जू।
छाँड़ि दयो क्रय विक्रय वैश्यनि क्षत्रिन यों हथियार धरैं जू।
पूजत शूद्र शिला धनु चोरति चित्त में राजनि को न डरैं जू' ॥

विज्ञानगीता, पृ० सं० ३३।

का वर्णन केशवदास जी ने 'रामचंद्रिका' ग्रंथ में कनौज-निवासी मठाधीश के बहाने करते हुये लिखा है कि जब कोई धनिक दर्शनार्थ मंदिर में आता था तब वह मूर्ति का भली भाँति शृंगार करता था। जिस दिन कोई धनी नहीं आता था, उस दिन वह मूर्ति को पलंग से उठाता भी न था। उसने भेंट ले-लेकर बहुत सा धन एकत्रित कर लिया था और नित्य भोगवासना में लिप्त रहता था।[1]

मठाधीशों के इस प्रकार के आचरण के कारण ही केशव के हृदय में तत्कालीन मठाधीशों के प्रति श्रद्धा न थी और वह उनके स्पर्श-मात्र को ही पुण्य का नाश करनेवाला समझते थे।[2]

'विज्ञानगीता' तथा संस्कृत के ग्रंथ

'विज्ञानगीता' एक काव्य-ग्रन्थ है। इसमें केशवदास जी ने महामोह तथा विवेक के युद्ध तथा महामोह की पराजय का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। इस प्रकार यह ग्रंथ एक रूपक के रूप में लिखा गया है, जिसमें दार्शनिक विषय को काव्य का पुट देकर सरस बनाने का प्रयत्न किया गया है। 'विज्ञानगीता' की कथा का आधार प्रमुख रूप से इसी विषय पर कृष्ण मिश्र[3] द्वारा लिखित संस्कृत भाषा का 'प्रबोधचन्द्रोदय' नाटक है। स्थूल रूप से 'विज्ञान-गीता' तथा 'प्रबोधचन्द्रोदय' का कथानक एक ही है किन्तु सूक्ष्म ब्योरों में दोनों के कथानक में महान अन्तर है। इसके कई कारण हैं। पहले तो 'प्रबोधचन्द्रोदय' नाटक है तथा 'विज्ञान-गीता' एक काव्यग्रन्थ है। नाटक-कार के सामने अनेक बन्धन रहते हैं क्योंकि नाटक 'नाट्य' के लिये होता है। जो बातें सरलता से रङ्ग-मंच पर नहीं दिखलाई जा सकती जैसे युद्ध, विवाह आदि, नाटककार को उनकी केवल सूचना-मात्र देकर ही संतोष करना पड़ता है, किन्तु कवि इन बातों का भी विस्तृत वर्णन कर सकता है। इस स्वतन्त्रता का उपयोग करते हुये केशवदास जी ने महामोह के नाना द्वीपों तथा देशों को जीतने तथा महामोह और विवेक के युद्ध का विस्तृत वर्णन किया है, जो हमें 'प्रबोधचन्द्रोदय' में नहीं मिलता। दूसरे, 'प्रबोधचन्द्रोदय' नाटक में कुछ दृश्य ऐसे हैं जिनको छोड़ देने से मूल-कथा के विकास और

१. 'एक कनौज हुतो मठधारी। देव चतुर्भुज को अधिकारी।
मन्दिर कोउ बड़ो जन आवै। अंग भली रचनानि बनावै॥१६॥
जादिन केशव कोउ न आवै। तादिन पलका ते न उठावै।
भेंटन लै बहुधा धन कीन्हो। नित्य करै बहु भोग नवीनो'॥२०॥
रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, पृ० सं० २६६।

२. 'लोक करयो अपवित्र वहि लोक नरक को वास।
छियै जु कोऊ मठपतिहिं ताको पुन्य विनास'॥२५॥
रामचंद्रिका, उत्तरार्ध, पृ० सं० २६७।

३. कृष्णमिश्र जेजाकभुक्ति के राजा कीर्तिवर्मा के शासन-काल में हुये थे। कीर्तिवर्मा का १०६८ ई० का एक शिलालेख प्राप्त हुआ है। अतः कृष्णमिश्र का समय लगभग ११०० ई० माना जाता है।
संस्कृत-साहित्य की रूपरेखा, पृ० सं० १६५।

उसकी बोधगम्यता में कोई अन्तर नहीं आता। केशव ने ऐसे स्थलों को जानबूझ कर छोड़ दिया है। तीसरे, नवीनता की भावना से प्रेरित होकर कथानक के अंतर्गत बहुत सी बातें केशवदास जी ने अपनी-ओर से भी मिला दी हैं, जिनका आधार 'प्रबोध-चंद्रोय' से इतर ग्रंथ हैं। ज्ञान-कथन के सम्बन्ध में दी हुई गाधिऋषि,राजा शिखीध्वज, प्रह्लाद, शुकदेव मुनि आदि की कथाओं तथा ज्ञान-अज्ञान की भूमिका के वर्णन का समावेश संस्कृत के 'योगवाशिष्ठ' नामक ग्रन्थ के आधार पर किया गया है। सूक्ष्म व्योरों के अन्तर्गत कुछ अन्य स्थलों पर भी 'योगवाशिष्ठ' के दार्शनिक विचारों का सन्निवेश दिखलाई देता है। कुछ स्थलों पर प्रकट किये हुये विचार गीता के दार्शनिक विचारों से तत्वतः मिलते हैं। किन्तु फिर भी, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, व्यापक रूप से 'विज्ञानगीता' तथा 'प्रबोध-चन्द्रोदय' दोनों का कथानक समान है। तुलना के लिये संक्षेप में 'प्रबोधचन्द्रोदय' नाटक का कथानक यहाँ दिया जाता है।

'प्रबोधचन्द्रोदय' नाटक की कथावस्तु :

नान्दीपाठ तथा प्रस्तावना के बाद सनातन रीति से कथा का आरम्भ होता है। काम, सूत्रधार के मुख से विवेक के द्वारा महामोह के पराजय की बात सुनता है, जिसे सुनकर उसे क्रोध आ जाता है क्योंकि विवेक की जीत काम की भी पराजय है। काम जानता है कि औरों की तो बात ही क्या, विद्वानों में भी शास्त्रपठन के फलस्वरूप विवेक तभी तक स्थिर रहता है जब तक वह युवतियों के कटाक्ष का शिकार नहीं होते। रति शंका करती है कि यह सब होते हुये भी महा-मोह का प्रतिपक्षी विवेक बहुत प्रबल है। काम अपना प्रभाव बतलाता हुआ उसे भयभीत न होने के लिये कहता है। रति प्रश्न करती है कि काम, मोह तथा विवेक, शम,दम आदि की उत्पत्ति एक ही माता-पिता से होने पर भी सहोदरों में वैर क्यों है। काम उसे बतलाता है कि महेश्वर तथा माया के संसर्ग से मनरूपी पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसने सृष्टि का सृजन कर दोनों कुलों की उत्पत्ति की। मन की दो पत्नियाँ हैं, प्रवृत्ति तथा निवृत्ति। प्रवृत्ति का प्रधान पुत्र मोह है तथा निवृत्ति का विवेक। जहाँ तक सहोदरों के वैर का सम्बन्ध है, सहोदरों में चिरकाल से वैर होता चला आया है, जिसके संसार में अनेक उदाहरण हैं। काम रति को बतलाता है कि सम्प्रति विवेक और महामोह के वैर का कारण यह है कि समस्त संसार उनके पिता मन द्वारा उपार्जित है और पिता उन लोगों से अपेक्षाकृत अधिक प्रेम करता है, अतएव विवेक आदि पिता का भी उन्मूलन करना चाहते हैं। काम, रति को यह भी बतलाता है कि उसने एक किंवदन्ती सुनी है कि उसके कुल में विद्या नाम की एक राक्षसी उत्पन्न होगी जो उन लोगों के माता-पिता तथा सहोदरों का भक्षण करेगी। काम, रति के भयभीत होने पर उसे सान्त्वना देता हुआ कहता है कि सम्भव है यह किंवदन्ती-मात्र ही हो क्योंकि उसके रहते हुये विद्या की उत्पत्ति नहीं हो सकती। रति के यह पूछने पर कि अपने कुल का विनाश करनेवाली विद्या की उत्पत्ति विवेक को क्यों रुचिकर है, काम उत्तर देता है कि कुलक्षय में प्रवृत्त प्राणी ऐसा ही करते हैं। इसके पश्चात् 'विष्कम्भक' में विवेक तथा मति का कथोपकथन है। विवेक, मति को बतलाता है कि अहंकारादि दुरात्माओं के कारण जगत्प्रभु निरंजन दीन दशा को प्राप्त हो गया है और विवेक आदि उसके उद्धार में प्रवृत्त हैं। नाटक का प्रथम अंक यहाँ समाप्त हो जाता है।

दूसरे अंक में दम्भ के द्वारा ज्ञात होता है कि महामोह से उसे सूचना मिली है कि विवेक ने प्रबोध के उदय का बीड़ा उठाया है और इसके लिये विवेक ने विभिन्न तीर्थ-स्थानों को शम, दम आदि भेजे हैं। अतएव महामोह ने दम्भ को आज्ञा दी है कि वह मुक्ति-क्षेत्र वाराणसी में जाकर चारों वर्णों के कल्याण में विघ्न उपस्थित कर कुलक्षय को रोके। दम्भ ने यह कार्य सुचारु-रूप से सम्पादित कर दिया है। दम्भ घूमते हुये अहंकार को भागीरथी पार करते देखता है। उसे देखकर जब वह उसके निकट जाता है तो वह दम्भ का निवारण करता है। शिष्य द्वारा पाद-प्रक्षालन के बाद दंभ को अहंकार के आश्रम में आने की आज्ञा मिलती है किन्तु बैठने के लिये उसे दूर आसन दिया जाता है। कुछ बातचीत के बात दम्भ पहचानता है कि वह उसका पितामह है तब उसका अभिवादन करता है। अहंकार के द्वारा दम्भ से उसके पुत्र अनृत तथा माता-पिता तृष्णा एवं लोभ की कुशलक्षेम पूछने पर वह अहंकार को बतलाता है कि वह लोग भी उसी स्थान में महामोह की आज्ञा से निवास कर रहे हैं। दम्भ के द्वारा वहां आने का कारण पूछने पर अहंकार उसे बतलाता है कि उसने विवेक के द्वारा महामोह का कुछ अहित सुना है, जिसकी सूचना महामोह को देने के लिये वह वहाँ आया है। दम्भ उसे बतलाता है कि महामोह इन्द्रलोक से स्वयं वहाँ आने वाले हैं। इसका कारण है वाराणसी में विवेक की स्थिति का प्रतीकार करना, क्योंकि उन्होंने सुना है कि वाराणसी में ही प्रबोधोदय होगा, जिसके द्वारा मोह, दम्भ आदि के कुल का नाश होगा। अहंकार के अनुसार विवेक का प्रतीकार कठिन है क्योंकि तारकमंत्र देने वाले शिव जी वहाँ निवास करते हैं। दम्भ, काम-क्रोध आदि के अपने पक्ष में होने के कारण प्रतीकार सम्भव समझता है।

इसके बाद चार्वाक तथा उसके शिष्य का कथोपकथन है। चार्वाक शिष्य को शिक्षा दे रहा है कि यज्ञ, श्राद्ध, उपवास आदि व्यर्थ हैं। सच्चा सुख स्त्री-सुखोपभोग ही में है। इसी समय महामोह का आगमन होता है। वह चार्वाक की शिक्षा सुनकर बहुत प्रसन्न होता है। चार्वाक महामोह का अभिवादन कर कलि की ओर से प्रणाम करता है। महामोह द्वारा कलि का समाचार पूछने पर चार्वाक बतलाता है कि ब्राह्मण आदि परस्त्रीगमन तथा मद्य-पान में रत हैं। उन्होंने संध्या, हवन आदि त्याग दिया है। अग्निहोत्र, वेद, संन्यास तथा भस्मावलेपन जीविकोपार्जन के उपायमात्र रह गये हैं। कलि ने विष्णुभक्ति का भी विरल प्रचार कर दिया है किन्तु विष्णु की कृपा-विशेष के कारण उसके सम्बन्ध में कुछ अधिक कर सकना कठिन है। महामोह को चार्वाक विष्णुभक्ति से सावधान रहने का परामर्श देता है। यह सुनकर महामोह हृदय में तो किंचित् भयभीत होता है किन्तु प्रकट रूप से निर्भयता प्रदर्शित करते हुए चार्वाक से कहता है कि काम-क्रोध के रहते हुये विष्णुभक्ति का उदय नहीं हो सकता। असत्संग के द्वारा महामोह, लोभ, मद, मात्सर्य आदि से कहला भेजता है कि वे विष्णुभक्ति का नाश करें। इसी समय उत्कल प्रदेश के सागर-तटवर्ती पुरुषोत्तम नामक देवालय से मद, मान आदि द्वारा भेजा हुआ एक मनुष्य पत्र लेकर आता है। पत्र के द्वारा यह सूचना दी गई है कि शान्ति अपनी माँ श्रद्धा के सहित विवेक की दूती का काम करती हुई उपनिषद को विवेक का साथ करने के लिये समझा-बुझा रही हैं। इसके अतिरिक्त काम का सहचर धर्म भी वैराग्यादि के द्वारा भेद को प्राप्त करा दिया गया है। महामोह काम से कहला भेजता है कि वह धर्म को दृढ़तापूर्वक बाँध रखे। इसके बाद मोह, क्रोध तथा लोभ को बुलाता है। क्रोध को ज्ञात है कि

शान्ति, श्रद्धा तथा विष्णुभक्ति महामोह के शत्रु-पक्ष में हैं। वह मोह को विश्वास दिलाता है कि उसके रहते इनकी दाल नहीं गल सकती। लोभ कहता है कि उसके रहते लोग इच्छा-सागर को ही न पार कर सकेंगे, शान्ति आदि की चिन्ता कैसे करेंगे। लोभ अपनी पत्नी तृष्णा को बुलाकर उसे लोगों की तृष्णा बढ़ा देने की आज्ञा देता है। इसी प्रकार क्रोध, हिंसा को लोगों में हिंसावृत्ति जागृत करने का आदेश देता है। मोह सबसे श्रद्धा की पुत्री शान्ति पर निग्रह रखने के लिये कहता है।

क्रोध, लोभ, तृष्णा तथा हिंसा के जाने के बाद मोह शान्ति के निग्रह के लिये एक अन्य उपाय सोचता है। उसका विचार है कि यदि किसी प्रकार उपनिषद् के पास से शान्ति की मां श्रद्धा को अलग कर दिया जाय तो माता के वियोग के दुःख में शान्ति को विरति हो जायगी। इस कार्य के लिये मोह वारविलासिनी मिथ्यादृष्टि को उपयुक्त समझ कर विभ्रमावती के द्वारा उसे बुला भेजता है। इसके बाद मिथ्यादृष्टि तथा विभ्रमावती का कथोपकथन है। मिथ्यादृष्टि कहती है कि चिरकाल के बाद महाराज से मिलने जाने का उसका साहस नहीं होता क्योंकि वह जानती है कि महाराज मोह उसे उपालम्भ देंगे। विभ्रमावती उसे समझाती है कि उसकी आशंका व्यर्थ है। इसी समय विभ्रमावती की दृष्टि मिथ्यादृष्टि के निद्राकुल नेत्रों की ओर जाती है। कारण पूछने पर मिथ्यादृष्टि उसे बतलाती है कि जिसके केवल एक प्रिय होता है उसी की नींद दुर्लभ रहती है, उसके तो मोह, काम, क्रोध, लोभ, अहंकारादि अनेक वल्लभ हैं। विभ्रमावती को यह सुन कर बहुत आश्चर्य होता है। सबसे अधिक आश्चर्य तो उसे इस बात से होता है कि इन लोगों की पत्नियाँ उससे ईर्ष्या नहीं करतीं वरन् उसके बिना एक क्षण भी नहीं रह सकतीं। विभ्रमावती सोचती है कि इस प्रकार मिथ्यादृष्टि के निद्राकुलित नेत्रों को देख कर महाराज मोह के हृदय में कुछ शंका न हो। मिथ्यादृष्टि उसे समझाती है कि महाराज के आदेशानुसार ही वह यह सब करती है। इसके बाद दोनों महामोह के पास जाती हैं। आगे महामोह तथा मिथ्यादृष्टि का कथोपकथन है। मोह उसे प्रेम की क्रियाओं द्वारा प्रसन्न कर उससे श्रद्धा को पाखंड के अर्पण करने में सहायक होने की प्रार्थना करता है। मिथ्यादृष्टि यह काम पूरा करने का उसे पूर्ण आश्वासन देती है। दूसरा अंक यहाँ समाप्त हो जाता है।

तीसरे अंक में शान्ति करुणा के सहित श्रद्धा की खोज में दिखलाई देती हैं। खोज न मिलने पर शान्ति चिता में जल कर भस्म होने को उद्यत होती है। किन्तु करुणा उसे यह समझाती हुई इस कार्य से रोकती है कि वह मोह के भय से कहीं छिपी होगी। दोनों श्रद्धा को खोजती हुई पाखंड के निवासस्थल में पहुँचती हैं। सर्व प्रथम वह दिगम्बर सिद्धान्त को देखती हैं जिसके नग्न शरीर, कुंचित केश तथा वीभत्स रूप को देख कर उसके पिशाच अथवा राक्षस होने का संदेह करती है किन्तु थोड़ी देर पश्चात् वह समझ जाती है कि वह दिगम्बर सिद्धान्त है। दिगम्बर सिद्धान्त अपने मत की व्याख्या करने के पश्चात् श्रद्धा को बुला कर उसे आज्ञा देता है कि वह सदैव श्रावकों के साथ रहे। वह आदेश स्वीकार करती है। यह देखकर शान्ति विचलित होती है किन्तु करुणा उसे आश्वासन देती हुई बतलाती है कि उसने हिंसा के पास सुना था कि पाखंडियों के पास तामसी श्रद्धा रहती है, अतएव यह तामसी श्रद्धा है। इसी समय बौद्ध भिक्षु का आगमन होता है जो अपने मत की प्रशंसा करता है। बौद्धभिक्षु श्रद्धा को बुला कर सदैव भिक्षुओं का आलिंगन करते हुये निवास करने की आज्ञा देता है। शान्त समझ

जाती है कि यह भी तामसी श्रद्धा है। इधर दिगम्बर-सिद्धान्त तथा बौद्ध-भिक्षु में बातों-बातों में कहा-सुनी हो जाती है और अपने मत की प्रशंसा तथा दूसरे के मत की आलोचना करते हुये दोनों लड़ने को उद्यत हो जाते हैं। शान्ति तथा करुणा उधर से हट कर सोमसिद्धान्त को सम्मुख देखती हैं, जो कापालिक के वेष में हैं। क्षपणक (श्रावक) उससे उसके धर्म, मोक्ष आदि सम्बन्धी विचारों के विषय में पूछता है। बातचीत में अपने धर्म की अवहेलना सुन कर कापालिक क्षपणक पर क्रुद्ध होकर खड्ग खींच लेता है। भिक्षु क्षपणक की रक्षा करता है। कापालिक देखता है कि क्षपणक तथा भिक्षु दोनों के हृदय श्रद्धाविहीन हैं। यह देख कर वह श्रद्धा का आह्वान करता है। तामसी श्रद्धा आकर कापालिक की आज्ञा से भिक्षु का आलिंगन करती है। भिक्षु को इतनी प्रसन्नता होती है कि वह सोमसिद्धान्त में दीक्षित हो जाता है। इसके बाद श्रद्धा क्षपणक को भी कापालिक के आदेश से ग्रहण करती है। वह भी कापालिक की शिष्यता स्वीकार कर लेता है। कापालिक दोनों को श्रद्धा की उच्छिष्ट सुरा का पान कराता है। क्षपणक सुरापान से मस्त होकर पूछता है कि जैसी अपहरण-शक्ति सुरा में है क्या वैसी शक्ति स्त्री-पुरुषों में भी है। कापालिक उत्तर देता है कि वह अपनी शक्ति से विद्याधरी, सुरांगना, नागांगना आदि सभी का आकर्षण कर सकता है। इसी समय क्षपणक कहता है कि उसने गणित के द्वारा ज्ञात किया है कि वह सब महामोह के किंकर हैं, अतएव सबको मिलकर राजकार्य की मंत्रणा करनी चाहिये। कापालिक के पूछने पर वह बतलाता है कि महाराज महामोह के आदेशानुसार सात्विकी श्रद्धा का अपहरण करना चाहिये। वह गणना के द्वारा यह भी बतलाता है कि सात्विकी श्रद्धा विष्णुभक्ति-सहित महात्माओं के हृदय में निवास कर रही है। शान्ति तथा करुणा इस प्रकार सात्विकी श्रद्धा के निवास-स्थल की खोज पाकर प्रसन्न होती हैं। भिक्षु के काम से पृथक रहने वाले धर्म के निवास-स्थान के विषय में पूछने पर क्षपणक फिर गणना कर बतलाता है कि वह भी विष्णुभक्ति के साथ महात्माओं के हृदय में वास करता है। यह सुन कर कापालिक धर्म तथा श्रद्धा के अपहरण के निमित्त महाभैरवी विद्या की प्रस्थापना करने को कहता है। इधर शान्ति और करुणा श्रद्धा से मिलन-हेतु विष्णुभक्ति के पास जाने के लिये प्रस्थान करती हैं।

चतुर्थ अंक में मैत्री के द्वारा सूचना मिलती है कि विष्णुभक्ति ने महाभैरवी से श्रद्धा की रक्षा की है। इस समय मैत्री श्रद्धा से मिलने के लिये उत्कंठित है। उसी समय श्रद्धा का आगमन होता है। श्रद्धा मैत्री को बतलाती है कि महाभैरवी से रक्षा करने के बाद विष्णुभक्ति ने उसे आदेश दिया है कि वह जाकर विवेक से कहे कि काम-क्रोध आदि को जीतने के लिये वह उद्योग करे। ऐसा करने पर वैराग्य का प्रादुर्भाव होगा। वह बतलाती है कि विष्णुभक्ति ने यह भी वचन दिया है कि समय आने पर वह प्राणायाम आदि के द्वारा विवेक की सेना को अनुप्राणित करेगी। तत्पश्चात् ऋतंभरा (प्रज्ञा) आदि देवियाँ तथा शान्ति कौशल से उपनिषद तथा विवेक का संगम कराकर प्रबोधोदय करायेंगी। श्रद्धा, मैत्री को बतलाती है कि वह इस समय इसी उद्देश्य से विवेक के पास जा रही है। मैत्री, श्रद्धा से कहती है कि वह चारों बहनें (मैत्री, अनुकम्पा, मुदिता तथा उदासीनता) भी विष्णुभक्ति ही की आज्ञा से विवेक को सिद्धि दिलाने के लिये महात्माओं के हृदय में निवास करती हैं। मैत्री द्वारा विवेक का निवास-स्थान पूछने पर श्रद्धा उसे बतलाती है कि 'राढ़' जनपद में भागीरथी के तट पर स्थित

चक्रतीर्थ में मीमांसा तथा मति के साथ विवेक, उपनिषद् देवी के समागम के हेतु तप कर रहा है। यह सुन कर श्रद्धा विवेक से मिलने के लिये प्रस्थान करती है।

इसके बाद विष्कम्भक का आरम्भ होता है। विवेक के द्वारा ज्ञात होता है कि उसे कामादि को विजय करने के लिये उद्योग करने का विष्णुभक्ति का आदेश प्राप्त हो चुका है। वह यह सोचकर कि काम प्रतिपक्षियों का सबसे प्रबल योद्धा है और उसे वस्तुविचार के द्वारा जीता जा सकता है, वस्तुविचार को बुलाकर उसे महामोह से छिड़े संग्राम की सूचना देते हुये उससे कहता है कि काम के प्रतिपक्षी के रूप में वह चुना गया है। वस्तुविचार इस आज्ञा को शिरोधर्य कर विवेक को बतलाता है कि जीव के अन्तःकरण को स्त्रियों के वास्तविक रूप नारकीयता को दिखला कर काम को जीतना सुकर है। नारी, काम का प्रधान अस्त्र है। उसे जीत लेने पर काम के अन्य सहायक चन्द्र, बसन्त, घन, मद, मारुत आदि स्वयं ही जीत लिये जायेंगे। वस्तुविचार के जाने के बाद विवेक, क्रोध को जीतने के लिये क्षमा को बुलवाता है। विवेक के यह पूछने पर कि क्रोध कैसे जीता जा सकेगा, क्षमा बतलाती है कि जिन मनुष्यों का हृदय दया के रस से आर्द्र है, उनमें क्रोधोत्पत्ति नहीं हो सकती। किसी के क्रोध करने पर यह सोच कर कि हम धन्य हैं कि अमुक हम पर क्रोध करता है, टाल देने से, क्षमा महाप्रसाद है अतएव क्षमा करना चाहिये, किसी के कुवाक्य कहने पर उसे आशीर्वाद देकर तथा किसी के ताड़ना देने पर अपने दुष्कर्मों का नाश समझ कर संतोष करने से क्रोध जीता जा सकता है। क्रोध के जाने पर विवेक लोभ की विजय के लिये संतोष को बुलाता है और उसे भी इसी प्रकार आदेश देकर वाराणसी भेजता है। इसी समय एक मनुष्य आकर विवेक को सूचना देता है कि विजय-प्रयाण के समय के मंगल कार्य किये जा चुके हैं तथा प्रस्थान का मुहूर्त सन्निकट है। यह सुन कर विवेक सेनापति को सेना के प्रस्थान का आदेश देने के लिये कहता है और स्वयं भी सेना के साथ रथारूढ़ हो वाराणसी के लिये प्रस्थान करता है। वाराणसी को देखकर विवेक बड़ा प्रसन्न होता है। काम, क्रोध, लोभ आदि विवेक को देख कर दूर हटते दिखलाई देते हैं। वाराणसी पहुँच कर विवेक, आदि केशव को प्रणाम करता और उनसे संसार के मोहच्छेद के लिये बोधोदय प्रदान करने की प्रार्थना करता है। वाराणसी को ही उपयुक्त स्थल समझ कर विवेक वहीं अपनी सेना का डेरा डाल देता है।

पंचम अंक में श्रद्धा सूचना देती है कि काम, क्रोध आदि की मृत्यु हो गई तथा समर समाप्त हो गया। विष्णुभक्ति समरकालीन हिंसा न देखने की इच्छा से वाराणसी छोड़ कर कुछ समय के लिये शालिग्राम-क्षेत्र में निवास करने चली गई थी। इस समय श्रद्धा उसके आदेशानुसार उसे समर का वृत्तान्त बतलाने जा रही है। उधर विष्णुभक्ति, शान्ति के साथ युद्ध का वृतान्त जानने के लिये उत्सुक दिखलाई देती है। इसी समय श्रद्धा वहाँ पहुँचकर विष्णुभक्ति को समर का विस्तृत समाचार बतलाती है। वह विष्णुभक्ति को बतलाती है कि दोनों दलों के भीषण संग्राम के लिये डट जाने पर विवेक ने नैयायिक दर्शन को दूत के रूप में मोह के निकट भेज कर यह कहलाया कि वह काम-क्रोधादि के साथ पुण्यतीर्थों, गंगातट तथा पुण्यात्मा लोगों के हृदय को छोड़ कर म्लेच्छों के हृदय में जाकर निवास करे। यह सुन कर मोह क्रुद्ध हो गया और उसने पाखंड, तर्क आदि को समर के लिये आगे भेजा। इधर विवेक की ओर वेद, वेदांग, धर्मशास्त्र, इतिहास आदि के रूप में सरस्वती सेना के अग्रभाग

में प्रकट हुई। इसके बाद दोनों दलों में घमासान युद्ध हुआ। पाषंडागम को सदागम के सम्मुख मुँह की खानी पड़ी। दिगम्बर, कापालिक आदि पाखंडागम, मालव, पांचाल, आभीर आदि स्थानों में जाकर छिप रहे। न्याय-मीमांसा आदि के द्वारा जर्जरभूत नास्तिक दर्शनों ने आगम के मार्ग को ग्रहण कर लिया। तब वस्तुविचार ने काम का; क्षमा ने क्रोध, हिंसा आदि का; तथा संतोष ने लोभ, तृष्णा, दैन्य, अनृत, पैशुन्य आदि का निग्रह किया। अनअसूया के द्वारा मात्सर्य विजित हुआ तथा परोत्कर्ष-सम्भावना ने मद और परगुणाधिक्य ने मान का खंडन किया। महामोह, योगविघ्नों सहित कहीं जाकर छिप गया। युद्ध का समाचार सुनाने के बाद श्रद्धा ने विष्णुभक्ति को बतलाया कि पुत्रपौत्रादिकों की मृत्यु के शोक में मन ने जीवन समाप्त करने की ठानी है। यह सुनकर विष्णुभक्ति ने मन में वैराग्योत्पत्ति करने के लिये सरस्वती को मन के पास भेजने का निश्चय किया।

इधर मन रागद्वेष, मद-मात्सर्य आदि पुत्रों के शोक में दुखी है। संकल्प उसे सान्त्वना देता है। मन देखता है कि आज उसे प्रवृत्ति भी आश्वासन देने नहीं आ रही है। संकल्प के द्वारा वह सुनता है कि कुटुम्ब के निधन के शोक में प्रवृत्ति का हृदय विदीर्ण हो चुका है। यह समाचार पा वह मूर्छित हो जाता है और मूर्छा दूर होने पर जीवनोत्सर्ग की इच्छा से संकल्प को चिता तय्यार करने का आदेश देता है। इसी समय विष्णुभक्ति के द्वारा भेजी हुई सरस्वती उसके निकट आती है। वह मन को समझाती है कि कोई किसी का मित्र पुत्र, कलत्र आदि नहीं है। यह सब नाशवान् हैं। केवल एक ब्रह्म सत्य तथा चिरन्तन है। दुःख ममत्व के कारण होता है, अतएव उसका त्याग करने का प्रयत्न करना चाहिये। इसी समय वैराग्य वहाँ आता है। सरस्वती मन से वैराग्य का आदेश मानने का अनुरोध करती है। वैराग्य के द्वारा मन का शोकावेग शांत हो जाता है और सरस्वती के उपदेश से उसका व्यामोह जाता रहता है। अन्त में सरस्वती उसे निवृत्ति को सहधर्मिणी बनाने का उपदेश देती हुई कहती है कि आज से शम, दम, सन्तोष आदि पुत्र उसका अनुसरण करेंगे। यम-नियम आदि उसके अमात्य होंगे, तथा विवेक उसके अनुग्रह से उपनिषद् के साथ यौवराज्य का सुख भोगेगा। सरस्वती उससे विष्णुभक्ति द्वारा भेजी हुई मैत्री आदि चारों बहनों का साथ करने का अनुरोध करती है। मन सरस्वती के आदेश को स्वीकार कर लेता है।

छठे अंक में विवेक की आज्ञा से शांति उपनिषद् देवी को बुलाने जा रही है। इसी समय श्रद्धा का आगमन होता है। श्रद्धा के द्वारा पुरुष की मन में प्रवृत्ति, माया के प्रति अनुग्रह, राजकुल की स्थिति आदि का समाचार मिलता है। श्रद्धा के द्वारा शांति को सूचना मिलती है कि वैराग्य के कारण विवेक भोगविरस है। वह यह भी सूचना देती है कि महामोह ने स्वामी के प्रतारण के निमित्त उपसर्गों (योगविघ्नों) सहित मधुमती विद्या को भेजा था जिससे उनमें आसक्त होकर विवेक उपनिषद् की चिंता न कर सके। उन्होंने जाकर स्वामी के सम्मुख ऐन्द्रजालिक विद्या प्रदर्शित की। माया ने उसकी प्रशंसा की, मन ने अनुमोदन किया तथा संकल्प ने प्रोत्साहन दिया। तब स्वामी को तर्क ने समझाया कि इस प्रकार यह लोग फिर आपको विषम विषयागारों में डाल रहे हैं। यह सुन कर पुरुष ने मधुमती का तिरस्कार कर दिया। श्रद्धा ने शांति को बतलाया कि उस समय वह पुरुष ही की आज्ञा से विवेक से मिलने जा रही है।

इसके बाद उपनिषद् तथा शांति का कथोपकथन है। उपनिषद् दयाहीन स्वामी द्वारा एक बार परित्यक्त होकर फिर उससे नहीं मिलना चाहती। शांति उसे समझाती है कि उसके प्रति जो अन्याय हुआ अथवा उसे जो दुःख सहन करना पड़ा, वह सब महामोह की दुश्चेष्टा का फल था। अन्त में उपनिषद् उसके साथ जाने को तत्पर हो जाती है। इधर विवेक श्रद्धा के साथ शांति तथा उपनिषद् के आने की प्रतीक्षा कर रहा है। कुछ समयोपरांत शांति तथा उपनिषद् का आगमन होता है। पुरुष के पूछने पर वह बतलाती है कि इतने दिन उसने अवधूतों के निवास-स्थान मठों, अनेक अन्य लोगों के वास-स्थलों, शून्य देवालयों तथा मूर्ख मुखर लोगों के पास व्यतीत किये। इनके सम्बन्ध में प्रश्न करने पर वह यह भी बतलाती है कि यह सब लोग उसके तत्व को नहीं समझते। उसके सम्बन्ध में उनके विचार दूसरों से केवल धन प्राप्त करने के साधन-मात्र हैं। इसके बाद उपनिषद् उन स्थानों का विस्तार-पूर्वक वर्णन करती है, जहाँ इतने दिन उसने निवास किया। वह विवेक को बतलाती है कि एक बार मार्ग में जाते हुए उसने यज्ञ-विद्या देखी जो सम्पूर्ण कर्मकांड की पद्धति से घिरी हुई थी। यज्ञविद्या के तत्व को जानने की इच्छा से प्रेरित होकर उसने उसके पास जाकर अपनी अनाथ दशा का उल्लेख कर उसके साथ रहने की प्रार्थना की, किन्तु उसके विचारों को सुन कर यज्ञ-विद्या ने उसको अपने साथ रखने में यह कह कर अनिच्छा प्रकट की कि उसके वहाँ रहने से यज्ञ-विद्या के निकट-वासी कर्म में श्लथ-आदर हो जायँगे। वहाँ से चल कर उपनिषद् कर्म-कांड की सहचरी मीमांसा के पास पहुँची और उससे भी साथ रहने की प्रार्थना की। वहाँ कुछ लोगों ने उसको साथ रखने का अनुमोदन किया किन्तु कुमारिल स्वामी आदि अन्य लोगों ने विरोध किया। इसके पश्चात् उपनिषद् तर्क-विद्या के निकट पहुँची। तर्क-विद्या ने उप-निषद् के विचारों को नास्तिक-पथ-प्रवर्तक समझ कर उसको बांधकर डाल देने की आज्ञा दी, अतएव उपनिषद् वहाँ से भाग कर दण्डक वन में प्रविष्ट हुई। तर्क के अनुयायियों ने उसका पीछा किया। दण्डक वन में स्थित मधुसूदन के देवालय से एक गदाधारी पुरुष ने निकल कर उनको मार भगाया तथा उपनिषद् की रक्षा की। इस प्रकार उपनिषद् भयभीत तथा दुर्दशा को प्राप्त अन्त में गीता के आश्रम में पहुँची। वत्सा गीता ने माँ सम्बोधन द्वारा आदर किया तथा उसका वृत्तान्त सुन कर उसको बड़े सम्मान से इतने दिनों तक अपने साथ रखा। इस प्रकार अपने प्रवास का समाचार कहने के पश्चात् पुरुष के पूछने पर उपनिषद् ने उसे बत-लाया कि पुरुष ही आत्मस्वरूप ईश्वर है। यह सुन कर पुरुष को बड़ा आश्चर्य हुआ। विवेक ने उसकी शंका-समाधान करते हुए उपनिषद् के कथन की सत्यता का अनुमोदन किया। तब पुरुष ने विवेक से इस तत्व के प्रबोध का उपाय पूछा। विवेक ने पुरुष को समझाया कि 'मैं और मेरा' आदि अहंकार के नाश होने पर जो कुछ है वह परम सत्ता ही है। यह भाव निश्चित रूप से उसके हृदय में जम जाता है। इसी समय निदिध्यासन का आगमन होता है। उसके द्वारा सूचना मिलती है कि उसको विष्णुभक्ति ने आदेश दिया है कि वह अपने गूढ़ अभिप्राय का उपनिषद् तथा विवेक के साथ उद्बोधन कराये तथा पुरुष में निवास करे। विष्णुभक्ति के कथनानुसार वह उपनिषद् को समझाती है कि देवताओं की उत्पत्ति संकल्प से ही होती है, मैथुन से नहीं। उसने योग के द्वारा ज्ञात किया है कि विवेक के संकल्प से ही गर्भाधान होता है, अन्यथा नहीं। निदिध्या-सन यह भी बतलाती है कि विष्णुभक्ति ने उससे कहलाया है कि उपनिषद् के उदर में क्रू-

सत्वाविद्या (अविद्या) तथा प्रबोधोदय दोनों ही स्थित हैं। उपनिषद योग के द्वारा अविद्या से मुक्ति प्राप्त करे तथा प्रबोध-चन्द्र को उत्पन्न कर और उसे पुरुष को समर्पित कर विवेक के साथ विष्णुभक्ति के पास जाये। उपनिषद विष्णुभक्ति की आज्ञा शिरोधार्य करती है। इसके बाद पुरुष के द्वारा सूचना मिलती है कि मन से अविद्या एकाएक तिरोहित हो गई और प्रबोधोदय हो गया। प्रबोधोदय से पुरुष का मोहान्धकार, तर्क-वितर्क आदि समाप्त हो जाता है और वह अपने विष्णुत्व को पहचान जाता है। इसी समय विष्णुभक्ति आकर आशीर्वाद देती है। यहीं नाटक समाप्त हो जाता है।

'प्रबोधचन्द्रोदय' तथा 'विज्ञानगीता' की कथावस्तु की तुलना :

केशव के कथानक का आरम्भ 'प्रबोधचन्द्रोदय' की अपेक्षा अधिक नाटकीय तथा प्रभावपूर्ण है। केशव के अनुसार एक बार पार्वती द्वारा विकारों के नाश तथा जीव के परमानन्द प्राप्त करने का उपाय पूछने पर शिव जी ने उससे बतलाया कि जब विवेक के द्वारा मोह का नाश होने पर प्रबोधोदय होता है, उसी समय जीव जीवन्मुक्त होता है। शिव जी ने पार्वती को यह भी बतलाया कि प्रबोध के उदय के लिये सबसे उपयुक्त स्थल वाराणसी है। शिव जी की बातचीत कलिकाल सुनता है। कलिकाल सब समाचार कलह को बता कर महामोह को सूचना देने के लिए भेजता है। कलह मार्ग में काम और रति को आते देखता है। कलह कलिकाल से ज्ञात हुआ समाचार काम को बतलाता है। इस सूचना को लेकर काम तथा कलह में बातचीत होती है। काम और रति का कथोपकथन दोनों ग्रन्थों 'विज्ञानगीता' तथा 'प्रबोधचन्द्रोदय' में समान है। काम कलह को आदेश देता है कि वह दिल्ली नगरी जाकर दम्भ से मिलकर उसे इस सम्बन्ध में उचित आदेश देने के बाद महामोह के पास जाये। कलह दिल्ली नगरी में जाकर दम्भ से मिलता है और कलिकाल का बतलाया हुआ सब समाचार उससे कहता है। इसके बाद कलह जाकर सब समाचार महामोह को बतलाता है। इधर दम्भ जमुना पार करते हुए अभिमान को देखता है। दंभ और अहंकार का कथोपकथन 'प्रबोधचंद्रोदय' के आधार पर लिखा गया है। दंभ को अहंकार के द्वारा ज्ञात होता है कि उसको काम ने वहाँ भेजा है। वह दंभ को सूचना देता है कि महामोह भी देवसभा से वहीं आ रहे हैं।

'प्रबोधचंद्रोदय' नाटक में काम ने स्वयं सुना कि विवेक के द्वारा मोह की पराजय के उपरान्त प्रबोध का उदय होगा। कलिकाल अथवा कलह की उद्भावना केशव की निजी है। केशव ने 'प्रबोधचन्द्रोदय' के प्रथम अंक में वर्णित विवेक तथा मति के कथोपकथन का भी कोई उल्लेख नहीं किया है। इस अंश को छोड़ देने से कथा के विकास में कोई व्यतिक्रम नहीं उपस्थित होता है। केशव के दम्भ ने अहंकार को दिल्ली नगरी में जमुना पार करते देखा है किन्तु कृष्ण मिश्र का दम्भ उसे वाराणसी में ही भागीरथी पार करते देखता है। दिल्ली केशव के समय में यवनों की राजधानी थी, अतएव वहाँ अहंकार, दम्भ आदि की उपस्थिति का वर्णन अधिक समीचीन है। इस प्रकार देव-सभा से मोह के सीधे वाराणसी आने का वर्णन न करने के कारण केशव को महामोह के वाराणसी पर आक्रमण करने के पूर्व मंत्रणा, तैयारी तथा सेना-प्रयाण आदि के वर्णन करने का अवसर मिल गया है। 'प्रबोधचंद्रोदय' में इन बातों का वर्णन नहीं है।

'विज्ञानगीता' के चौथे प्रभाव में केशव ने कलह के द्वारा समाचार पाकर महामोह के प्रयाण का वर्णन किया है। महामोह नाना द्वीपों, समुद्रों, सरिताओं, पर्वतों तथा भूखंडों को विजय करता हुआ अंत में भरतखंड आता है। 'प्रबोधचंद्रोदय' में यह वर्णन नहीं मिलता। केशव ने इस वर्णन के द्वारा महामोह के प्रभाव तथा शक्ति को प्रकट किया है। पांचवें तथा छठे प्रभाव में मिथ्यादृष्टि तथा महामोह की मंत्रणा का वर्णन है। महामोह पाखंडपुरी को देखकर रनिवास में अपनी पटरानी मिथ्यादृष्टि के पास जाता है। इस अवसर पर केशव ने मिथ्यादृष्टि के राजसी ठाटबाट और ऐश्वर्य का सांगोपांग वर्णन कर उसके प्रभाव को प्रदर्शित किया है। मिथ्यादृष्टि मोह को वाराणसी पर आक्रमण करने से रोकती है। वाराणसी शिव जी का निवास-स्थान है, अतएव उसका विचार है कि वहाँ मोह की दाल गल सकना असम्भव है। यह सुनकर मोह को क्रोध आ जाता है। वह प्रतिज्ञा करता है कि वह वाराणसी को अवश्य जीतेगा। इसके बाद छठे प्रभाव में महामोह उन तीर्थस्थानों तथा नदियों आदि का उल्लेख करता हुआ, जिन्हें वह जीत चुका है, मिथ्यादृष्टि को बतलाता है कि उसी प्रकार वह वाराणसी पर भी आधिपत्य कर लेगा। इस सम्बंध में वह अपने सहायकों पाखंड, दुःख, रोग; मंत्री विरोध, प्रधान झूठ; दलपति क्रोध आदि की शक्ति और प्रभाव का वर्णन करता है। एक बार फिर मिथ्यादृष्टि उसे समझाती है कि वाराणसी में तप के सागर रुद्र रहते हैं, दूसरे वह गंगा जी का स्थान है; वहीं विवेक सत्संग-सहित शिव जी की शरण में गंगा के तट पर रहता है, उसको जीतना टेढ़ी खीर है। वह विवेक के योद्धाओं के प्रभाव को बतलाती हुई कहती है कि विवेक के योद्धाओं के सम्मुख उसके योद्धा ठहर न सकेंगे। महामोह उसकी शिक्षा नहीं सुनता। अंत में जब मिथ्यादृष्टि मोह को अपने निश्चय में अडिग देखती है तब उसे बतलाती है कि यदि श्रद्धा विवेक का साथ छोड़ दे तो वह बलहीन हो जायेगा। अतएव वह मोह को परामर्श देती है कि वह श्रद्धा को पाखंड के अर्पण कर दे। वह यह परामर्श सुन कर बहुत प्रसन्न होता है और उसी दिन श्रद्धा को पाखंड के हवाले करने का निश्चय करता है। 'प्रबोधचंद्रोदय' नाटक में उत्कल देश से मद, मान आदि के निकट से पत्र के द्वारा महामोह को सूचना मिलती है कि शान्ति तथा श्रद्धा, उपनिषद् और विवेक के समागम के लिये प्रयत्नशील हैं। नाटक में महामोह स्वयं विचारता है कि यदि श्रद्धा को शान्ति से अलग कर दिया जाये तो शान्ति विरक्त हो जायेगी। इसके लिये वह मिथ्यादृष्टि को बुलाता है और उसे प्रसन्न कर उससे श्रद्धा को पाखंड के अर्पण करने का अनुरोध करता है। मिथ्यादृष्टि यह काम करने का वचन देती है।

'विज्ञानगीता' के सातवें प्रभाव में महामोह महाभैरवी को बुलाकर उससे श्रद्धा को पाखंड के अर्पण करने की प्रार्थना करता है। इसके बाद महामोह सभा में पहुँचता है, जहाँ चार्वाक अपने शिष्यों को नास्तिक मत का उपदेश दे रहे थे। चार्वाक तथा महामोह की बातचीत अधिकांश 'प्रबोधचंद्रोदय' के ही आधार पर दी गई है। श्रद्धा को पाखंड के अर्पण करने के सम्बन्ध में नाटक में कापालिक के द्वारा महाभैरवी विद्या की प्रस्थापना करने का उल्लेख है। 'विज्ञानगीता' के आठवें प्रभाव में शान्ति तथा करुणा का पाखंड के निवासस्थलों में श्रद्धा के खोजने का वर्णन है। इस प्रभाव का आधार 'प्रबोधचंद्रोदय' नाटक ही है। बौद्ध, जैन तथा सोम सिद्धान्त आदि पाखंडागमों के अतिरिक्त कुछ पाखंडों का वर्णन अवश्य केशव ने अपनी

ओर से बढ़ा दिया है। नाटक में वर्णित तामसी तथा राजसी श्रद्धा आदि का वर्णन केशव ने नहीं किया है। पाखंडियों के स्थलों में श्रद्धा की खोज न मिलने पर शान्ति तथा करुणा, वृन्दा देवी से उसका पता पूछने के लिये उसके स्थान में जाती हैं। जिस समय शान्ति नश्वर शरीर का अंत करने को उद्यत होती है, उसी समय आकाशवाणी होती है कि श्रद्धा का मिलन होगा। नाटक में पाखंडियों के निवासस्थलों को देखने के पूर्व ही शान्ति जीवनोत्सर्ग करने को उत्सुक होती है और उसे इस काम से करुणा यह कहकर रोकती है कि कदाचित श्रद्धा पाखंडियों के आश्रम में कहीं छिपी हो।

'विज्ञानगीता' के नवें प्रभाव में श्रद्धा से शांति तथा करुणा के मिलन का वर्णन है। केशव की श्रद्धा के सम्बन्ध में भी नाटक की श्रद्धा के समान ही, भैरवी द्वारा बन्दी बनाये जाने तथा विष्णुभक्ति द्वारा उससे उद्धार किये जाने का उल्लेख है। शांति, श्रद्धा से सदैव विष्णु-भक्ति के साथ रहने का अनुरोध करती है। इसके पश्चात् विष्णुभक्ति के द्वारा भेजे हुए किसी समाचार को कहने के लिए करुणा तथा श्रद्धा विवेक के पास और शांति विष्णु-भक्ति के पास जाती है। श्रद्धा जाकर विवेक से कहती है कि विष्णुभक्ति ने आदेश दिया है कि वह काम, मोह, लोभ, क्रोध, प्रवृत्ति आदि का नाश कर अपने पिता जीव को जीवन-मुक्त करे। नाटक में विष्णुभक्ति के इस आदेश का केशव की अपेक्षा अधिक विस्तृत वर्णन है। यह वर्णन श्रद्धा ने मैत्री से किया है। केशव ने मैत्री का कोई उल्लेख नहीं किया है। श्रद्धा के द्वारा भेजे हुए विष्णुभक्ति के आदेश के सम्बन्ध में विवेक के हृदय में तर्क-वितर्क होता है। सत्संग, राजधर्म आदि के समझाने पर विवेक की शंका मिट जाती है और वह विष्णुभक्ति का आदेश पालन करने के लिए उद्यत हो जाता है। इसी समय उद्यम सभा में आकर विवेक को महामोह के कर्म बतलाता है। यह सुन कर विवेक उद्यम से ऐसा उद्यम करने का अनुरोध करता है, जिससे वह शत्रुओं का नाश करने में सफल हो सके। उद्यम उसे बत-लाता है कि प्रतिपक्षियों का सर्व प्रमुख योद्धा काम है, उसे वस्तुविचार से जीतिए। क्रोध को जीतने के लिए वह सन्तोष को उपयुक्त बतलाता है। इसके बाद विवेक पाखंडपुर में ब्रह्म के विषय में डोंडी पीटने की आज्ञा देता है। नाटक में 'उद्यम' की कल्पना नहीं है। महामोह स्वयं ही वस्तुविचार आदि को बुलाकर उपस्थित संग्राम की सूचना देकर उन्हें युद्ध के लिए नियोजित करता है। 'विज्ञानगीता' के दसवें प्रभाव में डोंडी पीटी जाती है कि विवेक की आज्ञा है कि सब लोग ब्रह्म का चिंतन करें। यह सुन कर महामोह क्रुद्ध हो जाता है और प्रातः काल ही वाराणसी पर आक्रमण करने का निश्चय करता है। चार्वाक उसे समझाता है कि वर्षाकाल में कूच न कर शरदागम में कीजिएगा। इसके बाद वर्षा तथा शरद ऋतुओं का वर्णन है। इस प्रभाव की कथावस्तु केशव की निजी है। वर्षा तथा शरद ऋतुओं का वर्णन अनावश्यक है। इनसे मूल कथा के विकास पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

'विज्ञानगीता' के ग्यारहवें प्रभाव में महामोह वाराणसी की ओर सेना-सहित प्रयाण करता है तथा वाराणसी के उस पार अपना डेरा डाल देता है। भ्रम तथा भेद को वह दूत के रूप में विवेक के पास भेजता है। भ्रम तथा भेद, विवेक के पास पहुँच कर उसे महामोह का आदेश सुनाते हैं। भ्रम कहता है कि महामोह ने सम्पूर्ण पृथ्वी-मण्डल को जीत लिया है तथा विवेक को आज्ञा दी है कि वह वाराणसी छोड़कर ब्रह्मपुर में जाकर निवास करे। भेद,

विवेक से श्रद्धा को समर्पित करने के लिए कहता है। महामोह के आदेश के सम्बन्ध में उत्तर देने के लिए विवेक, धैर्य को महामोह के पास भेजता है। धैर्य, महामोह की सभा में जाकर कहता है कि विवेक ने महामोह को आज्ञा दी है कि वह जीव को बन्धनमुक्त कर सागर पार चला जाये। यदि वह ऐसा नहीं करेगा तो विष्णुभक्ति की प्रचंड अग्नि के द्वारा क्षार हो जायेगा। यह सुनकर महामोह को क्रोध आ जाता है तथा उसकी सभा में 'पकड़ो-पकड़ो' की ध्वनि होती है। महामोह गंगा-पार उतरता है। इधर विवेक बिन्दुमाधव के पास जाकर प्रबोधोदय प्रदान करने के लिये विनती करता है। बिन्दुमाधव के प्रार्थना स्वीकार करने पर विवेक विश्वनाथ के दरबार में आकर उनसे पाप, शोक, रोग, अधर्म, भेद, मोह आदि से रक्षा करने की प्रार्थना करता है। विश्वनाथ उसको रक्षा का वचन देते हैं। तत्पश्चात् विवेक गंगा जी के निकट जाकर उनकी स्तुति करता और तदनन्तर अपनी सेना में आता है। नाटक के अनुसार महामोह ससैन्य वाराणसी में उपस्थित था, विवेक उसे निर्मूल करने के लिये वहाँ आक्रमण करता है। केशव ने विवेक को उपस्थित तथा महामोह का आक्रमण लिखा है। यह अधिक उचित प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त केशव ने दोनों ओर के दूतों को भेजकर समझौते के प्रयत्न निष्फल होने पर युद्ध कराया है और इस प्रकार भारतीय आदर्श सामने रखा है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि भारत में अन्यायी को समझाने-बुझाने के बाद, उसके उचित मार्ग का अनुसरण न करने पर ही उससे युद्ध किया जाता रहा है। प्रबोधोदय के लिये विवेक द्वारा देवताओं की स्तुति का उल्लेख केशव तथा कृष्णमिश्र दोनों ही ने किया है।

बारहवें प्रभाव में केशव ने महामोह तथा विवेक की सेनाओं में युद्ध का वर्णन किया है। मोह की ओर से सबसे पहले सेना के अग्रभाग में पाखंड दिखलाई देते हैं। विवेक उनका सामना करने के लिये सरस्वती को भेजता है। पाखंड हार कर सिंधु पार तथा बंग, कलिंग आदि देशों में भाग जाते हैं। मोह की ओर से लोभ के अग्रसर होने पर विवेक की ओर से दान उसका सामना करने के लिये आता है। क्रोध, विरोध आदि से लोहा लेने के लिये सहनशीलता तथा वस्तुविचार आता है। इसी प्रकार पाप-पुण्य, आलस-उद्यम, वियोग-योग, अनाचार-आचार, सत्य-असत्य आदि से युद्ध होता है और पाप, आलस्य, वियोग, अनाचार, असत्य आदि मोह के योद्धा विवेक के योद्धाओं से हार जाते हैं। मोह अंत में भागकर अपने पिता के पेट में छिप जाता है। युद्ध जीतने पर विवेक ब्राह्मणों आदि को दान देकर महल में आता है। वहाँ सत्संग उसको समझाता है कि अग्नि तथा शत्रु का अवशेष नहीं रहने देना चाहिए अन्यथा वे कालान्तर में दुःखदायी हो सकते हैं। यह सुनकर विवेक उसे आज्ञा देता है कि वह जाकर विष्णुभक्ति से मोह को समूल नाश करने का उपाय करने की प्रार्थना करे। नाटक में युद्ध प्रत्यक्ष रंगमंच पर नहीं दिखलाया जा सकता, अतएव 'प्रबोधचंद्रोदय' में विष्णुभक्ति को युद्ध का समाचार बतलाते हुए श्रद्धा के मुख से केशव के ही समान युद्ध का विस्तृत वर्णन कराया गया है। मोह के विषय में बतलाया गया है कि वह कहीं जाकर छिप गया है। नाटक में पुत्र-पौत्रादिकों के शोक में मन का जीवन समाप्त करने का विचार तथा विष्णुभक्ति द्वारा इसके निवारण और मन के हृदय में वैराग्योत्पत्ति के निमित्त सरस्वती के भेजने के निश्चय का उल्लेख है। केशव ने इस अंश को छोड़ दिया है।

'विज्ञानगीता' के तेरहवें प्रभाव के आरम्भ में मन के काम, क्रोध, विरोध, लोभ आदि पुत्रों के शोक से सन्तप्त होने तथा संकल्प के द्वारा उसके समझाये जाने का वर्णन है। किन्तु हृदय के शोक-विदूषित होने के कारण विवेक उसके हृदय में घर नहीं कर पाता। इसी समय सरस्वती आकर उसे ज्ञान का उपदेश देती है। इन बातों का उल्लेख 'प्रबोधचंद्रोदय' नाटक में भी है किन्तु केशव की सरस्वती का ज्ञानोपदेश नाटक की अपेक्षा अधिक विस्तृत-रूप में दिया गया है। केशव की सरस्वती ज्ञानोपदेश के ही प्रसङ्ग में माया की विचित्रता समझाने के लिए मन को गाधि-ऋषि की कथा सुनाती है। गाधि के चरित्र को सुना कर वह मन से माया का त्याग करने की शिक्षा देती है। गाधि-ऋषि की कथा का उल्लेख 'प्रबोधचंद्रोदय' में नहीं है। इसका आधार 'योगवाशिष्ठ' नामक ग्रन्थ है।

चौदहवें प्रकाश में सरस्वती के उपदेश से मन के हृदय में वैराग्य उत्पन्न होने का वर्णन किया गया है। इसके बाद सरस्वती उससे निवृत्ति को सहधर्मिणी के रूप में स्वीकार करने तथा विवेक को यौवराज्य देने का आदेश देती हुई बतलाती है कि कालान्तर में वेदसिद्धि के गर्भ से विष्णुभक्ति की कृपा से 'प्रबोध' पुत्र का उदय होगा। इन बातों का उल्लेख 'प्रबोधचंद्रोदय' में भी किंचित् भेद के साथ हुआ है। इसके बाद मन के देवी से ऐसा उपदेश देने की प्रार्थना करने पर जिससे जन्म-मरण से छुटकारा मिल जाये, सरस्वती उसे व्यास-पुत्र शुकदेव की कथा सुनाती है और उसे आदेश देती है कि वह दुःख-सुख को समान समझ कर अपने वास्तविक रूप पारब्रह्मत्व को जानने का उद्योग करे। शुकदेव की कथा 'योगवाशिष्ठ' से ली गई है। केशव ने 'प्रबोधचंद्रोदय' की अपेक्षा सरस्वती द्वारा उपदेश भी अधिक विस्तार-पूर्वक दिलाया है। अन्त में सरस्वती के उपदेश से मन शुद्ध हो जाता है।

'विज्ञानगीता' के पंद्रहवें प्रभाव में विवेक, जीव को ज्ञानोपदेश देता है और इस संबंध में ऋषिराज वशिष्ठ के तप करने पर शिव जी द्वारा उनको दिये गये ज्ञानोपदेश का वर्णन करता है। सोलहवें प्रभाव में विवेक, जीव को राजा शिखीध्वज की कथा के द्वारा ज्ञानोपदेश करता है। वशिष्ठ तथा शिखीध्वज की कथा का आधार 'प्रबोधचंद्रोदय' नाटक न होकर 'योगवासिष्ठ' है। पन्द्रहवें प्रभाव में वर्णित वशिष्ठ मुनि के तप की कथा से इतर, जीव तथा विवेक के कथोपकथन का आधार भी 'प्रबोधचंद्रोदय' नाटक नहीं है।

सत्तरहवें प्रभाव में विवेक के ज्ञानोपदेश से जीव के शुद्ध हो जाने पर श्रद्धा तथा शान्ति के आगमन का वर्णन है। मन को जीव के वशीभूत हुआ देख कर श्रद्धा को विश्वास हो जाता है कि अब विवेक से जीव का स्नेह प्रतिदिन बढ़ता रहेगा। इधर शान्ति विष्णुभक्ति के पास उपनिषद् को बुलाने के लिये जाती है। उपनिषद पहले तो प्रियतम की निष्ठुरता का उलाहना देती हुई जाने को तय्यार नहीं होती किन्तु फिर शान्ति के समझाने पर स्वीकार कर लेती है। उसके आने पर जीव उससे पूँछता है कि इतने दिन उसने कहाँ व्यतीत किये। उत्तर में वह उन स्थानों के अनुभव का विस्तृत वर्णन करती है। वह बतलाती है कि सर्व प्रथम वह यज्ञविद्या के पास गयी किन्तु वह उसके विचारों का आदर न कर सकी, अतएव वहाँ से वह मीमांसा के पास गयी। वहाँ भी किसी को अपने तत्व का आदर करने वाला न पाकर वहाँ से चल दी तथा तर्क विद्या के निकट पहुँची। तर्क विद्या भी उसके विचारों से सहमत न हुई। उसके निकट-वर्ती लोगों ने तो उसे बाँधने का ही उपक्रम किया। तब वहाँ से भाग

कर वह दंडक-वन में पहुँची, जहाँ राम ने उसकी रक्षा की। वहाँ वह गीता के घर में सादर रही। उपनिषद देवों को बुलाने से लेकर उपनिषद की राम-द्वारा रक्षा के पश्चात् गीता के गृह में रहने पर्यंत की कथा 'प्रबोधचंद्रोदय' नाटक से ही ली गई है। अन्तर केवल इतना है कि 'विज्ञानगीता' में जीव, उपनिषद से उसका वृत्तान्त पूँछता है और 'प्रबोधचंद्रोदय' में पुरुष। इस वृत्तान्त के जानने के बाद जीव, उपनिषद से ज्ञान-अज्ञान की भूमिकायें पूँछता है। ज्ञान-अज्ञान की भूमिकाओं का वर्णन 'योगवाशिष्ठ' के आधार पर किया गया है।

'विज्ञानगीता' के अट्ठारहवें प्रभाव में जीव के पूछने पर उपनिषद प्रह्लाद की कथा के द्वारा उसे ज्ञानोपदेश देती है। उन्नीसवें प्रभाव में राजा बलि की कथा सुनाकर उपनिषद , जीव को उपदेश देती है कि वह भी बलि के समान भ्रम त्याग कर ब्रह्म में लीन होकर परमानन्द प्राप्त करे। इन दोनों कथाओं का आधार भी 'योगवाशिष्ठ' है। बीसवें प्रभाव में सृष्टि की उत्पत्ति का कारण, संगति के दोष, ईश्वर के बन्धन में पड़ने का कारण, शुभेच्छा, विचारणा, तनुमानसा, सत्वापत्ति आदि भूमिकाओं का वर्णन तथा ब्रह्म के नाना नामों आदि के विषय में उपनिषद द्वारा जीव को ज्ञानोपदेश किया गया है। इक्कीसवें तथा अंतिम प्रकाश में उपनिषद जीव को अहंकार के भेदों राजस, तामस तथा सात्विक को बतलाती हुई समझाती है कि अहंकार के नाश होने पर भ्रम दूर होकर प्रबोध का उदय होता और जीव जीवन्मुक्त हो जाता है। इसके बाद उपनिषद जीव को जीवन-मुक्त, विदेह तथा महात्यागी आदि के लक्षण बतलाती है। अंत में उपनिषद के ज्ञानोपदेश से जीव को संसार मिथ्या भासित होने लगता है और वह अपने ब्रह्मत्व को पहचान जाता है। इस प्रकार प्रबोध का उदय हो जाता है, जिसके फल-स्वरूप कुबुद्धि की रात्रि समाप्त हो जाती है और जीव, आत्मा के वास्तविक स्वरूप को पहचान जाता है। बीसवें प्रकाश की सामग्री का आधार भी 'प्रबोधचंद्रोदय' नाटक न होकर 'योगवाशिष्ठ' तथा अन्य दार्शनिक विषय-सम्बन्धी ग्रंथ हैं। इक्कीसवें प्रकाश में प्रबोधोदय द्वारा मोहान्धकार का नाश होकर जीव के अपने ब्रह्मत्व के पहचानने का वर्णन-मात्र ही 'प्रबोधचंद्रोदय' नाटक के आधार पर है।

'प्रबोधचन्द्रोदय' तथा 'विज्ञानगीता' में भावसाम्य :

केशवदास जी ने 'विज्ञानगीता' के लिये 'प्रबोधचन्द्रोदय' नाटक से सामग्री संचित करते हुए कुछ स्थलों पर प्रायः अनुवाद करके ही रख दिया है तथा कुछ स्थलों पर केवल भाव लिया है और उसे अपनी काव्योचित भाषा में व्यक्त किया है। दोनों ग्रन्थों के समान अंश तुलना के लिये यहाँ उपस्थित किये जाते हैं।

'विज्ञानगीता' के दूसरे प्रभाव का अधिकांश 'प्रबोधचंद्रोदय' के आधार पर लिखा गया है। कृष्णमिश्र ने कामदेव के रूप का वर्णन करते हुए लिखा है :

'उत्तुंगपीवरकुचद्वयपीडितांग—
मालिंगितः पुलकितेन भुजेनरत्या।
श्रीमान्जगन्ति मदमन्नयनाभिरामः
कामोऽयमेति मदघूर्णितनेत्रपद्मः' ॥[1]

1. प्रबोधचंद्रोदय, छं० सं० १०, पृ० सं० २२।

'रति ने पुलकित भुजाओं से आलिगन करते हुए अपने सुगठित तथा पीवर कुचों के द्वारा जिसका वक्षस्थल पीड़ित किया है, वह श्रीमान् नयनाभिराम मदपूर्ण नेत्रकमलों वाला कामदेव सम्मुख आ रहा है'।

केशवदास जी ने इस श्लोक के भाव को निम्नलिखित सवैया में व्यक्त किया है:

'भूषण फूलन के अङ्ग अङ्ग शरासन फूलनि को अङ्ग सोहै।
पंकज चारु विलोचन चूमत मोहमयी मदिरा रुचि रोहै॥
बाहुलता रति कंठ विराजत केशव रूप को रूपक जोहै।
सुन्दर श्याम स्वरूप सने जगमोहन ज्यों जगके मन मोहै'॥[1]

'विज्ञानगीता' के काम तथा रति का कथोपकथन भी 'प्रबोधचन्द्रोदय' के काम और रति के संवाद के आधार पर लिखा गया है। नाटक की रति का कथन है:

'आर्यपुत्र, गुरुः खलु महाराज महामोहस्य प्रतिपक्षो विवेक इति तर्कयामि'।[2]
'आर्यपुत्र मेरा विचार है कि महाराज महामोह का शत्रु विवेक बहुत प्रबल है'।

केशव की रति भी यही कहती है:

'प्राणनाथ सुनि प्रेम को, जग जन कहत अनेक।
महामोह नृपनाथ को, सुनियत बड़ो विवेक'॥[3]

नाटक का काम उत्तर देता है:

'अपि यदि विशिखाः शरासनं वा कुसुममयं ससुरासुरं तथापि।
मम जगदखिलं वरोरु नाज्ञामिदमतिलंध्य धृतिं मुहूर्तमेति'॥[4]

'वरोरु, यद्यपि मेरे बाण तथा धनुष फूलों के बने हुये हैं तथापि देवता तथा दानव-पर्यन्त समस्त जगत मेरी आज्ञा का उल्लंघन कर क्षण भर भी नहीं रह सकते'।

केशव का काम भी यही कहता है:

'सजौं फूल के हैं धनुर्व्वाण मेरे।
करौं शोधिकै जीव संसार चेरे॥
गनै को बली वीर वज्री विकारी।
भए वश्य शूली हली चक्रधारी'॥[5]

नाटक की रति अपने पति कामदेव को समझाते हुए कहती है:

'आर्यपुत्र, एवं नैतत, तथापि महासहायसम्पन्नः शंकितोऽस्यऽरातिः'।[6]
'आर्यपुत्र, यद्यपि ऐसा नहीं है, तथापि महासहाय-सम्पन्न शत्रु से शंका करनी चाहिए'।

केशव की रति भी यही कहती है:

१. विज्ञानगीता, छं० सं० ७, पृ० सं० ६।
२. प्रबोधचंद्रोदय, पृ० सं० २४।
३. विज्ञानगीता, छं० सं० ७, पृ० सं० ६।
४. प्रबोधचंद्रोदय, छं० सं० १३, पृ० सं० २५।
५. विज्ञानगीता, छं० सं० ८, पृ० सं० ६।
६. प्रबोधचंद्रोदय, पृ० सं० २६।

'सब विधि यद्यपि सर्वदा, सुनियत पिय यह गाथ ।
बहुसहाय सम्पन्न अरि, शंकनीय है नाथ' ॥[१]

नाटक के काम का कथन है :

'सन्तु विलोकन भाषणविलासपरिहासकेलिपरिरम्भाः ।
स्मरणमपि कामिनीनामलमिह मनसो विकाराय' ॥[२]

'कामिनियों का स्मरण-मात्र ही मनुष्यों के मन में विकार उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त है, किन्तु जब उनके पास कटाक्षपात, सम्भाषण, विलास, परिहास, केलि तथा आलिंगन आदि भी हों तब लोगों के हृदय में विकारोत्पन्न करना क्या कठिन है' ।

केशव ने इस भाव को निम्नलिखित छन्द में अपेक्षाकृत अधिक प्रभावशाली बना दिया है :

'शील विलात सबै सुमिरे अवलोकत छूटत धीरज भारो ।
हासहि केशवदास उदास सबै व्रत संयम नेम निहारो ॥
भाषण ज्ञान विज्ञान छिपे छिति को वपुरा सो विवेक विचारो ।
या सिगरे जग जीतन को युवतीमय अद्भुत अस्त्र हमारो' ॥[३]

नाटक की रति कहती है :

'आर्यपुत्र श्रुतंमया युष्माकं विवेकशमदमप्रभृतीनां चैकमुत्पत्तिस्थानमिति' ।[४]

'आर्यपुत्र, मैंने सुना है कि तुम्हारी, विवेक तथा शम, दम आदि की उत्पत्ति एक ही स्थान से हुई है' ।

केशव की रति भी इसी प्रकार जिज्ञासा करती है :

'संतत मोह विवेक को सुनियत एकै वंश' ।[५]

नाटक का काम उत्तर देता है ।

'आः प्रिये, किमुच्यत एकमुत्पत्तिस्थानमिति । जनक एव अस्माकमभिन्नः तथाहि:'

संभूतः प्रथम महेश्वरस्य संगान्मायायां मन इति विश्रुतस्तनूजः ।
त्रैलोक्यं सकलमिदं विसृज्य भूयस्तेनाथोजनितमिदं कुलद्वयं नः ॥१७॥
तस्य च प्रवृत्तिनिवृत्ती द्वे धर्मपत्न्यौ । तयोः प्रवृत्त्यां समुत्पन्नं महामोहप्रधानमेकं कुलम् निवृत्त्यां च द्वितीयं विवेकप्रधानमिति' ।[६]

'प्रिये, तुम क्या कहती हो, एक उत्पत्तिस्थान ? हम लोगों का पिता भी एक ही है। महेश्वर तथा माया के संसर्ग से मन नामक प्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न हुआ । उसकी दो स्त्रियाँ हैं,

१. विज्ञानगीता, छं० सं० ९, पृ० सं० ६ ।
२. प्रबोधचन्द्रोदय, छं० सं० १६, पृ० सं० २७ ।
३. विज्ञानगीता, छं० सं० १०, पृ० सं० ६ ।
४. प्रबोधचन्द्रोदय, पृ० सं० २८ ।
५. विज्ञानगीता, पृ० सं० ६ ।
६. प्रबोधचन्द्रोदय, पृ० सं० २८-२९ ।

प्रवृत्ति तथा निवृत्ति। प्रवृत्ति से एक कुल चला, जिसमें प्रधान महामोह है तथा निवृत्ति से दूसरा, जिसमें विवेक प्रधान है'।

केशव का काम भी यही कहता है :

'वंश कहा गजगामिनी, एकै पिता प्रशंस।
ईश माय विलोकि के उपजाइयो मन पूत।
सुन्दरी तिहि द्वै करी तिहि ते त्रिलोक अभूत ॥
एक नाम निवृत्ति है जग एक प्रवृत्ति सुजान।
वंश द्वै ताते भयो यह लोक मानि प्रमान ॥
महामोह दै आदि हम, जाये जगत प्रवृत्ति।
सुमुखि विवेकहि आदि दै, प्रगटत भई निवृत्ति' ॥[1]

नाटक की रति पुनः प्रश्न करती है :

'आर्यपुत्र, यथैवं तत्किंनिमित्तं सोदराणामपि परस्परमेतादृशं वैरम्'।[2]

'आर्यपुत्र, यदि ऐसा है तो सोदरों में परस्पर वैर का कारण क्या है'?

केशव की रति भी इसी प्रकार पूँछती है :

'जौ कुल एकहु एक पिता ज्यों।
तौ अति प्रीतम प्रेम निशा यों।
आपुस मांझ सहोदर सांचे।
क्यों तुम वीर विरोधनि रांचे'॥[3]

नाटक के काम का कथन है :

'सर्वमेतज्जगदस्माकं पित्रोपार्जितं तच्चास्माभिस्तातवल्लभतया सर्वमेवाक्रान्तं। तेषां तु विरलः प्रचारः, तेनेते पापः साम्प्रतं पितरमस्माकं उन्मूलयितुमुद्यताः'।[4]

'यह सम्पूर्ण जगत हमारे पिता का उपार्जित किया हुआ है। पिता हम लोगों से अधिक प्रसन्न है, अतएव समस्त संसार पर हमारा आधिपत्य है। उन लोगों का प्रचार विरल है, अतएव वे पापी इस समय हमारे पिता को भी उखाड़ फेंकना चाहते हैं'।

केशव का काम भी यही कहता है :

'मातु पितै सब ही हम भावैं।
वे कलि मध्य प्रवेश न पावैं।

---

१. विज्ञानगीता, छं० सं० ११-१२ तथा १४-१५, पृ० सं० ६-१०।
२. प्रबोधचन्द्रोदय, पृ० सं० २६।
३. विज्ञानगीता, छं० सं० २५, पृ० सं० १०
४. प्रबोधचन्द्रोदय, पृ० सं० ३०।

है उनसो जग काजु न काहू ।
तातै वे चाहत मार्यो पिताहू' ॥[1]

नाटक का काम रति को बतलाता है :

'प्रिये, अस्तयत्र किंचिन्निगूढ़ बीजम्' ।[2]

'प्रिये इसका रहस्य बड़ा गूढ़ है' ।

नाटक की रति जिज्ञासा करती है :

'आर्यपुत्र, तत्किं नोद्घाट्यते' ?[3]

'आर्यपुत्र, वह क्या है । प्रकट नहीं करियेगा ।

काम उसे समझाते हुये कहता है :

'प्रिये, भवती स्त्रीस्वभावाद्भीरुरिति न दारुणकर्मपापीयसामुद्घाट्यते' ।[4]

'प्रिये तुम स्वभाव के कारण भीरु हो इसलिये पापियों का दारुण कर्म तुमसे नहीं बता रहा हूँ ।'

उपर्युक्त कथोपकथन के आधार पर केशव का प्रश्नोत्तर-समन्वित दोहा है :

'एक मंत्र अति गूढ़ है, मोसो कहिये कंत ।
कहिये कैसे त्रियनि सों, दारुण कर्म दुरंत' ॥[5]

'विज्ञानगीता' के तीसरे प्रकाश में दंभ एवं अहंकार का वर्णन तथा दोनों के कथोपकथन के बहुत से अंश 'प्रबोधचन्द्रोदय' के समान हैं । दोनों ग्रंथों के कुछ अंश यहाँ उद्धृत किये जाते हैं । 'प्रबोधचंद्रोदय' का दम्भ कहता है :

'वेश्यावेश्यमसुसीधुगन्धललनावक्त्रासवामोदितै —
र्नीत्वा निर्भरमन्मथोत्सवरसैरुन्निद्रचन्द्राः क्षपाः ।
सर्वज्ञा इति दीक्षिता इति चिराध्प्राप्ताग्निहोत्रा इति ।
ब्रह्मज्ञा इति तापसा इति दिवा धूर्तैजगद्वंच्यते ॥[6]

'दाम्भिक लोग चांदनी रातों में वेश्या-मन्दिरों में मद्यपान के कारण मद्य की गन्ध से युक्त वार-बधुओं के अधर-रस का पान तथा उनके साथ केलि करते हुए, दिन में सर्वज्ञ, दीक्षित, अग्निहोत्री, ब्रह्मज्ञ तथा तपस्वी आदिकों के कर्मों का उपदेश करते हुये संसार को छलते हैं' ।

केशवदास जी ने इस भाव को इस प्रकार लिखा है :

'काम कुतूहल में विलसै निशवार वधू मन मान हरे ।
प्रात अन्हाइ बनाइ दै टीकनि उज्ज्वल अम्बर अंग धरे ।

१. विज्ञानगीता, छं० सं० १७, पृ० सं० १० ।
२. प्रबोधचंद्रोदय, पृ० सं० ३० ।
३. प्रबोधचन्द्रोदय, पृ० सं० ३० ।
४. प्रबोधचन्द्रोदय, पृ० सं० ३० ।
५. विज्ञानगीता, छं० सं० १६, पृ० सं० २० ।
६. प्रबोधचंद्रोदय, छं० सं० १, पृ० सं० ५१ ।

ऐसे तपोतप ऐसे जपो जप ऐसे पढ़ो श्रुति शास्त्र खरे।
ऐसे योग जयो ऐसे यज्ञ भयो बहुलोगनि को उपदेश करे' ॥[1]

अहंकार के रूप का वर्णन करते हुए कृष्णमिश्र ने लिखा है :

'ज्वलन्निवाभिमानेन ग्रसन्निवजगत्त्रयीम्।
भर्त्सयन्निव वाग्जालैः प्रज्ञयोपहसन्निव' ।[2]

'मानो अभिमान से जलता हुआ, तीनों लोकों का ग्रास करता, वाणी से निन्दा करता तथा विद्वानों का उपहास करता है'।

केशव के निम्नलिखित दोहे का भी अक्षरशः यही भाव है :

'जरत मनो अभिमान ते, ग्रसत मनो संसार।
निन्दत है त्रैलोक को, हंसत विबुध परिवार' ।[3]

अहंकार, दम्भ के शिष्य तथा दम्भ के कथोपकथन का भी बहुत कुछ अंश दोनों ग्रंथों में समान है। नाटक का बटु, अहंकार से कहता है:

'ब्रह्मन्, दूरत एव स्थीयताम्। यतः पादौ प्रक्षाल्य एतदाश्रमपदं प्रवेष्टव्यम्' ।[4]

'ब्रह्मन्, दूर ही ठहरिये। इस आश्रम में पाद-प्रक्षालन के पश्चात् प्रवेश कीजिए।'

केशव ने यही बात शिष्य के द्वारा कहलाई है :

'दूर रहो द्विज धीरज धारो।
पाँइ पखारि इहां पगु धारो' ।[5]

नाटक के अहंकार के शब्द हैं :

'आः पाप, तुरुष्कदेशं प्राप्ताः स्मः। यत्र श्रोत्रियानतिथीनासनपाद्यादिभिरपि गृहिणो-नोपतिष्ठन्ति' ।[6]

'शोक की बात है कि मैं तुर्कों के देश में आ गया हूँ, जहाँ गृहस्थ लोग श्रोत्रिय तथा अतिथियों का आसन-पाद्य आदि के द्वारा भी आदर नहीं करते हैं'।

केशव का अहंकार भी प्रायः यही कहता है :

जानत हौं दिल्लीपुरी, तुरुक बसत सब ठाइ।
अतिथिनि को दीजतु न यह, आसन अर्घ सुभाइ' ।[7]

नाटक का बटु उत्तर में कहता है :

'दूरे तावत्स्थीयताम्। वाताहृताः प्रस्वेदकणिकाः प्रसरन्ति' ।[8]

१. विज्ञानगीता, छं० सं० ३, पृ० सं० ११।
२. प्रबोधचंद्रोदय, छं० सं० २, पृ० सं० ४२।
३. विज्ञानगीता, छं० सं० ६, पृ० सं० ११।
४. प्रबोधचंद्रोदय, पृ० सं० ४७।
५. विज्ञानगीता, छं० सं० १०, पृ० सं० १२।
६. प्रबोधचंद्रोदय, पृ० स० ४८।
७. विज्ञानगीता, छं० सं० ११, पृ० सं० १२।
८. प्रबोधचंद्रोदय, पृ० सं० ५३।

'तब तक दूर रहो। तुम्हारे शरीर से हवा के लगने से प्रस्वेद-कण निकल रहे हैं'।

केशव का शिष्य भी यही कहता है :

'परसि तुम्हारो गात, पथिक विलोकि प्रस्वेद कण।
जग स्वामी को गात, ज्यों न छुवो त्यों बैठिये'॥[1]

नाटक का बटु पुनः कहता है :

**'अस्पृष्टचरणा ह्यस्य चूड़ामणिमरीचिभिः।
नीराजयन्ति भूपालाः पादुपीठान्तभूतलम्'॥[2]**

'राजा लोग भी चरण-स्पर्श नहीं कर पाते। वे अपने मुकुटों की मणि-रश्मियों से दम्भ के चरणों की निकटवर्ती भूमि को ही सुशोभित करते हैं।

केशव के निम्नलिखित दोहे का भी यही भाव है :

'प्रभु को करत प्रणाम जब, देव देव मुनि भाल।
छुवै न सकत आसन छिती, मुकुटमणिन की माल'॥[3]

'विज्ञानगीता' के सातवें प्रभाव में चार्वाक तथा उसके शिष्य एवं महामोह और चार्वाक का संवाद है। इस संवाद के कुछ अंश भी 'प्रबोधचन्द्रोदय' ग्रन्थ के इसी प्रकरण के भाव पर लिखे गये हैं। नाटक में शिष्य चार्वाक से कहता है :

'आचार्य, एवं खलु तीर्थिका आलपन्ति। यद्दुःखमिश्रितं संसारसुखं परिहरणीय-मिति'।[4]

'आचार्य, तीर्थ वासी कहते हैं कि संसार-सुख दुख-मिश्रित है, अतएव उसका त्याग करना चाहिये'।

'विज्ञानगीता' में भी चार्वाक से उसका शिष्य यही कहता है :

**'तीरथवासी यह कहत, तजत त्रियन के साथ।
कलुषनि मिश्रित विषय सुख, त्यागनीय है नाथ'॥[5]**

'प्रबोधचंद्रोदय' का चार्वाक कहता है :

**'क्वालिंगनं भुजनिपीडितबाहुमूलं।
भुग्नोन्नतस्तनमनोहरमायताक्ष्याः।
भिक्षोपवासनियमार्कमरीचिदाहै—
देहोपशोषणविधिः कुधियां क्वचैष'॥[6]**

'कहाँ तो उन्नत स्तन तथा मनोहर आँखों वाली कामिनियों के बाहुमूल को अपनी

---

१. विज्ञानगीता, छं० सं० १२, पृ० सं० १३।
२. प्रबोधचंद्रोदय, छं० सं० ८, पृ० सं० ५१।
३. विज्ञानगीता, छं० सं० १६, पृ० सं० १३।
४. प्रबोधचंद्रोदय, पृ० सं० ७४।
५. विज्ञानगीता, छं० सं० ७, पृ० सं० ३२।
६. प्रबोधचंद्रोदय, छं० सं० २२, पृ० सं० ७३।

भुजाओं द्वारा निपीड़ित कर आलिंगन करने का सुख और कहाँ भिक्षा, उपवास, नियम, संयम आदि के द्वारा शरीर को सुखाना अर्थात् दोनों की तुलना नहीं हो सकती'।

केशव ने इस भाव को इस प्रकार लिखा है :

'हास विलास विलासनि सों मिलि लोचन लोल विलोकन रुरे।
भांतिनि भांतिनि के परिरंभन निर्भय राग विरागनि पूरे।
नागलता दल रङ्ग रंगे अधरामृत पान कहा सुख सूरे।
केशवदास कहा ब्रत संयम संपति मांझ विपत्तिन कूरे'॥[1]

नाटक में कलियुग, चार्वाक को प्रणाम करता हुआ कहता है :

'एष कलेः साष्टांगं प्रणामः'।[2]

'यह कलियुग साष्टांग प्रणाम करता है'।

केशव ने कलियुग से चार्वाक को प्रणाम कराते हुये निम्नांकित दोहा लिखा है :

'कलियुग करत प्रणाम प्रभु, अवलोको विषहर्ण।
धन ते जन सब काल करि, देखत प्रभु को चर्ण'॥[3]

नाटक का चार्वाक कहता है :

'अस्ति विष्णुभक्ति नाम महाप्रभावा योगिनी। सा तु कलिना यद्यपि विरलप्रचारा-कृता तथापि तदनुगृहीतान्वयमालोकयितुमपि न प्रभवामः'।[4]

'विष्णु-भक्ति नाम की अत्यंत प्रभावशालिनी एक योगिनी है। कलि ने यद्यपि उसका विरल प्रचार कर दिया है फिर भी उसके भक्तों की ओर हम लोग देख भी नहीं सकते हैं।

चार्वाक के इस कथन के आधार पर केशव का दोहा है :

'विष्णुभक्ति यद्यपि करी, जग में विरल प्रचार।
तदपि शान्ति श्रद्धा सखी, तजत न प्रेम विचार'॥[5]

'विज्ञानगीता' के आठवें प्रभाव में श्रद्धा के सम्बन्ध में शान्ति के विषाद तथा उसकी खोज़ में जाते हुए शान्ति तथा करुणा को श्रावक, भिक्षु तथा कापालिक के मिलने का वर्णन 'प्रबोधचंद्रोदय' के इसी प्रकरण के वर्णन से भाव-साम्य रखता है। तुलना के लिये कुछ समान अंश यहाँ उद्धृत किये जाते हैं :

कृष्ण मिश्र की शान्ति कहती है :

'मुक्तातंककुरंगकाननभुवः शैलाः स्खलद्वारयः।
पुण्यान्यायतनानि संततपोनिष्ठाश्च वैखानसाः।

१. विज्ञानगीता, छं० सं० ६, पृ० सं० ३२।
२. प्रबोधचन्द्रोदय, पृ० सं० ७५।
३. विज्ञानगीता, छं० सं० ११, पृ० सं० ३३।
४. प्रबोधचन्द्रोदय, पृ० सं० ७६।
५. विज्ञानगीता, छं० सं० १४, पृ० सं० ३३।

यस्याः प्रीतिरमीषु सात्र भवती चांडालवेश्मोदरं।
प्राप्ता गौः कपिलेव जीवति कथं पाषंडहस्तंगता' ।।[1]

'जिसकी प्रीति निर्भय हरिणों से युक्त वनों, जल की धाराओं को बहाने वाले शैलों, पुण्य देवस्थानों तथा संतत तप में लीन तपस्वियों में थी, ऐसी आप (श्रद्धा) चांडाल के महल में कपिला गाय के समान पाखंड के हाथ में किस प्रकार पड़ गयीं'।

इस भाव का सार केशव ने निम्नलिखित शब्दों में दिया है, किन्तु वे मूलभाव की रक्षा नहीं कर सके हैं।

'गंगा काञ्चन वरतिहीं, पूजत साधु अपार।
पाई कपिला गाइ सी, पट्ट पषंड चंडार' ।।[2]

नाटक की शान्ति का श्रद्धा के विषय में कथन है :

'मामनालोक्य न स्नाति न भुंक्ते न पिवत्यपः
न मया रहिता श्रद्धा मुहूर्तमपि जीवति।

तद्विना श्रद्धया मुहूर्तमपि शान्तेर्जीवितं विडम्बनेव। तत्सखि करुणे, मदर्थं चितामारचय। यावदचिरमेव हुताशनप्रवेशेन तस्याः सहचरी भवामि'।[3]

'मुझे बिना देखे श्रद्धा न स्नान करती है, न भोजन और न पान। मेरे बिना वह मुहूर्त भर भी जीवित नहीं रह सकती। बिना श्रद्धा के मुहूर्त भर भी शान्ति का जीवन विडम्बना है। अतएव हे सखि करुणे, मेरे लिए चिता तैयार करो, जिससे कि अग्नि में प्रवेश कर मैं शीघ्र ही उससे जा मिलूँ'।

केशव के निम्नलिखित छन्द का भी प्रायः यही भाव है :

'मो बिना न अन्हाति जेंवति करत नाहिन पान।
नेकु के बिछुरे भट्ट घट में न राखति प्रान।
चेतिका करुणा रचो सब छांड़ि और उपाइ।
क्यों जियों जननी बिना मरिहूँ मिलै जो आइ' ।।[4]

नाटक के दिगम्बर के शब्द हैं :

'ॐ नमोऽर्हद्भ्यः नवद्वारपुरीमध्ये आत्मादीप इवज्वलति। एष जिनवरभाषितः परमार्थोऽयं मोक्षसुखदः'।[5]

'अर्हंत भगवान को नमस्कार हो। नवद्वारवाली शरीररूपी पुरी में आत्मा दीप के समान जलती है, यह समझना चाहिये। अर्हंत भगवान ने यह परमार्थ तत्व बतलाया है, जो मोक्ष का सुख देने वाला है'।

१. प्रबोधचन्द्रोदय, छं० सं० १, पृ० सं० ६९।
२. विज्ञानगीता, छं० सं० ३, पृ० सं० ३४।
३. प्रबोध चन्द्रोदय, पृ० सं० ६६।
४. विज्ञानगीता, छं० सं० ४, पृ० सं० ३४-३५।
५. प्रबोधचन्द्रोदय, पृ० सं० १००।

केशव का श्रावक कहता है :

'देह गेह नव द्वार में, दीप समान लसंत ।
मुक्तिहु ते अति देत सुख, सेवहु श्री अरहंत' ॥[1]

नाटक की करुणा का कथन है :

'सखि, क एष तरुणतालतरुप्रलम्बो लम्बमानकषायपिशंगचिकुरो (पाठान्तर पिशंगचीवरो) मुंडितसचूडपिंड इत एवागच्छति' ॥[2]

'सखि, तरुण ताल वृक्ष के समान लम्बा, लम्बे पीले बालों वाला अथवा लाल वर्ण का चीर धारण किये, शिर की चोटी के बालों को वलयाकार स्थापित किये अथवा शिखा-सहित शिर के बालों को मुड़ाये हुये सम्मुख कौन आ रहा है' ।

केशव ने पाठान्तर के अनुसार भाव लेकर इस वाक्य को इन शब्दों में लिखा है :

'तमाल तूत तुंग है । पिसंग चीर अंग है ।
शचूड़ मुंड मुंडिये । सखी सु को बिलोकिये' ॥[3]

नाटक का क्षपणक कहता है :

'अरे उज्झितबुद्धक, यदि तस्यभाषितेन सर्वज्ञत्वं प्रतिपन्नोऽसि तदहमपि सर्वं जानामि । त्वम प पितृपितामहैः सह सप्तपुरुषमस्माकं दास इति' ।[4]

'अरे मूर्ख, यदि उसके (बुद्ध के) कहने से तुम सर्वज्ञता को प्राप्त हो गए हो तो मैं भी सर्वज्ञ हूँ और तुम अपने पिता-पितामह आदि सात पीढ़ियों तक हमारे दास हो' ।

केशव के श्रावक के कथन का भी यही भाव है :

'अब तोहि है सर्वज्ञता कछु बात ही महं मूढ़ ।
हमहूँ हैं सर्वज्ञता है मद दास तो कुल गूढ़' ॥[5]

नाटक के अन्तर्गत कापालिक का कथन है :

'मस्तिष्कान्त्रवसाभिपूरितमहामांसाहुतीर्जुह्वता
वह्नौ ब्रह्मकपालकल्पितसुरापानेन नः पारणा ।
सद्यः कृत्तकठोरकंठविगलत्कीलालधारोज्ज्वलै—
रर्च्यो नः पुरुषोपहारबलिभिर्देवो महाभैरवः' ॥[6]

'हम लोग अग्नि में मस्तिष्क की शिराओं तथा चर्बी से युक्त मनुष्यों के मांस की आहुति देते हैं, नृकपाल में बनाई हुई सुरा का पान करते हैं, तत्क्षण काटे हुए कंठ से निकलती हुई रक्त-धारा से युक्त पुरुष की बलि के उपहार से महाभैरव की अर्चना करते हैं' ।

१. विज्ञानगीता, छं० सं० १०, पृ० सं० ३५ ।
२. प्रबोधचन्द्रोदय, पृ० सं० १०५-१०६ ।
३. विज्ञानगीता, छं० सं० ११, पृ० सं० ३६ ।
४. प्रबोधचन्द्रोदय, पृ० सं० १०८ ।
५. विज्ञानगीता, छं० सं० १४, पृ० सं० ३६ ।
६. प्रबोधचन्द्रोदय, छं० सं० १३, पृ० सं० ११३ ।

इस कथन के आधार पर केशव ने निम्नलिखित छंद लिखा है :

'वेदमिश्रित मांस होमत अग्नि में बहु भाँति सों।
शुद्ध ब्रह्म कपाल शोणित को पियो दिन राति सों।
विप्र बालक जाल लै बलि देत हौं न हिए लजों।
देव सिद्ध प्रसिद्ध कन्यनि सों रमो भव को भजों' ॥[१]

'विज्ञानगीता' के नवें प्रभाव में केवल एक ही दो स्थलों पर 'प्रबोधचन्द्रोदय' से भाव-साम्य है। नाटक की श्रद्धा अपने प्रवासकाल के अनुभवों को बतलाती हुई कहती है :

'घोरां नारकपालकुंडलवतीं विद्युच्छटां दृष्टिभि—
मुंचन्ती विकरालमूर्तिमनलज्वालापिशंगैः कचैः।
दंष्ट्राचन्द्रकलांकुरान्तरललज्जिह्वां महाभैरवीं।
पश्यंत्या इव मे मनः कदलिकेवाद्याप्यहो वेपते' ॥[२]

'मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मैं आज भी महा भयानक नृकपालों की माला को पहने, दाँतों से बिजली की सी चमक फैलाती हुई, विकराल मूर्ति, अग्निज्वाला के समान रक्त वर्ण वाली, चन्द्ररेखा के समान दाँतों के बीच जिह्वा को लपलपाती हुई महाभैरवी को देख रही हूँ, जिसके फलस्वरूप आज भी मेरा हृदय कदली के समान काँपता है'।

उपर्युक्त श्लोक के आधार पर केशव ने निम्नलिखित दोहा लिखा है, किन्तु श्लोक में भैरवी के भयानक रूप का वर्णन होने के कारण वह केशव के दोहे की अपेक्षा अधिक काव्योपयुक्त है।

'महा भयानक भैरवी, देखी सुनी न जाति।
देखति हौं दशहूँ दिशा, मेरो चित्त चबाति' ॥[३]

नाटक के अन्तर्गत वस्तुविचार का कथन है :

'विपुलपुलिनाः कल्लोलिन्यो नितान्तपतज्झरी—
मसृणितशिलाः शैलाः सान्द्रद्रुमावनभूमयः।
यदि शमगिरो वैयासिक्यो बुधैश्च समागमः।
क्व पिशितवसामय्यो नार्यस्तथा क्व च मन्मथः' ॥[४]

'यदि विपुल पुलिनों वाली नदियों, अनवरत गिरने वाले झरनों के कारण चिकनी शिलाओं से युक्त शैलों, घने वृक्षों से युक्त वनस्थलों तथा व्यासप्रणीत शान्तिप्रतिपादक वाणी से बुद्धिमानों का समागम हो जाये, तो मांस तथा वसामयी नारी तथा कामदेव कहाँ रहें अर्थात इनका प्रभाव समाप्त हो जाये'।

केशव के निम्नलिखित छन्द का भी प्रायः यही भाव है। केशव का संतोष कहता है :

'निर्मल नीर नदीनि के पान बनी फल मूल भखो तम पोषै।
सेज शिलान पलास के डासन डासि के केशव काज संतोषै।

१. विज्ञानगीता, छं० सं० २०, पृ० सं० ३७।
२. प्रबोधचंद्रोदय, छं० सं० १, पृ० सं०, ११२।
३. विज्ञानगीता, छं० सं० ६, पृ० सं० ४१।
४. प्रबोधचंद्रोदय, छं० सं० १२, पृ० सं० १४६-१४७।

जो मिलि बुद्धि विलासिनि सों निशिवासर राम के नामहिं घोषै ।
राज तुम्हारे प्रताप कृशानु दशा इह लोक समुद्रनि सोषै' ॥[1]

'विज्ञानगीता' के सत्तरहवें प्रभाव को छोड़कर ग्यारहवें से लेकर इक्कीसवें प्रभाव तक बहुत कम स्थलों पर 'प्रबोधचन्द्रोदय' से भाव-साम्य दिखलाई देता है। वहाँ भी अधिकांश प्रकरण का अन्तर हो गया है। इस प्रकार के कुछ अंश यहाँ उपस्थित किये जाते हैं।

नाटक के अन्तर्गत सारथि का कथन है :

'तोयार्द्राः सुरसरितः सिताः परागै—
र्यन्तश्च्युतकुसुमैरिवेन्दुमौलिम् ।
प्रोद्गीता मधुपरुतैः स्तुतिं पठन्तो
नृत्यन्ति प्रचललताभुजैः समीराः' ॥[2]

'काशीपति महादेव जी को भागीरथी का जल स्नान कराता है, वृक्ष परागयुक्त पुष्प गिरा कर मानो उनकी अर्चना करते हैं, भौंरे गुंजार कर मानो उनकी स्तुति पढ़ते हैं तथा समीर द्वारा चंचल लतायें उनकी प्रसन्नता के लिये नृत्य करती हैं'।

यह भाव केशव ने निम्नलिखित छन्द में प्रकट किया है :

'गंग अन्हाइ के ईशहि पूजत फूलनि सो तन फूलि गनो ।
आनंद भूलि कै भौंरनि के मिसु गावत है बड़ भाग मनो ।
बाहु लतानि उठाइ कै नाचक केशव रांचत हीत घनो ।
बागनि शीतल मंद सुगंध समीर लसै हरिभक्त मनो' ॥[3]

नाटक के अनुसार विष्णुभक्ति, महामोह के हार कर कहीं छिप जाने का समाचार सुनकर श्रद्धा से कहती है :

'अनादरपरो (पाठभेदः अत्यादरपरः) विद्वानीहमानःस्थिरां श्रियम् ।
अग्नेः शेषमृणाच्छेषं शत्रोः शेषं न शेषयेत्' ॥[4]

'अग्नि आदि के सम्बन्ध में अन्यथा जो सतर्क नहीं है (पाठभेद के अनुसार जो समादृत है) ऐसा विद्वान यदि स्थिर श्री की आकांक्षा करता है तो अग्नि, ऋण तथा शत्रु को शेष नहीं रहने देता'।

केशव का सत्संग विवेक के विजय प्राप्त कर महल में आने पर उससे कहता है :

'शत्रु को अरु अग्नि को रण को बंचे अवशेषु ।
होइ दीरघ दुःखदायक तुच्छ कै जनि लेषु' ॥[5]

नाटक के अन्तर्गत महामोह और उसके सहयोगियों के पराजित होने के बाद मन विलाप करता हुआ कहता है :

1. विज्ञानगीता, छं० सं० ५, पृ० सं० ४७ ।
2. प्रबोधचन्द्रोदय, छं० सं० २८, पृ० सं० १३० ।
3. विज्ञानगीता, छ० सं० ५, पृ० सं० ५१-५२ ।
4. प्रबोधचन्द्रोदय, छ० सं० ११, पृ० सं० १७८ ।
5. विज्ञानगीता, छ० सं० २०, पृ० सं० ५४ ।

'हा पुत्रकाः, क्व गताःस्थ । दत्त मे प्रियदर्शनम् । भो भोः कुमारकाः, रागद्वेषमद-मात्सर्यादयः, परिष्वजध्वंमाम् । सीदन्ति ममांगानि । हा, न कश्चिन्मां वृद्धमनाथं संभावयति' ।[1]

'हा पुत्रों, कहां गये । मुझे अपना प्रिय दर्शन दो । राग ,द्वेष, मद, मात्सर्य आदि कुमारों, मेरा आलिंगन करो । मेरे शरीर में पीड़ा हो रही है । हाय, कोई भी मुझ अनाथ-वृद्ध का आदर नहीं करता' ।

इस कथन के आधार पर केशव का छन्द है :

'हा काम हा तनय क्रोध विरोध लोभ ।
हा ब्रह्मदोष नृपदोष कृतघ्न चोभ ।
मोको परी विपत्ति को न छुड़ाइ लेइ ।
कासों कहौं वचन कौन बचाइ देइ' ॥[2]

नाटक में सरस्वती मन को सान्त्वना देती हुई कहती है :

'एकमेव सदा ब्रह्म, सत्यमन्यद्विकल्पितम् ।
को मोहस्तत्र कः शोक एकत्वमनुपश्यतः' ॥[3]

'एक ब्रह्म ही शाश्वत तथा सत्य है, अन्य सब वस्तुयें कल्पित हैं । इस तत्व को जानने पर कैसा मोह तथा कैसा शोक' ।

केशव की सरस्वती भी प्रायः यही कहती है :

'एक ब्रह्म सांचो सदा, झूठो यह संसार ।
कौन लोभ मद काम को, सुत मित्र विचार ' ॥[4]

नाटक की सरस्वती पुनः कहती है :

'न कास्ते पितरो दाराः पुत्राः पितृव्यपितामहा—
महितविततेसंसारेऽस्मिन्गतास्तवकोटय : ।
तदिह सुहृदां विद्युत्पातोज्ज्वलान्क्षणसंगमान् ।
सपदि हृदये भूयो भूयो निवेश्य सुखी भव' ॥[5]

'न कोई किसी का पिता है, न स्त्री, न पुत्र, न चचा, न पितामह । इस महान संसार में करोड़ों बार पिता, स्त्री आदि हो चुके हैं । सुहृद आदि विद्युत के समान प्रकाशित होकर क्षण भर का साथ करने वाले हैं, यह सोच कर दुख न करना चाहिए' ।

केशव की सरस्वती भी यही कहती है :

'पुत्र मित्र कलत्र के तजि वत्स दुःसह सोग ।
कौन के भट कौन की दुहिता मृषा सब लोग ।

१. प्रबोधचन्द्रोदय, पृ० सं० १७६ ।
२. विज्ञानगीत, छ० सं० ४, पृ० सं० ६० ।
३. प्रबोधचन्द्रोदय, छं० सं० १९, पृ० सं० १८३ ।
४. विज्ञानगीता, छ० सं० ८, पृ० सं० ६१ ।
५. प्रबोधचन्द्रोदय, छ० सं० २७, पृ० सं० १६२ ।

होत कलपसतायु देव तऊ सबै नशि जात।
संसार की गति जानि जिय अब कौन को पछितात' ॥[1]

नाटक की सरस्वती का मन के प्रति कथन है :

'वत्स, यथाप्येवं तथापि गृहिण्या मुहूर्तमप्यनाश्रमधर्मिणा न भवितव्यम्। तदद्यप्रभृति निवृत्तिरेव ते सहधर्मचारिणी। शमदमसंतोषादयश्च पुत्रास्त्वामनुचरन्तु, यमनियमादयश्चामात्याः विवेकोऽपि त्वनुग्रहादुपनिषद्देव्या सह यौवराज्यमनुभवतु'।[2]

'वत्स, यद्यपि जो तुम कहते हो यथार्थ है, किन्तु गृहिणी के बिना आश्रम-धर्म का पालन करने वालों को नहीं रहना चाहिये, अतएव आज से निवृत्ति ही तुम्हारी सहधर्मिणी है। शम, दम, संतोष आदि पुत्र तुम्हारा अनुगमन करें। यम, नियम आदि अमात्य हों। विवेक भी तुम्हारी कृपा से उपनिषद् देवी के साथ यौवराज्य का सुख भोगे'।

यही बात केशव की सरस्वती भी निम्नांकित छन्दों में कहती है :

'देवी कहि वैराग्य यो, सांची है यह बात।
तदपि तुम्हैं आश्रम बिना रहनो नाहीं तात।
है निवृत्ति पतिव्रता नियमादि पुत्र समेत।
यौवराज विवेक को मिलि देहु देह निकेत॥
वेद सिद्धि सगर्भ हेतु पतिव्रता शुभ वाद।
जाइहै सुप्रबोध पुत्रहिं विष्णुभक्ति प्रसाद' ॥[3]

'विज्ञानगीता' के सत्रहवें प्रभाव में वर्णित शांति के उपनिषद् देवी को बुलाने जाने से लेकर तर्क-विद्या के अनुयायियों से उपनिषद् की रक्षा तक का प्रकरण अधिकांश 'प्रबोधचन्द्रोदय' के भावों के ही आधार पर लिखा गया है। समान अंश तुलना के लिए यहाँ उद्धृत किये जाते हैं।

नाटक के अन्तर्गत श्रद्धा का कथन है :

'अये अद्य खलु राजकुमारमारोग्ययुक्त—
मालोक्य चिरेण मे पीयूषेणेव लोचने पूर्णे।
असतां निग्रहोयत्र सन्तः पूज्या यमादयः।
आराध्यते जगत्स्वामी वश्यैर्देवानुजीविभिः' ॥[4]

'आज बहुत दिनों के बाद राजकुमार विवेक को आरोग्य देखकर मेरे नेत्र अमृत से पूर्ण हो रहे हैं। जिनके यहाँ मोहादिक दुष्टों का निग्रह है, यमादि सन्त पूजित हैं, और देव का अनुसरण करने वाले शम, दम आदि के द्वारा जगत्स्वामी की आराधना की जाती है'।

१. विज्ञानगीता, छं० सं० ७, पृ० सं० ६१।
२. प्रबोधचन्द्रोदय, पृ० सं० १६१-६६।
३. विज्ञानगीता, छं० सं० १० तथा १२, पृ० सं० ७२।
४. प्रबोधचन्द्रोदय, पृ० सं० २००।

इस कथन के आधार पर केशव का छन्द है :

'दुष्ट जीवन को जहाँ प्रभु करत आसु विनाशु ।
साधु लोगनि को जहाँ अवलोकिये वशुवाशु ॥
दास सेवत ईश को जहँ प्रेम सों दिन राति ।
जानिये तहँ नित्य आनन्द को उदै बहु भाँति' ॥[1]

नाटक में उपनिषद् शान्ति से कहती है :

'सखि कथं तथा निरनुक्रोशस्य स्वामिनो मुखमवलोकयिष्यामि । येनाहमितरजनयोषेव सुचिरमेकाकिनी परित्यक्ता' ।[2]

'सखि, उस कठोर स्वामी का मुख मैं कैसे देखूँगी, जिसने अन्य जनों की स्त्रियों के समान चिरकाल तक मुझे अकेली छोड़ दिया' ।

यही बात केशव की उपनिषद् भी कहती है :

'निष्ठुर प्रीतम त्यों सखी, क्यों करिहो अवलोक ।
इत युवती जो जिनि दयो, मोहि विरह भय शोक' ॥[3]

नाटक की शान्ति उसे समझाती है :

'सर्वमेतन्महामोहस्य दुर्विलसितम् । नात्र, देवस्यापराधः' ।[4]

'यह सब महामोह की दुष्टता थी । इस सम्बन्ध में विवेक का कोई अपराध नहीं है' ।

केशव की शान्ति भी यही कहती है:

'यह अपराध अगाध सब, महामोह को जानि ।
दोष कछू न विवेक को, काल वाल अनुमानि' ॥[5]

नाटक की शान्ति पुरुष को उपनिषद् देवी का परिचय देती हुई कहती है :

'स्वामिन्, एषोपनिषद्देवी पादवन्दनायागता' ।

'स्वामी' उपनिषद् देवी प्रणाम करने के लिये आई हैं' ।

पुरुष उत्तर देता है :

'न खलु न खलु । मातेयमस्माकं तत्वावबोधोदयेन । तदेषैवास्माकं नमस्या । अथवा
अनुग्रहविधौ देव्या मातुश्च महदन्तरम् ।
माता गाढं निबध्नाति बन्धं देवी निकृन्तति' ॥[6]

'नहीं, नहीं । प्रबोधोदय के कारण यह हमारी मां है, अतएव हम लोगों को इसे नमन करना चाहिये । अथवा अनुग्रह करने के कारण इस देवी तथा माँ में महान अन्तर है, क्योंकि

१. विज्ञानगीता, छं० सं० ७, पृ० सं० ६९ ।
२. प्रबोधचन्द्रोदय, पृ० सं० २१०
३. विज्ञानगीता, छं० सं० ७, पृ० सं० ६६ ।
४. प्रबोधचन्द्रोदय, पृ० सं० २११ ।
५. विज्ञानगीता, छं० सं० ८, पृ० सं० ६६ ।
६. प्रबोधचंद्रोदय, पृ० सं० २१४ ।

माता संसार के बंधन में डालती और यह संसार के बंधन को काटती है'।

शान्ति और पुरुष के इस कथोपकथन के आधार पर केशव ने निम्नांकित छन्द लिखा है, किन्तु इस छन्द से यह नहीं ज्ञात होता कि कितना अंश शान्ति का कथन है और कितना पुरुष का उत्तर।

'वेद सिद्धि करे प्रणामहिं ईश नेकु निहारि।
मातृ है यह ज्ञानदा अब चित्त माह विचारि।
देवि सों जननीनि सों दिन दीह अंतर मानि।
मातु बंधति मोह बंधन देवि काटति जानि'॥[1]

'प्रबोधचंद्रोदय' ग्रंथ के अन्तर्गत पुरुष तथा उपनिषद् का निम्नलिखित कथोपकथन दिया हुआ है:

पुरुषः—'अम्ब, कथ्यताम। क्व भवत्यानीता एते दिवसाः'।

'हे मां, कहो तुमने इतने दिन कहाँ बिताये'।

उपनिषदः—स्वामिन्

नीतान्यमूनि मठचत्वरशून्यदेवा—
गारेषु मूर्खमुखरैः सह वासराणि'।

'स्वामिन्, इतने दिन मठों, अन्य लोगों के निवास-स्थानों, शून्य देवालयों तथा वाचा मूर्खों के साथ बिताये हैं'।

पुरुषः—अथ ते जानन्ति किमपि भवत्यास्तत्वम्।

'क्या वे तुम्हारे तत्व को समझते हैं'।

उपनिषत्:—न खलु। किन्तु

ते स्वेच्छया मम गिरा द्रविडाङ्गनोक्त—
वाचामिवार्थविचार्य विकल्पयन्ति'।[2]

'नहीं, वरन वे मेरी वाणी के अर्थ को न समझ कर उसी प्रकार स्वेच्छा से अर्थ करते हैं, जिस प्रकार द्राविड़ स्त्रियों के शब्दों को सुनकर उस भाषा को न जानने वाला उसका मन-माना अर्थ करे'।

इस कथोपकथन के आधार पर केशव ने निम्नलिखित छन्द लिखा है, किन्तु केशव के छन्द का भाव अस्पष्ट है:

'माता कहिये दिवस बहु, कीने कहाँ व्यतीत।
वेदग्रहनि मठ शठनि मुख, सुनि मुनि मानस मीत।
तत्व तुम्हारो तब तहाँ, काहु ज्ञान द्वो मात।
नहिं नहिं द्राविड़ दच्छिणी, अच्छर स्वच्छ बचात'॥[3]

नाटक के अन्तर्गत उपनिषद् अपने प्रवासकाल के अनुभव बतलाती हुई कहती है:

'कृष्णाजिनाग्निसमिदाज्यजुहूस्रुवादि—
पात्रैस्तथेष्टिपशुसोममुखैर्मखैश्च।

1. विज्ञानगीता, छं० सं० १२, पृ० सं० ३६।
2. प्रबोधचन्द्रोदय, पृ० सं० २१४-२१५।
3. विज्ञानगीता, छं० सं० १५, पृ० सं० ३६।

दृष्टा मया परिवृत्ताखिलकर्मकांड
ध्यादिष्टपद्धतिरथाध्वनि यज्ञविद्या' ॥[१]

'मार्ग में जाते हुये मैंने कृष्ण मृगचर्म, अग्नि, लकड़ी, घृत, जुहू, स्रुवा आदि पात्रों तथा बलिपशु आदि अखिल कर्मकांडों से घिरी हुई यज्ञविद्या देखी'।

केशव की उपनिषद भी यही कहती है :

'धरें एनचर्मस्सदा देह सोहैं।
जहाँ अग्नि तीनों द्विजातीनि मोहैं।
चहूँ ओर यज्ञ क्रिया सिद्धि धारी।
चले जात मैं वेद विद्या निहारी' ॥[२]

नाटक की उपनिषद का कथन है :

'यस्माद्विश्वमुदेति यत्र रमते यस्मिनपुनर्लीयते।
भासा यस्य जगद्विभाति सहजानन्दोज्ज्वलंयन्महः।
शान्तं-शाश्वतमक्रियं यमपुनर्भावाय भूतेश्वरं
द्वैतध्वान्तमपास्य यान्ति कृतिनः प्रस्तौमितं पूरुषम्' ॥[३]

'मैं उस परम पुरुष का निरुपण करती हूँ जिससे जगत उत्पन्न होता, जिसके द्वारा स्थित रहता तथा जिसमें पुनः लीन हो जाता है; जिसका प्रकाश संसार को प्रकाशित करता है, जिसका तेज स्वाभाविक आनन्द के समान उज्वल है, जो विकार-शून्य है, अविनाशी है, अक्रिय है, जिस भूतेश्वर की शरण में प्राणी संसार के बंधनों के काटने के निमित्त द्वैत-भाव के अन्धकार का तिरस्कार करके जाते हैं'।

केशव की उपनिषद के कथन का भी संक्षेप में यही भाव है :

'नारायणादिक सृष्टि है जिनते प्रसिद्ध प्रवीन।
निर्लेप निर्गुण ज्योति अद्भुत ताहि में मन दीन' ॥[४]

नाटक के अन्तर्गत राजा (विवेक) उपनिषद से कहता है :

'अहो धूमान्धकारश्यामलितदृशो दुष्प्रज्ञत्वं यज्ञविद्यायाः येनैवं कुतर्कोपहता'।

'धुयें के अंधकार से श्यामदृष्टि यज्ञविद्या की यह मूर्खता है, जिससे वह इस प्रकार कुतर्कों द्वारा प्रताड़ित है'।

'अयः स्वभावादचलं बलाच्चल
स्यचेतनं चुम्बकसंनिधाविव।
तनोति विश्वेक्षितुरीक्षितेरिता
जगन्ति मायेश्वरतेयमीशितुः' ॥१६॥[५]

---

१. प्रबोधचन्द्रोदय, छं० सं० १२, पृ० सं० २१५।

२. विज्ञानगीता, छं० सं० १६, पृ० सं० ६७।

३. प्रबोधचन्द्रोदय, छं० सं० १४, पृ० सं० २१६।

४. विज्ञानगीता, पृ० सं० ६७।

५. प्रबोधचन्द्रोदय, पृ० सं० २११।

'लोहा स्वभाव से अचल है किन्तु चुम्बक की शक्ति के कारण अचेतन होते हुये भी उसके पास खिंच जाता है। उसी प्रकार भगवान के ईक्षण मात्र से प्रेरित भगवान की माया संसार का सृजन करती है'।

इस कथन के आधार पर केशव ने निम्नलिखित छन्द लिखा है, किन्तु केशव के छन्द का भाव अस्पष्ट है।

'ज्योति अद्भुत भाव तें भये विष्णु पूरक मानि।
मायाहि त्यों अवलोकियो जग भयो मायकु जानि।
जो कहौ वह जानिये जड़ क्यों करै जग जोइ।
पाइ चुम्बक तेज ज्यों जड़ लोह चेतन होइ' ॥[1]

नाटक की उपनिषद् का कथन है :

'एकः पश्यति चेष्टितानि जगतामन्यस्तु मोहान्धधी।
एकः कर्मफलानि वांछति ददात्यन्यस्तु तान्यर्थिने।
एकः कर्मसु शिष्यते तनुभृतां शास्तेव देवोऽपरो।
निःसङ्गः पुरुषः क्रियासु स कथं कर्तेति सम्भाव्यते' ॥[2]

'ईश्वर संसार के प्राणियों के कर्मों को साक्षीरूप से देखता है, किन्तु जीव मोहान्ध-बुद्धि है। जीव कर्मफल की वांछा करता है और ईश्वर उसको अभिलषित देता है। जीव कर्म में नियोजित करता है और ईश्वर शासन मात्र करता है। इस प्रकार निस्संग पुरुष क्रियाओं का कर्ता कैसे संभावित किया जा सकता है अर्थात् नहीं किया जा सकता'।

इस श्लोक के भाव के आधार पर केशव ने निम्नलिखित छन्द लिखा है, किन्तु केशव के हाथ में मूल भाव अस्पष्ट हो गया है :—

'एक जीव अन्ध एक जगत साखि कहत हैं।
एक काम सहित एक नित्य काम रहित हैं।
एक कहत परम पुरुष दण्ड दान लीन है।
एक कहत संग रहित क्रिया कर्म हीन है' ॥[3]

नाटक की उपनिषद् का कथन है :

'ततस्ताभिः प्रकाशोपहासमुक्तम्। आः वाचाले, परमाणुभ्यो विश्वमुत्पद्यते निमित्त-कारणमीश्वरः अन्यया तु सक्रोधमुक्तम्। आः पापे, कथमीश्वरमेव विकारिणं कृत्वा विनाश-धर्मिणमुपपादयसि'। [4]

'तब उन लोगों ने भी प्रकट उपहास करते हुये कहा कि ऐ वाचल, विश्व परमाणु से उत्पन्न होता है, ईश्वर निमित्त कारण-मात्र है। दूसरे ने सक्रोध कहा कि पापिनी ईश्वर को ही विकारी बनाती हुई विनाशकारी धर्म का उपार्जन करती है'।

---

१. विज्ञानगीता, छं० सं० २०, पृ० सं० ६७।
२. प्रबोधचंद्रोदय, छं० सं० ११, पृ० सं० २२४-२२५।
३. विज्ञानगीता, छं० सं० २५, पृ० सं० ६८।
४. प्रबोधचंद्रोदय, पृ० सं० २२८।

इस कथन के आधार पर केशव ने निम्नलिखित दो दोहे लिखे हैं, किंतु केशव का भाव अपेक्षाकृत अस्पष्ट है।

'इन मोसों उपहास सों, बात विचारि कहीसु।
विश्व होत परमान ते, निर्मित कारण ईशु॥
क्यों अविनाश अरूप सो, करिकै रूप प्रकार।
अविनाशी सो करत अब, युक्तायुक्त विचार'॥[1]

नाटक के अन्तर्गत राजा (विवेक) का कथन है :

'अम्भः शीतकरान्तरिक्षनगरस्वप्नेन्द्रजालादिवत्।
कार्यमेयमसत्यमेतदुदयध्वंसादियुक्तं जगत्।
शुक्तौ रूप्यमिव स्रजीव भुजगः स्वात्मावबोधे हरा—
वज्ञाते प्रभवत्यथास्तमयते तत्त्वावबोधोदयात्'॥[2]

'जल का चन्द्रमा, गन्धर्वनगर, स्वप्न तथा इन्द्रजाल आदि के समान ही यह उत्पत्ति तथा ध्वंस से युक्त तथा असत्य है, यह बात ज्ञान से जानी जाती है। परब्रह्म का ज्ञान होने पर तथा सत्य के बोध हो जाने पर शुक्ति में चाँदी के तथा रस्सी में सर्प के भ्रम के समान जगत की उत्पत्ति तथा विनाश के संबन्ध का भ्रम दूर हो जाता है।'

उपर्युक्त श्लोक के आधार पर केशव ने निम्नांकित दोहे लिखे हैं, किन्तु श्लोक तथा दोहों के भाव में महान् अन्तर है।

'भ्रम ही ते जो शुक्ति में होति रजत की युक्ति।
केशव संभ्रम नाश ते प्रगट शुक्ति की शुक्ति॥
रजत जानि ज्यों शुक्ति में भ्रम ते मनु अनुरक्त।
भ्रम नाशे ते रजत हूँ छीवत नहीं विरक्त॥
अविकारी जगदीश है भ्रम ही ते सविकार।
केशव कारी रजनि में सूझत सर्प विकार॥[3]

नाटक में राजा (विवेक) का कथन है :

'शान्तं ज्योतिः कथमनुदितानन्दनित्यप्रकाशं।
विश्वोत्पत्तौ व्रजति विकृतिं निष्फलं निर्मलं च।
तद्वन्नीलोत्पलदलरुचामम्बुवाहावलीनां
प्रादुर्भवते भवति नभसः कीदृशो वा विकारः'॥[4]

'शान्त ज्योतिस्वरूप, नित्यानन्द, नित्यप्रकाश तथा निर्मल ब्रह्म विश्वोत्पत्ति के संबन्ध में विकारी कैसे हो सकता है। वह उसी प्रकार सविकार नहीं हो सकता, जिस प्रकार नीले कमल-दल के समान कान्तिधारी मेघों के आकश में फैलने से आकाश सविकार नहीं हो जाता'।

१. विज्ञानगीता, छं० सं० २१, पृ० सं० ६८।
२. प्रबोधचन्द्रोदय, छं० सं० २२, पृ० सं० २२१।
३. विज्ञानगीता, छं० सं० ३२-३४, पृ० सं० ६६।
४. प्रबोधचन्द्रोदय, छं० सं० २३, पृ० सं० २३०।

प्रायः यही भाव केशव के निम्नलिखित छन्द का भी है :

> 'निकलंक है सुनिरीह निर्गुण शान्त ज्योति प्रकाश ।
> मानिहै मन मध्य ताकहं क्यों विकार विलाश ।
> होति विष्णुपदी न म्लान कलिकलमषादिक पाइ ।
> राह छाह छुवै न श्यामल सूरक्यों कहि जाइ' ॥[1]

विज्ञानगीता तथा योगवाशिष्ठ :

केशवदास जी ने 'विज्ञानगीता' के तेरहवें प्रभाव में मन को माया की विचित्रता समझाने के लिए सरस्वती के द्वारा गाधि ऋषि की कथा का वर्णन कराया है। इस कथा का आधार 'योगवाशिष्ठ' नामक ग्रंथ है।[2] केशव ने इस कथा का वर्णन 'योगवाशिष्ठ' की अपेक्षा संक्षेप में किया है। केशव के अनुसार गाधि मालव देश का निवासी था किन्तु 'योगवाशिष्ठ' में उसका निवास-स्थान कोसल देश बतलाया गया है। इसी प्रकार 'विज्ञानगीता' में कीर देश में गाधि के चांडाल-रूप में राज्य करने का उल्लेख है किन्तु 'योगवाशिष्ठ' में इस देश का नाम क्रान्त देश लिखा है। इसके अतिरिक्त 'विज्ञानगीता' की कथा का अन्तिम अंश केशव की उद्भावना है। इस अंश का सारांश निम्नलिखित है।

कीर देश में पता लगाने जाने पर गाधि ने वही वृत्तान्त सुना, जो उसने मोहावस्था में देखा था। वहीं मार्ग में जाते हुये उसे चांडाल का पुत्र मिला, जिसने उसको पिता समझ कर उसका अनुसरण किया। बालक का आर्तनाद एक राजा ने सुना जो निकट ही आखेट खेल रहा था। उसके चाकरों ने उसकी आज्ञा से बालक तथा गाधि को पकड़ कर उसके सम्मुख उपस्थित किया। राजा के पूछने पर बालक ने बतलाया कि गाधि उसका पिता है और उसे छोड़कर भागा जाता है। गाधि ने कहा कि वह उस बालक को जानता भी नहीं और अपने को मालव देश का निवासी बतलाया। राजा ने मालव तथा कीर दोनों स्थानों के लोगो को बुलाया। मालववासी उसे ब्राह्मण तथा कीर देशवासी चांडाल के रूप में पहचानते थे। जब राजा उसके संबंध में कोई निश्चय न कर सका तो उसने सोचा कि इसको खौलते हुये तेल के कढ़ाव में डाला जाये। यदि वह जल जाये तो चांडाल है और यदि न जले तो ब्राह्मण। कीर देशवासियों ने यह सुन कर कहा कि वह चेटकी है, अतएव न जलेगा। इस आधार पर उसकी जाति का निर्णय नहीं हो सकता। अंत में यह निश्चय किया गया कि उसका यज्ञोपवीत उतरवा कर सिर मुड़वा कर पहाड़ से नीचे गिरा दिया जाय। जब गाधि की शिखा के मूड़ने का निश्चय हुआ तब आकाशवाणी हुई कि गाधि ब्राह्मण है, चांडाल नहीं। यह सुन कर राजा ने गाधि को मुक्त कर दिया।[3] केशव के इस कथा-भाग के जोड़ देने से माया की विषमता का प्रकाशन 'योगवाशिष्ठ' की अपेक्षा अधिक प्रगाढ़ हो गया है।

'विज्ञानगीता' के चौदहवें प्रकाश में मन के पूछने पर केशवदास जी ने सरस्वती के

1. विज्ञानगीता, छं० सं० ३५, पृ० सं० ११।
2. योगवाशिष्ठ भाषा, उपशम प्रकरण, सर्ग ४४-४९, पृ० सं० ६८१-६८८।
3. विज्ञानगीता, प्रभाव १३, छं० सं० ६०-८०, पृ० सं० ६७-६१।

द्वारा व्यासपुत्र शुकदेव का आख्यान कहलाया है।[1] यह आख्यान भी 'योगवाशिष्ठ' से ही लिया गया है।[2] दो-एक स्थलों पर सूक्ष्म अन्तर के अतिरिक्त प्रायः दोनों ग्रंथों की कथा समान है। जैसे 'योगवाशिष्ठ' में विदेह ने केवल आदेश-मात्र दिया है कि शुकदेव को अन्तःपुर में ले जाकर सात दिन तक स्त्रियोपभोग कराया जाय, किन्तु 'विज्ञानगीता' में स्त्रियों द्वारा उनके आदर-सत्कार करने, नाना प्रकार से रिझाने तथा मोहित करने आदि का स्पष्ट वर्णन है। विदेह के पास पहुँचने तथा उनके द्वारा आने का कारण पूछने पर शुकदेव ने उनसे प्रश्न किया कि संसार किससे उत्पन्न होता और नाश होने पर किसमें समा जाता है। इस प्रश्न का उल्लेख केशव ने भी किया है किन्तु विदेह के उत्तर का नहीं। केशव के विदेह इस प्रश्न का उत्तर न देकर यही कहते हैं कि शुकदेव को जो कुछ मिलना था, मिल चुका।

'विज्ञानगीता' के पंद्रहवें प्रभाव में केशव ने शिव तथा वशिष्ठ के कथोपकथन के द्वारा वास्तविक देव कौन है और उसकी पूजन-विधि क्या है, इन बातों का वर्णन किया है।[3] इस कथोपकथन का आधार 'योगवाशिष्ठ' के निर्वाण प्रकरण का शिव-वशिष्ठ आख्यान है।[4] 'योगवाशिष्ठ' का यह आख्यान बहुत अधिक विस्तृत है किन्तु केशव ने उसमें से प्रकृत विषय से सम्बन्ध रखनेवाली बातें ही ली हैं। इस अंश को भी केशव ने केवल आधार माना है, अन्यथा केशव का वर्णन अधिकांश निजी तथा 'योगवाशिष्ठ' की अपेक्षा अधिक स्पष्ट तथा बोधगम्य है।

'विज्ञानगीता' के सम्पूर्ण सोलहवें प्रकाश में राजा शिखीध्वज की कथा के द्वारा ज्ञान-कथन किया गया है।[5] यह संपूर्ण कथा 'योगवाशिष्ठ' के निर्वाण प्रकरण के आधार पर लिखी गई है।[6] किन्तु केशव ने इस कथा का वर्णन 'योगवाशिष्ठ की अपेक्षा बहुत अधिक संक्षेप में किया है जिससे मूल कथा की बहुत सी बातें छूट गई हैं। कुछ स्थलों पर तो केशव ने जान-बूझ कर किंचित् हेर-फेर कर दिया है। 'योगवाशिष्ठ' के अनुसार शिखीध्वज के युवावस्था प्राप्त करने पर एक बार उसे स्त्री-सुखोपभोग की चिन्तना हुई तब मन्त्रियों ने चुड़ाला नाम की राज्यकन्या से उसका विवाह करा दिया। कालान्तर में राजा ने योगकला का स्वयं ज्ञान प्राप्त किया और रानी के द्वारा उसे भोगकलाओं की शिक्षा मिली। वृद्धावस्था-पर्यन्त उन दोनों ने नाना भोग भोगे तथा वृद्धावस्था में उनमें वैराग्य का उदय तथा संसार की अनित्यता का भान हुआ। संतों के पास जाकर राजा-रानी ने आत्मज्ञान के संबन्ध में उपदेश सुने। चुड़ाला को कालान्तर में अपने वास्तविक रूप का बोध हुआ, जिसके फलस्वरूप वह फिर नवयुवती के रूप में दिखलाई देने लगी। राजा ने इसका कारण पूछा। रानी ने उससे अपने संसार के मिथ्यात्व का भान होने तथा अपने वास्तविक रूप को पहचानने की बात कही। केशव ने

१. विज्ञानगीता, प्रभाव १४, छं० सं० २६-४०, पृ० सं० ७४-७५।
२. योगवाशिष्ठ भाषा, मुमुक्षु प्रकरण, सर्ग १, पृ० सं० ७८-८१।
३. विज्ञानगीता, प्रभाव १५, छं० सं० ३५-५१, पृ० सं० ७६-८१।
४. योगवाशिष्ठ भाषा, निर्वाण प्रकरण, सर्ग २८, पृ० सं० १७-७२।
५. विज्ञानगीता, प्रभाव १६, पृ० सं० ८२-६५।
६, योगवाशिष्ठ भाषा, निर्वाण प्रकरण, सर्ग ६६।

चुड़ाला का सुराष्ट्राधिपति की कन्या होना लिखा है, जिसका 'योगवाशिष्ठ' में कोई उल्लेख नहीं है। इसके अतिरिक्त केशव ने उपर्युक्त कथाभाग का अधिकांश छोड़ दिया है। केशव ने राजा-रानी के आरसी में एक दूसरे के मुख को देखकर राजा के द्वारा रानी के सदैव एक समान नवयुवती रहने का कारण पूछा जाना लिखा है। यह बात केशव ने अपनी ओर से जोड़ दी है। 'योगवाशिष्ठ' के अनुसार रानी उसको ज्ञानोपदेश देती है किन्तु उसकी समझ में कुछ नहीं आता। इस बातचीत का सारांश केशव ने 'विज्ञानगीता' में दिया है। इसके बाद रानी ने प्राणायाम के द्वारा योगाभ्यास किया तथा योग और ज्ञान के अभ्यास से पूर्ण हुई। एक रात राजा के सोते होने पर योग के द्वारा उसने भिन्न-भिन्न लोकों में विचरण किया तथा फिर लौट आई। उस दिन से लगातार वह राजा को ज्ञानोपदेश देती रही। कुछ समय बीतने पर चुड़ाला के उपदेश से राजा के हृदय में ज्ञानोदय हुआ। राजा ने वन-गमन का निश्चय किया। और एक रात जब रानी सो रही थी, वह घर छोड़ कर चला गया। केशव ने राजा के जाने की बात कही है किन्तु चुड़ाला के द्वारा राजा को उपदेश देने का प्रसंग छोड़ दिया है। 'योग-वाशिष्ठ' के अनुसार रानी ने जगने पर योग के द्वारा आकाश में जाकर राजा को जाते देखा किन्तु लौट आई और आठ वर्ष राजा को तप करने दिया, तत्पश्चात् उसके सामने देवरूप में उपस्थित हुई। केशव ने इन आठ वर्षों के व्यवधान का कोई उल्लेख नहीं किया है। देवपुत्र-रूपी चुड़ाला तथा राजा में इस अवसर पर जो कथोपकथन हुआ तथा राजा को देव-पुत्र द्वारा जो उपदेश दिया गया है, केशव ने उसका बहुत संक्षेप में वर्णन किया है। ज्ञानो-पदेश के ही संबंध में देवपुत्र ने राजा को गज तथा चिन्तामणि के आख्यान सुनाये थे, जिनका केशव ने अपेक्षाकृत संक्षिप्त वर्णन किया है। केशव ने 'योगवाशिष्ठ' के क्रम के विपरीत पहले गज तथा बाद में चिन्तामणि-सम्बन्धी कथा कहलाई है। 'योगवाशिष्ठ' में दोनों आख्यानों के रूपक का तात्विक अर्थ भी देवपुत्र के द्वारा राजा को समझाया गया है किन्तु केशव ने ऐसा नहीं किया है। इसके आगे राजा के मोह-विमुक्त होकर ज्ञान प्राप्त करने तक की कथा, 'योगवाशिष्ठ' के ही समान केशव ने अति संक्षेप में दी है। 'योगवाशिष्ठ' में इस अवसर पर देव-पुत्र द्वारा राजा को बहुत विस्तार से ज्ञानोपदेश दिलवाया गया है। 'योगवाशिष्ठ' के अनुसार इसके बाद वहाँ से रानी अपना वास्तविक रूप धारण कर अपने महल में गई और तीन दिन बाद आकर राजा को समाधिस्थ देख कर उसे जगाया। केशव ने देवपुत्र का वहाँ से वापस जाना नहीं लिखा है। 'योगवाशिष्ठ' के अनुसार दोनों ने कुछ काल एक साथ विचरण किया तथा अंत में रानी ने राजा की परीक्षा लेने की इच्छा से स्वर्गलोक जाने का बहाना कर उससे विदा ली। देवपुत्र-रूपी रानी ने वहाँ से जाकर राज्य की उचित व्यवस्था की और फिर राजा के पास आई। देवपुत्र को दुःखी देख कर राजा ने उससे इसका कारण पूछा। तब उसने बतलाया कि दुर्वासा को स्त्रियोचित शृंगार करने के लिए लांछित करने के कारण उन्होंने उसे रात्रि में स्त्री हो जाने का शाप दिया है। इस बार राजा ने ज्ञानोपदेश के द्वारा उसको सांत्वना दी। इसके बाद दोनों बहुत समय तक साथ-साथ विचरण करते रहे। एक दिन देवपुत्र ने उससे विवाह का प्रस्ताव किया और दोनों का विवाह हो गया। देवपुत्र को मदनिका रूप में देख कर भी राजा को कोई हर्ष नहीं हुआ। नाना स्थानों में भ्रमण करते हुए राजा के हृदय में किसी स्थान के लिए मोह न उत्पन्न हुआ। तब देवपुत्र ने राजा की परीक्षा लेने के लिए अपनी

माया फैलाई और इन्द्र देव, राजा के सामने उपस्थित हुये। इन्द्र के उपस्थित होने के पूर्व की सम्पूर्ण कथा केशव ने छोड़ दी है। इन्द्र के द्वारा राजा को स्वर्ग का लोभ दिखाने तथा राजा के द्वारा स्वर्ग जाने को मना करने का उल्लेख 'योगवाशिष्ठ' के समान ही केशव ने भी किया है। इन्द्र के जाने के बाद राजा की पुनः परीक्षा लेने के लिये रानी ने कल्पना से एक महल बनाया तथा अपने को एक नवयुवक के साथ रात्रि में काम-क्रीड़ा करते हुये प्रदर्शित किया। राजा ने न तो कोई विघ्न डाला और न क्रोध अथवा दुःख को ही प्राप्त हुआ। तब चुड़ाला को विश्वास हो गया कि राजा आत्मपद को प्राप्त हो गया है। अब रानी ने अपने को चुड़ाला के रूप में प्रकट किया। चुड़ाला के वास्तविक रूप में प्रकट होने के पूर्व राजा की परीक्षा लेने का वृत्तान्त केशव ने छोड़ दिया है। 'विज्ञानगीता' की शेष कथा 'योगवाशिष्ठ' के ही समान है।

'विज्ञानगीता' के सत्तरहवें प्रभाव की अज्ञान तथा ज्ञान की भूमिकाओं का वर्णन केशव ने 'योगवाशिष्ठ' के उत्पत्ति प्रकरण से लिया है। 'योगवाशिष्ठ' में अज्ञान की सात भूमिकायें बतलाई गई हैं। १, बीज-जाग्रत् २. जाग्रत् ३. महा-जाग्रत् ४. जाग्रत्-स्वप्न ५. स्वप्न ६. स्वप्न-जाग्रत् तथा ७. सुषुप्ति। शुद्ध चिन्मात्र अशब्द पदतत्व से चेतनता के अहं का नाम जीव है। आदि भूत चिन्मात्र का नाम, जो सकल पदार्थों का बीज-रूप है, 'बीज-जाग्रत्' है। इसके अनन्तर 'अहं', 'मम' आदि की प्रतीत का दृढ़ होना तथा जन्मान्तरों में भासित होने का नाम 'जाग्रत्' है। 'यह है', 'मैं हूँ' आदि शब्दों से तन्मय होना तथा जन्मान्तरों में मन का स्फुरण तथा मनोराज में उसका दृढ़ हो भासित होना 'जाग्रत्-स्वप्न' कहा जाता है। इसके अतिरिक्त चन्द्रमा तथा सीपी में चांदी अथवा मृगतृष्णा के जल आदि का विपर्यय भासित होना भी 'जाग्रत्-स्वप्न' है। निद्रा में मन के स्फुरण से नाना पदार्थों का भास होता है तथा जागने पर निद्राकाल में देखे हुये पदार्थ असत्य प्रतीत होते हैं। निद्राकाल में मन के स्फुरण का नाम 'स्वप्न' है। स्वप्न आये तथा उसमें यह दृढ़ प्रतीति हो जाये की दीर्घकाल बीत गया, इस अवस्था का नाम 'महा-जाग्रत' है। महा-जाग्रत् अवस्था में अपने महान वपु को देख कर उसमें 'अहं', 'मम' भाव का दृढ़ होना तथा अपने को सत्य जान कर जन्म-मरण आदि देखने का नाम 'स्वप्न-जाग्रत' है। इन छः अवस्थाओं का अभाव होकर जड़ रूप होना 'सुषुप्ति' है। घास, पत्थर आदि इसी अवस्था में स्थित हैं।[1] केशव ने भी अज्ञान की यही भूमिकायें बतलाई हैं, केवल 'योगवाशिष्ठ' की पहली भूमिका 'बीज-जाग्रत' को उन्होंने 'जीव-जाग्रत्' लिखा है। सम्भव है यह छापे की भूल हो। केशव के लक्षण अपेक्षा-कृत अस्पष्ट हैं।[2]

'योगवाशिष्ठ' में ज्ञान की भी सात भूमिकायें बतलाई गई हैं १. शुभेच्छा २. विचारना ३. तनुमानसा ४. सत्वापत्ति ५. असंशक्ति ६. पदार्थाभावनी तथा ७. तुरीया। मनुष्य के हृदय में इस विचार के स्फुरण के फलस्वरूप कि वह महामूर्ख है, उसकी बुद्धि सत्य की ओर न होकर संसार की ओर लगी है; उसका वैराग्यपूर्वक सत्शास्त्र और संतजनों की संगति की इच्छा करने का नाम 'शुभेच्छा' है। सत्शास्त्रों का मनन, सन्त-समागम, विषयों से वैराग्य तथा

१. योगवाशिष्ठ भाषा, उत्पत्ति प्रकरण, सर्ग ६२, पृ० सं० ३६७।

२. विज्ञानगीता, प्रभाव १७, छं० सं० ४२-५०, पृ० सं० १०१।

सन्मार्ग का अभ्यास करना और सदाचारी होना तथा सत्य को सत्य और असत्य को असत्य जान कर त्याग करने का नाम 'विचार' है। 'विचार' तथा 'शुभेच्छा' सहित तत्व का अभ्यास करना तथा इन्द्रियों के विषयों से विरक्ति, तीसरी भूमिका' 'तनुमानसा' है। इन तीन भूमिकाओं का अभ्यास करना, इन्द्रियों के विषय तथा जगत से विरक्त होकर, श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन से सत्य आत्मा में स्थित होने का नाम 'सत्वापत्ति' है। इसमें सत्य आत्मा का अभ्यास होता है। इन चार भूमिकाओं के संयम के फलस्वरूप शुद्ध विभूति में असंशक्त रहने का नाम 'असंशक्ति' है। दृश्य का विस्मरण तथा भीतर-बाहर से नाना प्रकार के पदार्थों के तुच्छ भासित होने का नाम 'पदार्थाभावनी' है। चिरपर्यन्त छठी भूमिका के अभ्यास से भेद-भाव का अभाव हो जाता है और स्वरूप में दृढ़ परिणाम होता है। छः भूमिकायें जहाँ एकता को प्राप्त हों उसका नाम 'तुरीया' है। यह जीवनमुक्त की अवस्था है। प्रथम तीन भूमिकायें जगत की जाग्रत अवस्था में हैं, चौथी तत्वज्ञानी की है, पांचवीं तथा छठी जीवन्मुक्त की अवस्थायें हैं और तुरीयातीतपद में विदेहमुक्त स्थित होता है।[1] केशवदास जी ने भी ज्ञान की यही सात भूमिकायें बतलाई हैं। लक्षणों में अवश्य किंचित् अन्तर है।[2]

केशवदास जी ने 'विज्ञानगीता' के अट्ठारहवें प्रभाव में प्रह्लाद की कथा लिखी है, जिसका आधार 'योगवाशिष्ठ' का उपशम प्रकरण है।[3] 'योगवाशिष्ठ' के अनुसार पाताल में हिरण्यकशिपु नाम का महाबली दैत्य था, जो देवता तथा दैत्यों को वश में करके अखिल जगत का स्वामी हो गया था। कालान्तर में उसके प्रह्लाद नामक पुत्र हुआ। हिरण्यकशिपु उसे अपने ऐश्वर्य की शिक्षा देता था किन्तु उसका मन विष्णु में अनुरक्त था। एक समय हिरण्यकशिपु के पूछने पर कि विष्णु कहाँ हैं, उसने कहा कि वह सर्व-व्यापक हैं। हिरण्यकशिपु ने कहा कि यदि वह खम्भे से न प्रकट होगा तो प्रह्लाद का वध कर दिया जायेगा। निदान विष्णु ने खंभे से प्रकट होकर हिरण्यकशिपु का वध किया। उसके मरने पर दैत्य बहुत दुखी हुए। प्रह्लाद ने जाकर दैत्यों को समझाया कि विष्णु की शरण के अतिरिक्त उनके उस हीन दशा से उद्धार का कोई अन्य उपाय नहीं है। अतएव प्रह्लाद ने उनको उसी का ध्यान करने की शिक्षा दी और स्वयं भी उन्हीं परमपुरुष का ध्यान करने का निश्चय किया। यहाँ तक की कथा केशव ने छोड़ दी है। इसके बाद प्रह्लाद विष्णु-रूप होकर मन में विष्णु का ध्यान करने लगा क्योंकि अविष्णु-रूप से विष्णु का पूजन करने से पूजन का फल नहीं मिलता। आगे प्रह्लाद के अपने विष्णु-रूप का ध्यान करने का वर्णन है। केशव ने यह अंश भी छोड़ दिया है। प्रह्लाद के ही समान अन्य दैत्यों ने भी विष्णु की मानसी पूजा की और वे सब कल्याण-मूर्ति विष्णुभक्त हो गये। यह बात देवलोक में फैली तब देवगण विष्णु के पास गये और उनसे कहा कि यह अनुचित है। विष्णु ने उन्हें प्रह्लाद की ओर से आश्वासन देकर विदा कर दिया। इधर प्रह्लाद क्रमशः जनार्दन की मनसा-वाचा-कर्मणा भक्ति करते हुये परम विवेक को प्राप्त हो विषय-भोग से विरक्त हो गया किन्तु फिर भी उसे आत्मबोध न हुआ। विष्णु उसके

१. योगवाशिष्ठ भाषा, उत्पत्ति प्रकरण, सर्ग ९३, पृ० सं० ३९८-३९९ ।

२. विज्ञानगीता, प्रभाव १७ छं० सं० ४२-६०, पृ० सं० १००-१०१।

३. योगवाशिष्ठ भाषा, उपशम प्रकरण, सर्ग ३०-४३, पृ० सं० ६४१-६८०

हृदय की वृत्ति को समझ कर उसके सम्मुख उपस्थित हुये। प्रह्लाद के प्रार्थना करने के बाद विष्णु ने उससे मनोभिलषित वर मांगने को कहा। प्रह्लाद ने दुर्लभतर वस्तु मांगी। विष्णु ने प्रह्लाद से कहा कि अखिल भ्रम के नाश करने वाले परम फल-रूप ब्रह्म से विश्रान्ति मिलती है; वह जिस आत्म-विवेक की समता से प्राप्त होती है, वही आत्म-विवेक तुझको होगा। यह कहकर विष्णु अन्तर्ध्यान हो गये। यहाँ तक 'योगवाशिष्ठ' तथा 'विज्ञानगीता' दोनों ग्रन्थों में वर्णित कथा समान है, यद्यपि 'विज्ञानगीता' की कथा 'योगवाशिष्ठ' की अपेक्षा संक्षिप्त है। इसके बाद प्रह्लाद आसन लगाकर चिंतन करने लगा। आत्म-चिंतन का वर्णन 'योगवाशिष्ठ' में अपेक्षाकृत अधिक विस्तार-पूर्वक किया गया है। अन्त में उसको परम बोध हुआ और उसने अपने ब्रह्म-रूप को पहचाना और निरानन्द समाधि में प्रस्तर मूर्ति के समान अचल स्थित हुआ। चिरकाल बीतने पर दैत्यों ने जगाने का उपक्रम किया, किन्तु असफल रहे। इस प्रकार समाधि में पांच हजार वर्ष बीत गये। फलतः रसातल में राज-भय दूर होने से अव्यवस्था फैल गई। दैत्यपुरी की यह दशा देख कर विष्णु ने विचार किया कि दैत्यों की सृष्टि न रहने से देवता भी विजय की इच्छा से रहित हो आत्मपद में लीन हो जायेंगे। उनके आत्मपद में लीन होने से पृथ्वी पर होने वाली यज्ञादि शुभ क्रियायें निष्फल हो जायेंगी और फलतः उनका लोप हो जायेगा। शुभ क्रियाओं के नष्ट होने से लोक भी नष्ट हो जायेंगे। यह विचार कर विष्णु ने प्रह्लाद को समाधि से जगाकर जीवन्मुक्त हो दैत्यों का राज्य करने का आदेश देने का निश्चय किया और उसके पास पहुँचे। विष्णु ने उसे अपने पांचजन्य शङ्ख के द्वारा समाधि से जगाकर तत्त्व का उपदेश दिया। प्रह्लाद उनकी आज्ञा से विदेह की भांति रसातल का राज्य करने लगा। 'योगवाशिष्ठ' तथा 'विज्ञानगीता' दोनों ही ग्रंथों में यह कथा-भाग समान है, यद्यपि कुछ स्थलों पर विष्णु द्वारा प्रह्लाद को दिया गया उपदेश केशव ने अपेक्षाकृत संक्षिप्त कर दिया है।

'विज्ञानगीता' के उन्नीसवें प्रभाव में बलि के विज्ञान की कथा कही गई है। इस कथा का आधार 'योगवाशिष्ठ' का उपशम प्रकरण है। 'योगवाशिष्ठ' के अनुसार विरोचन के पुत्र बलि ने देव, गन्धर्व यथा किन्नरों को सहज ही जीत कर तीनों लोकों में अपना आधिपत्य स्थापित किया तथा इस प्रकार दशकोटि वर्ष पर्यन्त अखंड राज्य किया। त्रिलोक के भोग भोगने के बाद उनसे उद्वेग को प्राप्त हो अन्त में वह सुमेरु पर्वत के शिखर पर बैठ कर संसार की गति की चिन्ता करने लगा। उसने विचार किया कि चिरकाल से भोग भोगने पर भी उसे सुख-शान्ति न प्राप्त हुई। इसी समय उसे ध्यान आया कि एक बार उसने आत्मतत्व के ज्ञाता अपने पिता विरोचन से वह स्थान पूछा था, जहाँ सब दुखों तथा सुखों का अंत होकर भ्रम शांत हो जाता है। 'विज्ञानगीता' में यह प्रश्न बलि, दैत्य-गुरु शुक्राचार्य से करता है, अन्यथा शेष कथा दोनों ग्रंथों में समान है। बलि के प्रश्न करने पर विरोचन ने बतलाया कि एक अति विस्तीर्ण देश है जहाँ समुद्र, पर्वत, वन, नदी, आकाश, सूर्य, चन्द्र आदि कुछ नहीं है। केवल एक है, जो महान, सबका करता, नित्यप्रकाश तथा सर्वव्यापक है। उसके अनेक मन्त्री हैं, जिनमें एक संकल्प भी है। वह मंत्री, जो न बने उसे शीघ्र बना लेता है। और जो बने, उसे न बनाने में भी समर्थ है। वह राजा के अर्थ सब कार्य करता है। यह सुनकर बलि ने विरोचन से उस देश का नाम, उसके प्राप्त होने का साधन तथा राजा, मंत्री आदि के विषय में जिज्ञासा की।

विरोचन ने उसे बतलाया कि उस देश का मंत्री अनेक कल्प के देवता और असुर गणों, किसी से वशीभूत नहीं होता। त्रिलोक को वश में करके वह चक्रवर्ती राजावत स्थित है। उसके राजा को वश में किये बिना उसे वश में नहीं किया जा सकता। राजा के दर्शन से मन्त्री वश में हो जाता है और मन्त्री के वश में आने से राजा का दर्शन होता है। अतएव दोनों बातों का एक साथ अभ्यास करना चाहिये। देश का नाम मोक्ष है; और उस देश का राजा आत्म-भगवान है, जो सर्वपदों से अतीत है। विरोचन ने बतलाया कि संकल्प अथवा मन-रूप मन्त्री को जीतने का उपाय शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गंध की ओर से आस्था त्यागना अर्थात् इनको भ्रम-रूप समझना है। क्रमपूर्वक अभ्यास करने तथा विरक्ति से यह सम्भव हो सकता है। इस स्थल पर 'योगवाशिष्ठ' में विरोचन ने बलि को बहुत विस्तारपूर्वक ज्ञानोपदेश दिया है। विरोचन के पूर्व-उपदेश की स्मृति से बालि के हृदय में विरलता का उदय हुआ और उसे ज्ञात हुआ कि इतने काल-पर्यन्त उसने बालक के समान मन द्वारा रचित तुच्छ पदार्थों की इच्छा की, यह उसका अज्ञान था। यह सोचकर उसने निश्चय किया कि अब वह आत्मा के दर्शन का उपाय करेगा। यह विचार कर तत्वज्ञान की इच्छा से उसने गुरु शुक्राचार्य का आवाहन किया। शुक्राचार्य ने उसे बतलाया कि चेतन तत्व ही प्रमाण है। मैं, तू, संसार, सभी चेतन-रूप हैं। इस निश्चय को हृदय में दृढ़ता से धारण करने पर अपने वास्तविक रूप को समझ कर विश्रान्ति प्राप्त करेगा। इसके बाद वह आकाश को चले गये। शुक्राचार्य के जाने के बाद बलि उनके कथन का मनन करने लगा। अंत में उसके मन की वासना नष्ट हो गई तथा वह शान्त-रूप पद को प्राप्त हुआ। जब उसे समाधि में बहुत अधिक समय बीत गया तो दैत्यों ने शुक्राचार्य का आवाहन किया। उन्होंने आकर बतलाया कि बलि उनके उपदेश से विश्राम को प्राप्त हुआ है। उसे जगाओ मत। वह स्वयं ही दिव्य वर्ष में जागेगा। यह कह कर शुक्राचार्य चले गये। सहस्र वर्ष बीतने पर बलि समाधि से जागा और वासना को त्याग कर राज्य के कार्य करने लगा। 'विज्ञानगीता' तथा 'योगवाशिष्ठ' दोनों ग्रंथों में राजा बलि के उस देश का नाम तथा उसे जीतने के उपाय के सम्बन्ध में प्रश्न करने तक की कथा समान है। 'विज्ञानगीता' में, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, विरोचन के स्थान पर शुक्राचार्य से बलि का कथोपकथन कराया गया है, अन्यथा 'विज्ञानगीता' की कथा 'योगवाशिष्ठ' की कथा का संक्षिप्त रूप ही है। 'योगवाशिष्ठ' की शेष कथा केशव ने छोड़ दी है।

ज्ञानकथन के सम्बन्ध में दी हुई 'विज्ञानगीता' को कथाओं के अतिरिक्त कुछ अन्य विचार भी केशव ने 'योगवाशिष्ठ' के ही आधार पर लिखे हैं। ऐसे कुछ विचार यहाँ दिये जाते हैं। बालदशा तथा यौवनावस्था के दुखों का वर्णन केशव ने निम्नलिखित छन्दों में किया है।

बालदशा :

> 'गर्भ मिलेइ रहै मल में जग आवत कोटिक कष्ट सहेजू।
> को कहै पीर न बोलि परै बहु रोग निकेतन ताप रहेजू।
> खेलत मात पितान डरै गुरु गेहनि में गुरु दंड दहेजू।
> दीरघलोचनि देवि सुनो अब बाल दशा दिन दुःख नहेज' ॥[1]

---

1. विज्ञानगीता, प्रभाव १४, छं० सं० १८, पृ० सं० ७३।

यौवनकाल :

'जो मन में मति की मलिनाई ।
होति हिये चित की चपलाई ।
काहू गयौ न सुवर्ग भरी यों ।
आवति है वरषा सरिता ज्यों ।
काम प्रताप के ताप तपे तनु केशव क्रोध विरोध सनेजू ।
जारेतु चारु चिताई विपत्ति में संपति गर्व न काहू गनेजू ।
लोभ ते देश विदेश भ्रम्यो भव संभ्रम विभ्रम कौन भनेजू ।
मित्र अमित्र ते पुत्र कलत्र ते योवन में दिन दुःख घनेज' ॥[1]

इस सम्बन्ध में केशव ने 'योगवाशिष्ठ' का आधार-मात्र ही लिया है, उसके विचारों का भावानुवाद नहीं किया है।[2]

'योगवाशिष्ठ' के अनुसार मोक्षद्वार के चार द्वारपाल हैं, शम, सन्तोष, विचार तथा सत्संग। इनको वश में करने से मोक्ष-द्वार में सुगमता से प्रवेश प्राप्त होता है। इनमें से एक को भी वश में कर लेने पर चारों अनायास वशीभूत हो जाते हैं।[3] केशव ने भी यही लिखा है :

'मुक्ति पुरी दरबार के चारि चतुर प्रतिहार।
साधुन के शुभ सङ्ग अरु सम सन्तोष विचार ।
तिनमें जग एकहु जो अपनावै ।
सुख ही प्रभुद्वार प्रवेशहि पावै' ॥[4]

'योगवाशिष्ठ' में सृष्टि की उत्पत्ति समझाते हुये वशिष्ठ जी ने राम को बतलाया है कि कभी सृष्टि सदाशिव से उत्पन्न होती है, कभी ब्रह्मा से, कभी विष्णु से और कभी उसे मुनीश्वर रच लेते हैं। कभी ब्रह्मा कमल से उपजते हैं, कभी जल से, कभी पवन से और कभी अंडे से।.....................सृष्टि.........................कभी पाषाणमय होती है, कभी मांस-मय और कभी सुवर्णमय होती है।[5] वशिष्ठ जी के इस कथन के आधार पर केशव ने लिखा है :

'कबहूँ यह सृष्टि महाशिव ते सुनि ।
कबहूँ विधि ते कबहूँ हरि ते गुनि ।
कबहूँ विधि होत सरोरुह के मग ।
कबहूँ जल अम्बर ते कहिये जग ।

१. विज्ञानगीता, प्रभाव १४, छं० सं० ११, पृ० सं० ७३ ।
२. योगवाशिष्ठ भाषा, वैराग्यप्रकरण, सर्ग १४ तथा १५, पृ० सं० ४५ तथा ५२
३. योगवाशिष्ठ भाषा, मुमुक्षु प्रकरण, सर्ग ११, पृ० सं० १०५ ।
४. विज्ञानगीता, प्रभाव १४, छं० सं० ४५, ४६, पृ० सं० ७६ ।
५. योगवाशिष्ठ भाषा, स्थिति प्रकरण, सर्ग ४७, पृ० सं० ५२४ ।

कबहूँ धरणी पल में मय पाहन।
कबहूँ जल मय तृण मै अरु कंचन' ॥[1]

'योगवाशिष्ठ' में राम को जगत-रूपी वृक्ष की उत्पत्ति समझाते हुये वशिष्ठ जी ने बतलाया है कि संसार का बीज शरीर है और शरीर का बीज चित्त है। चित्त-रूपी अंकुर के वृत्ति-रूपी दो टाँस होते हैं, एक प्राणस्पन्द तथा दूसरा दृढ़ भावना। प्राणस्पन्द तथा वासना का बीज संवेदन है। शुद्ध संवित्‌मात्र से संवेदन का त्याग होने पर वासना तथा प्राण दोनों का स्फुरण नहीं होता। संवेदन का बीज आत्मसत्ता अथवा संवित्-सत्ता है। जब चिन्मात्र संवित् में संवेदन का उत्थान होता है कि 'अहं अस्मि' तब संवेदन जगज्जाल दिखलाती है। इस संवित् का बीज सन्मात्र है। इस सत्ता के दो रूप हैं। एक रूप नाना प्रकार हो भासित होता है और दूसरा एक ही रूप है। विभाग से रहित एक सत्ता स्थित है, वह सत्ता-समान अद्वैत रूप परमार्थ है। विषय को त्याग कर जो सन्मात्र है, वह एकरूप है। वह सत्ता नाना आकार कभी नहीं धारण करती। काल-सत्ता तथा आकाश-सत्ता अवस्तुरूप हैं। इस विभाग-सत्ता को त्याग कर सन्मात्र सत्ता के परायण होना चाहिये। आकाश, काल आदिक सत्ता वास्तव नहीं है और सत्ता-समान, जो संवितमात्र है, वह सबका बीज है। उस अनन्त, अनादि, बीजरूप, परम पद का बीज और कोई नहीं है।[2] इस प्रकरण का भाव केशव ने ज्यों का त्यों ले लिया है।[3]

१. विज्ञानगीता, प्रभाव २१, छं० सं० ११-१२, पृ० सं० ११६।

२. योगवाशिष्ठ भाषा, उपशम प्रकरण, सर्ग ८६, पृ० सं० ८१४-८२१।

३. 'युक्त शुभाशुभ अंकुरनि बीज सृष्टि को देहु।
भावाभाव सदानि में सुख दुखदा इह गेहु ॥२॥

बीज देह को विदेह चित्तवृत्ति जानिए।
जाहि मध्य स्वप्न तुल्य सम्भ्रमादि मानिए।
दोइ बीज चित्त के सुचित्त ह्वै सुनो अबै।
एक प्राणस्पन्द है द्वितीय भावना सबै ॥३॥

दोइ बीज हैं चित्त के ताके बीजनि जानि।
सो संवेद बखानिये, केशवराइ प्रमानि ॥७॥

बीज सदा संवेद को संविद बीज विधान।
संविज अरु संघात को छांड़त हैं मतिमान ॥८॥

संविद को वितु बीज है ताको सत्ता होइ।
केशवराइ बखानिये, सो सत्ता विधि दोइ ॥६॥

एक सु नाना रूप है, एक रूप है एक।
एक रूप संतत भजो, तजिये रूप अनेक ॥१०॥

एक काल सत्ता कहै, विमति चित्त को ताहि।
एक वस्तु सत्ता कहै, चित सत्ता चित चाहि ॥११॥

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'विज्ञानगीता' की कथावस्तु का निर्माण अधिकांश 'प्रबोधचन्द्रोदय' तथा 'योगवाशिष्ठ' आदि संस्कृत भाषा के तत्वज्ञान सम्बन्धी ग्रंथों के आधार पर हुआ है।

ताको बीज न जानियें, जाकी सत्ता साधु।
हेतु जु है सब हेतु को, ताही को आराधु' ॥१२॥
विज्ञानगीता, प्रभाव २०, पृ० सं० ११२-११३।

सप्तम् अध्याय

इतिहास-निर्माण

हिन्दी के काव्य-ग्रंथों में संचित इतिहास-सामग्री :

भारतीय इतिहास हिन्दी-साहित्य के ग्रन्थों में वर्णित अनेक घटनाओं तथा व्यक्तियों के परिचय में रक्षित है। हिन्दी के चारण कवियों के 'रासो' तथा आख्यान काव्यों में और आश्रित राजकवियों के द्वारा अपने आश्रयदाताओं का गुण-गान करने के लिये लिखे गये काव्य-ग्रन्थों में कविता-सौन्दर्य के साथ ही ऐतिहासिक घटनाओं का भी संचय है। इस कोटि के ग्रन्थों में सबसे पहला नाम नल्लसिंह भट्ट कृत 'विजयपालरासो' का है। इस ग्रन्थ में संवत् १६०३ वि० में होने वाले करौली के विजयपाल राजा के युद्धों का वर्णन है। स्व० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे अपभ्रंश भाषा का ग्रन्थ लिखा है। इसके बाद हिन्दी के वीर-गाथा-काल में खुम्माण कृत 'खुम्माणरासो', नरपति नल्ह-कृत 'बीसलदेवरासो' तथा चन्द बरदाई-कृत 'पृथ्वीराजरासो' आदि ग्रन्थ लिखे गये, जिनमें 'पृथ्वीराजरासो' सबसे अधिक प्रसिद्ध है। इसमें आबू के यज्ञकुंड से चार क्षत्रियकुलों की उत्पत्ति तथा चौहानों के अजमेर में राज्यस्थापन से लेकर मुहम्मद गोरी द्वारा पृथ्वीराज के बन्दी बनाये जाने तक का विस्तृत वर्णन है। इसमें दिये हुये सन-सम्बत् शिलालेखों और इतिहास-ग्रन्थों में दिये हुये सम्बतों से मेल नहीं खाते तथा बहुत सी घटनायें भी बाह्य प्रमाणों के आधार पर कवि-कल्पित प्रतीत होती हैं। फिर भी अनंगपाल द्वारा गोद लिये जाने के समय से लेकर पृथ्वीराज के जीवन की बहुत सी घटनायें ऐतिहासिक तत्वों पर ही अवलम्बित हैं। इसके साथ ही इस ग्रन्थ से प्रासंगिक रीति से तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का भी परिचय मिलता है।

हिन्दी-साहित्य के रीति-काल में भी कई ग्रन्थ मिलते हैं, जिनमें बहुत सी ऐतिहासिक घटनायें संचित हैं। भूषण का 'शिवराज-भूषण' विशेष रूप से प्रसिद्ध है। यह ग्रन्थ महाराज शिवाजी के कीर्ति-गान के लिये लिखा गया है, अतएव इसमें तिथियों के अनुसार घटना-क्रम नहीं मिलता, तथापि शिवा जी सम्बन्धी प्रायः सब मुख्य घटनाओं का उल्लेख हो गया है। ऐतिहासिकता भूषण के काव्य की प्रमुख विशेषता है। भूषण के समान ऐतिहासिकता का ध्यान इनके पूर्ववर्ती किसी हिन्दी के कवि ने नहीं रखा है। सच तो यह है कि बिना शिवाजी-संबन्धी इतिहास जाने भूषण की कविता के समझने में भूल हो जाने की बहुत कुछ सम्भावना है। 'शिवराजभूषण' में शाहजहाँ के पुत्रों का युद्ध और दारा, शुजा तथा मुराद की हार, अफजल खाँ का मारा जाना, परनाला दुर्गविजय, पूना में शायस्ता खाँ की दुर्दशा, सूरत की लूट, शिवाजी का दिल्ली जाना और वापस आना, सिंहगढ़ का तानाजी द्वारा लिया जाना, तथा उदयभान राठौर का मारा जाना, सल्हेर युद्ध और अमरसिंह का मारा जाना, रामनगर, जवारी और रामगिरि दुर्गों की विजय आदि अनेक ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन

है। श्रीधर अथवा मुरलीधर ने अपने 'जङ्गनामा' में जहाँदारशाह तथा फरु खसियर के युद्ध का वर्णन किया है। लाल कवि के 'छत्रप्रकाश' में सं० १७६४ वि० तक महाराज छत्रसाल का वृतान्त दिया है। इस ग्रन्थ में कवि ने बुन्देलों की उत्पत्ति, चंपतराय की विजय-गाथा, उनके जीवन के अंतिम दिनों में राज्य का मुगलों के हाथ में चला जाना, छत्रसाल का थोड़ी सी सेना से ही अपने राज्य का उद्धार और फिर अनेक विजय प्राप्त कर मुगलों की नाक में दम करने आदि का विस्तृत वर्णन है। इस ग्रन्थ के ऐतिहासिक महत्व के विषय में स्व० आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि इसमें सब घटनायें और सब ब्योरे ठीक-ठीक दिये गये हैं। इसमें वर्णित घटनायें और सम्वत् आदि ऐतिहासिक खोज के अनुसार बिल्कुल ठीक हैं। यहाँ तक कि जिस युद्ध में छत्रसाल को भागना पड़ा उसका भी स्पष्ट उल्लेख किया गया है।[1]

सूदन के 'सुजानचरित्र' नामक ग्रन्थ में भरतपुर के महाराज बदनसिंह के पुत्र सुजानसिंह के पराक्रमपूर्ण जीवन का वृतान्त लिखा है। इसमें सं० १८०२ वि० से सं० १८६० वि० तक सुजानसिंह के जीवन से सम्बन्ध रखने वाली घटनाओं का इतिहास-सम्मत वर्णन है। अहमदशाह बादशाह के सेनापति फतेहअली पर आक्रमण करने पर सुजानसिंह का फतेहअली की ओर से युद्ध और असदखाँ की हार, मेवाड़ तथा मांडौगढ़ आदि की विजय, सं० १८०४ वि० में जयपुर की ओर से युद्ध में मरहठों को हराना, सं० १८०५ वि० में बादशाही सेनापति सलावत खाँ को परास्त करना, सं० १८०६ वि० में शाही वजीर सफदरजंग के साथ बंगश पठानों पर आक्रमण आदि सभी घटनायें ऐतिहासिक हैं। इस प्रकार 'सुजानचरित्र' का भी विशेष ऐतिहासिक महत्व है।

केशवदास जी ने भी अपने ग्रंथ 'कविप्रिया', 'वीरसिंहदेव-चरित' तथा 'रतन-बावनी' द्वारा अपने समकालीन इतिहास का निर्माण किया है। विशेष रूप से 'वीरसिंह-देव-चरित' का प्रथमार्ध तो छन्दोबद्ध इतिहास ही है। ओड़छा के राजवंश का परिचय जानने के लिए केशव के ग्रन्थ को पढ़ना अनिवार्य है। डा० रामकुमार वर्मा ने 'वीरसिंहदेव-चरित' के विषय में अपने हिन्दी-साहित्य के इतिहास में लिखा है कि ओड़छा के वीरसिंहदेव का यथार्थ परिचय हमें इतिहास से नहीं, केशवदास के 'वीरसिंहदेव-चरित' से मिलता है।[2] डा० बेनी प्रसाद के अनुसार ऐतिहासिक दृष्टिकोण से केशव की रचनाओं में यह ग्रन्थ सबसे अधिक महत्वपूर्ण है।[3]

'कविप्रिया' के आधार पर ओड़छा का राजवंश :

केशवदास जी ने 'कविप्रिया' के प्रथम प्रभाव तथा 'वीरसिंहदेव-चरित' के दूसरे प्रकाश में ओड़छा के राजवंश का वर्णन किया है। बुन्देलों की उत्पत्ति सूर्यवंशी गहरवार क्षत्रियों से मानी जाती है, अतएव केशवदास जी ने ओड़छा के बुन्देला राजाओं की उत्पत्ति सूर्यवंशी रामचन्द्रजी से लिखी है। 'कविप्रिया' के अनुसार रामचन्द्र जी के कुल में प्रसिद्ध गहरवार वंशी राजा 'वीर' हुये। इनके बाद राजा 'करण' हुये, जिन्होंने वाराणसी को अपना निवास-स्थान

---

१. हिन्दी-साहित्य का इतिहास, शुक्ल, पृ० सं० ३७८।

२. हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, वर्मा, पृ० सं० १८।

३. हिस्ट्री आफ जहाँगीर, बेनी प्रसाद, पृ० सं० ४६०-४६१

बनाया और जिनके नाम से वहाँ का प्रसिद्ध 'करणतीरथ' (वर्तमान करणघण्टा) प्रसिद्ध है। राजा करण के बाद 'अर्जुनपाल' राजा हुये, जिन्होंने महोनी गाँव को अपने रहने के लिए चुना। इनके बाद 'सोहनपाल' राजा हुये, जिन्होंने 'गढकुंढार' को अपनी राजधानी बनाया। सोहनपाल के बाद 'सहजइन्द्र' राजा हुये जो शत्रुओं के लिए काल के समान थे। इसके बाद 'नौनिकदे' तथा उनकी मृत्यु के बाद उनके पुत्र 'पृथ्वीराज' राजा हुये। इनके बाद क्रमशः 'रामसिंह', 'राजचन्द्र' और 'मेदिनीमल' को राज्य मिला। मेदनीमल ने शत्रुओं के मद का मर्दन कर धर्म की स्थापना की। मेदिनीमल के पश्चात् 'अर्जुन देव' राजा हुये जो साक्षात अर्जुन ही थे और जिन्हें सब राजा नारायण का सखा कहते थे। इनके बाद 'मलखान' राजा हुए, जिन्होंने युद्धस्थल में कभी पीठ न दिखलाई। मलखान के पश्चात् वीर 'प्रतापरुद्र' राजा हुये। यह कल्पवृक्ष के समान दानी, दयालु, शील के समुद्र तथा गुननिधि थे। इन्होंने ही ओड़छा नगर बसाया। प्रतापरुद्र के बाद 'भारतिचंद' राजा हुये जिन्होंने 'शेरशाह असलेम' को मारा। इनके कोई पुत्र न था, अतएव इनके स्वर्गवास के बाद इनके भाई 'मधुकरशाह' राज्य के अधिकारी हुये। इन्होंने सिन्धुनदी के पार तक अपनी विजय का डंका बजाया। मधुकरशाह पर जिन शत्रुओं ने आक्रमण किया, वह सदैव असफल रहे और जिन पर मधुकरशाह ने आक्रमण किया, उन्हें परास्त किया। इन्होंने अकबर के अनेक किले जीत लिये। अकबर के पुत्र मुराद तथा अकबर के अन्य सेनानियों को इन्होंने परास्त किया था। दूलहराम, होरिलराव, रतनसेन, इन्द्रजीत, वीरसिंह, हरसिंह तथा रणधीर आदि इनके पुत्र थे; किन्तु मधुकरशाह की मृत्यु के बाद दूलहराम उपनाम 'रामशाह' ओड़छा के राजसिंहासन पर आसीन हुये।

वीरसिंहदेव-चरित के आधार पर ओड़छा का राजवंश :

'वीरसिंहदेव-चरित' में दिये वंश-वर्णन में 'कविप्रिया' के वर्णन से कुछ अन्तर है। 'वीरसिंहदेव-चरित' के अनुसार पृथ्वी का भार उतारने के पश्चात् राम के स्वर्ग प्रस्थान करने पर राम के पुत्र ने अयोध्या के स्थान पर कुशस्थली को अपनी राजधानी बनाया और आसमुद्र पृथ्वी पर राज्य किया। कुछ कालोपरांत कुश के वंश का एक कुमार वाराणसी गया, जहाँ जनता ने उसे राजा स्वीकार कर लिया। इस कुमार का नाम 'वीरभद्र' था। वीरभद्र के उत्तराधिकारी क्रमशः राजा 'वीर' और 'कर्न' हुये। कर्नपाल ने कर्नतीर्थ की स्थापना की। इनके पुत्र 'अर्जुनपाल' थे, जो अपने पिता से रुष्ट हो काशी त्याग कर महोनी चले गये। इनके पुत्र 'सोहनपाल' ने गढ़कुंढार को जीता। 'सोहनपाल' के पुत्र 'सहजेन्द्र' और 'सहजेन्द्र' के 'नौनगदेव' थे। 'नौनगदेव' के बाद इनके पुत्र 'पृथ्वीराज' राजा हुये। 'पृथ्वीराज' के तीन पुत्र थे, 'मेदिनीमल', 'रायसेन' और 'पूरनमल'। मेदिनीमल के पुत्र 'अर्जुनदेव' सात्विकी वृत्ति के थे। 'अर्जुनदेव' के पुत्र 'मलखान' बड़े वीर थे। 'मलखान' के पुत्र 'प्रतापरुद्र' थे, जिन्होंने ओड़छा नगर बसाया। 'प्रतापरुद्र' के बाद उनके पुत्र 'भारतीचन्द' राजा हुये। इन्होंने यवनों के सामने कभी शिर न झुकाया और 'असलेन' को युद्ध में परास्त किया।

१. कविप्रिया, छं० सं० ६-३०, पृ० सं० ४-७।

इनके पुत्र न था, अतएव 'मधुकरशाह' राजगद्दी पर बैठे (इनकी रानी का नाम गनेशदे था)। यह वीर योद्धा थे और इन्होंने युद्ध में न्यामत खां, अलीकुली खां, जामकुली खां, साहकुली खां, सैद खां, अब्दुल्ला खां, तथा युवराज मुराद को परास्त किया। अन्त में सम्राट अकबर ने इनसे मित्रता कर ली। मधुकरशाह के आठ पुत्र थे। सबसे बड़े पुत्र का नाम 'रामशाह' था। इनसे छोटे 'होरिलराउ' थे, जो सादिक और मुहम्मद खां से युद्ध करते हुये स्वर्ग सिधारे। इनसे छोटे पुत्र का नाम 'नरसिंह' था। 'नरसिंह' से छोटे 'रतनसेन' थे। सम्राट अकबर ने 'रतनसेन' का सम्मान किया। इन्होंने सम्राट के लिये गौड़ देश पर आक्रमण कर उसे जीता था और अंत में युद्ध में ही इनकी मृत्यु हुई। 'राउभूपाल' इन्हीं रतनसेन के पुत्र थे। मधुकर शाह के पांचवे पुत्र 'इन्द्रजीतसिंह' थे, जो कछोवा में रहते थे। इनके पुत्र 'उग्रसेन' ने 'धधेरों' को परास्त किया था। 'रावप्रताप', इन्द्रजीत के छोटे भाई थे। इनके बाद 'वीरसिंह' का नाम आता है। 'वीरसिंहदेव' के ग्यारह पुत्र थे, जिनमें से नौ पुत्रों के नाम केशवदास जी ने दिये हैं, जुझारसिंह, हरदौल, पहाड़सिंह, चन्द्रभान, भगवानराव, नरहरिदास, कृष्णदास, माधोदास तथा तुलसीदास। महाराज मधुकरशाह के आठवें पुत्र हरिसिंह देव थे, जिनके दो पुत्र हुये, रायसवंत और खांड़ेराइ। मधुकरशाह की मृत्यु के बाद इनके सबसे बड़े पुत्र रामशाह राजा हुये। रामशाह सम्राट अकबर के कृपापात्र और उसके दरबार के सभासद थे। रामशाह के पुत्र संग्रामशाह और संग्रामशाह के भारतशाह थे।[1]

'कविप्रिया' के उपर्युक्त वर्णन के अनुसार ओड़छा-राज्य का वंशवृत्त निम्नलिखित है :

१. वीरसिंहदेवचरित, ना० प्र० स०, छं० सं० ८२-११७, पृ० सं० १४-१६

इसी प्रकार 'वीरसिंहदेव-चरित' के अनुसार ओड़छा-राज्य का वंशवृक्ष निम्नलिखित है

रामशाह होरिलदेव नरसिंह रतनसेन इन्द्रजीत प्रतापराउ वीरसिंह हरिसिंह

संग्रामशाह राउभूपाल उग्रसेन

भारतिशाह
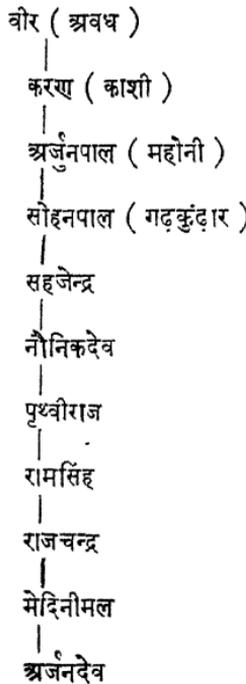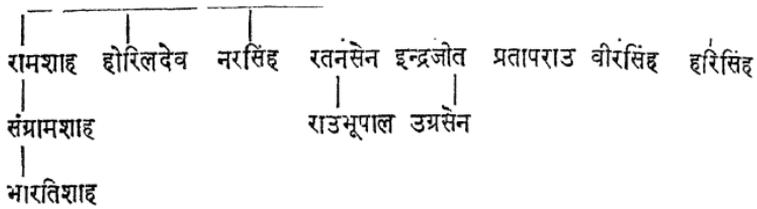
जुझारराय हरदौल पहाड़सिंह

बाघराज चंद्रभान भगवानराव नरहरिदास कृष्णदास माधोदास तुलसीदास नाम नहीं दिया

ओड़छा गजेटियर में दिये हुये वर्णन के आधार पर ओड़छा-राज्य का वंशवृक्ष तुलनात्मक अध्ययन के लिये नीचे दिया जाता है :
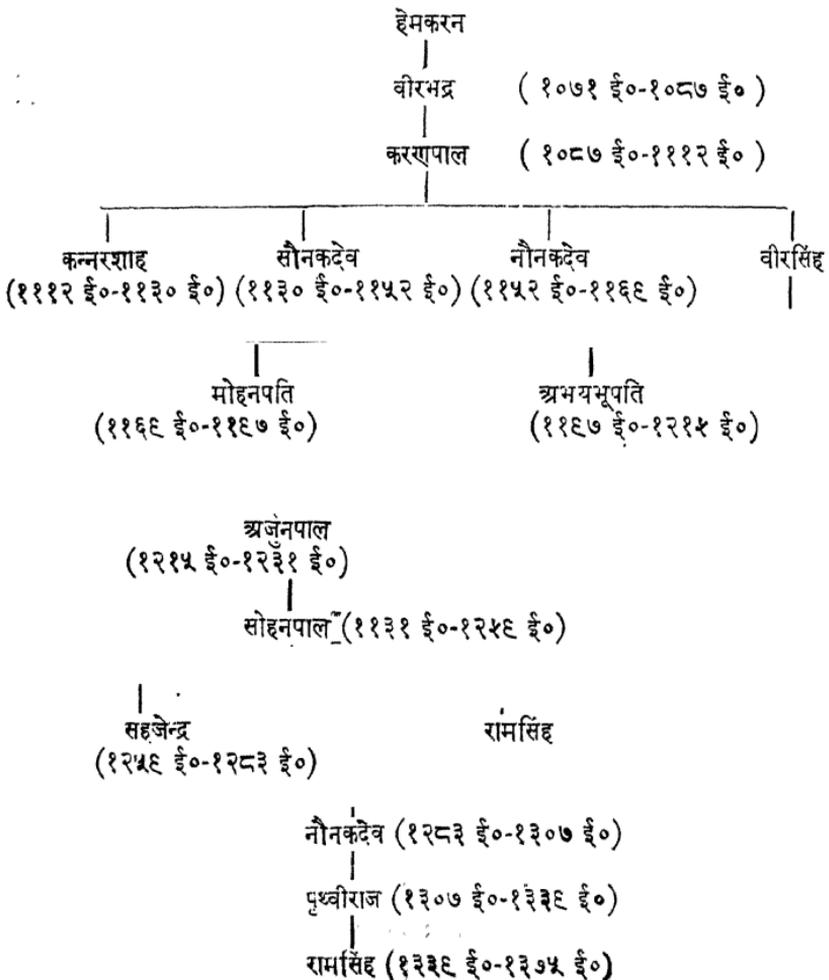
का तुलनात्मक अध्ययन :

'कविप्रिया' 'वीरसिंहदेव-चरित' तथा ओड़छा गजेटियर के आधार पर ऊपर दिये हुये बुन्देला राजाओं के वंशवृक्ष की तुलना करने से ज्ञात होता है कि 'कविप्रिया' में केशवदास जी ने राजा 'वीर' के बाद 'करण' का उल्लेख किया है और 'वीरसिंहदेव-चरित' में 'वीरभद्र' के बाद 'वीर' और तब 'करण' का उल्लेख है। ओड़छा गजेटियर में 'करणपाल' के पूर्व एक मात्र राजा 'वीरभद्र' का ही उल्लेख है, जो 'कविप्रिया' में केशव के अनुसार राजा 'वीर' है। ऐसा प्रतीत होता है कि 'वीरसिंहदेव-चरित' में भ्रम से केशव ने 'वीरभद्र' तथा 'वीर' दो भिन्न व्यक्ति मान लिये हैं। आगे चलकर 'कविप्रिया' में 'पृथ्वीराज' के बाद क्रमशः 'रामसिंह', 'रामचन्द्र' और 'मेदिनीमल' का उल्लेख किया गया है। किन्तु 'वीरसिंहदेव-चरित' में 'पृथ्वीराज' के बाद ही 'मेदिनीमल' का उल्लेख है और 'रामसिंह' तथा 'रामचन्द्र' नाम छोड़ दिये गये हैं। 'कविप्रिया'

में महाराज मधुकरशाह के केवल सात पुत्रों का उल्लेख है। दूलहराम (रामशाह), होरिल-देव, रतनसेन, इन्द्रजीत, वीरसिंहदेव, हरिसिंह तथा रणधीर। 'वीरसिंहदेव-चरित' में मधुकर-शाह के आठ पुत्र बतलाये गये हैं। इस ग्रंथ में रणधीर का कोई उल्लेख नहीं है, शेष नाम 'कविप्रिया' ही के समान हैं और अन्य दो पुत्रों के नाम नरसिंह और प्रतापराउ बतलाये गये हैं। ओड़छा गजेटियर में नरसिंह का कोई उल्लेख नहीं है। शेष नाम 'वीरसिंहदेव-चरित' के अनुसार हैं और नरसिंह के स्थान पर रणधीरसिंह का उल्लेख है, जिसका मधुकरशाह का पुत्र होना केशवदास जी ने 'कविप्रिया' में लिखा है, किन्तु 'वीरसिंहदेव-चरित' में नहीं लिखा है। 'कविप्रिया' और 'वीरसिंहदेव-चरित' में केशवदास जी ने 'करणपाल' के बाद 'अर्जुनपाल' का राजा होना लिखा है किन्तु ओड़छा गजेटियर के अनुसार 'करणपाल' और 'अर्जुनपाल' के बीच क्रमशः पाँच अन्य राजाओं कन्नरशाह, सौनकदेव, नौनकदेव (प्रथम), मोहनपति और अभयभूपति ने राज्य किया। 'कविप्रिया' में इन्द्रजीतसिंह अथवा वीरसिंहदेव के पुत्रों का कोई उल्लेख नहीं है। 'वीरसिंहदेव-चरित' में 'उग्रसेन' इन्द्रजीतसिंह का पुत्र बतलाया गया है और वीरसिंहदेव के ग्यारह पुत्र कहे गये हैं जिनमें से दस के नाम जुझारराय, हरदौल, पहाड़सिंह बाघराज, चन्द्रभान, भगवानराय, नरहरिदास, कृष्णदास, माधोदास और तुलसीदास बतलाये गये हैं। गजेटियर में कृष्णदास का कोई उल्लेख नहीं है, शेष नाम समान हैं। इनके अतिरिक्त गजेटियर में तीन नाम और दिये गये हैं, बेनीदास, परमानन्द तथा किशनसिंह।

इस प्रकार वीरसिंहदेव के बारह पुत्र होते हैं। सम्भव है केशवदास जी द्वारा दिया हुआ कृष्णदास ही ओड़छा गजेटियर का किशनसिंह हो और बेनीदास तथा परमानन्द का जन्म 'कविप्रिया' की रचना के समय तक न हुआ हो अथवा इन दोनों का जन्म केशवदास की मृत्यु के बाद हुआ हो। यही सम्भावना इन्द्रजीतसिंह के पुत्र उग्रसेन के विषय में भी हो सकती है। किन्तु 'करणपाल' और 'अर्जुनपाल' के बीच के पांच राजाओं का 'कविप्रिया' और 'वीर-सिंहदेव-चरित' दोनों ही ग्रंथों में कोई उल्लेख न होने के कारण यह वंश-वर्णन अपूर्ण है। इसके दो ही कारण हो सकते हैं। या तो केशवदास को इन राजाओं का पता न हो अथवा उन्हों ने जानबूझ कर इनका उल्लेख न किया हो। ओड़छा राज्य से केशव का घनिष्ठ सम्बन्ध ध्यान में रखते हुये प्रथम सम्भावना निस्सार प्रतीत होती है। अधिक सम्भावना इसी बात की है कि इन राजाओं को महत्वपूर्ण न समझ कर कवि ने जानबूझ कर इनका नाम न दिया हो। इस विचार की पुष्टि इस बात से भी होती है कि 'कविप्रिया' में 'रामसिंह' और 'राजचन्द्र' का उल्लेख है किन्तु 'वीरसिंहदेव-चरित' में यह नाम छोड़ दिये गये हैं। फिर भी उपर्युक्त नाम छूट जाने से वंशवर्णन का ऐतिहासिक महत्व कम हो गया है।

केशवदास द्वारा वर्णित घटनाओं की इतिहास-ग्रंथों के आधार पर परीक्षा :

भारतीचंद तथा शेरशाह 'असलेम' का युद्ध :

वंशवर्णन करते हुये केशवदास जी ने कुछ राजाओं से संबन्ध रखने वाली कतिपय ऐतिहासिक घटनाओं का भी उल्लेख किया है। महाराज प्रतापरुद्र के पुत्र भारतीचंद के विषय में केशव ने लिखा है कि इन्होंने शेरशाह 'असलेम' के ऊपर शमशेर से वार किया था।[1]

१. 'शेरशाह असलेम के उर साली समसेर'।
कविप्रिया, पृ० सं० ६।

इतिहास-ग्रन्थों में भारतीचंद और शेरशाह के किसी युद्ध का वर्णन नहीं मिलता। ओड़छा गजेटियर से ज्ञात होता है कि सन् १५४५ ई० में शेरशाह का ध्यान बुन्देलखंड की ओर आकर्षित हुआ और उसने कालिंजर की ओर सेना-सहित प्रयाण किया, जहाँ बारूद में आग लगने से उसकी मृत्यु हो गई। भारतीचंद ने इस अवसर पर अपने भाई मधुकरशाह को शेरशाह का आक्रमण रोकने के लिये भेजा था, जिसमें उन्हें सफलता नहीं मिली।[1]

इतिहास-ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि शेरशाह की कालिंजर में मृत्यु हो जाने पर, अमीरों ने देखा कि शेरशाह का बड़ा पुत्र आदिल खाँ वहाँ से बहुत दूर था और उसका शीघ्र आ सकना असंभव था, अतएव उन लोगों ने उसके दूसरे पुत्र जलाल खाँ को बुला भेजा, जो निकट ही था। उसके आने पर अमीरों ने कालिंजर के किले के निकट ही ९५२ हिजरी में रबीउल अव्वल माह की १५वीं तारीख को (२५ मई जन् १५४५ ई०) उसका राज्याभिषेक कर दिया। राजा होने पर उसने इस्लाम शाह की उपाधि धारण की।[2] संभव है भारतीचंद का युद्ध इसी इस्लाम शाह से हुआ हो। केशवदास जी द्वारा प्रयुक्त 'असलेम' शब्द भी इसलाम शाह की ओर ही संकेत करता है। किंतु इस्लाम शाह और भारतीचंद के युद्ध का उल्लेख भी इतिहास-ग्रंथों में नहीं मिलता है। फिर भी वंश-परम्परा से ओड़छा-राज्य से सम्बन्ध रखने वाले केशव दास जी के कथन को असत्य मानने का कोई कारण नहीं दिखलाई देता। ओड़छा गजेटियर से ज्ञात होता है कि शेरशाह की मृत्यु के बाद भारतीचंद ने जतारा पर फिर से अधिकार कर लिया। गजेटियर से ही यह भी ज्ञात होता है कि इस्लामशाह ने जतारा का नाम इस्लामाबाद रखा था।[3] संभव है जतारा पर आक्रमण करने पर इस्लामशाह ने भारतीचंद की सेना का

---

१. ओड़छा गजेटियर, पृ० सं० १७, १८।

2. Abdulla, author of Tarikhi-Daudi writes, that when Sher Shah rendered up his life to the angel of death in kalinger...the nobles perceived that Adil Khan (Shershah's elder son), would be unable to arrive with speed (from Ranthambhor) and as the State required a head they despatched a person to summon Jalal Khan who was nearer (in the town of Rewan in the province of Bhata). He reached Kalinger in five days and by the assistance of Isa Hajjab and other grandees was raised to the throne near the fort of kalinger on the 15th of the month of Rabiul-Awwal, 952 A. H (25th May 1545 A. D.). He assumed the title of-Islamshah......

Moghal Empire in India, Part I, Sharma, pp. 170.

3. 'Nripati Bharti Chand huwa prajanipal Sukh kand,
Nit nipun pawan param Jahir bakhat buland,
Raja san thit hot hi dharam nit sarsai,
Kinh prajan ranjan sawidhi, ari bhanjan widh bhai,
Shaher Salaimabad war Shah Salaiman tatra,

सामना किया हो और इसी युद्ध में उसे भारतीचंद से नीचा देखना पड़ा हो। इस अनुमान की पुष्टि एक किंवदन्ती से होती है, जिसका उल्लेख ओड़छा गजेटियर में है। इस किंवदन्ती के अनुसार सलेमाबाद (सलीमाबाद) में सलेमन (सलीम) नामक राजा राज्य करता था। महाराज भारतीचंद ने उसकी वीरता की कहानियाँ सुनी थी। उन्होंने सेना एकत्रित कर उस पर आक्रमण किया और युद्ध में उसको परास्त किया। भारतीचंद ने सलीमाबाद का फिर से जतारा नाम रखा। यह 'सलेमन' इस्लामशाह ही है। फरिश्ता ने लिखा है कि जलाल खाँ ने राजा होने पर इस्लामशाह की उपाधि धारण की, जिसके स्थान पर उच्चारण की त्रुटि से लोग सलीमशाह कहते हैं और इसी नाम से वह अधिक प्रसिद्ध है।[1]

मधुकरशाह का अकबर की सेनाओं से युद्ध :

भारतीचंद की मृत्यु के बाद उनके भाई मधुकरशाह ओड़छा के राजा हुये। इन्होंने भी यवनों से वैर जारी रखा। केशवदास जी ने 'वीरसिंहदेव-चरित' ग्रन्थ में इनके विषय में लिखा है कि इन्होंने न्यामत खाँ, अलीकुली खाँ, जामकुली खाँ, शाहकुली खाँ, सैद खाँ, अबदुल्ला खाँ आदि को युद्ध में परास्त किया। इनके अतिरिक्त स्वयं युवराज मुराद ने भी इनसे हार मानी। अकबर को अन्त में इनसे सन्धि करनी पड़ी।[2] 'कविप्रिया' में केशवदास

Suniwa Bharti chand Nripıtahi Akhil aghapatra
Dal Sajjit Karkai kiyo samar ghor tihi sath,
Med mai kar medni liya prahasthaya sath,
Nagar Salaimabad ko kin Jatara nam,
Durg maha dhawajrop, nij kinh gawan nij dham.
Apar Shatru Mad mand kar jih awani wash kinh,
Sadan sunder adik rachai aru sar durg navin,
Suran kosirmor (suhawan) pawan Shri Jasjuha chuyowhai,
Dinan ko dukh khandan ko bhuj Dandan pai Bhuwn bhar layohai.
Ish asis tain hai ati turan karan mur hayohai,
Shah Salaiman ke mad mand ko Bhupati Bharati chand bhayohai.

- Central India States Gazetter, orchha, Page 75.

1. "Ferishta writes, 'Jalal Khan......ascended the throne... taking the title of IslamShah, which by false pronunciation is called Salaimshah, by which name he is more generally known'"
Moghal Empire in India, Part I, Sharma, note 2, Page 170.

२. 'जिन जीत्यो रन न्यामति खान। अली कुली खाँ बुद्धि निधान।
जाम कुली खाँ जालिम जयो। साहि कुली खाँ भाग्यो गयो॥ १००॥

जी ने सम्राट अकबर के उपर्युक्त सरदारों के नाम न देकर केवल इतना ही लिखा है कि मधुकरशाह ने अकबर के अधीनस्थ अनेक किलों पर अधिकार कर लिया। खान और सुलतानों की गिनती ही क्या, जब स्वयं मुराद इनसे हार गया।[1]

'कविप्रिया' में एक अन्य स्थल पर केशव ने लिखा है कि 'कर्ण और जगन्मणि आदि राजाओं और न जाने कितने खान और सुलतानों के साथ दिल्ली के शहाबुद्दीन शाह ने मधुकरशाह के विरुद्ध ओड़छे पर आक्रमण किया, किन्तु मधुकरशाह के पुत्र दूलहराम (रामशाह) ने उसे परास्त कर दिया'।[2]

इतिहास-ग्रन्थों से प्रकट होता है कि सम्राट अकबर को महाराज मधुकरशाह के विरुद्ध कई बार सेनायें भेजनी पड़ीं। राजा असकरन (कर्ण), शहाबुद्दीन और मुराद से मधुकरशाह के युद्ध का समर्थन इतिहास-ग्रंथों से प्राप्त हो जाता है किन्तु न्यामत खाँ, अलीकुली खाँ, जामकुली खाँ, साहकुली खाँ, सैद खाँ और अब्दुल्ला खाँ आदि के मधुकरशाह से युद्ध का कोई उल्लेख इतिहास-ग्रंथों में नहीं मिलता। 'आइनए-अकबरी' के अनुसार अकबर के राज्य के अट्ठारहवें वर्ष के अन्त में (सन् १५७३ ई०) बरहा का सय्यद महमूद, बरहा के अन्य सय्यदों तथा अमरोहा के सय्यद मुहम्मद के साथ मधुकरशाह पर चढ़ाई करने के लिये भेजा गया था क्योंकि मधुकर शाह ने सिरौंज और ग्वालियर के बीच के प्रदेशों पर आक्रमण किया था। सय्यद महमूद ने मधुकरशाह को भगा दिया।[3] सम्भवतः कुछ ही समय बाद मधुकरशाह ने फिर कुछ प्रदेशों पर अधिकार कर लिया, अतएव बाइसवें वर्ष (सन् १५७७ ई०) अकबर ने सादिक खाँ तथा अन्य अमीरों की आधीनता में फिर मधुकरशाह के विरुद्ध सेना भेजी। नरवर से आगे बढ़ने पर सादिक ने कड़हरा के किले पर अधिकार कर लिया और जंगल को काटते हुये आगे बढ़ता

सैद खान तिन लीन्यो लूटि। अबदुल्लह खाँ पठयो कूटि।
गनो न राजा राउत बादि। हारयो जिन सों साहि मुराद ॥१०१॥
जिहि अकबर लीनी दिसि चार। तेहू तिन सौं छाड़ी रारि'।
वीरसिंहदेव-चरित, ना० प्र० स०, पृ० सं० १२।

१. 'सबल शाह अकबर अवनि जीति लई दिसि चारि।
मधुकर शाह नरेश गढ़ तिनके लीन्हे मारि ॥२४॥
खान गने सुलतान को राजा रावत बादि।
हारे मधुकर शाह सों आपुन शाह मुरादि' ॥२५॥
कविप्रिया, पृ० सं० ७।

२. 'को गनै कर्ण जगन्मणि से नृप साथ सबै दल राजन ही को।
जानै को खान किते सुलतान सु आयो शहाबुद्दीं शाह दिली को।
ओरछे आनि जुर्यो कहि केशव शाह मधूकर सों शंक जी को।
दौरि के दूलहराम सुजीति करयौ अपने सिर कीरति टीको' ॥२८॥
कविप्रिया, पृ० सं० ३१७।

३. 'Towards the end of the 18th year, he (Sayyid mahmud of Barha) was sent with other Sayyids of Barha and Sayyid

हुआ वह ओड़छा की निकटवर्ती 'दसथरा' नदी तक पहुँच गया। दोनों सेनाओं में युद्ध हुआ। युद्ध में घायल होकर मधुकरशाह अपने पुत्र रामशाह के साथ भाग गया। सादिक मधुकरशाह के राज्य में डेरा डाले पड़ा रहा। अन्त में हारकर मधुकरशाह ने अपने एक सम्बन्धी रामचंद्र को बहेड़ा में अकबर के पास भेजा और क्षमायाचना की। अकबर ने मधुकरशाह को क्षमा कर दिया।[1] 'अकबरनामा' से ज्ञात होता है कि इस युद्ध में सादिक खाँ के साथ मोटा राजा, राजा असकरन तथा अलग खाँ हबशी भी थे।[2]

'आईनए-अकबरी नामक ग्रंथ से ज्ञात होता है कि अकबर के सिंहासनासीन होने के तैंतीसवें वर्ष (सन् १५८८ ई०) शिहाब खाँ (शिहाबुद्दीन) की अध्यक्षता में मधुकरशाह के विरुद्ध सेना भेजी गई थी। राजा असकरन भी शिहाब खाँ के साथ थे। इस आक्रमण का परिणाम 'आइनए-अकबरी' में नहीं दिया है।[3] जैसा कि केशवदास जी ने लिखा है, सम्भव है शिहाब खाँ परास्त हो गया हो। कदाचित् इसीलिए 'आइनए-अकबरी' के लेखक ने युद्ध का परिणाम न लिखा हो। आइनए-अकबरी' के अनुसार मधुकरशाह पर अन्तिम चढ़ाई अकबर के शासन-काल के छत्तीसवें वर्ष (सन् १५९१ ई०) में मुराद के सेनापतित्व में हुई। राजू भी मुराद के साथ था। मुराद को मालवा वापस जाने की आज्ञा मिलने पर सेना का नेतृत्व

muhammad of Amrohah against Rajah Madhukar, who had invaded the territory between Sironj and Gwalior, Sayyid mahmud drove him away......'.

Ain-i- Akbari, Page 388-389

१. In the 22 nd year Cadiq, with several other grandees was ordered to punish Rajah Madhukar, should he not submit peacefully. Passing the Confines of Narwar, Cadiq saw that kindness would notdo, he therefore took the fort of karhara and Cutting down the jungle, advanced to the river Dasthara, Close to which undchah lay, madhukar's residence. A fight ensued. madhukar was wounded and fled with his son Ram shah. Cadiq remained encamped in the Rajah's territory. Driven to extremeties, madhukar sent Ram chand, a relation of his, to Akbar at Bahirah and asked and obtained pardon. on the 3rd Ramzan 986 Cadiq with the penitent Rajah arrived at the Court'.

Ain-i-Akbari, page 356.

२. आईनए-अकबरी, पृ० सं० ४३० ।

३. आईनए-अकबरी, पृ० सं० ४९८ ।

राजू ने किया।[1] इस आक्रमण के परिणाम के विषय में भी 'आईनए-अकबरी' मौन है। ओड़छा गजेटियर से ज्ञात होता है कि सिरोंज, ग्वालियर तथा ओड़छा के बीच के जिन प्रदेशों पर मुगल-सेना ने अधिकार कर लिया था, उनमें से कुछ स्थानों पर मधुकरशाह ने फिर अधिकार कर लिया। गवर्नर का पद ग्रहण करने मालवा जाते हुये मुराद ने यह समाचार सुन कर मधुकर शाह पर आक्रमण कर दिया। मधुकरशाह हार कर नरवर की पहाड़ियों को चले गये, जहाँ दूसरे ही वर्ष अर्थात् सन् १५९२ ई० में उनकी मृत्यु हो गई।[2] 'छत्रप्रकाश' नामक ग्रंथ की भूमिका में स्व० डा० श्यामसुन्दरदास जी ने सन् १५८४ ई० में मुराद और मधुकरशाह में युद्ध होने का उल्लेख किया है। डा० साहब ने लिखा है कि मधुकरशाह सन् १५५२ ई० में गद्दी पर बैठे। इनके समय में अकबर ने बुन्देलखंड जीतने का कई बार प्रयत्न किया। कभी तो मुसलमानों की जीत होती और कभी बुन्देलों की। अन्त में १५८४ ई० में शाहजादा मुराद स्वयं एक बड़ी सेना लेकर आया पर मधुकरशाह की वीरता से प्रसन्न होकर उसने उसका सारा राज्य लौटा दिया।[3] इस विवरण से ज्ञात होता है कि सन् १५९१ ई० के पूर्व भी मुराद के सेनापतित्व में मधुकरशाह पर आक्रमण हुआ था।

इस प्रकार मुराद के सेनापतित्व में मधुकरशाह पर दो बार आक्रमण होने का उल्लेख मिलता है। एक बार सन् १५८४ ई० में और दूसरी बार सन् १५९१ ई० में। प्रथम बार मधुकरशाह की वीरता से प्रसन्न होकर मुराद ने सारा राज्य मधुकरशाह को लौटा दिया। दूसरी बार युद्ध-समाप्ति के पूर्व ही वह वापस बुला लिया गया। केशवदास ने मधुकरशाह के द्वारा मुराद का हारना लिखा है। सम्भव है केशव का तात्पर्य १५८४ ई० में मुराद की आत्मिक पराजय से हो। यह भी सम्भव है कि वह दूसरे युद्ध में सन् १५९१ ई० में हारा हो और इसी लिये वापस बुला लिया गया हो। 'आईनए-अकबरी' के लेखक के इस युद्ध के परिणाम के विषय में मौन का कारण कदाचित् यही हो। केशव के अनुसार मधुकरशाह द्वारा पराजित होने वाले न्यामत खाँ, अली कुली खाँ आदि का इतिहास-ग्रंथों में उल्लेख न होने का कारण सम्भव है यह हो कि यह लोग उन प्रदेशों के अधिकारी रहे हों जिन पर मधुकरशाह ने समय-समय पर अधिकार किया, जिसके फलस्वरूप सम्राट अकबर को इनके विरुद्ध कई बार सेनायें भेजनी पड़ीं। यह भी सम्भव है कि समय-समय पर भेजी गई सेनाओं में यह लोग सहकारी स्थान रखते हों अतएव 'आईनए-अकबरी' के लेखक ने इनका उल्लेख न किया हो। किन्तु निश्चित रूप से इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता है।

१. 'Raju served under prince Murad, Governor of malwah, whom, in the 36 th year, he accompanied in the war with Rajah Madhukar, but as the Prince was ordered by Akbar to return to Malwah, Raju had to lead the expedition.

Ain-i-Akbari, Page 452.

२. ओड़छा गजेटियर, पृ० सं० १९।

३. छत्रप्रकाश, श्यामसुन्दरदास, भूमिका।

अकबर द्वारा रामशाह का सम्मान :

मधुकरशाह की मृत्यु के बाद इनके बड़े पुत्र रामशाह राजा हुये। इन्होंने मुगलों से बैर त्याग दिया। ओड़छा गजेटियर से ज्ञात होता है कि रामशाह ने सम्राट अकबर के दरबार जाकर उससे क्षमा-प्रार्थना की। अकबर ने इन्हें क्षमा कर फिर से ओड़छा-राज्य का उत्तराधिकारी नियुक्त किया।[1] केशवदास जी ने लिखा है कि 'अकबर सा सम्राट सदैव इनकी प्रशंसा करता था। उसके दरबार में जहाँ अन्य अनेक राजा हाथ जोड़े खड़े रहते थे, इन्हें सम्मानपूर्वक आसन मिलता था'।[2]

होरलदेव का अकबर की सेना से सामना:

रामशाह के छोटे भाई होरलराव (होरलदेव) के विषय में केशवदास जी ने लिखा है कि होरलराव खंग चलाने में बड़े ही निपुण थे। इन्होंने सादिक और मोहम्मद खाँ से युद्ध किया और युद्ध करते हुये ही स्वर्ग सिधारे।[3] 'अकबरनामा' से भी ज्ञात होता है कि सन् १५७७ ई० में इन्होंने सादिक खाँ और राजा असकरन की अध्यक्षता में आई हुई मुगल-सेना का सामना किया और युद्ध में मारे गये।[4] 'अकबरनामा' के लेखक ने भ्रम से इन्हें मधुकरशाह का सब से बड़ा पुत्र लिखा है।

रतनसेन का अकबर की आज्ञा से गौर देश पर आक्रमण :

महाराज मधुकरशाह के चौथे पुत्र रतनसेन के विषय में केशवदास जी ने लिखा है कि 'इन्होंने सम्राट अकबर की आज्ञा से गौर देश जीता था। सम्राट ने स्वयं रतनसेन के सिर

---

१. Ram Shah went to Court and represented his Case to Akbar who forgave him and reinstated him in his possesions.

Orchha gazetter, page 19.

२. 'रामसाह सो सूरता, धर्म न पूजै आन।
जाहि सराहत सर्वदा, अकबर सो सुलतान।।३२॥
कर जोरे ठाढ़े जहाँ, आठौ दिशि के ईश।
ताहि तहाँ बैठक दई, अकबर सो अवनीश'।।३३।।

कविप्रिया, पृ० सं० ८।

तथा :

'अकबर साहि कृपा करि नई। राम नृपति कहं बैठक दई'।

वीरसिंहदेव-चरित, ना० प्र० स०, पृ० सं० १६।

३. 'तिनते लहुरे होरिल राव। खङ्गदान दिन दूनो चाउ।।१०४॥
सादिक महमद खाँ जिन रयो। खमंडल मग हरिपुर गयौ'।

वीरसिंहदेव-चरित, ना० प्र० स०, पृ० सं० १५।

४. अकबरनामा, पृ० सं० ९७।

पर पाग बाँध कर गौर देश पर आक्रमण करने के लिए इन्हें विदा किया था।[1] इस घटना का समर्थन किसी इतिहास-ग्रन्थ से नहीं होता।

वीरसिंहदेव का मुगल-सेनाओं से युद्ध :

वीरसिंहदेव, महाराज मधुकरशाह के पुत्रों में सबसे अधिक प्रतापी थे। इन्हें 'बड़ौन' की जागीर मिली थी। केशवदास जी ने 'वीरसिंहदेव-चरित' नामक ग्रन्थ में तीसरे प्रकाश से चौदहवें प्रकाश तक इनके चरित्र पर प्रकाश डालते हुये इनके जीवन से सम्बन्ध रखने वाली अनेक घटनाओं का वर्णन किया है। कवि द्वारा वर्णित प्रायः सभी घटनाओं का अन्य इतिहास-ग्रन्थों से समर्थन हो जाता है किन्तु इतिहासकारों ने उन घटनाओं का केशवदास जी के समान विस्तृत तथा सूक्ष्म वर्णन नहीं किया है। ओड़छा-गजेटियर से ज्ञात होता है कि वीरसिंहदेव ने चारों ओर आतंक फैला रखा था। सम्राट अकबर ने रामशाह को उन्हें मार्ग पर लाने को आज्ञा दी किन्तु वह सफल न हो सके। वीरसिंहदेव की सहायता से इन्द्रजीत और प्रतापराव ने भाँडेर, पवाँया, कड़ेहरा, बर्छे तथा ऐरच आदि स्थानों पर अधिकार कर लिया। सन् १५६२ ई० में सम्राट अकबर ने दौलत खाँ को वीरसिंहदेव को बन्दी बनाने के लिए भेजा और रामशाह को दौलत खाँ की सहायता करने की आज्ञा दी। वीरसिंहदेव पकड़ा गया किन्तु बाद में वह दौलत खाँ के चंगुल से बच निकला और अपनी लूटमार जारी रखी। कुछ समय के बाद वीरसिंहदेव ने जब अपनी स्थिति ठीक न देखी तो सम्राट अकबर और युवराज सलीम के मनोमालिन्य का लाभ उठाते हुये सलीम का संरक्षण प्राप्त करने की चेष्टा और उसका कृपाभाजन बनने के लिए उसके शत्रु अबुलफजल को मारने का बीड़ा उठाया। इस कार्य में वह सफल भी हुआ। सम्राट अकबर को यह समाचार सुनकर बड़ा दुःख हुआ और उसने 'रायराया' की अध्यक्षता में वीरसिंहदेव को बन्दी बनाने के लिये एक बहुत बड़ी सेना भेजी तथा राजा रामशाह को 'रायराया' की सहायता करने की आज्ञा दी। वीरसिंह 'ऐरच' भाग गया। ऐरच का किला मुगलों के हाथ में चले जाने पर वीरसिंह ओड़छा चला गया। ओड़छा पर भी मुगलों का अधिकार हो जाने पर वीरसिंहदेव को जङ्गलों में छिपने के लिये बाध्य होना पड़ा। वीरसिंहदेव को पकड़ने की मुगलों की चेष्टा बराबर जारी रही किन्तु उन्हें सफलता न मिली। अन्त में सन् १६०५ ई० में सम्राट अकबर की मृत्यु हो जाने पर जब सलीम सम्राट हुआ तो उसने रामशाह को गद्दी से उतार

१. 'रतनसेन तिनतै लघु जानि। गहि जान्यो तिन ही खङ्ग पानि।
बानो बाँध्यो जाके माथ। साहि अकब्बर अपने हाथ॥१०६॥
बानो बाँधि बिदा करि दियो। जीति गौर को भूतल लियो।
गौर जीति अकबर को दयो। जूझि ब्याज बैकुण्ठहि गयो'॥१०७॥
वीरसिंहदेव-चरित, ना० प्र० स०, पृ० सं० १६

'रण रुरो दूलसिंह पुनि, रतन सेन सुत ईश।
बांध्यो आपु जलालदीं, बानो जाके शीश'॥२८॥
कविप्रिया, पृ० सं० ७।

कर ओड़छा का समस्त राज्य वीरसिंहदेव को दे दिया। रामशाह के विरोध करने पर सम्राट जहाँगीर ने कालपी के सूबेदार अबदुल्ला खाँ तथा हसन खाँ को वीरसिंह देव की सहायता के लिये भेजा। कटेरा के बुन्देला सरदारों तथा प्रतापराव ने भी वीरसिंह देव का साथ दिया। उधर इन्द्रजीत तथा भूपाल राव ने राजा रामशाह का पक्ष ग्रहण किया। युद्ध में रामशाह की हार हुई और वह बन्दी बना कर सम्राट जहाँगीर के सम्मुख उपस्थित किया गया। जहाँगीर ने रामशाह को क्षमा कर चंदेरी और बानपुर का जागीरदार नियुक्त कर दिया।[1] केशवदास जी ने इन सब घटनाओं का सूक्ष्मातिसूक्ष्म क्रमबद्ध वर्णन किया है, केवल सन-सम्वतों का ब्योरा नहीं दिया है। कवि द्वारा वर्णित इतिहास संक्षेप में नीचे दिया जाता है।

'वीरसिंहदेव-चरित' ग्रन्थ में वर्णित इतिहास :

वीरसिंहदेव को वृत्ति-स्वरूप बड़ौन की जागीर मिली थी किन्तु वह महत्वाकांक्षी था, अतएव इस जागीर-मात्र से संतुष्ट न हुआ और कालान्तर में 'पवाँया' तथा 'तोंवर' को अधिकृत कर लिया। नरवर तक वीरसिंह देव का आतंक छा गया। कुछ समय बाद उसने मैना और जाटों का संहार किया तथा बर्छ और करहरा दुर्गों पर भी अधिकार कर लिया। इसके बाद उसने 'बाघजङ्ग' को मार कर हथनौरा को धूल में मिलाया। भांडेर का सूबेदार भी वीर सिंह देव के डर से भाग गया और यहाँ भी उसका अधिकार हो गया। कालान्तर में ऐरच भी हाथ आ गया। गोपाचल (ग्वालियर) राज्य तक वीरसिंह देव का आतंक छाया था। इस प्रकार वीरसिंह देव ने सम्राट अकबर के अधीनस्थ अनेक स्थानों पर अधिकार कर लिया। अकबर ने यह समाचार सुन कर राजा असकरन को वीरसिंहदेव का मदमर्दन करने के लिये भेजा और राजा रामशाह को असकरन की सहायता करने की आज्ञा दी। राजा असकरन के चाँदपुर पहुँचने पर राजा रामशाह, जगम्मन, जाट, गूजर तथा हसन खाँ पठान और राजाराम पँवार आदि मुगल-सेना से आ मिले। दूसरी ओर वीरसिंह, इन्द्रजीत तथा रावप्रताप की सेना थी। यह लोग मुगल-सेना से छापामार लड़ाई (guerilla warfare) लड़ते थे। इस प्रकार कई दिन बीत गये किन्तु वीरसिंह हाथ न आया। तब एक दिन जगम्मन ने राजा असकरन से कहा कि वीरसिंह के हाथ न आने का करण राजा रामशाह ही हैं, जो वीरसिंह, इन्द्रजीत तथा राव प्रताप से मिले हुये हैं। रामशाह से मिलने पर उन्होंने, असकरन को आश्वासन दिया और दूसरे दिन मुगल-सेना ने आक्रमण किया। दोनों सेनाओं में घोर युद्ध हुआ, जिसमें माया राम खेत रहे और अनेक योद्धा मोरचा छोड़ कर भाग गये। इसी बीच रामशाह ने असकरन से कोई[2] स्थान प्रदान करने के लिए कहा और प्रतिज्ञा की कि ऐसा होने पर वह प्राणपण से युद्ध करेंगे, किन्तु असकरन ने यह कहकर कि वह स्थान 'पवाँया' राज्य के अन्तर्गत है, अपनी असमर्थता प्रकट की। फलतः रामशाह ने असकरन का साथ त्याग दिया। रामशाह के छोड़ने

---

१. ओड़छा गजेटियर, पृ० सं० १९-२१।

२. रामशाह ने किस स्थान के लिए राजा असकरन से कहा था, यह केशव ने नहीं लिखा है। सम्भवतः 'बड़ौन' की सीमा पर स्थित किसी प्रदेश के लिए रामशाह ने प्रार्थना की हो।

पर जगम्मन भी साथ छोड़कर चला गया। इस प्रकार मुगल-सेना का यह प्रयास निष्फल रहा।[1]

कुछ समय के बाद बैरम खाँ का पुत्र अब्दुर्रहीम खानखाना दक्षिण की ओर जाने का विचार करते हुये सम्राट अकबर से मिलने आगरे आया। सम्राट ने खानखाना को जगन्नाथ, दुर्गाराव तथा अन्य उमरावों के साथ जाकर वीरसिंह देव के विरुद्ध रामशाह की सहायता करने की आज्ञा दी। इधर बीरसिंह देव ने गोविन्द दास को राजा रामशाह के पास भेजा था। रामशाह ने उसे रोक रखा। तब तक दौलत खाँ पठान 'सैमरी' पहुँच गया और खानखाना भी पवाँये तक आ गया। तब रामशाह ने गोविन्द दास के द्वारा वीरसिंह देव से कहला भेजा कि मैंने दौलत खाँ को बहुत समझाया किन्तु वह नहीं मानता। उन्होंने वीरसिंह देव को युद्ध न कर भाग कर अपनी जान बचाने का परामर्श दिया। वीरसिंह ने इस परामर्श की ओर ध्यान न देकर युद्ध की ठानी। इधर दौलत खाँ के साथ अनेक पठानों और खानों का दल था। वीरसिंह ने इस युद्ध में दौलत खाँ को खूब खिझाया। मारकाट करता हुआ कभी तो वह इस जङ्गल में लड़ता और कभी भाग कर दूसरे जङ्गल में चला जाता था। अंत में दौलत खाँ का धैर्य जाता रहा और उसने 'पवाँया' आकर खानखाना को युद्ध का सब समाचार दिया। खानखाना ने अब दूसरी चाल चली। उसने वीरसिंह को बुलाकर उसका आदर-सत्कार किया और उसको साथ ले दक्षिण की ओर प्रयाण किया। बरार के निकट पहुँचने पर वीरसिंह ने उससे बड़ौन वापस देने की प्रार्थना की। खानखाना ने उसे दक्षिण में, जहाँ का उस समय वह अधिकारी था, मुँहमाँगा देने का वचन दिया किन्तु वीरसिंह इसके लिये तैयार न था। इसी समय रामशाह का पुत्र संग्रामशाह वीरसिंह से मिला और दोनों ने गुप्त रूप से निकल भागने का परामर्श किया और एक दिन आखेट के बहाने जाकर दो-चार टिकान के बाद अपने देश पहुँच गया। वीरसिंह के आते ही शाही थानों के आदमी भाग गये। खानखाना ने जब यह समाचार सुना तो उसे बड़ा दुःख हुआ। उसी समय उपयुक्त अवसर देख कर संग्रामशाह, खानखाना से मिला और उसने खानखाना से कहा कि यदि आप 'बड़ौन' की जागीर मुझे लिख दीजिये तो या तो हम वीरसिंह को भगा देंगे, अथवा अपने प्राण होम देंगे। खानखाना ने तुरन्त 'फरमान' लिख कर उसे दे दिया और दौलत खाँ को उसके साथ कर दिया। दौलत खाँ उसकी आज्ञानुसार गोपाचल आया। इधर वीरसिंह भी दलबल-सहित 'पवाँये' पहुँचा और राव भूपाल, इन्द्रजीत तथा राव प्रताप आदि भाइयों के सहित युद्ध का निश्चय किया। दौलत खाँ ने इस अवसर पर युद्ध करना उचित न समझा और दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। संग्रामशाह को इससे बहुत दुःख हुआ और लज्जा के साथ वह ओड़छे वापस आया। वीरसिंह देव ने कुल की मर्यादा का विचार कर युद्ध का परिणाम सोचते हुये उसे जाने दिया। केशवदास जी के अनुसार इस प्रकार वीरसिंह देव के विरुद्ध रामशाह तथा उसके पुत्र संग्रामशाह का यह प्रथम प्रयास निष्फल रहा।[2]

कुछ समय बाद वीरसिंह और रामशाह में प्रकाश-रूप से मित्रता हो गई किन्तु यह

१. वीरसिंहदेव-चरित, ना० प्र० स०, छं० सं० ८-३७, पृ० सं० १८-२०।

२. वीरसिंहदेव-चरित, ना० प्र० स०, छं० सं० ३९-६६, पृ० सं० २१-२३।

कपट-मैत्री थी क्योंकि राजा रामशाह के हृदय में छल था। इसी समय मुराद की मृत्यु से उद्विग्न हो सम्राट अकबर ने दक्षिण की ओर प्रस्थान किया और धौलपुर होते हुये गोपाचल में आकर डेरा डाला। इसी बीच अकबर के दूत वीरसिंह के पास उसे बुलाने के लिये उपस्थित हुये। इधर रामशाह ने सम्राट से मिलने के लिये प्रस्थान किया। नरवर में दोनों की भेंट हुई। दूतों ने लौट कर सम्राट से निवेदन किया कि वीरसिंह अधीनता स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। तब रामशाह ने अकबर से निवेदन किया कि यदि आप मुझे 'बड़ौन' दे दीजिये तो या तो मैं वीरसिंह तथा इन्द्रजीत को आपकी सेवा करने के लिये बाध्य कर दूंगा अथवा उन्हें मौत के घाट उतार दूंगा, तब आप निश्चिंत हो दक्षिण जाइयेगा। अकबर ने इस कार्य के लिए रामशाह को पंचहजारी मनसब प्रदान करने का वचन दिया और राजसिंह को बुला कर उसे रामशाह के साथ जाने की आज्ञा दी। रामशाह और राजसिंह ने जाकर 'बड़ौन' घेर ली। उधर रावप्रताप और इन्द्रजीत के योद्धा वीरसिंह देव की ओर से युद्ध करने के लिये बड़ौन में एकत्रित हुये। बाद में रामशाह और राजसिंह ने आपस में परामर्श कर इस समय युद्ध न कर संधि करना ही अधिक उचित समझा और दूतों के द्वारा वीरसिंह से कहला भेजा कि वह दो दिन के लिये 'बड़ौन' छोड़ दे तो वह लोग वापस चले जायेंगे। रामशाह एक बार छल कर चुका था, अतएव वीरसिंह को उसकी बातों पर विश्वास न हुआ। रामशाह ने दूसरी बार कहला भेजा कि राजसिंह का प्रण पूरा हो जाने के बाद वह फिर 'बड़ौन' वापस आ सकता है। अस्तु, राजसिंह और रामशाह के शपथ लेने पर, ईश्वर के न्याय पर विश्वास करते हुये वीरसिंह देव ने 'बड़ौन' छोड़ दी। किन्तु रामशाह ने वीरसिंह देव से की हुई प्रतिज्ञा को भूल कर राजसिंह से कहा कि 'बड़ौन' सम्राट ने उसे प्रदान की है। राजसिंह ने रामशाह से कहा कि 'बड़ौन' पवाँये के अंतर्गत है, अतएव इस प्रकार नहीं दी जा सकती और उससे सम्राट का आज्ञापत्र दिखलाने के लिये कहा। किन्तु फिर रामशाह ने यह सोचकर कि सम्राट दक्षिण में व्यस्त हैं और भाई का मारना मूर्खता होगी, वहाँ से प्रयाण कर दिया। राजसिंह भी अपने डेरे चले गये। वीरसिंह ने बड़ौन खाली देख अपने चुने हुये योद्धाओं के साथ जाकर उस पर अधिकार कर लिया। इधर एक मैना के द्वारा यह समाचार पाकर राजसिंह ने दूसरे दिन प्रातःकाल ही 'बड़ौन' घेर ली। उधर वीरसिंह देव के योद्धा भी मैदान में आ डटे। दोनों दलों में युद्ध हुआ और अंत में मुगल-सेना परास्त हो गई। राजसिंह को गोपाचल भाग कर अपने प्राण बचाने पड़े।[1]

अकबर को इस युद्ध का परिणाम सुन कर बहुत दुःख हुआ। इसी बीच अकबर ने मेवाड़ पर आक्रमण किया था किन्तु वहाँ असफल होकर वह आगरे वापस आ गया था। उसके आगरे वापस आने के समाचार से वीरसिंह को बड़ी चिन्ता हुई और उसने अपने सभासदों को एकत्रित कर परामर्श किया। अन्त में यादव गौर की सलाह से सम्राट अकबर के पुत्र सलीमशाह के आश्रय में जाने का निश्चय किया गया। अतएव दूसरे ही दिन वीरसिंह देव ने प्रस्थान किया और 'अहिछत्र' नामक स्थान में पहुँच कर पहला डेरा डाला। यहाँ उसकी सैद मुजफ्फ़र से भेंट हुई जिसने उसके निश्चय की सराहना और समर्थन किया। यहाँ

१. वीरसिंहदेव-चरित, ना० प्र० स०, छं० सं० १-५६, पृ० सं० २३-२७।

से सहजादपुर होता हुआ वह प्रयाग पहुँच गया। यहाँ उसकी सरीफ खाँ से भेंट हुई, जिसने जाकर सलीम से वीरसिंह के आने और उसके निश्चय का निवेदन किया। सलीम इस समाचार से बहुत प्रसन्न हुआ। उसने वीरसिंह को बुला भेजा और नाना प्रकार से उसका सत्कार किया। कुछ दिनों के बाद दोनों में शपथपूर्वक मित्रता हुई। सलीम ने अपने प्राण देकर भी वीरसिंह देव की रक्षा करने का वचन दिया और वीरसिंह ने सदैव उसके आश्रय में रह कर उसकी तन-मन-धन से सेवा करने की प्रतीज्ञा की।[1]

इसके बाद 'वीरसिंहदेव-चरित' ग्रंथ का सबसे महत्वपूर्ण अंश आता है, जिससे उन परिस्थितियों का पता लगता है जिनमें वीरसिंह के द्वारा अबुलफजल की मृत्यु हुई। अतएव अबुलफजल और वीरसिंहदेव के युद्ध और उन परिस्थितियों का वर्णन, जिनके फल स्वरूप यह युद्ध हुआ, यहाँ कुछ विस्तार से दिया जाता है। केशवदास जी के अनुसार उपर्युक्त मैत्री-स्थापन के कुछ दिनों बाद सलीम ने वीरसिंह से कहा कि समस्त संसार में जितने स्थावर और जंगम जीव हैं उनमें एकमात्र अबुलफजल ही मेरा परम शत्रु है। हजरत (अकबर) के हृदय में मेरे लिये प्रेम है। किन्तु इसी ने उन्हें मुझसे विमुख कर रखा है। सम्राट ने दक्षिण से उसे मेरे ही कारण बुलाया है। यदि वह आकर हजरत से मिल सका तो मेरी हानि अवश्य-म्भावी है। अतएव तुम बीच ही में उसे रोक कर उससे युद्ध करो और उसे बन्दी कर लो अथवा मार डालो। यह सुन कर वीरसिंह देव ने सलीम को बहुत समझाया और कहा कि वह (अबुलफजल) आपका सेवक है, आप उसके स्वामी। सेवक पर स्वामी का ऐसा क्रोध उचित नहीं है। मंत्री सम्राट की प्रतिच्छाया है, अतएव आपके प्रति सम्राट के क्रोध के लिये अन्य कैसे दोषी ठहराया जा सकता है। सहसा कुछ नहीं करना चाहिये अन्यथा बाद में पश्चाताप होता और संसार भी दोष देता है। सलीम ने यह स्वीकार करते हुये कि यह शिक्षा उचित है, उससे कहा कि जब तक अबुलफजल जीवित है, वह स्वयं मृत-सदृश है, अतएव सलीम ने उससे शीघ्र विदा होने का अनुरोध किया। सलीम ने तत्क्षण वीरसिंह को 'जिरह-बख्तर' पहनाया और अपनी ही खड्ग उसकी कमर में बांध, 'सरोपा' पहना, तथा घोड़ा देकर तुरन्त ही उसे बिदा कर दिया। वीरसिंह देव ने सैद मुजफ्फर को साथ ले प्रयाण किया और मार्ग में बिना कहीं पड़ाव डाले अपने स्थान (बड़ौन) पहुँच गया।[2]

अबुलफजल के नरवर पहुँचने पर वीरसिंह के दूतों ने, जो पहले ही से भेजे जा चुके थे, आकर उसे अबुलफजल के नरवर पहुँचने की सूचना दी। वीरसिंह ने यह सूचना पा सिंध नदी को पार किया और शेख के आने का मार्ग जोहने लगा। इधर शेख ने आकर 'पराइछा' में पड़ाव डाला और दूसरे दिन प्रातः कूच कर दिया। वीरसिंह शत्रु को आया हुआ देख कर दौड़ पड़ा। शेख भी वीरसिंह का नाम सुन कर आगे बढ़ा। तब एक पठान ने आगे बढ़ कर उसके घोड़े की बाग पकड़ ली और उसे समझाया कि युद्ध के लिये यह उपयुक्त अवसर नहीं है, जैसे सम्भव हो उसे बच कर निकल जाना चाहिये। सम्राट को उससे मिल कर असीम हर्ष होगा। वह सलीम पर बाद में आक्रमण कर सकता है। किन्तु अबुलफजल ने उसकी

१. वीरसिंहदेव-चरित, ना० प्र० स०, छं० स० २-४३, पृ० सं० २८-३३।
२. वीरसिंहदेव-चरित, ना० प्र० स०, छं० स० ४५-६८, पृ० सं० ३३-३४।

शिक्षा को स्वीकार न करते हुये कहा कि वीर का कर्तव्य है, जहाँ हो वहीं जूझ जाये। अतएव भागना लज्जाजनक होगा। पठान ने समझाया कि योद्धा का यह भी कर्तव्य है कि मरने के पूर्व शत्रु को मौत के घाट उतार दे। इस पर अबुलफ़जल ने उसे उत्तर दिया कि मैंने अपने बाहुबल से दक्षिण के राजा को परास्त कर दक्षिण देश जीता है, मुराद की मृत्यु के बाद राज्य का भार अपने ऊपर लिया है, सम्राट अकबर मेरा भरोसा करते हैं, ऐसी दशा में जान बचा कर भागना मेरे लिये उचित नहीं है। पठान ने एक बार फिर उसे समझाते हुये कार्य-अकार्य का विचार करने और दलबल-सहित अकबर के पास पहुँच कर सलीम को शोक-सागर में निमज्जित करने का अनुरोध किया। अबुलफजल ने उससे कहा कि शत्रु चारों ओर उमड़ रहा है, अतएव यदि भागते में मैं मारा गया तो संसार मुझे क्या कहेगा। इस प्रकार जब भागने और युद्ध करने, दोनों दशाओं में मृत्यु सम्भव है तब भागना व्यर्थ है। और फिर मानमर्यादा की बेड़ियाँ मेरे पैरों में पड़ी हैं, शिर पर शाह की कृपा का भार है और शरीर के प्रत्येक अंग में लज्जा व्याप्त है। यह कह कर उसने घोड़े की बाग ढीली कर दी और युद्ध के लिये दौड़ पड़ा। वह जिस ओर जाता था, उस ओर के योद्धा भाग खड़े होते थे। इसके बाद केशवदास जी ने उपयुक्त शब्दों में शेख की वीरता का वर्णन किया है। चारों ओर गोलियों की बौछार हो रही थी। एक गोली आकर शेख के उरस्थल में लगी और वह घायल होकर धराशायी हो गया। युद्ध के अंत में वीरसिंह देव उस स्थान पर पहुँचे जहाँ शेख पड़ा हुआ था। उसका शरीर लोहू-लुहान और धूलधूसरित था तथा उससे गंध आरही थी। उसे देख कर वीरसिंह देव को हर्ष और शोक दोनों हुये। अंत में वहाँ से शेख का सिर लेकर वीरसिंह ने बड़ौन के लिये प्रस्थान किया। वीरसिंह ने चंपतराय बड़गूजर के द्वारा शेख का सिर सलीम के पास भेजा जिसे देख कर वह बहुत प्रसन्न हुआ और वीरसिंह देव के राजतिलक के लिये उसने नेजा, चंवर, छत्र आदि भेजे। शुभ दिन वीरसिंह का राज्यतिलक हुआ।[1] जहांगीर की आज्ञा से सम्राट अकबर के पास जाते हुये अबुलफजल का मार्ग में वीरसिंह देव के द्वारा रोका जाना, अबुलफ़जल के साथियों का उसको वीरसिंह देव से उस अवसर पर युद्ध न करने का परामर्श, उसका हठ तथा वीरसिंह देव से युद्ध और अन्त में मृत्यु आदि बातों का केशव से मिलता-जुलता वर्णन 'आइनए-अकबरी' तथा अन्य इतिहास-ग्रंथों में भी मिल जाता है।[2] केशव का वर्णन इतिहास-ग्रंथों की अपेक्षा विस्तृत अवश्य है।

अबुलफ़जल की मृत्यु का समाचार अकबर तक पहुँचाने का साहस किसी उमराव को न हुआ। अकबर द्वारा उसके विषय में पूछने पर भी सब सभासद चुप रहे। अंत में रामदास ने निवेदन किया कि शेख का शिर शाह पर निछावर हो गया। यह शोक-समाचार सुनकर अकबर को इतना धक्का लगा कि वह तत्क्षण मूर्च्छित होगया। मूर्च्छा से जागने पर रामदास के द्वारा उसे विदित हुआ कि मार्ग में आते हुये सलीम का पक्ष लेकर वीरसिंह बुन्देला से शेख का युद्ध हुआ और उस युद्ध में शेख परलोक सिधार गया। आजम खां, रामसिंह कछवाहा तथा

१. वीरसिंहदेव-चरित, ना० प्र० स०, छं० स० ७०-१०२, पृ० स० ३५-३७।

२. 'आईनए-अकबरी', पृ० सं० २४, २५ (भूमिका) तथा
हिस्ट्री आफ जहाँगीर, डा० बेनी प्रसाद, पृ० सं० ४०-४२।

अन्य उमराव शोकसंतप्त सम्राट को सान्त्वना देने के लिये उसके सामने उपस्थित हुये। आजम खां ने उसे बहुत प्रकार से सान्त्वना देने की चेष्टा की किन्तु सब निष्फल हुआ। सम्राट अकबर ने सब उमरावों को सम्बोधित कर कहा कि उसे अबुलफजल का मारने वाला चाहिये, किन्तु किसी को भी इस कार्य का बीड़ा उठाने का साहस न हुआ। अन्त में राजा रामशाह ने वीरसिंह को जीवित पकड़ लाने की प्रतिज्ञा कर सम्राट से संग्रामशाह को साथ भेजने की प्रार्थना की। सम्राट ने संग्रामशाह को जाने की आज्ञा देते हुये इस कार्य के उपलक्ष्य में 'कछोवा' तथा 'बड़ौन' की जागीर देने का उन्हें वचन दिया। राजसिंह, तुलसीदास तथा रायरायां (पत्रदास) भी इनके साथ भेजे गये।[1]

सलीम ने यह समाचार पाकर वीरसिंह को आदेश भेजा कि मुगल-सेना से सामने युद्ध न करना। सलीम के इस आदेशानुसार वीरसिंह 'बड़ौन' छोड़ कर 'दतिया' चला गया। रामशाह यह समाचार पाकर रायरायां से मिलने गया। इसी बीच वीरसिंह दतिया से ओड़छा आ गया। वीरसिंह के ऐरछ आने पर मुगल-सेना ने ऐरछ का घेरा डाल दिया। वीरसिंह के भाई हरिसिंह ने शाही सेना का सामना करते हुये भयानक युद्ध किया। इस युद्ध में जमन खां का पुत्र जमाल काम आया। उसके मरते ही मुगल-सेना में हलचल मच गई। रात्रि के समय अवसर पाकर वीरसिंहदेव अपने साथियों के सहित नगर से बाहर आया और त्रिपुर की सेना के बीच से साफ निकल गया। शत्रुओं में किसी का उसका पीछा करने का साहस न हुआ। वीरसिंह दतिया होता हुआ सलीमशाह के सम्मुख आ उपस्थित हुआ। इधर त्रिपुर खीझ कर कछोवा होता हुआ आगरे चला गया। रामशाह भी राज्य का भार इन्द्रजीत को सौंपकर सम्राट के दरबार में जाकर उपस्थित हुआ।[2] 'आईनए-अकबरी' तथा 'हिस्ट्री आफ जहाँगीर' नामक इतिहास-ग्रन्थों से भी ज्ञात होता है कि अबुलफजल की मृत्यु के बाद सम्राट अकबर ने राजसिंह तथा रायरायाँ पत्रदास को वीरसिंहदेव के विरुद्ध सेना लेकर भेजा था। वीरसिंहदेव पत्रदास द्वारा कई बार पराजित हुआ अन्त में घिर गया किन्तु यहाँ से भी बच निकला तथा जंगलों में भाग गया।[3]

त्रिपुर के जाते ही शाही थाने खाली हो गये। यह देखकर संग्रामसिंह ने भांडेर पर अधिकार कर लिया। वीरसिंहदेव दतिया ही में रहे किन्तु उनके भाई हरिसिंह देव ने 'भासनेह' को अधिकृत कर लिया। कुछ ही समय बाद हरिसिंह तथा लचूरागढ़ के स्वामी खड्गराव में युद्ध हुआ जिसमें हरिसिंह देव मारे गये। अपना समय देख कर वीरसिंह ने संग्रामशाह से संधि कर ली, जिसके फल-स्वरूप संग्रामसिंह ने वीरसिंह को भांडेर दे दी और वीरसिंह ने उसे लचूरागढ़ जीतकर देने का वचन दिया। कुछ समय बाद वीरसिंह ने लचूरागढ़ पर आक्रमण किया किंतु खड्गराव अमलौटा भाग गया। यहाँ दोनों की सेनाओं में युद्ध हुआ जिसमें खड्गराव मारा गया। वीरसिंह ने प्रतिज्ञानुसार लचूरागढ़ संग्रामशाह को दे दिया और खड्गराव का

---

१. वीरसिंहदेव-चरित, ना० प्र० स०, छं० सं० १-३३, पृ० सं० ३८-४१।

२. वीरसिंहदेव-चरित, ना० प्र० स०, छं० सं० ३६-५१, पृ० सं० ४२-४४।

३. आईनए-अकबरी, पृ० स० ४९८ और ४६६ तथा हिस्ट्री आफ जहाँगीर डा० बेनी प्रसाद, पृ० स० ५३-५४।

शिर सलीम के पास भेज दिया।[1]

अकबर को यह सब समाचार मिलने पर बड़ा दुःख हुआ और उसने रामदास कछवाहे को सलीम के पास भेजा। रामदास ने सलीम के सम्मुख उपस्थित हो सम्राट के आदेशानुसार उससे वीरसिंह, सरीफ खाँ और राजा वासुकी को सम्राट अकबर को समर्पण कर देने को कहा और समझाया कि इस कार्य के प्रतिफल वह साम्राज्य का स्वामी बना दिया जायगा। सलीम इस लालच में न आया और उसने रामदास की प्रार्थना अस्वीकार कर दी। तब रामदास ने केवल वीरसिंह को ही अर्पण करने के लिये कहा किन्तु सलीम इसके लिये भी तैयार न हुआ और उसने कहा कि वीरसिंह के साथ वह विपत्तियों के चंगुल में पड़ने को तैयार है किन्तु उसके बिना साम्राज्य नहीं चाहता। सलीम ने उसे शीघ्र ही वहाँ से चले जाने की आज्ञा देते हुये यह भी कहा कि यदि उसके स्थान पर कोई अन्य होता तो ऐसी धृष्टता करने पर वह जीवित न बचता। रामदास असफल होकर लौट गया और सम्राट से सब समाचार निवेदन कर दिया।[2]

खड्गराव का भाई सम्राट अकबर के दरबार में फरियाद लेकर उपस्थित हुआ, और शरण प्रदान करने की प्रार्थना करते हुये उसने निवेदन किया कि जिस समय युवराज मुराद उस ओर गये थे, उस समय राजा रामशाह उन लोगों से रुष्ट थे; अतएव उसने मुराद से सहायता करने की पार्थना की थी और मुराद ने उसके भाई खड्गराव को राजपदवी प्रदान की थी। इस समय वीरसिंह देव ने उसके भाई खड्गराव को युद्ध में मारा है। वीरसिंह तथा संग्रामसिंह का एक-मात्र काम निबलों को पीड़ित करना ही रह गया है। सम्राट ने आसफखां को बुलाकर उससे परामर्श किया कि बुन्देलों के उत्पात का प्रतीकार किस प्रकार किया जाना चाहिये। आसफखां ने सम्राट को इन्द्रजीत को बुन्देलखंड का राज्य प्रदान करने की सलाह दी। सम्राट ने इन्द्रजीत सिंह को बुला भेजा और उपयुक्त अवसर पर सम्राट के आदेशानुसार रामदास कछवाहे ने इन्द्रजीत से कहा कि यदि वह मनसा-वाचा-कर्मणा सम्राट की आज्ञा का पालन करे तो सम्राट उसे समस्त बुन्देलखंड का राज्य सौंप देंगे, किन्तु इन्द्रजीतसिंह ने यह स्वीकार न किया। तब अकबर ने त्रिपुर को बुला कर उसे बुन्देलखंड का राज्य प्रदान कर दिया।[3]

इसी बीच सम्राट की माता का देहान्त होगया और उसने सलीम को बुलाने के लिये उसके पास दूत भेजे। दूतों ने जाकर सलीम से बेगम की मृत्यु, सम्राट के शोक तथा उसके प्रति प्रेम का वर्णन करते हुये उससे सम्राट के सम्मुख उपस्थित हो सम्राट का शोक बँटाने की प्रार्थना की। बेगम की मृत्यु का समाचार सुन कर सलीम को भी बहुत दुख हुआ और उसने सम्राट की सेवा में उपस्थित होने का निश्चय कर लिया। दो दिनों के बाद सलीम ने सरीफ खां, राजा वासुकी तथा वीरसिंह देव आदि अपने मंत्रियों को एकत्रित कर अपने हृदय का विचार प्रकट कर उनसे सलाह मांगी। वासुकी ने सलीम का शोक दूर करने की बहुत कुछ

१. वीरसिंहदेव-चरित, ना० प्र० स०, छं० सं० २-६, पृ० स० ४४-४५।
२. वीरसिंहदेव-चरित, ना० प्र० स०, छं० स० १०-२४, पृ० स० ४५-४६।
३. वीरसिंहदेव-चरित, ना० प्र० स०, छं० सं० २५-४७, पृ० सं० ४६-४८।

चेष्टा की किन्तु सफल न हो सका। वीरसिंह ने उससे कहा कि शाह के वहाँ जाने पर वह वही करे जिससे शाह प्रसन्न हो। यदि आवश्यकता हो तो उसे भी सम्राट को अर्पण कर दें, जिससे कुल का कलह समाप्त हो जाये। यह सुन कर कुछ रुष्ट हो सरीफ खां ने सलीम से कहा कि वीरसिंह ने ही उसे राजा बनाया है अतएव उसे सम्राट को अर्पित करना अनुचित होगा। वीरसिंह के स्थान पर वह उसे सम्राट को समर्पित कर सकता है। सलीम ने उन लोगों से भविष्य में कभी इस प्रकार की बातें न कहने के लिये कहा और आजीवन अभयदान दिया। सलीम के सम्राट के पास जाने पर उसने सलीम को बहुत दुःख दिया। इधर सरीफ खां कहीं दूर भाग गया तथा वीरसिंह अपने बन्धु संग्रामशाह के पास ओड़छे चला आया।[1]

त्रिपुर, जिसे सम्राट ने बुन्देलखंड का राज्य प्रदान किया था, सेना ले दतिया होता हुआ ओड़छा की ओर चल पड़ा और ओड़छा से आध कोस की दूरी पर पहुंच कर पड़ाव डाल दिया। किन्तु नगर पर आक्रमण करने का उसका साहस न होता था। राजसिंह को इस प्रकार हाथ पर हाथ रख कर बैठना अच्छा न लगता था, अतएव एक दिन प्रातः काल होते ही उसने सेना लेकर ओड़छा पर आक्रमण कर दिया। त्रिपुर की ओर राजसिंह, रामदास कछवाहा, रामशाह, भदौरिया, चौहान तथा जाट आदि थे और दूसरी ओर वीरसिंह देव के सहायकों में संग्रामशाह, इन्द्रजीत, राव प्रताप तथा उग्रसेन थे। केशवदास जी ने इस युद्ध का बड़ा ही उत्साह-पूर्ण तथा सूक्ष्म वर्णन किया है। अंत में युद्ध में वीरसिंह की विजय हुई। राजसिंह बन्दी हो गया किन्तु बाद में वीरसिंह ने उसे स्वतन्त्र कर दिया। इस युद्ध का परिणाम सुन कर सम्राट अकबर ने अपना शिर धुन लिया और उमरावों के पास फरमान लिख भेजा कि या तो वे ओड़छा पर आक्रमण कर वीरसिंह की मान-मर्यादा को धूल में मिला दें, जहाँ वीरसिंह जाये, वहाँ उसका पीछा करें अथवा 'हज' को चले जायें। किन्तु सम्राट की वीरसिंह देव को नीचा दिखाने की यह इच्छा सफल न हुई। कुछ समय बाद उसका शरीरान्त हो गया और सलीम राजसिंहासनासीन हुआ।[1]

सम्राट होने के कुछ दिनों बाद सलीम (अब जहाँगीर) ने वीरसिंह देव को बुला भेजा। वीरसिंह राजा रामशाह से मिल कर इन्द्रजीत को साथ ले सम्राट जहाँगीर से मिलने आगरे गया। सम्राट ने उसका बहुत आदर-सत्कार किया और नाना उपहार दिये। वीरसिंह को दरबार में सबसे ऊँचा स्थान दिया गया। कालान्तर में जहाँगीर ने उसे समस्त बुन्देलखण्ड का राज्य प्रदान किया। इसके अतिरिक्त और भी अनेक परगने दिये। सम्राट ने यह भी वचन दिया कि जो वीरसिंह का आदर न करेगा, उसे मृत्युदण्ड दिया जायगा। वीरसिंह जतारा नहीं लेना चाहता था किन्तु सरीफ खाँ के समझाने पर कि उसके राज्य में मुगल थाने का रहना सदैव चिन्ता का विषय रहेगा, उसने जतारा को भी अपने राज्य के अन्तर्गत स्वीकार कर लिया। अन्त में सम्राट से विदा होकर वीरसिंह ऐरछ वापस आ गया। विदा के समय कुछ

१. वीरसिंहदेव-चरित, ना० प्र० स०, छं० सं ४१-६६, पृ० सं० ४८-४१।

२. वीरसिंहदेव-चरित, ना० प्र० स०, छं० सं० १-५१, पृ० स० ४१-५१ तथा छं० सं० १-८, पृ० सं० ५१-५७।

अन्य परगने भी जहाँगीर ने उसे प्रदान किये ।[1]

यह समाचार भारतशाह के द्वारा पाकर रामशाह ने विजय नारायन, देवाराय, गिरधर दास आदि अपने सभासदों को बुला कर उनसे परामर्श किया। अंत में उदयन मिश्र की सलाह से वीरसिंह देव के पास ऐरछ जाना निश्चित हुआ और दूसरे दिन प्रातःकाल रामशाह ने ऐरछ के लिये प्रयाण किया। रामशाह से मिल कर वीरसिंह बहुत प्रसन्न हुआ और सम्राट जहाँगीर ने जितने परगने उसे दिये थे, उन सबके पट्टे लाकर रामशाह के सम्मुख रख दिये। रामशाह ने बटवारा किया किन्तु बातों ही बातों में उनके हृदय में कुछ भेद आगया और वीरसिंह देव की अनुनय-विनय की अवहेलना कर वह पटहारी वापस चले गये ।[2]

वीरसिंह देव ऐरछ से पिपहरा आये जहाँ उनकी अब्दुल्ला खाँ से भेंट हुई। दरिया खां भी यहीं लचूरा से आकर वीरसिंह से मिल गया। धीरे-धीरे रामशाह के मित्र भी उससे उदासीन हो वीरसिंह से जाकर मिल गये। इस बीच रामशाह पटहारी छोड़ कर बनगवां चले गये थे, अतएव वीरसिंह ने पटहारी पर अधिकार कर लिया। वहाँ से आगे बढ़ कर उन्होंने बरेठी में पड़ाव डाला। इस प्रकार रामशाह बनगवां में डटे थे और वीरसिंह वहाँ से दो मील दूर बरेठी में। उधर युवराज खुसरो ने सम्राट के विरुद्ध बगावत कर दी थी, अतएव सम्राट जहाँगीर उसका पीछा कर रहे थे। इसी समय इन्द्रजीत, वीरसिंह देव के पुत्रों के साथ रामशाह की सेवा में उपस्थित हुआ। रामशाह उसके आने से बहुत प्रसन्न हुआ और मंत्रियों तथा शुभचिंतकों के सामने उसने इन्द्रजीत को कुटुम्ब और राज्य का भार सौंप कर वीरसिंह से युद्ध अथवा सन्धि करने की स्वतन्त्रता प्रदान की। कुछ दिनों बाद गोपाल खवास तथा श्यामलदास आदि भारतशाह को साथ लेकर वीरसिंह देव के पास बरेठी गये और उसे समझा-बुझा कर भारतशाह को उसे सौंप दिया। भारतशाह और वीरसिंह दोनों ने सौगन्ध खा कर एक दूसरे से मित्रता का वचन दिया और यह निश्चय हुआ कि रामशाह बनगवाँ छोड़ कर ओड़छा चले जायँ। भारतशाह 'बसीठ' के रूप में वहीं रह गये ।[3]

इस घटना का समाचार मिलने पर रामशाह और इन्द्रजीत दोनों को ही दुःख हुआ किन्तु सब बातें सोच कर इन्द्रजीत ने रामशाह को बनगवां छोड़ कर ओड़छा चले जाने की सलाह दी। ओड़छा आकर रामशाह ने अंगद, प्रेमा तथा केशव मिश्र (स्वयं कवि) को दूत के रूप में सन्धि के निमित्त वीरसिंह देव के पास भेजा। केशव मिश्र के शब्दों से वीरसिंह बहुत प्रभावित हुआ और उनकी शिक्षा के अनुकूल करने के लिये तैय्यार हो गया। उसने केशव से रामशाह को मिला देने की प्रार्थना की और प्रसन्नता-पूर्वक दूतों को बिदा किया। रामशाह भी वीरसिंह देव से मिलने के लिये तैय्यार हो गया। इसी बीच प्रेमा ने कल्यानदे रानी से मिल कर उसके कान भरे और कहा कि वीरसिंह तथा केशव में हुई बातचीत उसे अज्ञात है अतएव यदि हानि-लाभ हो तो वह दोषी न ठहराया जाये। रानी यह सुन कर बहुत

१. वीरसिंहदेव-चरित, ना० प्र० स०, छ० सं० १८-४०, पृ० सं० ५७-५६।
२. वीरसिंहदेव-चरित, ना० प्र० स०, छ० सं० ४१-६०, पृ० सं० ५६-६१।
३. वीरसिंहदेव-चरित, ना० प्र० स०, छ० सं० ६८-६२, पृ० सं० ६१ तथा छ० सं० ११-२६ पृ० सं० ६२-६४

भयभीत हुई और उसने प्रेमा से भारतशाह को ले आने की आज्ञा दी। प्रेमा वीरसिंह के संरक्षण से भारतशाह को ले आया। फलतः वीरसिंह और रामशाह के बीच सन्धि न हो सकी।[१]

रामशाह ने रानी गनेशदे, इन्द्रजीत तथा भूपालराव को एकत्रित कर मन्त्रणा की। रानी की सलाह थी कि इन्द्रजीत के कथनानुसार कार्य किया जाये। इन्द्रजीत ने रामशाह की इच्छा के अनुकूल कार्य करने का विचार प्रकट किया। भूपाल राव युद्ध करने के निश्चय के पक्ष में था। केशव मिश्र ने रामशाह को युद्ध के विरुद्ध बहुत कुछ समझाया किन्तु रानी गनेशदे को केशव की यह शिक्षा हितकर न प्रतीत हुई और उसने केशव को वहाँ से चले जाने की आज्ञा दी। केशव दुःखी होकर 'वीरगढ़' वीरसिंह देव के पास चले गये।[२]

वीरसिंहदेव ने वीरगढ़ से प्रस्थान कर बबीना पर अधिकार कर लिया। सैद मुजफ्फर के आने पर वह वहाँ से भी चल दिया और तराई के उपवन में जाकर डेरा डाला। यहाँ खोजा अब्दुल्ला के दूत उसकी सेवा में उपस्थित हुये। भावी को सोच कर वीरसिंह देव को बहुत दुख हुआ और उसने रामशाह को परिस्थिति का ज्ञान करा देने का विचार प्रकट किया। केशवदास मिश्र ने सब बातें समझाते हुए रामशाह को एक पत्र लिखा किन्तु रामशाह ने उस पत्र का उपहास किया। फिर भी रामशाह ने अनंदी और गोपाल नामक व्यक्तियों को बसीठ के रूप में वीरसिंह देव के पास भेजा किन्तु वे कहते कुछ थे, हृदय में कुछ और था, अतएव सन्धि का यह प्रयास भी निष्फल रहा।[३]

वीरसिंह देव ने रामशाह के उपर्युक्त दूतों के सामने ही अपनी सेना को चार भागों में विभाजित कर चार सेनापति नियुक्त किये और वहाँ से ओड़छा की ओर प्रयाण कर दिया। जिस समय वीरसिंह देव की सेना ओड़छा से कुछ दूरी पर ही थी, उसी समय अब्दुल्ला की सेना ओड़छा पहुँच गई। भूपालराव तथा इन्द्रजीत, रामशाह की सेना के साथ मुगल-सेना पर टूट पड़े। अंत में अब्दुल्ला खाँ भाग खड़ा हुआ। घायल इन्द्रजीत को सुरक्षित स्थान पर पहुँचा कर भूपालराव अकेले अवशेष मुगल-सेना का सामना करने के लिये आगे बढ़ा। भूपालराव ने भयानक युद्ध किया, जिसके फल-स्वरूप मुगल-सेना भाग चली। किन्तु इसी समय वीरसिंह अपनी सेना-सहित आ पहुँचा। अब्दुल्ला खाँ की सेना के उखड़ते हुये पैर एक बार फिर जम गये। दोनों ओर की सेनाओं में भीषण युद्ध हुआ, जिसमें भूपालराव ने असीम वीरता का परिचय दिया। अब्दुल्ला खाँ ने भरसक प्रयत्न किया किन्तु वह राजमहल पर अधिकार न कर सका। तब उसने यादगार से किसी प्रकार रामशाह को उसके पास तक लाने के लिये कहा। यादगार, सम्राट के पंजे की छाप लेकर गया और सौगन्ध खाकर रामशाह को अब्दुल्ला खाँ के पास ले आया। इस प्रकार छल से अब्दुल्ला खाँ ने रामशाह को बन्दी कर लिया और उसे साथ ले जाकर सम्राट के सम्मुख उपस्थित किया।[४] इतिहास-ग्रन्थों

---

१. वीरसिंहदेव-चरित, ना० प्र० स०, पृ० सं० ६४-६६।

२. वीरसिंहदेव-चरित, ना० प्र० स, छं० सं० ३६-४०, पृ० सं० ७०—७१।

३. वीरसिंहदेव-चरित, ना० प्र० स०, छं० सं० ४०—४६, पृ० सं० ७१।

४. वीरसिंहदेव चरित, ना० प्र० स०, छं० सं० ४७, पृ० सं० ७१-७२ तथा पृ० सं० ८४-७६।

से केवल इतना ही ज्ञात होता है कि जहाँगीर के सिंहासनासीन होने के प्रथम वर्ष ओड़छा की गद्दी से हट जाने के कारण राजा रामशाह ने विद्रोह किया। कालपी के जागीरदार अब-दुल्ला खाँ ने उस पर आक्रमण किया तथा उसे बन्दी बनाकर सम्राट जहाँगीर के सम्मुख उपस्थित किया, जिसने उसे क्षमा कर दिया।[1]

ओड़छा-राज्य का स्वामी हो जाने पर वीरसिंह ने 'बीहट' भूपालराव को दिया, 'बांध' रावप्रताप को प्रदान किया और इन्द्रजीत को गढ़ का स्वामी बनाया। भिन्न-भिन्न प्रदेशों का अधिकार अपने भाइयों में बाँट कर वीरसिंह देव रामशाह को लाने के लिये सम्राट जहाँगीर से मिलने चला। वीरसिंह देव के कुरुक्षेत्र पहुँचते ही देवाराय ने भारतशाह के सहयोग से चारों ओर आतंक फैला दिया। पटहारी पर इन लोगों ने अधिकार कर लिया। ओड़छा भी एक बार इनके आतंक से काँप उठा। इधर भूपालराव ने अवसर देखकर बबीना को अधिकृत कर लिया। इसी समय वीरसिंह देव वापस आ गये और उन्होंने आकर शान्ति स्थापित की। सम्राट जहाँगीर के फर्मान से वीरसिंह देव ओड़छे के राजा घोषित हुये। राजा होने पर वीर-सिंह ने ओड़छा नगर फिर से बसाया और उसका नाम जहाँगीरपुर रखा।[2] वीरसिंहदेव-चरित ग्रंथ में कवि-वर्णित इतिहास यहाँ पर समाप्त हो जाता है।

'रतनबावनी' तथा 'जहांगीरजस-चंद्रिका' में संचित इतिहास-सामग्री :

'रतनबावनी' ग्रन्थ में कुँवर रतनसेन के मुगल-सेना से युद्ध का वर्णन है। केशव के अनुसार एक बार मधुकरशाह ऊँचा जामा पहन कर अकबर के दरबार गये। अकबर ने उनसे इसका कारण पूछा, तब मधुकरशाह ने कहा कि उनका देश कंटकाकीर्ण है। सम्राट को इन शब्दों में व्यंग दिखलाई दिया, अतएव क्रुद्ध होकर उन्होंने मधुकरशाह से कहा कि मैं तुम्हारा स्थान देखूँगा। मधुकरशाह ने पत्र के द्वारा इस घटना की सूचना देते हुये कुँवर रतनसेन को इस युद्ध का भार सौंपा।[3] मुगलसेना के आक्रमण करने पर रतनसेन की सेना ने

१. 'आईनए-अकबरी' पृ० सं ४८७, ४८८ तथा 'तुजुक जहांगीरी' प्रथम भाग, पृ० सं० ८२ तथा ८७।

२. वीरसिंहदेव-चरित, ना० प्र० स०, छं० सं० ४८-६२, पृ० सं० ८७-८८।

३. 'दिल्लीपति दरबार जाय मधुशाह सुहायव।
जिमि तारन के माह इन्दु शोभित छवि छायव।
देख अकब्बर शाह उच्च जामा तिन केरो।
बोले बचन बिचारि कहौ कारन यहि केरौ।
तब कहत भयव बुन्देल मणि मम सुदेश कंटकि अवन।
करि कोप ओप बोले बचन मैं देखौं तेरौ भवन ॥४॥
सुनत बचन मधुशाह के तीर समानह।
लिखिव पत्र ततकाल हाल तिहि बचन प्रमानह।
जुरहु जुद्ध करि क्रुद्ध जोरि सेना इक ठौरिय।
तोर तोर तन शोर रोर करिये चहु ओरिय।

उसका वीरतापूर्ण सामना किया। केशव के अनुसार इस युद्ध में रतनसेन की चार हजार सेना में से एक भी व्यक्ति जीवित न बचा। रतनसेन ने स्वयं भी युद्ध करते हुये वीर-गति प्राप्त की।[1] कुँवर रतनसेन के मुगलसेना से इस युद्ध का समर्थन इतिहास-ग्रंथों से नहीं होता है।

'जहाँगीर-जस-चंद्रिका' ग्रन्थ में मुगल-सम्राट जहाँगीर के यश का वर्णन है, अतएव अनुमान होता है कि इस ग्रंथ में जहाँगीर के जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली कतिपय ऐतिहासिक घटनाओं का भी उल्लेख होगा, किन्तु वास्तविकता यह नहीं है। इस ग्रंथ के द्वारा जहाँगीर के कुछ सभासदों के नाम-मात्र ही जाने जा सकते हैं। केशव ने 'जहाँगीर-जस-चंद्रिका' में जहाँगीर के जिन सभासदों का उल्लेख किया है उनके नाम हैं, जहाँगीर का पुत्र परवेज, आजम खाँ, अब्दुर्रहीम खानखाना, मानसिंह, मिरजा समसदीन, खानखाना का पुत्र एलचि बहादुर, भोज-राय, दौलत खाँ का पुत्र खानजहाँ पठान, गोपाल मुत्रगल का पुत्र तथा सम्राट अकबर का नाती तुलसी बहादुर, बीरबल का पुत्र धीरबल, विक्रमाजीत भदौरिया, गोपाचल का राजा स्यामसिंह, सूरतसिंह तथा धमेरी का राजा बासुकी आदि। इन लोगों के सम्बन्ध में भी किसी विशेष ऐतिहासिक घटना का वर्णन नहीं किया गया है। इस प्रकार ग्रन्थ का ऐतिहासिक महत्व-विशेष नहीं है। 'जहाँगीर-जस-चन्द्रिका' के विषय में डा० बेनीप्रसाद ने अपने ग्रन्थ 'हिस्ट्री आफ जहाँगीर' में लिखा है कि इस ग्रन्थ में फारसी इतिहासकारों के ग्रन्थों से अधिक कोई सूचना नहीं मिलती है। डाक्टर साहब के अनुसार इस ग्रन्थ का महत्व यह प्रदर्शित करने में है कि एक हिन्दू महाकवि के हृदय में सम्राट के प्रति क्या विचार थे।[2]

पूर्वपृष्ठों में दिये हुये विवेचन से स्पष्ट है कि केशवदास जी के ग्रन्थों 'वीरसिंहदेव-चरित', 'कविप्रिया' तथा 'रतनबावनी' में ओड़छा राज्य से सम्बन्धित बहुत सी इतिहास-सामग्री संचित है; और ओड़छा राज्य का विस्तृत एवं यथातथ्य इतिहास जानने के लिये इन ग्रन्थों को पढ़ना अनिवार्य है।

तुव भुवन भार है कुवंर यह रतनसेन शोभा लहय।
कछु दिवस गए ओड़छो दिल्लीपति देखन चहय, ॥६॥
रतनबावनी (केशव-पञ्चरत्न से) पृ० सं० १, २।

१. रतनबावनी (केशव-पञ्चरत्न से), छं० सं० ४०, पृ० सं० १० ।
२. हिस्ट्री आफ जहाँगीर, डा० बेनीप्रसाद, पृ० सं० ४६१ ।

उपसंहार

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि केशवदास जी के काव्य का महत्व अनेक दृष्टियों से है। केशव महाकवि हैं, आचार्य हैं तथा इतिहासकार हैं। कवि के रूप में केशव प्रबन्ध की अपेक्षा मुक्तक रचनाओं में अधिक सफल हुये हैं। मुक्तककार के रूप में केशव भावव्यंजना के क्षेत्र में रीतिकालीन किसी कवि के पीछे नहीं हैं। केशव के समान स्वाभाविक एवं सुन्दर सम्वाद भी हिन्दी के किसी कवि ने नहीं लिखे हैं। इसके अतिरिक्त ब्रजभाषा पर केशव का असीम अधिकार है, अलंकारों के वह पूर्ण पण्डित हैं और छन्द-प्रयोग के क्षेत्र में तो अद्यावधि हिन्दी-साहित्य का कोई कवि केशव की तुलना में नहीं ठहर सकता।

आचार्य-रूप में केशवदास जी हिन्दी के प्रथमाचार्य हैं, जिन्होंने काव्य-शास्त्र के विविध अंगों का विस्तृत विवेचन कर हिन्दी-साहित्य में रीति-प्रवाह का अप्रतिबन्ध मार्ग खोल दिया। यद्यपि केशव के परवर्ती साहित्य-शास्त्र पर लिखने वाले हिन्दी के कवियों ने केशव के मत को ग्रहण नहीं किया फिर भी उन्होंने परवर्ती कवियों की प्रवृत्ति को एक विशेष दिशा में मोड़ दिया। केशव ने अलङ्कारों के विवेचन में दण्डी और रुय्यक को आदर्श माना था किन्तु बाद के रीतिग्रंथकारों ने 'चन्द्रालोक' तथा 'कुवलयानन्द' आदि ग्रन्थों को आधार-स्वरूप माना फिर भी शास्त्रीय-पद्धति पर साहित्य-मीमांसा का अप्रतिबन्ध मार्ग खोलने के लिये हिन्दी-साहित्य केशव का आभारी है।

इतिहास-कार के रूप में भी केशव का विशेष महत्व है। केशवदास जी ने अपनी 'कविप्रिया', 'वीरसिंहदेव-चरित' तथा 'रतनबावनी' रचनाओं में ओड़छा राज्य से सम्बन्ध रखने वाली बहुमूल्य सामग्री संचित की है। केशव ने ओछड़ा राज्य से सम्बन्ध रखने वाली अनेक ऐसी घटनाओं का विस्तृत वर्णन किया है जिनका उल्लेख इतिहास-ग्रन्थों में या तो मिलता ही नहीं है और यदि मिलता भी है तो बहुत संक्षेप में। इस प्रकार ओछड़ा राज्य का वास्तविक और विस्तृत इतिहास जानने के लिये केशव के ग्रन्थों को पढ़ना अनिवार्य है।

सहायक ग्रंथों की सूची

हिन्दी भाषा के ग्रंथ

ग्रंथ का नाम	ग्रंथकार	प्रकाशक
१. अलंकार-पीयूष (पूर्वार्ध तथा उत्तरार्ध)	पं० रामशंकर शुक्ल 'रसाल' एम० ए०	रामनारायण लाल, इलाहाबाद।
२. अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय	डा० दीनदयालु गुप्त	हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।
३. कविप्रिया (सटीक)	टीकाकार हरिचरणदास	नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ।
४. कविप्रिया (सटीक) (प्रथमावृत्ति सं० १९८२ वि०)	टीकाकार ला० भगवानदीन	नेशनल प्रेस, बनारस कैंट।
५. कविप्रिया (सटीक)	टीकाकार सरदार कवि	नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ।
६. काव्य-निर्णय (द्वितीय बार १९३७ ई०)	ले० भिखारीदास टीकाकार पं० महावीर प्रसाद मालवीय 'वीर'	वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग।
७. काव्यांग-कौमुदी (प्रथमावृत्ति सं० १९९१ वि०)	विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	नन्दकिशोर, बनारस।
८. केशव की काव्य-कला (सं० १९९० वि०)	कृष्णशंकर शुक्ल,	साहित्य-ग्रंथमाला कार्यालय, काशी।
९. केशवदास जी की अमीघूंट (तृतीय आवृत्ति १९१५ ई०)	केशवदास	वेलेवेडियर स्टीमप्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद।
१०. केशव-पंचरत्न (प्रथमावृत्ति सं० १९८६ वि०)	ला० भगवानदीन	रामनारायण लाल, कटरा, इलाहाबाद।
११. गोस्वामी तुलसीदास (१९३५ ई०)	रामचन्द्र शुक्ल	इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग।
१२. छन्द-प्रभाकर (सप्तम् संस्करण सं० १९८८)	जगन्नाथ प्रसाद 'भानु'	जगन्नाथ प्रेस, विलासपुर।
१३. छत्र-प्रकाश	सम्पादक श्यामसुन्दर दास	नागरी-प्रचारिणी-सभा, काशी।
१४. जगद्विनोद (सं० १९९१ वि०)	ले० पद्माकर सम्पादक विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	श्री रामरत्न पुस्तक-भवन, काशी।
१५. जहांगीरजस-चंद्रिका (हस्तलिखित) (प्रतिलिपिकाल सं० १८४८)	केशवदास मिश्र प्रतिलिपिकार रूपचंद गौड़	सुरक्षा का स्थान : राजकीय पुस्तकालय, रामनगर, बनारस

१६. नखशिख (हस्तलिखित) (प्रतिलिपि-काल सं० १८५३ वि०)	केशवदास मिश्र प्रतिलिपिकार रूपचंद गौड़	राजकीय पुस्तकालय, रामनगर, बनारस।
१७. बिहारी-रत्नाकर (सं० १६८३ वि०)	जगन्नाथदास रत्नाकर	गंगा पुस्तक-माला कार्यालय, लखनऊ।
१८. वीरसिंहदेव-चरित	केशवदास मिश्र	नागरी-प्रचारिणी-सभा, काशी।
१६. वीरसिंहदेव-चरित (सन् १६०४ ई०)	केशवदास मिश्र	भारतजीवन प्रेस, काशी।
२०. बुँदेलखंड का संक्षिप्त इतिहास (सं० १६६० वि०)	गोरेलाल तिवारी	नागरी-प्रचारिणी-सभा, काशी।
२१. बुँदेल-वैभव, प्रथम भाग	गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर'	श्री रामेश्वर प्रसाद द्विवेदी, बुँदेल-वैभव ग्रंथमाला, टीकमगढ़, बुंदेलखंड।
२२. भवानी-विलास (सन् १८६३ ई०)	देवकवि	रामकृष्ण वर्मा, भारत जीवन प्रेस, काशी।
२३. भारतीय दर्शन-शास्त्र का इतिहास (१६४१ ई०)	देवराज	हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद।
२४. भावविलास	देवकवि	रामकृष्ण वर्मा भारत जीवन प्रेस, काशी।
२५. भाषा भूषण	जसवंत सिंह, संपादक गुलाब राय	साहित्य-रत्न भंडार, आगरा।
२६. मतिराम-ग्रंथावली (सं० १६६६ वि०)	संपादक कृष्णविहारी मिश्र	गंगा-ग्रंथागार, लखनऊ।
२७. मिश्रबन्धु-विनोद	मिश्रबन्धु	गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ।
२८. मूल गोसाईं-चरित	वेणीमाधव दास	गीता प्रेस, गोरखपुर।
२६. योगवाशिष्ठ भाषा प्रथम तथा द्वितीय भाग (१६२८ ई०)	रामप्रसाद	नवल किशोर प्रेस, लखनऊ।
३०. रसिकप्रिया (सटीक) सन १६११ ई०	टीकाकार सरदार कवि	नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ।
३१. रसिकप्रिया (सटीक)	टीकाकार सरदार कवि	खेमराज श्रीकृष्णदास वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

३२. रस-कलश	अयोध्यासिंह उपाध्याय	पुस्तक-भंडार, लहेरिया सराय।
३३. रतनत्रावनी (केशव-पंचरत्न)	ला० भगवानदीन	रामनारायण लाल, इलाहाबाद।
३४. रामचंद्रिका, (संक्षिप्त)	सम्पादक डा० श्यामसुन्दर दास	काशी नागरी-प्रचारिणी-सभा
३५. रामचंद्रिका	टीकाकार जानकी प्रसाद	
३६. रामचंद्रिका (केशव-कौमुदी) पूर्वार्ध, १६३१ ई०	टीकाकार ला० भगवान दीन	रामनारायण लाल, इलाहाबाद।
३७. रामचंद्रिका (केशव-कौमुदी) उत्तरार्ध	टीकाकार ला० भगवान दीन	रामनारायण लाल, इलाहाबाद।
३८. रामायण	गो० तुलसीदास	नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ।
३६. वैराग्य-शतक	देवकवि	हस्तलिखित
४०. विज्ञानगीता (सं० १६५१ वि०)	केशवदास मिश्र	खेमराज श्रीकृष्णदास, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।
४१. संस्कृत-साहित्य की रूपरेखा (१६४५ ई०)	चन्द्रशेखर पांडे तथा शान्तिकुमार नानूराम व्यास	साहित्य निकेतन, कानपूर।
४२. शिवराज-भूषण	महाकवि भूषण	नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ।
४३. शिवसिंह-सरोज (सन १६२६ ई०)	शिवसिंह	नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ।
४४. हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण	डा० श्यामसुन्दर दास	नागरीप्रचारिणी सभा, काशी।
४५. हिन्दी के कवि और काव्य प्रथम भाग, (स० १६३७ ई०)	गणेशप्रसाद द्विवेदी	हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद
४६. हिन्दी-नवरत्न	मिश्रबन्धु	गंगापुस्तकमाला, लखनऊ।
४७. हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास, (सं० १६६७ वि०)	अयोध्यासिंह उपाध्याय	पुस्तक-भंडार, लहेरिया सराय।
४८. हिन्दी-साहित्य	डा० श्यामसुन्दर दास	इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग।
४६. हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	डा० रामकुमार वर्मा	रामनारायण लाल, प्रयाग।
५०. हिन्दी-साहित्य का इतिहास	रामचन्द्र शुक्ल	इंडियन प्रेस, प्रयाग
५१. हिन्दी-साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास	सूर्यकान्त शास्त्री	
५२. हिन्दुत्व, सं० १६६०	रामदास गौड़	ज्ञानमंडल, काशी।

संस्कृत भाषा के ग्रंथ

१. अनंगरंग	कल्याणमल्ल	विद्याविलास प्रेस, बनारस। १९२३ ई०
२. अलंकार-सूत्र	राजानक रुय्यक	ट्रावनकोर गवर्नमेन्ट प्रेस। १९१५ ई०
३. अलंकार-शेखर	केशव मिश्र	निर्णयसागर प्रेस, बम्बई। १८९५ ई०
४. उज्ज्वल-नीलमणि	रूपगोस्वामी	निर्णयसागर प्रेस, बम्बई। १९१३ ई०
५. कामसूत्र	वात्स्यायन	चौखम्भा संस्कृत सीरीज कार्यालय, बनारस।
६. काव्यकल्पलतावृत्ति	अमरचन्द्र	विद्याविलास प्रेस, बनारस। १९३१ ई०
७. काव्यादर्श	दंडी	नूतन स्कूल बुक यंत्रालय, कलकत्ता, शाके १८०३
८. काव्यप्रकाश	मम्मट	विद्याविलास प्रेस, बनारस।
९. काव्यालंकार	भामह	श्रीनिवास प्रेस, तिरुवादी। १९३४ ई०
१०. काव्यालंकारसार-संग्रह	उद्भट	ओरियंटल इंस्टीट्यूट, बड़ौदा। १९३१ ई०
११. काव्यालंकार-सूत्र	वामन	विद्याविलास प्रेस, बनारस। १९०८ ई०
१२. कुवलयानन्द	अप्पय दीक्षित	निर्णयसागर प्रेस, बम्बई। १९१७ ई०
१३. चन्द्रालोक	जयदेव	विद्याविलास प्रेस, बनारस। १९२९ ई०
१४. नाट्यशास्त्र, प्रथम भाग	भरत मुनि	सेन्ट्रल लाइब्रेरी, बड़ौदा। १९२६ ई०
१५. नीति-वैराग्य-शतक-द्वयम्	भर्तृहरि	रामनारायण लाल, इलाहाबाद। १९१२ ई०
१६. प्रबोधचंद्रोदय	कृष्ण मिश्र	निर्णयसागर प्रेस, बम्बई। १९१६ ई०
१७. प्रसन्नराघव	जयदेव	निर्णयसागर प्रेस, बम्बई। १९२२ ई०

१८. श्रीमद्भगवद्गीता	टीकाकार बाबूराव विष्णुराव पराड़कर	साहित्य संबंधिनी समिति, कलकत्ता, १९७१ वि०
१९. रसार्णव-सुधाकर	शिङ्गभूपाल	ट्रावन्कोर गवर्नमेंट प्रेस, त्रिवेन्द्रम्, १९१६ ई०
२०. रसमञ्जरी	भानुभट्ट	विद्याविलास प्रेस, बनारस। १९०४ ई०
२१. वृत्तरत्नाकरम्	केदार भट्ट	मोतीलाल बनारसीदास, बम्बई। १९२५ ई०
२२. शृंगार-प्रकाश	भोज नरेन्द्र	ला प्रिंटिङ्ग हाउस, माउंट रोड मद्रास, १९२६ ई०
२३. सरस्वती-कुल-कंठाभरण	भोज नरेन्द्र	जैन प्रभाकर मुद्रणालय, काशी। १९४३ ई०
२४. साहित्य-दर्पण	विश्वनाथ	मृत्युंजय औषधालय, लखनऊ।
२५. सिद्धान्तलेश संग्रह	अप्पय दीक्षित	अच्युत ग्रंथमाला कार्यालय, काशी, १९९३ वि०
२६. हनुमन्नाटक	संकलनकार दामोदर मिश्र	गुजराती मुद्रणालय, बम्बई।

पत्र तथा पत्रिकाएँ

१. नागरी-प्रचारिणी-सभा खोज-रिपोर्ट, सन् १९०३—१९२२ ई०।

२. नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका, भाग ८, सं० १९८४ वि०।

३. नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका, भाग ११, सं० १९८७ वि०।

४. माधुरी, श्रावण, फाल्गुन तथा ज्येष्ठ, तुलसी सं० ३०४।

५. लक्ष्मी, भाग ७, अंक ४ तथा ५।

६. वीणा, अगहन, पौष, फाल्गुन तथा चैत्र, सं० १९८५ वि०।

७. सरस्वती, दिसम्बर, १९०३ ई०।

अंग्रेजी भाषा के ग्रंथ

1. A History of the Boondelas	Capt. W. R. Pogson	Baptist Mission press, Circular Road, Calcutta' 1828 A. D.

2. Ain-i-Akbari Vol. I	Abul Fazl Allami Translated by H. Blochman	Baptist mission Press, Calcutta. 1873 A. D.
3. Akbarnama vol. I	—do—	Asiatic Society of Bengal. 1899 A. D.
4. Akbar, the Great Moghul	Vincent A. Smith	Claredon Press, Oxford. 1817 A. D.
5. Bir Singh Deo Charit and the death of Abul Fazl.	L. Sita Ram	Reprinted from the Calcutta Review, May and July 1924 A. D.
6. Central India States Gazeteer (Eastern States, Orchcha) Vol. VI A.	Compiled by Capt. C. F. Leuard	Newal kishore Press, Lucknow. 1907 A. D.
7. History of Hindi Literature.	F. E. Keay.	Association Press, Calcutta. 1920 A. D.
8. History of Jahangir	Dr. Beni Pd.	Allahabad University Studies in History Vol. I.
9. Humayunnama	Gulbadan Begum, Translated by A. S. Beveridge.	Royal Asiatic Society, Bengal, 1902 A. D.
10. Mediaeval India under muhammedan rule	Stanely Lanepole	Y. Fisher Unwin Ltd, New york.
11. Moghul Empire in India, Part I.	S. R. Sharma	Karnatak Printing Press, Bombay. 1934 A. D,
12. Tod Rajasthan,	Lt. Col. Tod	Oxford University Press, London, 1920 A. D.

13. Tuzuk-i-Jahangiri Vol. I & II.	Translated by Alexander Rogers.	London Royal Asiatic Society Vol. I, 1909, vol 2, 1914 A. D.
14. Vaishnavism, Saivism & other minor religious Sects.	Bhandarkar.	Verlog Von Karl J. Trubnxer, Strassburg. 1913 A D.